सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]

पढमो पयडिबंधाहियारो

[प्रथम प्रकृतिबन्धाधिकार]

[१]

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक–१

भगवन्त भूतबलि भट्टारककृत

महाबंध

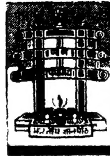
[प्रथम भाग प्रकृतिबन्धाधिकार]

हिन्दी अनुवाद आदि सहित

सम्पादन-अनुवाद

प० सुमेरुचन्द्र दिवाकर

शास्त्री, न्यायतीर्थ, B A, LL B



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रथम सस्करण— वीर नि० स० २४७३, वि० स० २००४, सन् १९४७

द्वितीय सस्करण—वीर नि० स० २४९२, वि० स० २०२३, सन् १९६६

मूल्य ग्यारह रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय . दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

विक्रय केन्द्र ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

●

स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम सं० २००० ● १८ फरवरी सन् १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ PRĀKRITA GRANTHA No 1

MAHĀBANDHA

[First Part : Prakṛti Bandhādhikara]

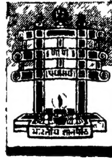
of

Bhagavān Bhūtabali

Edited by

Pt. Sumeruchandra Diwaker

Shastri, Nyāyatirtha, B A , LL B



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

First Edition— VIRA SAMVAT 2473, V S. 2004, 1947 A D
Second Edition—VIRA SAMVAT 2492, V. S 2022, 1966 A D.
Price Rs 11/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL,
PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT APABHRAMŚA, HINDI
KANNAD TAMIL ETC ARE BEING PUBLISHED
IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
AND
CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS INSCRIPTIONS,
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR
JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED

•

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A , D Litt
Dr A N Upadhye M A , D. Litt

•

Bharatiya Jnanpitha

Head office 9 Alipore Park Place, Calcutta-27
Publication office Durgakund Road Varanasi-5
Sales office 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6

•

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470, Vikrama Sam 2000 18th Febr. 1944

समर्पण

जिन्होने समीचीन श्रद्धा, आत्म-विज्ञान और दुर्धर सकल संयमसे समलंकृत हो विषयासक्त विश्वको अपने विमल जीवन-द्वारा आदर्श दिगंबर श्रमण चर्याका दर्शन कराया,

जिन्होंने अपने आत्मतेज और प्रशस्त अध्यवसाय-द्वारा भव्यात्माओंके अंतःकरणमे रत्नत्रयकी दिव्य ज्योति प्रदीप्त करते हुए उन्हे श्रेयोमार्गमे सलग्न कराया,

जिन्होने परमपूज्य महाबंधादि आगम ग्रन्थोके संरक्षण हेतु उन्हे ताम्रपत्रपर उत्कीर्ण करा जिनवाणीकी चिरस्मरणीय सेवा की तथा जनसाधारणमे सम्यग्ज्ञानके प्रसार हेतु उपयोगी ग्रंथोको मुद्रित करवाकर अमूल्य वितरण कराया,

जिन्होने अपने नेत्रोंकी ज्योति मद होनेपर अहिसा महाव्रतके रक्षणार्थ वैयावृत्य रहित इगिनीमरण रूप उच्च सल्लेखनाको धारण कर इस दुषमा कालमे ३६ दिवस पर्यन्त आहार त्यागकर श्रेष्ठ शांतिपूर्वक आदर्श समाधि-मरण किया,

जिनकी उच्च तप साधना तथा अपूर्व आत्मतेजसे शरीरपर लिपटनेवाले भीषण सर्पराज भी बाधाकारी न हुए तथा व्याघ्र आदि क्रूर वन्य पशु जिनके पार्श्वमे आकर प्रशात बने,

उन भयविमुक्त आध्यात्मिक चूडामणि, चारित्र चक्रवर्ती, साधुरत्न १०८ आचार्य श्री शातिसागर महाराजकी पावन स्मृतिमे—

—सुमेरुचंद्र दिवाकर

प्रकाशकीय

[प्रथम संस्करण]

प्राचीन जैन ग्रन्थोंकी शोध खोज, सम्पादन-प्रकाशन तथा आधुनिक लोकोपयोगी धार्मिक साहित्यिक ऐतिहासिक सुरुचिपूर्ण भव्य साहित्यके निर्माण और प्रकाशनकी भावनाओंसे प्रेरित होकर सेठ शान्तिप्रसादजी और उनकी सहधर्मचारिणी श्रीमती रमारानीजीने फाल्गुन कृष्ण ९ वि० स० २००० शुक्रवार, १८ फरवरी १९४४ को बनारसमें भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना की।

उनकी धर्मनिष्ठ स्नेहमयी स्वर्गीय माता मूर्तिदेवीकी अभिलाषा जैन सिद्धान्त ग्रन्थों-विशेषकर जयधवल, महाधवलके उद्धार की थी। अत उनकी अभिलाषाकी पूर्ति स्वरूप उनकी पवित्र स्मृतिमें ज्ञानपीठसे एक मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है।

ज्ञानपीठकी स्थापनाको ३-४ मास ही हुए थे कि श्री प० सुमेरुचद्रजी दिवाकरने स्वसम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थराज प्रथमखडको ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी अभिलाषा प्रकट की। माताजीकी अभिलाषा पूर्तिस्वरूप जयधवलका प्रकाशन जैनसघके तत्त्वावधानमे प्रारम्भ हो चुका था। अत महाधवलको ज्ञानपीठसे प्रकाशित करना तुरन्त निश्चय कर लिया गया और वीरशासन जयन्तीकी शुभ वेलामे प्रेसमें दे दिया। परम सन्तोषकी बात है कि ३ वर्ष पश्चात् श्रुतपचमीके पुण्य दिवसपर उत्सुक और भक्तिविभोर जनताको उसके पूजनका अवसर मिल रहा है। हमारी अभिलाषा इसे शीघ्रसे शीघ्र प्रकाशित करनेकी थी, पर प्रेस आदिकी कठिनाइयोंके कारण ऐसा नही हो सका।

दिवाकरजीने अनेक विघ्न बाधाओंको पार करके जिस साहस और अदम्य उत्साहसे यह अलभ्य ग्रथ प्राप्त किया, उतनी ही लगन और परिश्रमसे इसका सम्पादन किया है। ग्रथराजकी उपलब्धि, अनुवाद और सम्पादनादि सब कुछ आत्मकल्याणकी पवित्र भावनासे किया है और इसी भावसे ज्ञानपीठको प्रकाशनके लिए भेंट कर दिया है। जिनवाणीके उद्धारकी दिवाकरजीकी यह निस्पृह भावना और लगन अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है।

हम उन धर्म-प्रेमी महाशयोका विशेषत. मूडबिद्रीके पू० भट्टारकजीका स्मरण करके आत्म-विभोर हो उठते हैं, जिन्होने घोर सकट कालमें, जब कि शास्त्रोको जला-जलाकर स्नानके लिए पानी गरम किया जाता था, मन्दिर विध्वस किये जाते थे, प्राणोसे लगाकर इस ग्रथरत्नकी रक्षा की और उपयुक्त समय आनेपर उनके उत्तराधिकारियोने भगवन्त भूतबलिकी यह धरोहर समाजके कल्याणार्थ सौप दी।

समाज उन सभी बन्धुओका आभारी है जिन्होने इस ग्रन्थराजकी गोपनीय भण्डारसे उपलब्धि और प्रतिलिपि करानेमे एक क्षणके लिए भी सहयोग दिया है, अथवा प्रयत्न किया है।

वे महानुभाव भी कम आदरके पात्र नही हैं जिन्होने ग्रन्थकी प्राप्तिमे विघ्न नही डाला, क्योकि बने-बनाये शुभ कार्य तनिक से विघ्नसे छिन्न-भिन्न होते देखे गये है।

प० परमानन्दजी साहित्याचार्य और प० कुन्दनलालजी शास्त्रीके हम विशेषत आभारी है जिन्होने उक्त ग्रथके सम्पूर्ण आद्य अनुवादमे दिवाकरजीको नीवकी ईंटकी तरह सहयोग देकर इस ग्रन्थप्रासादकी जड जमायी।

ज्ञानपीठके प्राकृत विभागके सम्पादक ख्यातिप्राप्त डॉ० हीरालालजीने इस ग्रन्थका प्रास्ताविक लिखा है और सस्कृत विभागके सम्पादक न्यायाचार्य प० महेन्द्रकुमारजीकी देख-रेखमें मुद्रण और प्रकाशन हुआ है।

समस्त प्रूफ उन्होने देखे है । दोनो ही विद्वान् ज्ञानपीठके विशिष्ट अग हैं, उन्हें धन्यवाद देनेका हमें अधिकार नही है ।

हम उन सभी बन्धुओके आभारी है जिनकी कृपा या भावनाओसे यह ग्रन्थराज प्रकाशमे आया और हमें भी घर बैठे दर्शनो और स्वाध्यायका पुण्य प्राप्त हुआ ।

भार्गव प्रेसके मालिक प० पृथ्वीनाथजी भार्गव भी धन्यवादके पात्र है ।

डालमियानगर,
५ मई १९४७

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री

प्रास्ताविकं किंचित्

[प्रथम संस्करण]

जब मैंने षट्खंडागमका सम्पादन प्रारम्भ किया था तब मेरे मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित थी। तो भी जब उक्त ग्रंथका प्रथम भाग सन् १९३९ मे प्रकाशित हुआ और लोगोने उसका आनन्दसे स्वागत किया, तब मुझे यह आशा हो गयी कि कठिनाइयोके होते हुए भी यथासमय तीनो सिद्धात ग्रंथ प्रकाशमे लाये जा सकेंगे। फिर भी मुझे यह भरोसा नही था कि मेरी आशा इतने शीघ्र सफल हो सकेगी और साहित्यिक प्रवृत्तियोमें ससार-युद्धके कारण अधिकाधिक बाधाओके उपस्थित होते हुए भी, जयधवलका प्रथम भाग सन् १९४४ में तथा महाबंधका प्रथम भाग सन् १९४७ मे ही प्रकाशित हो सकेगा। जैनसमाज और उसके विद्वानोके इन सफल प्रयत्नोमे भविष्य आशापूर्ण प्रतीत होता है।

मैं षट्खंडागमके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें बतला चुका हूँ कि धवल और जयधवल सिद्धान्तोकी प्रतिलिपियाँ सन् १९२४ मे ही मूडबिद्रीके शास्त्रभडारसे बाहर आ गयी थी और उसके पश्चात् कुछ वर्षोंमे उनकी प्रतियाँ उत्तर भारतमे उपलभ्य हो गयीं। किंतु महाधवल नामसे प्रसिद्ध सिद्धात ग्रंथ फिर भी मूडबिद्री सिद्धात मदिरमें ही सुरक्षित था। जब मैंने सन् १९३८-३९ मे इन सिद्धात ग्रथोके अन्तर्गत विषयोको जाननेका प्रयत्न प्रारभ किया तब मुझे यह जानकर बडा विस्मय हुआ कि जो कुछ थोडा-बहुत वृत्तान्त महाधवलकी प्रतिके विषयमे प्राप्त हो सका था उसके आधारपर उस प्रतिमें केवल वीरसेनाचार्यकृत सत्कर्म चूलिकाकी एक पंजिका मात्र है और महाबंधका वहाँ कुछ पता नही चलता। तब मैंने इस विषयपर अपनी आशका और चिंताको प्रकट करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये और अधिकारियोसे इस विषयकी प्रेरणा भी की कि वे मूडबिद्रीकी ताडपत्रीय प्रतिका सावधानीसे समीक्षण कराकर महाबंधका पता लगावें। मुझे यह कहते हर्ष होता है कि मेरी वह प्रार्थना शीघ्र सफल हुई। मूडबिद्रीके भट्टारकजी महाराजने, प० लोकनाथ शास्त्री व प० नागराज शास्त्रीसे ताडपत्रीय प्रतिकी जाँच करायी और मुझे सूचित किया कि उक्त पंजिका ताडपत्र २७ पर समाप्त हो गयी है, एव आगेके पत्रोपर महाबंधकी रचना है। देखिए जैनसिद्धान्त भास्कर (भाग ७, जून १९४०, पृ० ८६-९८) मे प्रकाशित मेरा लेख 'श्री महाधवलमें क्या है ?' एव षट्खंडागम भाग ३, १९४१ की भूमिका पृ० ६-१४ मे समाविष्ट 'महाबंधकी खोज'।

इस अन्वेषणसे उत्पन्न हुई रुचि बढती गयी और शीघ्र ही, विशेषत प० सुमेरचद्रजी दिवाकरके सत्प्रयत्नसे, दिसम्बर १९४२ तक महाबंधकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गयी व उन्होने प्रस्तुत प्रथम भागका सम्पादन व अनुवाद कर डाला। उनके इस स्तुत्य कार्यके लिए मैं उन्हे बहुत धन्यवाद देता हूँ। पंडितजीने अपनी प्रस्तावनामे जो सामग्री उपस्थित की है उसके साथ षट्खंडागमके प्रकाशित ७ भागोमें मेरे द्वारा लिखी गयी भूमिकाओको पढ लेनेकी मैं पाठकोसे प्रेरणा करता हूँ। इससे इन सिद्धातोके इतिहास व विषय आदिका बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा। पंडितजीकी भूमिकाके पृ० ३० पर णमोकार मंत्रके जीवट्ठाणके आदिमे अनिबद्ध मगल होनेके सबंधका वक्तव्य मुझे बिलकुल निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि वह प्राचीन प्रतियोके उपलब्ध पाठ एव आचार्य वीरसेनकी [1] टीकाकी युक्तियोके सर्वथा विरुद्ध है। इस सबंधमें षट्खंडागम भाग २ की भूमिकाके पृ० ३३ आदिपर मेरा 'णमोकार मंत्रके आदि कर्ता' शीर्षक लेख देखें।

---

(१) "इद पुण जीवट्ठाण णिबद्धमगल। यत्तो 'इमेसिं चोद्सण्ह जोवसमासाण' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्ध 'णमो अरिहताण' इच्चादि देवदाणमोक्कारदसणादो।"—ध० टी० पृ० ४१।

णिबद्धका अर्थ स्वरचित है, जिसे दिवाकरजीने स्वय अपनी भूमिकामें स्वीकार किया है। यथा—"अर्थात् सूत्रके आदिमें सूत्ररचयिताके द्वारा रचित देवता नमस्कार निबद्ध मगल है।"

महाधवल सिद्धांत नामसे प्रसिद्ध शास्त्र यथार्थतः षट्खंडागमका ही महाबंध नामक छठा खंड है, जैसा कि मैं उसके प्रथम भागकी भूमिकामें बतला चुका हूँ। वहीं मैं इस ग्रंथके कर्ताओं व समय आदिके संबंधका भी विचार कर चुका हूँ। तबसे अभीतक कोई ऐसी नवीन सामग्री प्रकाशमें नहीं आयी जिसके कारण मुझे अपने उस मतमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो।

यद्यपि महाबंध षट्खंडागमका ही एक अंश है और उन्हीं भूतबलि आचार्यकी रचना है जिन्होंने पूर्व पाँच खंडोंके बहुभागकी रचना की है, यहाँतक कि उसका मंगलाचरण भी पृथक् न होकर चतुर्थ खंड वेदनाके आदिमें उपलब्ध मंगलाचरणसे ही सम्बद्ध है, तथापि यह रचना एक स्वतंत्र ग्रंथके रूपमें उपलब्ध होती है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—एक तो यह ग्रंथ पूर्व पाँचों भागोंको मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, और दूसरे उसपर धवलाकार वीरसेनाचार्यकी टीका नहीं है, क्योंकि उन्होंने इतनी सुविस्तृत रचनापर टीका लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इस ग्रंथका विषय बहुत ही शास्त्रीय है जिसमें केवल जैनदर्शनके उन्हीं मर्मज्ञोंकी रुचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धांत संबंधी सूक्ष्मतम व्यवस्थाओंकी जिज्ञासा हो।

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमालाके प्राकृत विभागके सम्पादक और नियामकके नाते मैं इस अवसरपर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जैनका अभिनंदन करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ-जैसी संस्था स्थापित की व भारतीय संस्कृतिकी छिपी हुई निधियोंका संसारको परिचय करानेके हेतु अपनी मातृश्रीकी स्मृतिमें यह मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमाला प्रारंभ करायी। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धर्मपत्नी तथा ज्ञानपीठकी संचालक समितिकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानीजीकी रुचि तथा संस्थाके संचालक न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजी शास्त्रीके परिश्रम, अभियोग और उत्साहसे संस्थाका कार्य उत्तरोत्तर गतिशील होगा। मेरी सब विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे संस्थाके उद्देश्यकी पूर्तिमें सहयोग प्रदान करें।

मारिस कालेज,
नागपूर
१५-४-४७

हीरालाल जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

द्वितीय आवृत्तिका प्रधान-सम्पादकीय

हर्षका विषय है कि उन्नीस वर्षोंके पश्चात् महाबन्धके प्रथम भागकी द्वितीय आवृत्ति पाठकोंके हाथ पहुँच रही है। सयोगकी बात है कि इससे पूर्व सन् १९५८ में उधर षट्खडागमके प्रथम पाँच खण्ड सोलह भागोमे पूर्ण प्रकाशित हो गये और इधर छठा खण्ड भी सात भागोमे पूर्ण प्रकाशित हो गया। महाबंधकी मूल प्रतिके प्रारम्भमें २७ पत्रोमें जो 'सतकम्म पजिका' पायी गयी थी उसका भी सम्पादन करके षट्खडागम-के १५वे भागके परिशिष्ट रूप ११४ पृष्ठोमें प्रकाशन कर दिया गया है।

पाठक देखेंगे कि उक्त समस्त भागोमें हमने प्रत्येक भागके विषयका शास्त्रीय परिचय देनेका व उसका वैशिष्टय बतलानेका प्रयत्न किया है। महाबधके अन्य भागोमें भी यही किया गया है। तदनुसार प्रस्तुत भागके सम्पादकसे भी यही अपेक्षा की जाती थी कि वे इस भागके विषयका शास्त्रीय परिचय प्रस्तुत करे और उन गूढ रहस्योको सामने लावे जो इस महान् आगमकी विशेषता हो। किन्तु उन्होने ऐसा न कर अपनी प्रस्तावनामे ऐसी चर्चायें की है जिनका इस भागसे लेश मात्र भी सबध नही है, जैसे गुरु-परपरा व प्रशस्ति-परिचय व मगल-चर्चा। यथार्थत प्रस्तुत ग्रथमें कोई मगलाचरण नही है। षट्खडागमके प्रथम व तृतीय खडोके प्रारम्भमे मगल आया है वहाँ प्रस्तावनाओमे उसपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इनके सबधमें अपनी धारणाओ व कल्पनाओका नही, किन्तु धवलाकार वीरसेन स्वामीके अभिमतका विशेष महत्त्व है। उन्होने णमोकार मत्रको निबद्ध मगल और 'णमो जिणाण' आदिको अनिबद्ध मगल कहा है। इसीसे फलित होनेवाली व्यवस्थापर विवेकपूर्वक ध्यान देना योग्य है। कर्मबध मीमासापर विद्वान् सम्पादकने ३९ से ८९ तक पचास पृष्ठ लिखे है। किन्तु वह सब सामान्य चर्चा है और प्रस्तुत ग्रथके प्रतिपादनका वहाँ लेशमात्र भी परिचय नही है। इसके लिए सपादकसे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उन्होने प्रस्तावनामे कोई हेरफेर करना स्वीकार नही किया। उन्होने इस सस्करणके सबधमें यह तो कहा कि १७ वर्षके शास्त्राभ्यासके फल-स्वरूप अनेक बाते परिवर्तन तथा सशोधन योग्य लगी तथा सहारनपुर निवासी नेमीचन्दजी व रतनचन्दजीने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। किन्तु यह बतलानेकी कृपा नही की कि वे सशोधन कहाँ किस प्रकरणमे कैसे किये गये है। दो-चार सशोधन भी बतला दिये जाते तो उनसे पाठ सशोधन सबधी महत्त्वपूर्ण सूचनाये प्राप्त होती। अस्तु, हम विद्वान् सपादकके अनुगृहीत हैं कि उन्होने ग्रथका यह द्वितीय सस्करण प्रस्तुत किया। ग्रथमाला अधिकारियोको भी धन्यवाद है कि उन्होने ग्रथको द्वितीय बार भी सुन्दरतासे प्रकाशित कराया।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

जबलपुर
२६–९–६६

FOREWORD

When I started editing the SATKHANDAGAMA, there were several difficulties in my way Still, when the first volume was published in 1939 and was received with general applause, I became hopeful that, inspite of all the hindrances then existing, all the three Siddhanta works would be brought to light in due course But I did not then expect that my hope will materialize so soon as to lead to the publication of JAYADHAVALA Vol I in 1944 and of MAHABANDHA Vol I in 1947, inspite of the additional difficulties in the way of such literary efforts, created by the World War These successful efforts of the Jaina Community and its scholars augur well for the future

I had already described in my introduction to Vol I of Satkhandagama, how copies of DHAVALA and JAYADHAVALA Siddhanta had emerged from the Moodbidri temple as early as 1915 and how the same had become available in North India during the subsequent years But the so-called MAHADHAVALA Siddhanta was still confined to the private archives of the Moodbidri temple When I examined critically the contents of these Siddhanta works in 1938–39, I was startled to find that the scanty information available about the manuscript of Mahadhavala only showed the existence of a gloss (Panchika) on the supplementary portion (Chulika) of Virasena's commentary Dhavala, and there was no trace of the Mahabandha I, therefore, published a few articles on the subject expressing my anxiety in the matter and also urged upon the proper authorities the necessity of a thorough examination of the palmleaf manuscript in search of Mahabandha I am glad to say that my appeal met with a ready response The Bhattarakaji got the palmleaf manuscript examined by Pandit Lokanath Shastri and his colleagues, and reported to me that the gloss ended on leaf 27 and the rest of the MS did contain the MAHABANDHA (See my article on *"Shri Mahadhavala men kya hai ?"* in Jaina Siddhanta Bhaskara Vol VII, June 1940, pp 86–98, and *'Mahabandha ki khoja'* in Satkhandagama Vol III, 1941, Introduction, pp 6–14)

The interest aroused by this discovery was kept up, and a transcript of the Mahabandha was completed by the end of 1942, mainly through the efforts of Pandit Sumerchandra Diwakara, the editor of this volume, to whom my best thanks are due for the laudable task he has done in obtaining, editing and translating the text, as well as in writing the introduction which the readers would be well advised to supplement by the information presented in my introductions to the seven volumes of Satkhandagama so far published, in order to get a clear idea of the history and subject-matter of these works The remarks of Pandit Sumerchandraji on page 30 of his introduction regarding the Pancha Namokara Mantra as *'anibaddha mangala* in Jivatthana appear to me to be entirely baseless as they are against the reading available in the old MSS and the arguments set forth by Virasenacharya which I have discussed in my introduction to Vol II, p 33 ff under the heading *'Namokara Mantra ke Adikarta'*

The MAHABANDHA, popularly known as Mahādhavala Siddhanta forms the sixth section (khanda) of the Satkhandagama, as I had already shown in my introduction to Vol I of that work where I had also discussed all the evidence available on the point of authorship and age of these works No new material has since been brought to light and therefore my views on the subject remain unaltered

Though Mahabandha is an integral part of the Satkhandagama, and is composed by the same author Bhutabali who did not even provide it with a separate benediction (Mangala), but made it share the one given at the beginning of the fourth Khanda Vedana, yet it has come down to us in a separate manuscript for two reasons Firstly, the composition is much larger in volume than even all the first five sections put together, and secondly, it contains no commentary by Virasena, the author of Dhavala, who thought it unnecessary to comment upon a work which was so exhaustively self-sufficient The subject-matter of the work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina philosophy who desire to probe the minutest details of the Karma Siddhanta

As the General Editor of the Series, I take this opportunity to congratulate and offer my best thanks to Mr Shantiprasad Jain for establishing the BHARATIYA JNANA-PITHA at Benares and starting this series of publications in memory of his mother Moortidevi, with the noble object of making known to the world the hidden treasures of ancient Indian culture I hope and trust that with the keen interest of Mrs Shantiprasad, Shrimati Rama Rani, the President of the Managing Committee, and the industry, zeal and enthusiasm of Nyayacharya Pandit Mahendrakumar Shastri, the acting Director of the institution, the work started would continue to advance steadily towards the goal I appeal to all scholars to cooperate with the institution in achieving its laudable object

Morris College,
Nagpur
15th March, 1947

H L Jain,
M A, LL B, D. Litt
General Editor

GENERAL EDITORIAL FOR SECOND EDITION

It is a matter of great satisfaction to all concerned that after the lapse of nineteen years this second edition of Mahābandha Part I is being issued. In the mean-time the publication of the first five *khaṇḍas* of Saṭkhaṇḍāgama in 16 Vols. and of Mahābandha in 7 Vols. has also been completed.

In the present edition it was our desire that the Editor of the Volume should explain the special features of Karma Philosophy as they are dealt with in the original here, and the improvements which may have been carried out by him in the text. But this he did not like to do. On the contrary he insisted that the introduction, which in our opinion included much that was irrelevant to this volume, should go as it is, untouched by the General Editors. He alone is therefore responsible for all that has been said in the introduction.

We are thankful to the Editor for his work in this Volume and to the authorities of the Bharatiya Jnanapitha for publishing it neatly like all their other publications.

H. L. Jain
A. N. Upadhye
General Editors

प्राक्कथन

जैन ससारमें धवल, जयधवल, महाधवल (महाबध)–इन सिद्धातग्रंथोका अत्यधिक संमान और श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है। ये परम पूज्य शास्त्र मूडबिद्री, दक्षिण कर्णाटकके सिद्धात मंदिरके शास्त्रभडारको समलकृत करते है। इन ग्रथरत्नोंके प्रभाववश सपूर्ण भारतके जैन बन्धु मूडबिद्रीको विशेष पूज्य तीर्थस्थल सदृश समझ वहाँकी वदनाको अपना विशिष्ट सौभाग्य मानते थे, और वहाँ जाकर इन शास्त्रोके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतार्थ मानते थे। भगवद्भक्त जिस ममत्व, श्रद्धा तथा प्रेमभावसे पावापुरी, चपापुरी सम्मेदशिखर, राजगिरि आदि तीर्थस्थलोको वदना करते हैं, प्राय. उसी प्रकारकी समुज्ज्वल भावनाओ सहित उत्तर भारतके श्रुतभक्त श्रावक तथा श्राविकाएँ दक्षिण भारतके पश्चिम कोणमे मगलूर बन्दरके पार्श्ववर्ती मूडबिद्रीकी वदना करते थे। उसे वे श्रुतदेवताकी भूमि सोचते थे। जिन व्यक्तियोको सिद्धात ग्रथोके कारण पूज्य मानी गयी मूडबिद्रीको जानेका सौभाग्य नही मिला, वे उक्त स्थलकी परोक्षवदना करते हुए उस सुअवसरकी बाट जोहा करते थे, जब वे वहाँ पहुँचकर अपने चक्षुओंको सफल कर सकेंगे।

कहते हैं ये सिद्धातशास्त्र पहले जैनबद्री—श्रमणबेलगोलाके महनीय ग्रथागारको अलकृत करते थे। पश्चात् ये ग्रथ मूडबिद्री पहुँचे। इन ग्रथोकी प्रतिलिपि भारतवर्ष-भरमें अन्यत्र कही भी नही थी। इन शास्त्रोका प्रमेय क्या है, यह किसीको भी पता नही था। बहुत लोग तो यह सोचते थे कि इन शास्त्रोमें आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार सदृश चमत्कारप्रद एव भौतिक आनदवर्धक सामग्री-निर्माणका वर्णन किया गया होगा। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, सोना बनाना आदि सब कुछ इन शास्त्रोमें होगे। इस काल्पनिक महत्ताके कारण साधारण व्यक्ति भी श्रुतदेवताकी वदनाको सोत्कण्ठ सनद्ध रहते थे।

दुर्लभ दर्शन

ये ग्रथ अपनी महत्ता, अपूर्वता तथा विशेष पूज्यताके कारण बडे आदरके साथ निधि अथवा रत्नराशिके समान सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखे जाते थे। जिस प्रकार विशेष भेंट लेकर भक्त गुरुके समीप जाता है, उसी प्रकार वदक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य-अर्पण करके ग्रथराजकी वदना करता था। शास्त्रभडार खुलवानेके लिए द्रव्यार्पण आवश्यक था। सिद्धात मंदिर मूडबिद्रीके व्यवस्थापक लोग ही शास्त्रोपर अपना स्वत्व समझते थे, उनकी ही कृपाके फलस्वरूप दर्शन हुआ करते थे। शास्त्रोकी एकमात्र प्रति पुरानी (हळे कन्नड) कनडी लिपिमें थी, अत उस लिपिसे सुपरिचित तथा प्राकृत भाषाका परिज्ञाता हुए बिना ग्रथका यथार्थ रस लेने तथा देनेवाला कोई भी समर्थ व्यक्ति ज्ञात न था। ग्रथको उठाकर दर्शन करा देना और चोरोसे या बाधकोसे शास्त्रोको बचाना इतना ही कार्य व्यवस्थापक करते थे। इसका फल यह हुआ, कि अत्यन्त जीर्ण तथा शिथिल ताडपत्रपर लिखे ग्रथोकी पुन प्रतिलिपि कराकर सुरक्षाकी ओर ध्यान न गया, इससे दुर्भाग्य वश महाधवल-महाबधके लगभग तीन, चार हजार श्लोक नष्ट हो गये, किंतु इसका पता किसीको भी नहीं हुआ।

जैनकुलभूषण श्रावकरत्न स्व० सेठ माणिकचदजी जे० पी० बबईसे सन् १८८३ में वदनार्थ मूडबिद्री पहुँचे। वे एक विचारक दानी श्रीमान् थे। शास्त्रोका दर्शन करते समय उनको भावना हुई, कि ग्रथको किसी विद्वान्से पढ़वाकर सुनना चाहिए, किन्तु योग्य अभ्यासीके अभाववश उस समय उनकी कामना पूर्ण न हो पायी। उनके चित्तमें यह बात उत्कीर्ण सी हो गयी, कि किसी भी तरह इन शास्त्रोका उद्धार करके जगत्के समक्ष यह निधि अवश्य आना चाहिए। तीर्थयात्रासे लौटते हुए उक्त सेठजीने अपने हृदयकी सारी बातें अपने अत्यन्त स्नेही सेठ हीराचद्र नेमचदजी सोलापुरवालोको सुनायीं। सेठ हीराचदजीके अत करणमें

दक्षिणयात्राकी बलवती इच्छा हुई, अतः आगामी वर्ष वे मूडबिद्रीके लिए रवाना हो गये। ब्रह्मसूरि शास्त्री नामक प्रकाण्ड जैन विद्वान् जैनबद्री (श्रमणवेलगोला) में रहते थे। वे इन शास्त्रोंको बाचकर समझा सकते थे। अत. सेठ हीराचदजीने उक्त शास्त्रीजीको जैनबद्रीसे अपने साथ ले लिया था। जब ग्रंथोका मंगलाचरण पढ़कर उनका अर्थ सुनाया गया, तब श्रोतृमडलीको इतना आनन्द मिला, कि उसका वाणीके द्वारा वर्णन नही किया जा सकता, कारण उन्हे साक्षात् जिनेन्द्रके वचनामृतके रसपानका सौभाग्य मिला।

प्रतिलिपिका संरंभ

प्रवाससे लौटनेपर सेठ हीराचदजीके चित्तमे ग्रथोकी प्रतिलिपि करानेकी इच्छा हुई, किन्तु लौकिक कार्योंमे सलग्नताके कारण बहुत समय व्यतीत हो गया और मनकी बात कृतिका रूप धारण न कर सकी। इस बीचमे धनकुबेर सेठ नेमीचदजी सोनी अजमेर प० गोपालदासजी वरैयाको साथ लेकर तीर्थयात्रार्थ निकले और मूडबिद्री पहुँचे। उनके प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे स्थानीय व्यवस्थापक पचमंडलीने प० ब्रह्मसूरि शास्त्रीके द्वारा देवनागरी लिपिमें प्रतिलिपि करानेकी स्वीकृति प्रदान की। अत्यन्त मन्दगतिसे कार्य प्रारभ किया गया और थोडी नकल मात्र हो पायी कि अतरायकर्मने विघ्न उत्पन्न कर दिया।

सेठ हीराचदजीके प्रयत्नसे प्रतिलिपि निमित्त लगभग चौदह हजार रुपयोकी समाज द्वारा सहायताकी व्यवस्था हुई, अत ब्रह्मसूरि शास्त्रीके साथ गजपति उपाध्याय महाशय मिरजनिवासीके द्वारा पूर्वोक्त स्थगित कार्य पुन चालू हुआ। कुछ काल व्यतीत होनेपर दुर्भाग्यसे ब्रह्मसूरि शास्त्रीका स्वर्गवास हो गया। अत प० गजपतिजी ही कार्य करते रहे। धवला और जयधवला टीकाओंकी नकल लगभग १६ वर्षोंमें पूर्ण हो पायी। इस बीचमें श्रीदेवराज सेट्टि, शातप्पा उपाध्याय और ब्रह्मराज इन्द्रने कनडी भाषामें एक प्रतिलिपि कर ली।

देवनागरीमे प्रतिलिपि

इधर गजपति उपाध्याय मूडबिद्रीके सिद्धातमदिरमें विराजमान करनेके लिए देवनागरी लिपिमें प्रतिलिपि करते थे, उधर गुप्त रूपसे अपनी विदुषी धर्मपत्नी लक्ष्मीबाईके सहयोगसे कनडीमें भी एक प्रतिलिपि तैयार कर ली, जिसका किसीको रहस्य अवगत न था। वह प्रति उपाध्यायजीने विशेष पुरस्कार लेकर परमधार्मिक स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुरको प्रदान की। उन्होने प० विजयचद्रय्या और प० सीताराम शास्त्रीके द्वारा उस कनडी प्रतिलिपिसे देवनागरीमें जो प्रतिलिपि लिखवायी उसमे सात वर्षका समय व्यतीत हुआ। प० विजयचद्रय्यासे कनडी प्रति बचवाकर सीताराम शास्त्री नकल करते थे। शीघ्र कार्य निमित्त सीतारामजी साधारण कागजपर पहले लिख लेते थे, पीछे लाला जम्बूप्रसादजीके भडारके लिए नकल करते थे। सीताराम शास्त्रीने अपने पासके साधारण कागजपर लिखी गयी नकल-पर-से अन्य प्रतिलिपि की। उसके आधारपर अन्य प्रतियाँ लिखाकर आरा, सागर, सिवनी, दिल्ली, बबई, कारजा, इन्दौर, ब्यावर, अजमेर, झालरापाटन आदि स्थानोमें पहुँचायी गयी। इससे जयधवल और धवल शास्त्रोंके दर्शन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य अनेक व्यक्तियोको प्राप्त होने लगा।

महाबंधपर विशेष प्रतिबंध

मूडबिद्रीवालोको अन्धकारमें रखकर जिस ढगसे पूर्वोक्त दो सिद्धात शास्त्र मूडबिद्रीसे बाहर गये और उनका प्रचार किया गया, उससे मूडबिद्रीके पचोके हृदयको बडा आघात पहुँचा। मूडबिद्रीकी विभूतिके अन्यत्र चले जानेसे मूडबिद्रीके प्रति आकर्षण कम हो जायेगा, यह बात भी उनके चित्तमे अवश्य रही होगी, इस कारण अब उन्होने महाधवल–महाबन्धकी प्रतिलिपिके विषयमें पूर्ण सतर्कतासे कार्य लिया। 'दूधका जला छाँछको भी फूँककर पीता है,' इस कहावतके अनुसार उन्होने महाबधको शास्त्र भडारमें इतना अधिक सुरक्षित कर दिया, कि भेंट देनेवाले व्यक्ति भी महाबंधके स्थानमें अनेक बार अन्य शास्त्रका दर्शन कर

अपने मनको काल्पनिक सतोष प्रदान करते थे कि हमने भी महाधवलजी आदिकी वंदना कर ली। अब जब महाबधका यथार्थ दर्शन कठिन हो गया, तब प्रतिलिपिकी उपलब्धिकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

प्रतिलिपिमे समय

सेठ हीराचंदजीके सत्प्रयत्नसे महाबधकी देवनागरी प्रतिलिपिका कार्य प० लोकनाथजी शास्त्री मूडबिद्रीके ग्रथागारके लिए करते जाते थे। यह कार्य सन् १९१८ से १९२२ पर्यन्त चला। इसी बीचमे प० नेमिराजजीने इसकी कनडी प्रतिलिपि भी बना ली। तीनो सिद्धान्त ग्रथोकी प्रतिलिपि करानेमें लगभग बीस हजार रुपये खर्च हुए और छब्बीस वर्षका लम्बा समय लगा।

तीनो ग्रथोकी देवनागरी तथा कनडी प्रतिलिपिके हो जानेसे अब सुरक्षण सबधी चिंता दूर हो गयी, केवल एक ही जटिल समस्या श्रुतभक्त समाजके समक्ष सुलझानेकी थी, कि महाबधको बधन मुक्त करके किस प्रकार उस ज्ञाननिधिके द्वारा जगत्का कल्याण किया जाये? इस कार्यमें महान् प्रयत्नशील सेठ माणिकचदजी बबई तथा सेठ हीराचदजी सोलापुर सफल मनोरथ होनेके पूर्व ही स्वर्गीय निधि बन गये।

जैन महासभाका उद्योग

दिगम्बर जैन महासभाने इस विषयमे एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, किंतु वह अरण्यरोदन रहा। महासभाका एक वार्षिक उत्सव सन् १९३६ में इन्दौरमें रावराजा दानवीर श्रीमत सर सेठ हुकुमचदजीकी जुबलीके अवसरपर हुआ। वहाँ महाबधके विषयमे हमने प्रस्ताव पेश करनेका प्रयत्न किया, तो महासभाके अनेक अनुभवी व्यक्तियोने यह कहकर विरोध किया, कि यह अनावश्यक है, क्योकि वह ग्रथ मूडबिद्रीकी समाज देनेको बिलकुल तैयार नही है। विशेष श्रम करनेपर सौभाग्यसे पुन प्रस्ताव पास हुआ और उसमे प्राण-प्रतिष्ठानिमित्त एक उपसमितिका निर्माण हुआ। उसके सयोजक जिनवाणीभूषण धर्मवीर सेठ रावजी सखारामजी दोशी बनाये गये। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी भाईने दो बार मूडबिद्रीका लम्बा प्रवास करके एव हजारो रुपया भेट करनेका अभिवचन देकर भी सफलता निमित्त प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बातें उत्पन्न हो गयी, जिन्होने परस्परके मधुर सबधोमें भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। महाबध उपसमितिके समक्ष यहाँतक विचार आने लगा, कि जिनवाणी माताकी रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय-विनयका मार्ग छोडकर अब न्यायालयका आश्रय लेना चाहिए। किन्ही व्यक्तियोके विचित्र ग्रथ मोहकी पूर्ति निमित्त विश्वकी अनुपम निधिको अब अधिक समय तक बधनमें नही रखा जा सकता।

न्यायालयके द्वार खटखटानेके विचारपर हमारी आत्माने सहमति नही दी। सहसा हृदयमें यह भाव उदित हुए, कि अदालतके द्वारपर मूडबिद्रीवालोको घसीटकर कष्ट देना योग्य नही है, कारण इनके ही विवेकी, धर्मात्मा तथा चतुर पूर्वजोके प्रयत्न और पुरुषार्थके प्रसादसे ग्रथराज अबतक विद्यमान हैं, और अब भी वे यथामति उनकी सेवा कर ही रहे है। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवाके प्रति कृतज्ञतावश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुन उनसे सस्नेह अनुरोध करेंगे, और अपनी सद्भावनापूर्ण बात समझावेगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदयकी ध्वनिको ध्यानसे सुनेंगे। न मालूम क्यो, हृदय बार-बार यह कहता था, कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्नके पथमे ही सफलता है। यह सूक्ति महत्त्वपूर्ण है "मृदुना दारुण हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम्। नासाध्य मृदुना किंचित्, तस्मात् तीक्ष्णतर मृदु ॥"

जटिल समस्या

कुछ समयके पश्चात् पुरुषार्थी धर्मवीर सेठ रावजी भाईका स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमने सोचा– भगवन्! अब यह महाबंधकी प्राप्तिकी अत्यन्त कठिन तथा जटिल समस्या कबतक और कैसे सुलझती है?

सुदैवसे ग्रथराजकी प्रतिलिपि प्राप्तिके मार्गकी बाधाओका अभाव होना तथा अनुकूल परिस्थितियोका निर्माण आरभ हुआ।

नवीन परिस्थिति

सन् १९३९ की बात है। श्रमणबेलगोलामें १००८ भगवान् बाहुबलिस्वामीकी भुवनमोहिनी, विश्वातिशायिनी दिव्य मूर्तिके महाभिषेककी पुण्यवेला आयी। किन्तु मैसूर प्रान्तोमें स्व० सेठ एम० एल० वर्धमानैय्या सदृश कार्यकुशल, प्रभावशाली, उदार तथा समर्थ नेताके अभाव होनेसे आदरणीय भट्टारक श्री चारुकीर्ति पण्डिताचार्य (पूर्वमे जो ब्र० नेमिसागरजी वर्णीके रूपमे विख्यात थे) महाराज श्रमणबेलगोला तथा उनके सहयोगी महानुभाव, अतरायोकी अपरिमित राशि देख सचित थे, और गोम्मटेश्वर स्वामीसे पुन पुन प्रार्थना करते थे–'देवाधिदेव, आपके चरणोके प्रसादसे यह मगलकार्य सम्यक् प्रकार सपन्न हो, कोई भी विघ्न नही आने पावे।'

उस समय दिगम्बर जैन महासभाके मुखपत्र जैन गजटके सपादक तथा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन राजनैतिक स्वत्वरक्षक समितिके मन्त्रीके रूपमे हमने यथाशक्ति महाभिषेककी सफलता निमित्त पत्र द्वारा आदोलन किया, विघ्नकारियोका तीव्र प्रतिवाद किया तथा मैसूर राज्यके दीवान सा० सर मिर्जा स्माइल आदि उच्च अधिकारियोसे पत्र व्यवहार-द्वारा अनुरोध किया। उस समय हमारे लेखो आदिका कनडी अनुवाद मैसूर राज्यके आस्थान महाविद्वान् प० शातिराजजी शास्त्रीके कनडी पत्र विवेकाभ्युदयमे छपता था, इस कारण कर्णाटक प्रान्तीय जैन बधुओसे हमारा आन्तरिक स्नेह-सबध सहज ही स्थापित हो गया। यही स्नेह आगे सफलतामे प्रमुख हेतु बना।

महाभिषेक-महोत्सवका पुण्य अवसर आया। लाखो वदक विश्ववदनीय विभूतिकी वदना-द्वारा जीवन सफल करनेके लिए भारतवर्षके कोने कोनेसे आये। उस महाभिषेकके अपूर्व तथा दिव्य समारोहको कौन भूल सकता है? बडे सौभाग्यसे हम भी अपने पूज्य पिता श्री सिघई कुँवरसेनजी आदिके साथ वहाँ पहुँचे। जब भट्टारकजीसे मिलने गये, तब उनके समीप उस प्रान्तके प्रमुख जैन बधु बैठे हुए थे। वहाँ स्वामीजीने (भट्टारक महाराजका बडा प्रभाव तथा सम्मान है। मैसूर महाराज भी उनकी बडी प्रतिष्ठा करते है, उनको वहाँ स्वामीजी कहते है।) हमारे प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रकट किया। उन्होने बडे गौरवपूर्ण शब्दो द्वारा लोगोको हमारा परिचय देते हुए इस महाभिषेकको सपन्न करानेका विशेष श्रेय हमें प्रदान किया।

हम चकित हो गये। महाराजसे कहा—"हमने क्या कार्य किया, जिसका आप इतना उल्लेख कर रहे है। हमारा इतना पुण्य नही है। गोम्मटेश्वर स्वामीके चरणोके प्रति भक्तिवश कुछ सेवा बन गयी, उसे अधिक मूल्यवान् बताना आपकी ही महत्ता है।" स्वामीजीने अपनी कर्णाटकी ध्वनि (tone) में कहा, "क्या आपकी स्तुति करके हमें कुछ प्राप्त करना है, जो हम यहाँ अतिशयोक्ति पूर्ण बात कहते?" हमे चुप हो जाना पडा।

वहाँसे चलते समय स्वामीजीने हृदयसे मगल आशीर्वाद दिया और 'फलेन फलमालभेत्'—इन फलोके द्वारा तुम्हे महाफल मिले कहते हुए कुछ पक्व फल हमें दिये। वह पर्वका दिन था। हमारे हाथोमें फलोको देखकर एक शास्त्रीजीने व्यग्यमें कहा—"क्या अँगरेजोकी शिक्षाने आपकी प्रवृत्ति बदल तो नही दी?" हमने भट्टारकजीसे फल प्राप्तिकी बात सुनायी, तो वे बोल उठे—"आप खूब मिले, और लोग तो भट्टारकजीको फल चढाते है, भेंट देते है और भट्टारकजी आपको देते है।" हँसते हुए हम अपने स्थान-पर आ गये।

व्यवस्थापकोंसे मधुर सबध निर्माण

महाभिषेक बडे वैभव और अपूर्व आनदपूर्वक सपन्न हुआ। अभिषेकके कलशोकी बोलीसे प्राप्त रकम मैसूर स्टेटके अधिकारियोके पास जमा हो गयी। किन्तु बहुत से धर्मबधु अपने धनको अपने ही

अधिकारमे रखनेकी बात सोचते थे। अर्थ-व्यवस्था निमित्त रावराजा श्रीमत सर सेठ हुकमचद्रजीके स्थानपर एक बैठक हुई। उसमें कर्णाटक प्रातके महान् प्रभावशाली व्यक्ति श्री डी० मजैय्या हेगडे बी० ए० धर्मस्थल तथा उस प्रातके विशेष श्रीमत राजवशीय श्री रघुचद्र बल्लाल मेंगलोर भी शामिल हुए थे। वह मीटिंग उक्त दोनो महानुभावोके साथ हमारे स्निग्ध सबधोके स्थापन तथा सवर्धनमे कारण पड़ी। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि 'महाबध'के व्यवस्थापकोमे उन लोगोका प्रमुख स्थान था, इसलिए उनके साथका परिचय तथा मैत्री सबध भावी सफलताके मार्गके लिए अनुकूलताको सूचित करते थे।

महाभिषेक-महोत्सव पूर्ण होनेके पश्चात् मूडबिद्री कार्कल आदिकी वदना निमित्त हम पिताजीके साथ मेंगलोर पहुँचे। वहाँ माननीय श्रीबल्लाल महाशयसे अकस्मात् भेट हो गयी। प्रसगवश हमने उनसे कहा—"पहले तो आपके बल्लाल वशने दक्षिण भारतमें राज्य किया था। आपको भी उस वशकी प्रतिष्ठाके अनुरूप अपूर्व कार्य करना चाहिए। देखिए, आपके यहाँ मूडबिद्रीके शास्त्रभडारमे ससारकी अपूर्व विभूति महाबध शास्त्र है। इसका उद्धार कार्य करनेसे विश्व आपका आभार मानेगा।" इसके अनतर कुछ और भी धार्मिक बातें हुई। शायद वे उन्हें पसद आयीं। उन्होने हमसे कहा—"हम मूडबिद्रीमे आपका भाषण कराना चाहते है, क्या आप बोलेंगे?" हमने विनोदपूर्वक कहा—"जब भी आप भाषणके लिए कहेगे, तब ही हम बोलनेको तैयार हैं, किन्तु इसके बदलेमे आपको महाबध शास्त्र देना होगा।" वे हँसने लगे।

सक्रिय उद्योग

हम मूडबिद्री पहुँचे। वहाँ जैन नरेशोके औदार्य तथा भक्तिवश निर्माण कराये गये त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय (चद्रनाथबसदि) की भव्यता तथा विशालताको देख बडा आनद आया। उस मदिरमें अफ्रीकाके कारीगरोने आकर प्राचीन समयमे शिल्पका कार्य किया था। हमे बताया गया कि पहले जैनियोकी वहाँ बहुत समृद्धिपूर्ण स्थिति थी। बडे बडे जहाजोके वे अधिपति थे। उनसे वे विदेश जाकर रत्नोका व्यापार करते थे और श्रेष्ठ वस्तु जिनशासनके उपयोगमे लाते थे। इस प्रकार वहाँकी अमूल्य अपूर्व मूर्तियाँ बनायी गयी थी। पुरातन जैन वैभवकी चर्चा सुन सुनकर हृदय हर्षित हो रहा था, उस समय वयोवृद्ध परमधार्मिक श्री नागराज श्रेष्ठीसे भेंट हुई। उन्होने बडा स्नेह व्यक्त किया। हमने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—"बडी दया हो, यदि इस बारके महाभिषेककी स्मृतिमे आप लोग महाबधकी प्रतिलिपि करनेकी अनुज्ञा दे दें। आपके पूर्वजोका ही पुण्य था, जो रत्नराशिसे भी अधिक मूल्यवान् इस ग्रथरत्नकी अबतक रक्षा हुई।" हमारी बात सुनकर उन्होने कहा—"प्रयत्न करो, आपको ग्रथ मिल जायेगा।" हमने कहा, "आपके आशीर्वाद और कृपा द्वारा ही यह कठिन कार्य सभव हो सकता है।" उन्होने हमे उत्साहित करते हुए कहा—"अगर आप मजैय्या हेगडे तथा रघुचद्र बल्लालको यहाँ ला सकें, तो सरलतामे काम बन जायेगा। उन लोगोका यहाँकी समाजपर विशेष प्रभाव है। हेगडेजीका प्रभाव तो असाधारण है।" अत दूसरे दिन सवेरे हम अपने छोटे भाई चिरजीव (प्रोफेसर) सुशीलकुमार दिवाकर (बी० काम०, एम० ए०, एल एल० बी०) को तथा ब्र० फतेहचन्दजी परवारभूषण नागपुरवालोको साथ लेकर धर्मस्थल गये तथा श्री मजैय्या हेगडेसे मूडबिद्री चलनेका अनुरोध किया। बडे आग्रह करनेपर उन्होने हमारा निवेदन स्वीकार किया। धर्मस्थलमे धर्ममूर्ति हेगडेजीके वैभव, प्रभाव तथा पुण्यको देखकर आनद हुआ।

धर्मस्थलसे वापस होते समय हम वेणूरकी बाहुबलि स्वामीकी विशाल तथा उच्च कलापूर्ण मूर्तिके दर्शनार्थ ठहरे। वहाँ सौभाग्यसे दानवीर रावराजा श्रीमत सर सेठ हुकमचदजीसे भेंट हो गयी। हमने उन्हे सिद्धान्तशास्त्र सबधी चर्चा सुना सध्याके समय मूडबिद्री पहुँचनेका अनुरोध किया और अपने स्थानपर वापस आये। पश्चात् हम श्रीमत बल्लाल महोदयसे मिलने मेंगलोर पहुँचे। उन्होने पूछा कैसे आये? हमने विनोदपूर्वक कहा—"उस दिन आपने कहा था कि मूडबिद्रीमें हम आपका व्याख्यान कराना चाहते हैं। आप अबतक नहीं आये। हमें अपने देश वापस जल्दी जाना है, इससे आपको लेने आये हैं, कि आज

सध्याको हमारा व्याख्यान सुन लें।" वे मुस्करा पड़े। अनंतर हमने सब कथा उनको सुनाकर शीघ्र चलनेकी प्रेरणा की। वे सहर्ष तैयार हो गये। उनकी मोटरमें उनके साथ हम मूडबिद्रीके लिए रवाना हुए। मार्गमें हमने सब विषय उनके समक्ष स्पष्ट किया, तो उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान करनेमें विलम्ब न लगा। उन्होंने अपार प्रेम दिखाया।

मूडबिद्री वापस आनेपर हमें श्री हेगडेजी और सर सेठ हुकमचंदजी मिल गये। रात्रिको पूर्वोक्त त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय-चंद्रनाथस्वमंदिके प्रांगणमें सर सेठ हुकमचंदजीकी अध्यक्षतामें एक सभा बुलायी गयी। अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे थे। मूडबिद्री मठके अधिपति आदरणीय भट्टारकजी चारुकीर्ति-पण्डिताचार्य स्वामी भी उस सभामें आये थे। हमने महाबंध-संबंधी चर्चा प्रारंभ की, उस समय ज्ञात हुआ कि मूडबिद्री सिद्धांत शास्त्रमंदिरके ट्रस्टी वर्ग तथा पंच महानुभावोंके चित्तमें इस बातकी गहरी ठेस लगी, कि एक जैनपत्रमें यह वृत्तांत प्रकाशित किया गया था, कि महाबंध शास्त्र न देनेमें मूडबिद्रीवालोंका व्यक्तिगत स्वार्थ कारण है। वे शास्त्र विक्रय (traffic in literature) करके लाभ उठाना चाहते हैं। इस संबंधमें भ्रमनिवारण किया गया कि जिन लोगोंके पूर्वजोंने त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय-जैसा विशाल जिनमंदिर बनवाया, धर्मसेवाके उज्ज्वल कार्य निःस्वार्थ भावसे संपन्न किये, उनके विषयमें दूषित कल्पना करना तथा मिथ्या प्रचार करना ठीक नहीं है।

मूडबिद्रीमें भाषण

इसके पश्चात् हमने अपने भाषणमें मूडबिद्रीके प्राचीन पुरुषों एवं वर्तमान धर्मपरायण समाजके प्रति आंतरिक अनुराग तथा आदरका भाव व्यक्त करते हुए कहा—"जब लोग धार्मिक अत्याचार करते थे, उस संकटके युगमें जिन्होंने शास्त्रोंको छिपाकर श्रुतकी रक्षा की, उनके प्रति हम हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। किन्तु जगत्में बड़ा परिवर्तन हो गया है। लोग ज्ञानामृतके पिपासु हैं। भूतबलि स्वामीने जगत्के कल्याण निमित्त महान् कष्ट उठाकर इतना बड़ा और अत्यंत गंभीर शास्त्र बनाया। उसके प्रकाशमें आनेपर जगत्में ग्रंथकर्ताकी कीर्ति व्याप्त होगी, तथा मुमुक्षुगण अपना हित संपन्न करेंगे। पूज्य पुरुषोंकी निर्मल कीर्तिका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। सोमदेवसूरिने बताया है 'यशोवध प्राणिवधात् गरीयान्' प्राणिघातकी अपेक्षा यशका घात करना गुरुतर दोष है, कारण यशोवध द्वारा कल्पान्तस्थायी यश शरीरका नाश होता है। भूतबलि स्वामीके साहित्यको छिपानेसे उनके प्राणघातसे भी बढ़कर दोष प्राप्त होता है। भूतबलि स्वामीने विश्वकल्याणके लिए यह रचना की थी। इस अमूल्य कृतिका क्या उन्होंने कुछ मूल्य रखा था ? हमारी भक्तिका अर्थ है श्रुतका संरक्षण तथा सुप्रचार। उसे बंधनमें रख दीमक आदि द्वारा नष्ट होते देखना कभी भी श्रुतभक्ति नहीं कही जा सकती।" इतनेमें किसीने कहा "हमारे यहाँ लोग गरीब हैं, उनकी सहायतार्थ द्रव्य आवश्यक है"। इसे सुनते ही हमने कहा—"इन वाक्योंको सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि हमारे दक्षिणके कोई-कोई बन्धु अपनेको गरीब समझ रहे हैं। जिनके पास भगवान् गोम्मटेश्वर-जैसी अनुपम प्रभावशाली मूर्ति है, क्या वे गरीब हैं ? जिनके पास बहुमूल्य तथा अपूर्व जिनबिंब विद्यमान हैं, वे क्या गरीब हैं ? जिनके पास धवल महाधवल सदृश श्रेष्ठ ग्रंथराज हैं, वे भी क्या गरीब हैं ? यदि इसे ही गरीबी कहा जाता है, तो हम ऐसी गरीबीका अभिनंदन करते हैं, अभिवंदन करते हैं। लीजिए भौतिक संसारकी समृद्धिको, और हमें यह गरीबी दे दीजिए।" हमने यह भी कहा, "बताइए, इन ग्रन्थोंका आपने क्या मूल्य रखा है ? रुपयोंका मूल्य तो जाने दीजिए, हम तो जीवन-निधि तक अर्पण कर इस आगम-निधिको लेने आये हैं। बताइए, इससे भी अधिक और मूल्य आपको क्या चाहिए ? हम जानते हैं, महाबंध सदृश श्रुतकी रक्षा निमित्त हमारे सदृश सैकड़ों व्यक्तियोंका जीवन नगण्य है। लोग राष्ट्रप्रेमके कारण जीवन-उत्सर्ग करते हैं, तो सकल संतापहारी श्रुतरक्षार्थ जीवन अर्पण करनेमें क्या भीति है ? कहिए, ग्रंथके लिए आप और क्या मूल्य चाहते हैं ?"

स्वीकृति

इसपर विवेकमूर्ति परम सज्जन श्री मजैय्या हेगडेने द्रवित होकर कहा "You have given us more than we wanted"—जो कुछ हम चाहते थे, उससे अधिक मूल्य आपने दे दिया। श्री हेगडेजीकी अनुकूलता होनेपर आदरणीय भट्टारक महाराज, श्री बल्लाल आदि सबने स्वीकृति प्रदान कर दी। हमारे पूज्य बडे भाई सिंघई अमृतलालजीने हमसे कहा "यह महान् कार्य है। परिणामोमे परिवर्तनका पदार्पण होते विलंब नही लगता, अत लिखित स्वीकृति आवश्यक है। वह सर्व बाधकाओको दूर कर देगी।" हमने सब समाजसे विनय की—"आज आप लोगोने महाधवलजीकी बिना मूल्य प्रतिलिपि प्रदान करनेकी पवित्र स्वीकृति दी है। समाचार पत्रोमे प्रामाणिकता पूर्वक समाचार प्रकाशित करनेके लिए आप लोगोकी लिखित स्वीकृति महत्त्वपूर्ण होगी, और लोगोको तनिक भी सदेह नही रहेगा।" सबका हृदय पूर्णतया पवित्र था। स्वीकृति अन करणसे दो गयो थी, अत प्रमुख पुरुषोने सहर्ष शीघ्र हस्ताक्षर करके स्वीकृति-पत्रक हमे दिया। उसे पा हमने अपनेको धन्य तथा कृतार्थ समझा। इस कार्यको सपन्न करनेमें हमे अपने पूज्य पिताजी (सिंघई कुवरसेनजीसे) विशिष्ट पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ था, कारण वे महान् शास्त्रज्ञ, लोक व्यवहार प्रवीण एव अपूर्व कार्यकुशलता सपन्न थे। उनका प्रभाव भी कार्य सपन्न करनेमें बडा साधन बना।

मूडबिद्रीके पचोकी महान् उदारताको घोषित करनेवाला समाचार जब जैन समाजने सुना, तब चारो ओर सबने महान् हर्ष मनाया और मूडबिद्रीकी समाजके कार्यकी प्रशसा की। किन्तु दुर्भाग्यसे एक समाचार पत्रमें कुछ ऐसे समाचार निकल गये, जिससे पुरातन विरोधाग्नि पुन प्रदीप्त हो उठी। इससे दक्षिणके एक प्रमुख पुरुषने हमें लिखा—"अब आप प्रतिलिपि ले लेना, देखे, कौन देता है?" इससे हमारी आत्मा काँप उठी। यह ज्ञातकर बडा दुख हुआ, कि व्यक्तिगत विशेष मानकी रक्षार्थ हमारे विज्ञबधु ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयको पुन विरोध और विवादकी भँवरमे फँसा रहे है। इसके अनतर ज्ञात हुआ कि न्यायदेवताके आह्वान निमित्त कानूनी कार्यवाही भी प्रारभ होने लगी। उस समय श्रुतभक्त ब्र० श्री जीवराज गौतमचदजी दोशी और मुनि समतभद्रजीके (जो उस समय क्षुल्लक थे) प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे विरोध शात किया गया। यह चर्चा हमने इससे की, कि लोग यह देख लें, कि बना बनाया धर्मका कार्य किस प्रकार अकारण अवाछनीय सकटोसे घिर जाता है। सोमदेव सूरिकी उक्ति बडी अनुभव-पूर्ण है। वे नीतिवाक्यामृतमे लिखते है—'धर्मानुष्ठाने भवति, अप्रार्थितमपि प्रातिलोम्य लोकस्य'।१।३५। 'धर्मकार्यमे लोग बिना प्रार्थना किये गये स्वयमेव प्रतिकूलता धारण करते है'।—ऐसी प्रवृत्ति पापानुष्ठानके विषयमें नही होती।

और भी विपत्तियोका वर्णन करके हम लेखको बढाना उचित नही समझते। सक्षेपमे इतना ही कहना है, कि बडे-बडे विचित्र विघ्न आये, किन्तु श्रुतदेवताके प्रसादसे वे शरदृतुके मेघोके सदृश अल्प-स्थायी रहे।

आबाधाकाल

वर्ष बीत गया, फिर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारभ नहीं हो रहा था। एक बार श्री मजैय्या हेगडेने अपने धर्मस्थलके सवधर्म-सम्मेलनमें बुलाया। वहाँ पहुँचनेसे प्रतिलिपिका कार्य शीघ्र प्रारभ करनेमें विघ्न नही आता, किंतु कारण विशेषसे पहुँचना न हो सका। कुछ समयके अनतर दिसबर सन् १९४१ में गोम्मटेश्वर महामस्तकाभिषेक फण्ड सबधी कमेटीकी बैठकमें सम्मिलित होनेको हमें बैंगलोर जाना पडा। उत्तर भारतसे केवल श्रीमत सर सेठ हुकमचदजी, सर सेठ भागचदजी सोनी पहुँचे थे। मीटिंगके पश्चात् हम ग्रथप्राप्तिकी आशासे श्री मजैय्या हेगडे, श्री रघुचद बल्लाल, श्री जिनराज हेगडे एडवोकेट, एम० एल० ए०, श्री शातिराजजी शास्त्री आस्थान महाविद्वान् मैसूरके साथ मूडबिद्रीके लिए

रवाना हुए। सब लोग आवश्यक कार्यवश अपने-अपने घर चले गये। अत हम अकेले मूडबिद्री पहुँचे। दो तीन दिन प्रयत्न करनेपर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारभ न हो सका। आगे कबतक प्रतीक्षा करनी पडेगी, यह भी पता नहीं चलता था। इससे चित्तमें विविध सकल्प-विकल्प उत्पन्न होते थे। चित्त अपार चिंता-निमग्न था। जिनेद्र भक्तिका एकमात्र अवलबन था।

चिरस्मरणीय दिवस

परम सौभाग्यसे तीन दिनकी प्रबल प्रतीक्षाके पश्चात् व्यवस्थापक बधु श्री धर्मपालजी श्रेष्ठिकी विशेष कृपा हुई। उन्होंने भडार खोलकर महाबध शास्त्रकी ताडपत्रीय प्रति हमारे समक्ष विराजमान कर दी। जिनेंद्रदेव तथा जिनवाणीकी पूजाके अनतर हमने स्वय देवनागरी लिपिमे प्रतिलिपि प्रारभ करनेका परम सौभाग्य प्राप्त किया। वह ३० दिसबर १९४१का दिन जैन साहित्यके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा।

कृतज्ञता

अनतर प्रतिलिपिका कार्य प० लोकनाथजी शास्त्रीके तत्त्वावधानमे सपन्न होता रहा। ३० दिसबर सन् १९४२ तक कार्य पूर्ण हो गया। पहले मूडबिद्रीके भडारके लिए यही कापी ४ वर्षमे तैयार की गयी थी। यह कार्य शीघ्र सपन्न करनेका श्रेय उक्त शास्त्रीजीके सहयोगी विद्वान् प० नागराजजी तथा देवकुमारजीको भी है। भट्टारक महाराज तथा व्यवस्थापकोकी भी विशेष कृपा रही, जो उन्होंने इस कार्यमें कोई भी बाधा नही उत्पन्न होने दी। इस सबधमे श्री मजैय्या हेगडेके हम अत्यत कृतज्ञ हैं, कि उन्होंने सर्वदा इस पुण्य कार्यमे सर्व प्रकारका सहयोग प्रदान किया। कुछ विद्वानोने उत्तर भारतसे श्री हेगडेजीको प्रतिलिपि न देनेका अप्रार्थित बहुमूल्य परामर्श दिया, किन्तु विद्वान् हेगडे महाशयके उत्तरसे उन लोगोको चुप होना पडा। जब हम आपत्तियोसे आकुलित होकर हेगडेजीको लिखते थे, तो उनके उत्तरसे निराशा दूर हो जाती थी। उन्होंने हमे लिखा था, "आप भय न करे, ग्रथ-प्रकाशनके विषयमें कोई भी बाधा न आयेगी। प्रतिलिपिका कार्य आपकी इच्छानुसार होता रहे, इसपर मैं विशेष ध्यान रखूँगा।" उन्होंने अपने वचनका पूर्णतया रक्षण किया। यथार्थमे वे महापुरुष थे। कुछ भी भेट लिये बिना प्रतिलिपिकी अनुज्ञा प्रदान करनेकी उदारता तथा कृपाके उपलक्षमे हम सिद्धात मदिरके ट्रस्टियो तथा मूडबिद्रीके पचोको हार्दिक धन्यवाद देते है। भट्टारक महाराजके भी हम अत्यधिक कृतज्ञ है। मूडबिद्रीके महानुभावोके हार्दिक प्रेम, कृपा तथा उदार भावकी स्मृति चिरकाल पर्यन्त अत करणमे अकित रहेगी।

मूडबिद्रीमे प्रतिलिपि करानेमे जो द्रव्य-व्यय हुआ, वह सेठ गुलाबचदजी हीराचदजी सोलापुरके पाससे प्राप्त हुआ था। इसके लिए उन्हे धन्यवाद है। ब्र० श्री जीवराजजीने इस श्रुत-रक्षा या सेवाके कार्यमे जो सत्परामर्श तथा सर्व प्रकारका सहयोग दिया, उसके लिए हम अत्यत अनुगृहीत हैं।

दानवीर साहू श्री शातिप्रसादजी जैनकी वदान्यतासे स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ काशीने इस टीकाके प्रकाशनकी उदारता की, इसके लिए हम साहू शातिप्रसादजीके अत्यत अनुगृहीत है। प० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने प्रकाशन निमित्त जो श्रम किया, उसके लिए उन्हे विशेष धन्यवाद है।

इस शास्त्रका तेजीके साथ शब्दानुवाद प्रथम बार वैद्यराज प० कुदनलालजी परिवार न्यायतीर्थ तथा प० परमानन्दजी साहित्याचार्य सोरई निवासीके सहयोगसे लगभग सवा माहमें पूर्ण हुआ था। इसके पश्चात् प० कुदनलालजीके अस्वस्थ हो जानेके कारण उनका बहुमूल्य सहयोग न मिल सका। पं० परमानदजीका लगभग दो एक सप्ताह और सहयोग बडी कठिनतासे मिला, और आगे वे सहयोग न दे पाये। उन विद्वानोके अमूल्य सहयोगके लिए हम अत्यत आभारी हैं।

आद्य अनुवादकी प्रति देखकर अनेक अनुभवी विद्वानोने सलाह दी, कि सपूर्ण टीका पुन लिखी जानी चाहिए। यह ग्रथ महान् है। हमने भी जब विशेष शास्त्रोंका अभ्यास किया और रचनाका सूक्ष्मतया निरीक्षण

किया, तब नवीन रूपसे टीका निर्माण करना ही उचित जँचा। महाबधकी टीकाको मुख्य कार्य समझ हम उसमें सलग्न हो गये। लगभग तीन वर्षमे यह कार्य बन पाया। बना या नही यह हम नहीं कह सकते। हमारा भाव यह है कि इसमे पूर्वोक्त समय लगा। इस अनुवादमें विशेषार्थ, टिप्पणी, शुद्ध पाठ योजना आदि भी कार्य हुए। इस अपेक्षासे यह टीका पूर्णतया नवीन समझना चाहिए।

सन् १९४५ के ग्रीष्मावकाशमें न्यायालकार सिद्धान्त महोदधि गुरुवर प० वशीधरजी शास्त्री महरौनी-वालोने सिवनी पधारकर अनुवादको ध्यानपूर्वक देखा। उनके सशोधनके उपलक्षमें हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। यह उनकी ही कृपा है, जो यह महान् कार्य हम जैसे व्यक्तिसे सपन्न हो गया।

प० हीरालालजी शास्त्री साढूमलने अनेक बहुमूल्य परामर्श तथा सुझाव प्रदान किये थे। प० फूलचद्र-जी शास्त्रीने सिवनी पधारकर अनेक महत्त्वास्पद बातें सुझायी थी। इसके लिए हम दोनो विद्वानोके अनुगृहीत है। अन्य सहायकोके भी हम आभारी हैं।

हमें स्वप्नमे इस बातका भान न था, कि महाबधकी प्रति मूडबिद्रीसे प्राप्त करनेका परम सौभाग्य हमे मिलेगा, और उसकी टीका करनेका भी अमूल्य अवसर आयेगा। जैन धर्मके प्रसादसे और चारित्र चक्रवर्ती प्रात स्मरणीय पूज्य आचार्य १०८ श्री शातिसागर महाराजके पवित्र आशीर्वादसे यह मगलमय कार्य सपन्न हुआ। प्रमाद अथवा अज्ञानवश टीकामे जो भूलें हुई हो, उन्हे विशेषज्ञ विद्वान् क्षमा करेंगे और सशोधनार्थ हमे सूचित करनेकी कृपा करेंगे, ऐसी आशा है। ऐसे महान् कार्यमें भूलें होना असभव नही है। 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।'

पौष कृ० ११, वीरसवत् २४७३
१८ दिसम्बर, १९४६ सिवनी
(सी० पी०)

—सुमेरचद्र दिवाकर

द्वितीय संस्करण

यह परम आनदको बात है कि महाबध सदृश दुरूह और गभीर ग्रथके प्रथम खडका प्रथम सस्करण समाप्त हो जानेसे उसके पुन मुद्रणका मगल प्रसग प्राप्त हुआ। हमने महाबधका सूक्ष्मतासे पुन पर्यालोचन करके भूमिका, अनुवाद आदिमें अत्यधिक आवश्यक तथा उपयोगी परिवर्तन और परिवर्धन किये है।

इस ग्रथकी कोई पूर्वमे टीका नही थी, अत १७ वर्षके शास्त्राभ्यासके फलस्वरूप अनेक बातें परिवर्तन तथा सशोधन योग्य लगी। सहारनपुरके श्रुतप्रेमी बधु श्री नेमीचदजी एडवोकेट तथा ब्र० रतनचदजी मुख्तारने अनेक महत्त्वपूर्ण सशोधनोका सुझाव दिया। मूडबिद्री जाकर पुन प्रतिलिपि मिलानेके कार्यमें हमारे अनुज अभिनदनकुमार दिवाकर एम० ए०, एल एल० बी० एडवोकेटने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। हमारे भाई श्रेयासकुमार दिवाकर बी० एस० सी० से भी उपयोगी सहायता मिली। भाई शातिलाल दिवाकरके ज्येष्ठ चिरजीव ऋषभकुमारने लेखन कार्यमे पर्याप्त श्रम उठाया है।

भारतीय ज्ञानपीठने इस ग्रथके पुन मुद्रणका भार उठाया। इन सबके प्रति हम अत्यत आभारी हैं। चारित्र चक्रवर्ती क्षपक शिरोमणि १०८ आचार्य शातिसागर महाराजकी इच्छानुसार सपूर्ण महाबधकी ताम्रपत्रीय प्रतिके लिए पूर्ण ग्रथ सशोधन, सपादन तथा मुद्रणका महान् कार्य करनेका पवित्र सौभाग्य मिला था, उस कार्यके अनुभवसे इस टीकाके कार्यमें विशेष लाभ पहुँचा। सन् १९५५ मे उन ऋषिराजने सिद्धक्षेत्र कुथलगिरिमे ३६ दिन पर्यन्त सल्लेखना पूर्वक आदर्श देहोत्सर्ग किया, अत उनके पुण्यचरणोको कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हुए प्रणामाजलि अर्पित करते है। ऋषीश्वर धरसेन आचार्य तथा पुष्पदत-भूतबलि मुनीद्रोके चरणोको शतश. वदन है, जिनके कारण इस द्वादशाग वाणीके अगरूप आगमका सरक्षण हुआ। 'जयउ सुयदेवदा।'

१० दिसम्बर, १९६४
दिवाकर सदन, सिवनी
मध्यप्रदेश

सुमेरचद्र दिवाकर

PREFACE

Mahābandha and its importance

We have great pleasure in placing before the literary world the first volume of Mahābandha alias Mahādhavalā which was hitherto hidden in the Shastra Bhandar of Moodbidree (South Kanara) It is one of the three most reputed and revered Jain canonical works, whereof Jayadhavalā and Dhavalā have seen the light of the day and have reached the hands of scholars Ordinarily this Mahābandha is supposed to be as remarkable as the said two Shastras but as a matter of fact, this is worthy of greater attention, since it is the biggest Prakrit Sūtra work consisting of forty thousand slokas, composed in the beginning of the Christian era

This Mahābandha is the sixth part of the great Satkhandāgama Sūtra The commentary on the five parts is called Dhavalā, composed by Acharya Virasen in the 9th century A D during the reign of Jain monarch Amoghavarsha having 72000 slokas The original sutras consist of 6000 slokas out of which only 177 sutras had been written by Puspadanta Acharya and the remaining portion was composed by Sri Bhūtabali Acharya Thus the entire composition of Bhūtabali comes to about 46000 slokas

The other sacred work Jayadhavalā is a commentary written in the 9th century A D by Virasen and Bhagwata Jinasen Acharya in 60000 slokas on one of the most sacred scriptures, named Kasāya Pāhuda of Gunadhara Acharya This Kasāya Pāhuda consists of only hundred and eighty gāthās, which also belong to the early part of the Christian era Naturally therefore Dhavalā and Jayadhavalā commentaries cannot rank with Mahābandha from antiquarian stand-point

This work deals with the Bandha category, which is one of the sevenfold Tattvas in Jainism, in the Jain Sauraseni Prakrit The language is simple and lucid The entire work is in prose, with the exception of about one and a half dozen verses About three thousand slokas of the work are missing, since they have been eaten by worms and so they cannot be replaced by any amount of human effort

Historical reference

The entire work has no historical reference, even the name of the author Acharya Bhūtabali does not appear in such a voluminous composition, probably reflecting author's detachment for name, which according to poet Milton 'is the last infirmity of noble mind'

In the panegyric the name of the work appears as Mahābandha, 'which is a mine of meritorious karmas' (सत् पुण्याकर महाबन्धपुस्तक) This book has been referred to in the Dhavalā and Jayadhavalā on several occasions and its authorship is ascribed to Bhūtabali The prashasti of palm-leaf manuscript mentions that it was written through the munificience of Rājā S'hāntisena's pious and benevolent queen

Mallikādevi for the purpose of presentation to an erudite Muniraj Māghanandi who was the disciple of Meghackandia Suri in commemoration of the successful completion of her Panchami Vrita This throws light upon the fact that in ancient India the ladies of high family had refined taste and were attached to literature It is through the generosity of Mallikādevi that we have at least one copy amid us written in the Kannad script It is really a matter of profound regret that such important work has not been preserved in any other Bhandāra

The Dhavalā sheds light upon the descent of this work and the historicity of Monks Bhūtabali, Pushpadanta and their spiritual preceptor Dharasena Āchārya He was a great soul and an enlightened scholar well-versed in some portions of the Twelve Angas, which had been composed by the head of Jain hierarchy, Gautama Gaṇadhar, who had received direct Teaching from the Omniscient Tirthankara Bhagavān Mahavira Dharasena flourished after Lohāchārya, who died 683 years after Mahavira's Nirvana i e, in 137 A D What is the exact date of Dharasena is not definitely known, but it is surmised that he must have lived a couple of years after Lohāchārya It is just possible that he might have seen the demise of Lohacharya, who possessed the knowledge of entire Acharanga It appears, therefore, that Dharasena should belong to the later half of the second century after Christ

It transpires that Dharasena Āchārya was proficient in the occult science of Ashtānga Nimitta Shastra, as also in 'Mahā-Karma-Prakriti-Prābhrita' On one occasion his mind was diverted towards the sudden disappearance of canonical Teachings of Mahavira Bhagavāna and this fact grieved him a great deal He made up his mind to preserve the Teaching, which was fresh in his memory He imparted instructions to Bhūtabali and Pushpadanta, who were sent to him by the religious head of the monks of the south on his requisition for sending disciples specially remarkable for their memory and retentive faculty After the termination of studies, the disciples left the place in accordance with the wishes of their master Pushpadanta went to Vanavas Desa (modern Wandewash), composed 177 sutras and sent them to Bhutabali with his high souled disciple Jinapalita to Dramila Desa After going through the sutras Bhutabali could see into the mind of Pushpadanta Jinapalita communicated to him that his master is not expected to survive long, thereby suggesting him that he should speed up into the matter of compiling the teaching imparted to them by the preceptor, Dharasena Acharya

Bhūtabali devoted himself to writing with single mind and was successful in completing the whole of Shatkhandāgama Sutra Fortunately Pushpadanta was alive then, therefore he had sent the entire composition to his colleague Pushpadanta with the self-same saint Jinapalita Pushpadanta was extremely delighted to see his heartfelt wishes fulfilled and he performed the worship of the scripture with due eclat and grandeur accompanied by the huge assemblage of Jains on Jyestha sudi 5th day

Date of the author

The date of the author is not mentioned, but it appears that it must be assigned to the early part of the first century A D.

The Subject matter

The subject matter of this book, as already mentioned, is Bandha, (Bondage) which forms an essential part of the doctrine of Karma Almost all the believers in transmigration attach importance to the philosophy of Karmas The adage, 'as you sow, so you reap,' is significant enough to show the universality and popularity of this doctrine, but the treatment of this subject is unique in Jain philosophy, in as much as it is scientific, rational and elaborate No other system has explained this matter, as has been done by Jain thinkers and sages

With a view to appreciate this doctrine it is necessary to comprehend the nature of the world Our analysis brings out that there are sentient and non-sentient beings in this universe The soul is possessed of consciousness, while other objects, devoid of this faculty, are matter, space, time, etc The special characteristics of matter are taste, smell, touch and colour All that is perceived by us is material Like the soul matter is also indestructible They are eternal, therefore they are not created by any agency, whether super-natural or super-human The whole panorama of nature is the outcome of the combination or the chemical action of atoms due to the property of smoothness and aridity The variegated forms and appearances are evolved out of material atoms But this has driven many a thinker to the conclusion that some Intelligent and Supreme Being is at the helm of affairs He creates, destroys and recreates The entire world dances attendance to His sweet wishes He is Omnipotent, Omniscient and Enjoyer of transcendental bliss

The Jain philosophers do not agree with the idea of a Supreme Being guiding the destinies of all things since it does not stand to critical examination and logical interpretation Impartial study and mature thought lead us to the conclusion that this world full of barbarities and inequalities cannot be the handiwork of a good, happy, Omnipotent and Omniscient God The observations of the scientist Huxley deserve special attention in this respect —

"In my opinion it is not the quantity, but the quality, of persons among whom the attributes of divinity are distributed, which is the serious matter If the divine might is associated with no higher ethical attributes than those which obtained among ordinary men , if the divine intelligence is supposed to be so imperfect that it cannot foresee the consequences of its own contrivances, if the supernal powers can become furiously angry with the creatures of their omnipotence and in their senseless wrath destroy the innocent along with the guilty, or if they can show themselves to be as easily placated by presents and gross flattery as any oriental or occidental despot , if in short, they are only stronger than mortal men and no better, then surely, it is time for us to look somewhat closely into their credentials and to accept none but conclusive evidence of their existence "-Science & Hebrew Tradition, p 258

This world cannot be the creation of a benevolent and good God, for it presents a poor picture of the abundance of misery and calamity as the lot of the majority of its creatures Arnold in his Light of Asia argues —

"How can it be, that Brahma,
Would make a world, and keep it miserable,
Since, if all-powerful, he leaves it so,
He is no good, and if not powerful,
He is not God"

Due to these failings, the Jains believe in a God, who is Omniscient, who is passionless and who enjoys the bliss of perfection, and who does not bother about the creation or destruction of the world The manifold conditions of sentient beings are due to fruition of Karmas acquired by the Jiva in the past

Bondage of Karma

Some think that the soul is pure and perfect therefore it is wrong to suppose it as the reaper of the harvest of its merits or demerits This view goes against our experience and reason The mundane soul is impure, since it is contaminated with matter assuming the form of good or bad karmas We see that the Jiva has been imprisoned in this body, which is a store-house of the filthiest of objects The pure, perfect and powerful soul would never have liked to reside in such an impure tabernacle even for a moment. We, therefore, infer that the jiva is under forced-servility of some thing, which is instrumental to such an awkward position of the soul The main source of this downfall is the matter having assumed the form of a Karma

This karma is material since its effects, auspicious or otherwise, are visible either on the physical body or they are exhibited by means of association or separation of material objects

This soul, although immaterial, is recipient of good or evil effects of the karmas which are material This phenomenon should not bewilder any one, for we see that the intelligent being is subject to intoxication caused by drinking wine which is non sentient It is to be noted that the very liquor does not cause any intoxication to the bottle which contains it Such is the nature of things

The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech The molecules which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the Jiva, whereby an infinite number of sublte atoms is attracted and assimilated by the Jiva This assimilated group of atoms is termed as Karma Its effect is visible in the multifarious conditions of the mundane soul As a red-hot iron-ball, when dipped into water, assimilates its particles, or as a magnet draws iron filings towards itself due to magnetic force, in the like manner the soul, propelled by its psychic experiences of infatuation, anger, pride, deceit and avarice, attracts karmic molecules and becomes polluted by the karmas The psychic experience is the instrumental cause of this transformation of matter into a karma, as the clouds are instrumental in the change of sun's rays into a rainbow

When karmas come in contact with the soul fusion occurs, whereby a new condition springs up which is endowed with marvellous potentialities and is more powerful than infinite atom bombs One can easily imagine the power of karmas, which have covered infinite knowledge, infinite power, infinite bliss of the soul and

have made a beggar of this very Jiva, who is no less than a Paramatman by its intrinsic nature Psychic experiences of anger etc, cause the fusion of karmas and these karmas again produce feelings of attachment, aversion or anger etc, thus the chain of karmic bondage continues ***ad infinitum***

This karma soul association is without a beginning There has been no period when the fusion of karmas took place in a pure soul It is beyond comprehension that a perfect, pure, blissful, omniscient and powerful soul will ever enter into the folly of embracing the karmas and thus dig its own grave by inviting innumerable and indescribable sufferings

When the husk of a paddy is removed from it, the rice loses its power of sprouting, likewise when the husk of karmic molecules is removed from the mundane soul, the resulting perfect Jiva cannot be imprisoned by the regermination of karmas The nature of a soul, entangled in the cob-web of transmigration, can be understood easily, when we divert our attention to the impure gold found in a mine The association of filth with golden ore is without beginning, but when the foreign matter is burnt by fire and various chemicals, the resulting pure gold glitters, in the like manner the fire of right belief, right knowledge and right conduct destroys the karmic bondage in no time If the fire of self absorption is intense, the work of destruction can be achieved within a span of 48 minutes This destruction does not mean complete annihilation of the atoms, but it denotes the dissociation of karmic molecules from the soul

While explaining the nature of karmas, the Jain saints have cited the instance of meals, transforming into blood, flesh, bone, muscle, marrow etc, in accordance with the digestive power, similarly the karmas assume innumerable forms in conformity with the psychic experiences of the Jiva These karmic molecules are superfine They are not visible even with the aid of physical instruments Even after the destruction of this physical gross body, the karmas are not destroyed The karmic body and the electric body (Taijas Sharira) always control and regulate the activities of the Jiva Had they left the Jiva for a moment, no power in the world could have recaptured the soul in the clutches of karmas and debarred the Divine Being from enjoying transcendental bliss of liberation *

Varieties of Bandha

The bondage of Jiva and Karma has been classified into '*Prakriti Sthiti*', '*Anubhaga* and *Pradesha* bandha The first i e, the prakriti bandha deals with the nature of the karmic bondage, e g the nature of opium is intoxication Similar-

---

*The doctrine of Karma Philosophy has been dealt with at length in my book "Religion and Peace " The great Hindu recondite scholar Dr Sir C P Ramaswami Aiyar had observed in his letter

"The Chapter on Karma Philosophy is entitled to special attention, as the term Karma has not the same meaning in Jain Philosophy as in ordinary parlance Jain Philosophers, as the author says, do not agree with the idea of a Supreme Being personally guiding the destinies of all things Karma is in the nature of

ly the 'Gyanavarniya' karma obstructs the knowledge, the 'Darshanavarniya' obstructs darshana (form of consciousness, which precedes khowledge), 'Vedaniya' enables the soul to have sensations of pleasure or pain through senses, 'Mohaniya', the ring-leader of the karmas, causes delusion and perversed vision of the self and non-self, 'Ayuh' determines the length of life in a particular body, 'Nama' is responsible for physical form, complexion, constitution etc , 'Gotra' decides the birth in high or low family and the last one, 'Antaraya', acts as an impediment in the acquisition and enjoyment of things, possession of strength etc These eightfold karmas are further sub-divided into 148 varieties The present volume deals with this Prakriti Bandha from several stand points The second one i e , 'Sthiti Bandha' determines duration of the bondage, the third, 'Anubhaga Bandha' deals with the potentiality of various karmas, the fourth, 'Pradesha Bandha' causes the division of karmic molecules into several varieties in accordance with the vibrations of the soul

Modern worldy-wise man perhaps may think that this work has no bearing upon life and it is a mere display of intellectual exercises

An aspirant for liberation will immediately differ from this viewpoint In Mahabandha he will find wonderful remedy for warding off the feelings of attachment or aversion and thereby uplift the soul to the sphere of equanimous contemplation, which ultimately leads to the final beatitude One who devotes himself to the study of this work is so deeply engrossed therein, that he forgets for a while the world of attachment and aversion His Holiness the Digamber Jain Āchārya Chāritra Chakravarti Sri Shāntisāgar Mahārāj had once remarked, "This Shastra must be thoroughly studied by those who are tired of transmigration and who long for liberation Proper knowledge of Bandha-Tattva is essential before proceeding towards the ultimate goal of purity and perfection "

---

vibrations operating through mind, body or speech, by means of which atoms and molecules assume several aspects and forms A group of atoms is termed Karma, whose effect is visible in exterior condition This theory, in fact, embodies a marvellous pre science of modern scientific developments The whole chapter is intensely interesting and is an attempt at rational exposition of Karmic bonds, as they affect the soul's evolution

"The final teaching that the Jeeva with attachment gets bound by Karma, but the one with detachment remains free from Karma, is not different from the Vedantic approach, but the process of reasoning and the background of the doctrine are inherently *sui generis* and it is to the glory of the great Jain teachers that they were able to evolve a philosophy of conduct .uninfluenced by any reliance upon supernatural intervention or guidance ' (Religion And Peace, P 318)

"For it is impossible that he who has once been made perfect by love and feasts eternally and insatiably on the boundless joy of contemplation, should delight in small and grovelling things For what rational cause remains any more to the man who has gained the 'light inaccessible' for reverting to the good things of the world ?" (Clement) A N.C L. Vol XII pp 346-347)

In the end, we deem it our duty to express our sincere gratefulness to Sri D Manjjaiya Heggade, B A, M L C, Dharmasthala, His Holiness Bhattarak Sriman Charukirti Panditacharya Swami, Moodbidree and the trustees of the Jain Siddhanta Temple, Moodbidree, (South Kanara) for the kind permission to take a copy from the original text preserved in the Siddhanta Mandir

We are also thankful to Danvir Sri Shânti Prasad Jain, B Sc, the founder of the Bharatiya Jnana Pitha Kashi, through whose munificence this volume is coming to the hands of the public

Diwakar Sadan
Seoni (M P)
6th January, 1947

Sumeruchandra Diwaker

Preface to the Second Edition

It is a matter of profound gratification that this sacrosanct Scripture, Mahābandha, is undergoing the second edition When it was first printed in 1947, it was revealed that more than three thousand slokas of the palm leaf manuscript were irrevocably destroyed by moths This information deeply pinched the soul of the greatest nude Jain Saint His Holiness Chāritra Chakravarti 108 Āchārya Shānti Sāgar Mahāraj, who was then spending his Chaturmās—period of rainy season in the Jain Tirtha, Kunthalgiri (Maharashtra State) When the saint's mental worry and disturbed internal condition became known, the devoted disciples humbly prayed for conveying them the internal difficulty His Holiness observed, "Look here, precious part of the most ancient and sacred Jain literature is lost for ever If immediate care is not taken for proper preservation of the remaining literary priceless treasure, we shall one day become a pauper I, therefore, feel it imperative that the entire Siddhanta literature comprising of One lakh and seventy thousand slokas should be inscribed in copper plates so that it may last for hundreds of years '

The master s bidding was immediately obeyed and about two lakhs of rupees were contributed by the generous, opulent and cultured disciples to fulfil the sublime desire of the saint

Fortunately, the sacred responsibility of critically editing and printing the entire Mahābandha comprising of forty thousand slokas was entrusted upon me

In view of my onerous responsibility and ardous duty, I had been to the Jain monastery at Mooddidri (South Canara) with a view to critically examine and collate the press copy with the palm-leaf manuscript of the Shastra Bhandar with my younger brother Abhinandan Kumar Diwaker, M A , LL ,B , Advocate, Seoni This effort was very fruitful since several inaccuracies could be detected then Thus the work was accomplished in such a way that His Holiness was much pleased and he bestowed his valuable blessings on me I had made deep study of several Jain canonical compositions of master thinkers and literary luminaries This study equipped me with such new and novel material as necessitated to thoroughly revise the first edition and make necessary additions and alterations in order that the wisdom-lovers may be profited thereby I, therefore, have improved this second edition with several new explanatory notes appended to the translation and have equipped the Hindi introduction with many a new points of information

All this is due to the great benevolent saint His Holiness Āchārya Shāntisāgar Mahāraj who was graciously pleased to provide me the sublime opportunity to serve the cause of learning and thus purify and elevate my humble self Since the said great Āchárya left his mortal coil after a fast lasting for 36 days in 1955 by way of superb Sallekhanā—Ideal and pious death-because his eyesight grew dimmer

and thus he could not faithfully follow the Ahimsā Mahāvrita—complete vow of non injury I have, therefore, dedicated this volume to the sacred memory of the immortal saint

26th January, 1965
Diwaker Sadan
Seoni

S C Diwaker

प्रस्तावना

महाबंधपर प्रकाश

जिनेन्द्र देवकी निर्दोष वाणीरूप होनेके कारण संपूर्ण आगम ग्रन्थ समान आदर तथा श्रद्धाके पात्र हैं, फिर भी जैन ससारमे धवल, जयधवल, महाधवल नामक शास्त्रोके प्रति उत्कट अनुराग एव तीव्र भक्तिका भाव विद्यमान है। इस विशेष आदरका कारण यह है, कि तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभुकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण कर गणधरदेवने ग्रन्थ-रचना की। वह मौखिक परपराके रूपमें, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रोकी चमत्कारिणी स्मृतिके रूपमे, हीयमान होती हुई भी, विद्यमान थी। महावीर निर्वाणके छह सौ तिरासी वर्ष व्यतीत होनेपर अगो और पूर्वोके एकदेशका भी ज्ञान लुप्त होनेकी विकट स्थिति आ गयी। उस समय अग्रायणीय-पूर्वके चयनलब्धि अधिकारके चतुर्थ प्राभृत 'कम्मपयडि'के चौबीस अनुयोग द्वारोसे षट्खण्डागमके चार खण्ड बनाये गये, जिन्हे वेदना, वर्गणा, खुद्दाबध तथा महाबध कहते है। बधक अनुयोग द्वारके अन्यतम भेद बध-विधानसे जीवट्ठाणका बहुभाग और तीसरा बधसामित्तविचय निकले। इस प्रकार षट्खण्डागमका द्वादशाग वाणीसे सबन्ध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रवाद नामक पचम पूर्वके दशम वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तीसरे पेज्ज-दोसपाहुडसे कषाय प्राभृतकी रचना की गयी। इन ग्रन्थोका द्वादशागवाणीसे अविच्छिन्न सबन्ध होनेके कारण द्वादशागवाणीके समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। षट्खण्डागमके महाबधको छोडकर पाँच खण्डोपर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है उसे धवला टीका कहते है। महाबधपर कोई टीका उपलब्ध नही है।[1] कषाय प्राभृतमे गुणधर आचार्य रचित एक सौ अस्सी गाथाएँ है।[2] इनमे त्रेपन गाथाएँ और जोडनेपर गुणधर आचार्य रचित कुल गाथाओकी सख्या दो सौ तेतीस हो जाती है। जयधवला टीकामे कहा है—"कसायपाहुडे सोलसपदसहस्साणि (१६०००)। एदस्स अवसहारगाहाओ गुणहर-मुह-कमल-विणिग्गियाओ तेत्तीसाहिय-विसदमेत्तीओ (२३३)" (भाग १ पृ० ९६)। यतिवृषभ आचार्यने छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णि सूत्र बनाये। इसकी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामीने बनायी, उसका नाम जयधवला टीका है।

सूत्र रचना—षट्खण्डागममे जीवट्ठाणके प्रारम्भिक सत्प्ररूपणा अधिकारके केवल एक सौ सतहत्तर सूत्रोकी रचना पुष्पदन्त आचार्यने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवट्ठाण, खुद्दाबध, बधसामित्त, वेदना और वर्गणा इन सूत्ररूप पाँच खण्डोकी श्लोक सख्या छह हजार प्रमाण है। छठे खण्ड महाबधमे चालीस हजार श्लोक प्रमाण सूत्र हैं। साधारणतया सपूर्ण धवला, जयधवला टीकाको द्वादशागसे साक्षात् सम्बन्धित समझा जाता है।

महाबधका प्रमाण—द्वादशाग वाणीसे सबन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यको दृष्टिसे गुणधर आचार्य रचित दो सौ तैंतीस गाथाओको जो विशेषता प्राप्त होगी, वह उनपर रची गयी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीकाको नही होगी। इसी दृष्टिसे यदि धवला टीकापर भी प्रकाश डाला जाय, तो कहना होगा, कि

---

१ बप्पदेवने आठ हजार पाँच श्लोक प्रमाण महाबधकी टीका रची थी।
व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपा सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।
अष्टसहस्रग्रन्था व्याख्या पञ्चाधिका महाबन्धे ॥ १७६ ॥ –इन्द्र० श्रुता०।

२ गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥ –जयध० १।१५१।

साठ हजार श्लोक प्रमाण टीका भी नवीं सदीकी है, प्राचीन अश पाँच खण्डोके रूपमें केवल छह हजार श्लोक प्रमाण है। महाबध ग्रन्थकी सपूर्ण चालीस हजार श्लोक प्रमाण रचना भूतबलि स्वामीकृत होनेके कारण अत्यन्त प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार सबसे प्राचीन जैनवाङ्मयकी दृष्टिसे महाबध सूत्रकी रचना धवला, जयधवला टीकाओके मूलकी अपेक्षा लगभग सातगुनी है। ब्रह्म हेमचन्द्र रचित श्रुतस्कन्धमे लिखा है—

"सत्तरिसहस्सधवलो जयधवलो सट्ठिसहस्स बोधव्वो।
महबंधं चालीस सिद्धततय अह वदे॥"

'धवलशास्त्र सत्तर सहस्र प्रमाण है, जयधवल साठ हजार प्रमाण है तथा महाबध चालीस हजार प्रमाण है। इन सिद्धान्तशास्त्रत्रयकी मैं वदना करता हूँ।'

इन्द्रनन्दिने महाबंधको तीस हजार[1] कहा और ब्रह्म हेमचन्द्र चालीस हजार श्लोक[2] प्रमाण बताते हैं। इस मतभेदका कारण यह विदित होता है, कि सभवतः इन्द्रनन्दिने महाबधमे उपलब्ध अक्षरोकी गणनानुसार अपनी सख्या निर्धारित की, ब्रह्म हेमचन्द्रने महाबधके सक्षिप्त किये साकेतिक अक्षरोको, सभवत पूर्ण मानकर गणना की। 'ओरालियसरीर'को महाबधमे 'ओरा०' लिखा है। इसे इन्द्रनन्दिने दो अक्षर माने और ब्रह्म हेमचन्द्रने सात अक्षर रूप गिना। समस्त ग्रन्थमें पुन पुन प्रकृति आदिके नामोकी गणना हुई है, इस कारण भूतबलि स्वामीने साकेतिक सक्षिप्त शैलीका आश्रय लिया। अत इन्द्रनन्दि और हेमचन्द्रकी गणनामें भिन्नता तात्त्विक भिन्नता नहीं है।

महाधवल—जैन समाजमे महाबध शास्त्र महाधवलजीके नामसे विख्यात है। महाबध नामको पढकर कुछ लोग तो भ्रममें पडेंगे। यथार्थमें ग्रन्थका नाम महाबधके अनुभागबध खण्डके अन्तकी प्रशस्तिसे प्रमाणित होता है। वहाँ लिखा है—

"सकलधरित्री-विनुत-प्रकटितमधीशे मल्लिकब्बे वेरिसि सत्पुण्याकर महाबधद-पुस्तक श्रीमाघ-नदिमुनिपतिगित्तल्।"

यह महाबंध भूतबलि स्वामी द्वारा रचित है, इस बातका निश्चय धवला टीका (सिवनी प्रति पृ० १४३७) के इस अवतरणसे होता है—

"ज त बधविहाण त चउव्विह। पयडिबधो, ट्ठिदिबंधो, अणुभागबधो, पदेसबधो चेदि। एदेसिं चदुण्ह बधाण भूदबलिभडारएण महाबधे सप्पवचेण लिहिद त्ति अम्हेहि एत्थ ण लिहिदं।"

धवला टीका महाबधशास्त्रके रचयिताके रूपमे भूतबलिका नाम बताती है, महाबध नामका परिज्ञान पूर्वोक्त अनुभागबन्धकी प्रशस्तिसे होता है, अतः यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस महाबधके निर्माता भूतबलि स्वामी है। इसी महाबधकी महाधवलके नामसे ख्याति है। सवत् १६१७ तक महाधवलकी प्रसिद्धि विदित होनेका प्रमाण उपलब्ध है। कारजाके प्राचीन शास्त्र भण्डारमे प्रतिक्रमण नामकी एक पोथी है। उसमें यह उल्लेख पाया जाता है—

"धवलो हि महाधवलो जयधवलो विजयधवलश्च।
ग्रन्था. श्रीमज्जिरमी प्रोक्ता कविभ्रातरस्तस्मात् (?) ॥१३॥

---

१ प्रविरच्य महाबन्धाह्वय तत षष्ठक खण्डम्। त्रिशत्सहस्रसूत्र व्यरचयदसौ महात्मा॥
—इन्द्र० श्रुता० १३९।

२ समस्त महाबध गद्यमय रचना है। अनुष्टुप् छन्दके ३२ अक्षरोको एक श्लोकका माप मानकर समस्त ग्रन्थकी गणना की गयी। इसे ही श्लोकोके नामसे कहा जाता है। महाबध सूत्र छन्दोबद्ध रचना नही है।

धवल, जयधवल तथा महाधवलके साथ 'विजयधवल' का नवीन उल्लेख है, जो अनुसधानका विषय है। आगे लिखा है—

"तत्पट्टे धरसेनकस्समभव सिद्धान्तग संशुभ. (?)
तत्पट्टे खलु वीरसेनमुनिपो यैश्चित्रकूटे परे।
येलाचार्यसमीपग कृततर सिद्धान्तमहपस्य ये
वाटे चैत्यवरे त्रिसप्ततिमिति सिद्धाचल चक्रिरे ॥ १४ ॥"

सवत् १६३७ आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावस्यातिथौ शनिवासरे शिवदासेन लिखितम्।

कवि वृन्दावनजीने महाधवल नाम प्रयुक्त किया है।[1]

पडितप्रवर टोडरमलजीकी गोम्मटसार कर्मकाण्डकी टीकामें भी महाधवल नाम आया है। "तहाँ गुणस्थान विषै पक्षान्तर जो महाधवलका दूसरा नाम कषायप्राभृत (?) ताका कर्ता यतिवृषभाचार्य ताके अनुसार ताकरि अनुक्रम तें कहिए है।" कषाय प्राभृतपर वीरसेनाचार्यने जो जयधवला टीका लिखी है, उससे विदित होता है कि कषायपाहुडके गाथा सूत्रोपर यतिवृषभ आचार्यने चूर्णिसूत्र बनाये थे। इसे पण्डित टोडरमलजीने 'महाधवल' ग्रन्थ रूपमे कह दिया। प्रतीत होता है, सिद्धान्तग्रन्थोका साक्षात्कार न होनेके कारण कषायप्राभृतका नामान्तर महाधवल लिखा गया।

महाधवल नाम प्रचारका कारण

यहाँ यह विचार उत्पन्न होता है कि महाबंध शास्त्रका नाम महाधवल प्रचलित होनेका क्या कारण है ? इस सम्बन्धमें यह विचार उचित जँचता है, कि महाबधमे भूतबलि स्वामीने अपने प्रतिपाद्य विषयका स्वय अत्यन्त विशद तथा स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन किया है। इसी कारण वीरसेन आचार्य अपनी धवला टीकामे लिखते हैं—"इन चार बधोका विस्तृत विवेचन भूतबलि भट्टारकने महाबधमे किया है, अतएव हम यहाँ इस सबन्धमे कुछ नही लिखते।[2] महाबधके विशेषण रूपमें महाधवल शब्दका प्रयोग अनुचित नहीं दिखता। यह भी सभव दिखता है कि विशेष्यके स्थानमे विशेषणने ही लोकदृष्टिमें प्राधान्य प्राप्त कर लिया हो। यह भी प्रतीत होता है, कि परपरा शिष्य सदृश वीरसेन, जिनसेन स्वामीने अपनी सिद्धान्तशास्त्रकी टीकाओके नाम धवला, जयधवला रखे, तब स्वय स्पष्ट प्रतिपादन करनेवाले गुरुदेव भूतबलिकी महिमापूर्ण कृतिको भक्ति तथा विशिष्ट अनुरागवश महाधवल कहना प्रारभ कर दिया गया होगा।

महाबधके महाधवल नामके बारेमे सन् १९४५ मे, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर महाराजके समक्ष चर्चा करनेका अवसर आया था। इस ग्रन्थकी प्रस्तुत हिन्दी टीकाका आचार्य महाराज

---

१ अग्रणीपूर्व के, पाँचवे वस्तु का, महाकरमप्रकृति नाम चौथा।
इम पराभृत का, ज्ञान तिनके रहा, यहाँ लग अग का, अश तो था ॥
सो पराभृत्त को भूतबलि पुष्पदन्त, दोय मुनि को सुगुरु ने पढाया।
तास अनुसार, षट्खण्ड के सूत्र को, बाधि के पुस्तको में मढाया ॥ ४६ ॥
फिर तिसी सूत्र को, और मुनिवृन्द पढि, रची विस्तार सो तासु टीका।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु, सिद्धान्तवृत्तान्त परमान टीका ॥
तिरुन हि सिद्धान्त को, नेमिचन्द्रादि आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता।
रचे गोमट्टसारादि बहुशास्त्र यह, प्रथम सिद्धान्त-उतपत्ति गीता ॥ ४७ ॥

—श्रीप्रवचनसार-परमागम, कवि वृन्दावन, पृ० ६, ७।

२ एदेसि चदुण्ह बधाण विहाणं भूदबलिभडारएण महाबधे सप्पवचेण लिहिदंति, अम्हेहि एत्थ ण लिहिद"—ध० टी० सि० १४३७।

ध्यानपूर्वक स्वाध्याय कर चुके थे, अत ग्रंथराजसे प्राप्त परिचयके आधारपर आचार्य महाराजने कहा था—सचमुचमे यह ग्रथ महाधवल है। बन्धपर स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र यथार्थमे महान् है। बधका ज्ञान होनेपर ही मोक्षका बराबर ज्ञान होता है। समयसार पहले नही चाहिए। पहले महाबध चाहिए। पहले सोचो हम क्यो दु खमें पडे है, क्यो नीचे है? तीन सौ त्रेसठ पाखण्ड मतवाले भी पूर्ण सुख चाहते है, किन्तु मिलता नहीं। हमें कर्मक्षयका मार्ग ढूंढना है। भगवान्ने मोक्ष जानेकी सडक बतायी है। चलोगे तो मोक्ष मिलेगा, इसमें शका क्या ?" यह महाबध शास्त्र वस्तुत महाधवल है। इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए आचार्य महाराजने एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनायी थी, जिसको उसके पिताने, जो राजपण्डित था, अपने जीवन कालमें अर्थकरी विद्या नही सिखायी थी, केवल इतनी बात सिखायी थी, कि अमुक कार्य करनेसे अमुक प्रकारका बध होता है। बधशास्त्रमें पुत्रको प्रवीण करनेके अनन्तर पिताकी मृत्यु हो गयी। अब पितृविहीन विप्रपुत्रको अपनी आजीविकाका कोई मार्ग नही सूझा। अत वह धनप्राप्ति-निमित्त राजाके यहाँ चोरी करने पहुँचा। उसने रत्न, सुवर्णादि बहुमूल्य सामग्री हाथमे ली तो पिताके द्वारा सिखाया गया पाठ उसे स्मरण आ गया, कि इस कायके द्वारा अमुक प्रकारका दु खदायी बध होता है। अत बधके भयसे उसने राजकोषका कोई भी पदार्थ नही चुराया। उसे वापिस निराश लौटते समय मार्गमे भुसा मिला। भुसाके लेनेमें क्या दोष है, यह पिताने नहीं सिखाया था, इसलिए वह भुसाका ही गट्ठा बाँधकर साथ ले चला। पहरेदारोने उसे पकडकर राजाके समक्ष उपस्थित किया। राजाने पूछा—तुमने स्वर्ण, रत्नादिको छोडकर भुसाकी चोरी क्यो पसन्द की? तब ब्राह्मणपुत्रने बताया कि मेरे पिताजीने अपने जीवनमे मुझे केवल बधका शास्त्र पढाया था। उसमे भुसाको लेनेमे दोषका कोई उल्लेख न पा मैंने उसे ही चुराना निर्दोष समझा। अपने राजपुरोहितके पुत्रको इतना अधिक पापभीरु देख राजा प्रभावित हुआ और उसने उसको अत्यन्त विश्वासपूर्ण उच्च पद देकर निराकुल कर दिया।" इस कथाको सुनाते हुए आचार्यश्रीने कहा—"बधका ज्ञान होनेसे जीव पापसे बचता है, इससे कर्मोंकी निर्जरा भी होती है। बधका वर्णन पढ़नेसे मोक्षका ज्ञान होता है। बधका वर्णन करनेवाला यह शास्त्र वास्तवमे महाधवल है। इससे बहुत विशुद्धता होती है।"

महाबन्धका अध्ययन बुद्धिका विलास या बौद्धिक व्यायामकी सामग्री मात्र उपस्थित करता है, यह धारणा अयथार्थ है। इस आगम रूप महान् शास्त्रसे आत्माका वास्तविक कल्याणप्रद अमृतका निर्मल निर्झर प्रवाहित होता है। उसमे निमग्न होनेवाला मुमुक्षु महान् शान्ति तथा आह्लादको प्राप्त करता है। उसके असख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मोंकी निर्जरा भी होती है।

आचार्य यतिवृषभने तिलोयपण्णत्तिमे कहा है कि परमागमके अध्ययन-द्वारा अनेक लाभ होते है। उससे **'अण्णाणस्स विणास'** अज्ञानका विनाश होता है, **'णाणदिवायरस्स उप्पत्ती'**—ज्ञान सूर्यकी प्राप्ति होती है तथा **'पडिसमयमसखेज्ज गुणसेढि-कम्मणिज्जरण'**—प्रतिक्षण असख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मोकी निर्जरा होती है। (१, गाथा ३६, ३७)

इस दृष्टिसे कहा जा सकता है, कि महाबधका परिशीलन विचारोको, बुद्धिको एव आत्माको धवल ही नही महाधवल बनाता है। इस दृष्टिने 'महाधवल' इस नामके प्रचारमे भी सहायता या प्रेरणा प्रदान की होगी।

महाबधका परिशीलन तथा मनन करते समय यह बात समझमें आयी, कि जबतक मनोवृत्ति पवित्र तथा निराकुल न हो, तबतक ग्रन्थका पूर्वापर गभीर विचार नही हो पाता। महाधवल मनोवृत्तिपूर्वक महाबधका रसास्वादन किया जा सकता है, अत इस मनोवृत्तिको लक्ष्यमें रखकर भी यह महाधवल नाम प्रचलित हो गया प्रतीत होता है। चारित्रचक्रवर्ती, मुनीन्द्र शातिसागर महाराजने जो यह कहा था, कि सचमुचमे 'यह ग्रन्थ महाधवल है', वह अक्षरश यथार्थ है।

महाबंधके अवतरणका इतिहास

कविकी कल्पना या विचारोके द्वारा जैसे काव्यकी रचना होती है, उसी प्रकार यह महाबध-शास्त्र भूतबलि स्वामीके व्यक्तिगत अनुभव, विचार या कल्पनाओको साकार मूर्ति नही है। इस ग्रन्थका प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामीने अपनी दिव्य ध्वनि-द्वारा प्रकाशित किया था।[1] श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके प्रभातमें विपुलाचल पर्वतपर सर्वज्ञ महावीर तीर्थकरकी कल्याणकारिणी धर्म-देशना हुई थी। उसे गौतमगोत्री चतुर्विध निर्मल ज्ञानसपन्न, सपूर्ण दु श्रुतिमे पारंगत इन्द्रभूति ब्राह्मणने वर्धमान भगवान्के पादमूलमें उपस्थित हो सुना और अवधारण किया था। अनन्तर गौतम स्वामीने[2] उस वाणीको द्वादशाग तथा चतुर्दश पूर्वरूप ग्रन्थात्मक रचना एक मुहूर्तमें की "एक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा"। उत्तरपुराणमे गुणभद्र स्वामोने कहा है कि अगोकी रचना पूर्वरात्रिमे की गयो थी और पूर्वोकी रचना रात्रिके अन्तिम भागमे की गयी थी -- 'अगाना ग्रथसदर्भं पूर्वरात्रे व्यधाम्यहम्। पूर्वाणा पश्चिमे भागे ' (७४-३७१, ३७२) इस सम्बन्धमें भगवान् महावीरको अर्थकर्त्ता कहा गया है, और गौतम स्वामीको ग्रथकर्त्ता। गौतमने द्रव्यश्रुतकी रचना की थी। तिलोयपण्णत्तिकारका कथन है—

"इय मूलततकत्ता सिरिवीरो इदभूदिविप्पवरो।
उवतते कत्तारो अणुतते सेसआइरया ॥ १।८० ।"

'इस प्रकार श्री वीर भगवान् मूलतत्रकर्त्ता, विप्रशिरोमणि इन्द्रभूति उपतत्रकर्त्ता तथा शेष आचार्य अनुतत्रकर्ता है।'

गणधरका व्यक्तित्व—इस द्वादशाग रूप परमागमका प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् वर्धमान जिनेन्द्रकी दिव्य-ध्वनिसे प्राप्त होनेसे वह प्रमाण रूप है। गणधरका भी व्यक्तित्व लोकोत्तर था। गौतम गणधरके विषयमे जयधवलामें लिखे गये ये शब्द ध्यान देने योग्य है —

जो आर्य क्षेत्रमे उत्पन्न हुए है, मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय इन चार निर्मल ज्ञानोसे सपन्न है, जिन्होने दीप्त, उग्र और तप्त तपको तपा है, जो अणिमा आदि आठ प्रकारकी वैक्रियिक लब्धियोसे सपन्न है, जिनका सर्वार्थसिद्धिमें निवास करनेवाले देवोसे अनतगुणा बल है, जो एक मुहूर्तमें बारह अगोके अर्थ और द्वादशाग रूप ग्रथोके स्मरण और पाठ करनेमे समर्थ है, जो अपने हाथरूपी पात्रमे दी गयी खीरको अमृत रूपमे परिवर्तित करनेमे या उसे अक्षय बनानेमें समर्थ है, जिन्हे आहार और स्थानके विषयमें अक्षीण ऋद्धि प्राप्त है, जिन्होने सर्वावधिज्ञानसे समस्त पुद्गल द्रव्यका साक्षात्कार कर लिया है, जिन्होने अपने तपके बलसे विपुलमति मन पर्यय ज्ञान उत्पन्न कर लिया है, जो सप्त प्रकारके भयसे रहित हैं, जिन्होने क्रोध, मान, माया तथा लाभ रूप कषायोका क्षय किया है, जिन्होने पाँच इन्द्रियोको जीत लिया है, जिन्होने मन, वचन तथा काय रूपी तीन दण्डोको भग्न कर दिया है, जो छहकायिक जीवोकी दया पालनेमें तत्पर है, जिन्होने कुलमद आदि अष्टमदोको नष्ट कर दिया है, जो क्षमा आदि दस धर्मोंमे निरन्तर उद्यत है, जो पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्टप्रवचन मातृकाओका पालन करते है, जिन्होने क्षुधादि बाईस परीषहो-को जीत लिया है और जिनका सत्य ही अलकार है—"सच्चालकारस्स" ऐसे आर्य इन्द्रभूतिके लिए उन

---

१ वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ।।—ति० प० १।६९।

२. पुणो तेणिदभूदिणा भावसुदपज्जयपरिणदेण बारहगाण चोद्दसपुव्वाण च गथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भावसुदस्स अत्थपदाण च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुदपज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्वसुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गथरयणा जादेत्ति।—ध० टी० १।६५।

महावीर भट्टारकने अर्थका उपदेश दिया। (जयधवला टीका भाग १, पृ० ८३, ८४)। ऐसी महनीय विभूति गुरु गौतम गणधर रचित होनेसे समस्त द्वादशागवाणी पूज्य तथा विश्वसनीय है।

यह द्वादशाग समुद्रके समान विशाल तथा गभीर है। सपूर्ण द्वादशागकी 'मध्यमपद'के रूपमें गणना करनेपर जो सख्या प्राप्त होती है, उसे कविवर द्यानतरायजी इस प्रकार बताते हैं—

"एक सौ बारह कोडि बखानो। लाख चौरासी ऊपर जानो॥
ठावनसहस पच अधिकानो। द्वादश अग सर्व पद मानो॥"

सम्पूर्ण श्रुतज्ञानमे पदोकी सख्या ११२,८४,५८००,५ होती है। बारह अगोमे निबद्ध अक्षरोके अतिरिक्त अक्षरोका प्रमाण ८०१०८१७५ है। इनकी अनुष्टुप् छन्दरूप गणना करे, तो २५०३३८०३/४ श्लोकोका प्रमाण होता है।

प्रथम अगका नाम आचाराग है। इसमें अठारह हजार पद कहे गये हैं। ये मध्यम पद रूप है। एक मध्यम पदमें कितने श्लोक होगे इसके विषयमे कहा है—

"कोडि इक्कावन आठ हि लाख। सहस चुरासी छह सौ भाख॥
साढ़े इकीस शिलोक बताए। एक एक पदके ये गाए॥"

इन श्लोकोकी सख्यासे आचारागके १८००० पदोका गुणा करनेके अनन्तर आचारागके अपुनरुक्त अक्षर विशिष्ट श्लोकोकी प्राप्ति होगी। जिस व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पचम अगका उपदेश धरसेन आचार्यने भूतबलि पुष्पदन्तको दिया था और जो इस ग्रथराजके बीज स्वरूप है उसमे पदोकी सख्या इस प्रकार कही है—

"पचम व्याख्याप्रगपति दरस। दोय लाख अट्ठाइस सरसं।"

धरसेन गुरु द्वारा दृष्टिवाद नामक बारहवें अगके चौथे पूर्व अग्रायणी सम्बन्धी उपदेश दिया गया था। उस दृष्टिवादका भी बड़ा विशाल रूप है।

"द्वादस दृष्टिवाद पनभेद, एक सौ आठ कोडिपन बेद।
अडसठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पच पद मिथ्याहन है॥"

[1]व्याख्याप्रज्ञप्ति अगमें जिनेन्द्र भगवान्के समीपमें गणधरदेवसे जो साठ हजार प्रश्न किये गये उनका वर्णन है। [2]दृष्टिवादमे तीन सौ त्रेसठ कुवादोका वर्णन तथा निराकरण किया गया है। इस अगके पूर्वगत भेदका उपभेद अग्रायणीपूर्व है। उसमे सुनय, दुर्नय, पचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व, [3]नवपदार्थों आदिका वर्णन किया गया है। इस पूर्वके विषयमें श्रुतस्कन्ध विधानमें इस प्रकार कथन आया है—षण्णवति-लक्षसुपद मुनि-मानसरत्न-काचनाभरणम्, अगाग्रार्थनिरूपकमर्च्यं चाग्रायणीयमिदम्॥ द्वादशाग वाणीमें दिव्यध्वनिका अधिकसे अधिक सार सगृहीत रहता है। सर्वज्ञ भगवान्ने विश्वके समस्त तत्त्वोका प्रतिपादन किया था, इस कारण द्वादशाग वाणीमें भी सभी विषयोका विशद प्रतिपादन किया गया है। जब रत्नत्रय धर्मकी विशुद्ध साधना होती थी, तब पवित्र आत्माओमें चमत्कारी ज्ञानकी ज्योति जगती थी। अब राग द्वेष मोहके कारण आत्माकी मलिनता बढ़ जानेसे महान् ज्ञानोकी उपलब्धिकी बात तो दूर है, वह चर्चा भी चकित कर देती है।

---

१ षष्टिसहस्राणि भगवदर्हत्तीर्थंकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम।

२ द्वादशमङ्ग दृष्टिवाद इति। दृष्टिशतानां त्रयाणा त्रिषष्टयुत्तराणा प्ररूपण निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते। —त० रा० पृ० ५१।

३. अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुन. अयन ज्ञान अग्रायण तत्प्रयोजन अग्रायणीयम्। तच्च सप्त-शतसुनयदुर्णयपञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्व-नवपदार्थादीन् वर्णयति।—गो० जीव० जी० गा० ३६५। पृ० ७७८

द्वादशांग वाणीकी मर्यादा—द्वादशाग वाणीके अत्यन्त विस्तृत विवेचनके होते हुए भी समस्त पदार्थका प्रतिपादन उसके द्वारा नही हो सका। कारण—

"पण्णवणिज्जा भावा अणतभागो दु अणभिलप्पाणं
पण्णवणिज्जाण पुण अणतभागो सुदणिबद्धो ॥"–गो० जी० ३३४।

पदार्थोंका बहुभाग वाणीके परे है। वह केवलज्ञान गोचर है। अनिर्वचनीय पदार्थोंका अनन्तवाँ भाग सर्वज्ञ वाणीके गोचर है। इसका भी अनन्तवाँ भाग श्रुतरूपमें निबद्ध किया गया है। श्रुतकेवलीके ज्ञानके अगोचर पदार्थका निरूपण दिव्यध्वनिमें होता है। उस दिव्यध्वनिके भी अगोचर पदार्थ केवलज्ञानके विषय होते है।[1]

यह द्वादशाग वेद है, कारण यह किसी प्रकारके दोषसे दूषित नहीं है। हिंसाका वर्णन करनेवाला वेद नही है। उसे तो कृतान्त (यम) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेनका कथन है—

"श्रुतं सुविहित वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम्।
हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥" –महापु० ३९।२२।

गुरु परंपरा—गौतम स्वामीने द्वादशाग ग्रथका सुधर्माचार्यको व्याख्यान किया। धवलाटीकामें सुधर्माचार्यके स्थानमें लोहाचार्यका नाम ग्रहण किया गया है। कुछ कालके अनन्तर गौतमस्वामी[2] केवली हुए। उन्होने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महावीर भगवान्‌के निर्वाणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन सकलश्रुतके धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मीके अधिपति बने। परिपाटी क्रमसे ये तीन सकलश्रुतके धारक कहे गये हैं और अपरिपाटी[3] क्रमसे सकलश्रुतके ज्ञाता सख्यात हजार हुए। जयधवलामे बताया है कि सुधर्माचार्यने अनेक आचार्योंको[4] द्वादशागका व्याख्यान किया। इसे ही धवलाटीकामे स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटीकी अपेक्षा सख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बूस्वामीने विष्णु आदि अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्यने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामीने अडतीस वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामीने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामीके बारेमें जयधवलाकार लिखते हैं—'एसो एत्थोसप्पिणीए अतिम-केवली।'–ये इस अवसर्पिणी कालके अतिम केवली हुए। इस कथनसे यही अर्थ निकाला जाता है कि जम्बूस्वामीके निर्वाणके पश्चात् अन्य महापुरुष निर्वाणको नहीं गये। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है कि जम्बूस्वामी-के निर्वाण जानेके पश्चात् अनुबद्ध केवली नहीं हुए।

---

१ श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति। तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थ ग्रहण-शक्ति केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थ –गो० जीव० संस्कृतटीका पृ० ७३१

२ 'तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद।' –ध० टी० १।६५।
तदो तेण गोअमगोत्तेण इदभूदिणा सुहमा (म्मा) इरियस्स गथो वक्खाणिदो। –ज० ध० १।८४।

३ 'परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयलसुदधारया भणिया।
अपरिवाडीए पुण सयलसुदपारगा सखेज्जसहस्सा ॥' –ध० टी० १।६५।

४. तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जबूसामियादीणमणेयाणमाइरियाण वक्खाणिददुवालसगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। –ज० ध० १।८४।
"तद्दिवसे चेव जबूसामिभडारओ विट्टु (विष्णु) आइरियादीणमणेयाणं वक्खाणिददुवालसगो केवली जादो ॥" –ध० टी० १।६५।

"तम्मि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो।
तम्मि सिद्धि पत्ते केवलिणो णत्थि अणुबद्धा॥" —४।१४७७।

गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध-क्रमबद्ध परिपाटीक्रम युक्त (In Succession) केवली हुए। अननुबद्ध-अक्रमपूर्वक[1] कैवल्य उपार्जन करनेवाले अन्य भी हुए हैं, जिनमें अंतिम केवली श्रीधरमुनिने कुण्डलगिरिसे मुक्ति प्राप्त की।[2]

"कुंडलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणरिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणो य॥" —ति० प० ४।१४७९।

तीन केवलियोंमें बासठ वर्ष व्यतीत हुए और विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियोंमें सौ वर्षका समय पूर्ण हुआ। इन पाँच श्रुतकेवलियोंकी गणना भी परिपाटीक्रम-अनुबद्धरूपसे की गयी, जो इस बातको सूचित करती है कि यहाँ अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा नहीं ली गयी है। इन पंच श्रुतकेवलियोंमें प्रथम श्रुतकेवलीके नामके विषयमें तिलोयपण्णत्ति तथा उत्तरपुराणमें भिन्न कथन आया है। उक्त दोनों ग्रन्थोंमें 'विष्णु'के स्थानपर 'नन्दि'का कथन किया गया है। धवला, जयधवला, हरिवंशपुराण, श्रुतावतारमें विष्णु नाम दिया गया है। ये पाँच महापुरुष पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी हुए। इनके अनन्तर अनुक्रमसे एकादश महामुनि ग्यारह अंग और दस पूर्वके पाठी हुए। निम्नलिखित इन एकादश मुनीश्वरोंका काल एक सौ तिरासी वर्ष कहा गया है—१ विशाखाचार्य, २ प्रोष्ठिल, ३ क्षत्रिय, ४ जय, ५ नागसेन, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिषेण, ८ विजय, ९ बुद्धिल, १० गंगदेव, ११ धर्मसेन। ये ग्यारह नाम गिनाये गये हैं। इन नामोंके विषयमें उत्तरपुराण, धवला, जयधवला, हरिवंशपुराण एकमत हैं किन्तु तिलोयपण्णत्ति तथा श्रुतावतारमें विशाखाचार्यकी जगह क्रमशः विशाख तथा विशाखदत्त नाम आया है। बुद्धिलके स्थानपर श्रुतावतारमें बुद्धिमान शब्द प्रयुक्त हुआ है। तिलोयपण्णत्तिमें धर्मसेनकी जगह सुधर्म नाम आया है। इन मुनियोंके विषयमें आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि ये—"द्वादशांगार्थ-कुशला दशपूर्वधराश्च ते।" (उ० पु० पर्व ७६, श्लोक ५२३)—द्वादशांगमें कुशल तथा दस पूर्व धर थे।

इनके अनन्तर एकादशांगके ज्ञाता नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच महापुरुष दो सौ बीस वर्षमें हुए। इन नामोंके विषयमें तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण तथा धवला एकमत हैं। जयधवलामें 'जयपाल' के स्थानमें 'जसपाल' तथा हरिवंशपुराणमें 'यशःपाल' नाम आये हैं। श्रुतावतारमें 'ध्रुवसेन' की जगह 'द्रुमसेन' नाम आया है।

---

१ जयधवलाकारने परिपाटीक्रमका पर्यायवाची 'अतुट्टसंताणेण' (१, ८५) जिसकी संतान या परंपरा अत्रुटित है, ऐसा कहा है।

२ अपने जैन साहित्य और इतिहासके पृ० १४, १५ पर श्री नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं—"भगवान् महावीरके बाद तीन ही केवलज्ञानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। ऐसी दशामें यह समझमें नहीं आता, कि यहाँ श्रीधरको क्यों अंतिम केवली बतलाया और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अन्तःकृत केवली हों।" इस शंकाका निवारण पूर्वोक्त वर्णनसे हो जाता है, कारण श्रीधर मुनि अननुबद्ध अंतिम केवली हुए हैं, जिनका निर्वाणस्थल कुंडलगिरि है। इनको अन्तःकृत केवली माननेमें कोई आगमका आधार नहीं है। सामान्यतया नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली कहे गये हैं, किन्तु धवलाटीकासे ज्ञात होता है कि अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा ये द्वादशांगके पाठी संख्यात हजार थे। जयधवलासे भी इस अधिक संख्याकी पुष्टि होती है। यही युक्ति केवलियोंके विषयमें लगेगी। शास्त्रोंमें अनुबद्ध केवली तथा श्रुतकेवलीकी मुख्यतासे प्रतिपादन किया गया है।

इनके पश्चात् आचारांगके ज्ञाता सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य एक सौ अठारह वर्षमे हुए। इन नामोमे श्रुतावतारमें इतनी भिन्नता है कि 'यशोभद्र' की जगह 'अभयभद्र' तथा 'यशोबाहु' की जगह 'जयबाहु' नाम प्रयुक्त हुए हैं। शेष ग्रन्थकार भिन्नमत नहीं हैं।

महावीर भगवान्के निर्वाणके पश्चात् अनुबद्ध क्रमसे उपरोक्त अट्ठाईस महाज्ञानी मुनीन्द्र छह सौ तिरासी वर्षमे हुए थे। क्रमबद्ध परम्पराको ध्यानमे रखकर ही वीर निर्वाणके पश्चात् होनेवाले महापुरुषोका कथन किया गया है।

श्रुतावतार कथामें लोहाचार्यके पश्चात् विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि तथा माघनन्दि, इन छह महापुरुषोको अगपूर्वके एकदेशके ज्ञाता कहा है। अन्य ग्रन्थोमें ये नाम नहीं दिये गये हैं। सभवत ये नाम अनुबद्ध परपराके क्रममे नही होंगे। इनके युगमे और भी अक्रमबद्ध परंपरावाले मुनीश्वर रहे होगे।

अंग-पूर्वोंके एकदेश ज्ञाता—जयधवला टीकामें लिखा है कि लोहाचार्यके पश्चात् अग और पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य परपरासे आकर गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ था। जयधवलाकारके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—"तदो अग-पुव्वाणमेगदेसो चेव आइरिय-परपराए आगतूण गुणहराइरिय सपत्तो" (जय०ध० भाग १ पृ० ८७)। धवलाटीकामें इस सम्बन्धमें लिखा है–, "तदो सव्वेसि-मग-पुव्वाणमेगदेसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरिय सपत्तो"--(१, ६७)—लोहार्यके पश्चात् आचार्य परपरासे सपूर्ण अग और पूर्वोंका एकदेशज्ञान धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ। आचार्य धरसेन अथवा गुणधर स्वामी भी विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि तथा माघनन्दि मुनीश्वरोके समान अग पूर्वके एकदेशके ज्ञानी थे। ये नाम सभवत क्रमबद्ध परपरागत न होनेसे हरिवशपुराण, उत्तरपुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थोमे नही पाये जाते है। प्रतीत होता है कि इन मुनीश्वरोके समयमें कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर न रहनेसे इनके कालका पृथक् रूपसे वणन नही पाया जाता है। आचारागके पाठी आचार्य वीरनिर्वाणके पश्चात् छह सौ तिरासी वर्ष तक हुए। स्थूल रीतिसे वही समय धरसेनस्वामी तथा गुणधर आचार्यका रहा होगा।

विचारणीय विषय—इस विषयमें यह कथन विचारणीय है, वीर निर्वाणके छह सौ पाँच वर्ष तथा पाँच माह व्यतीत होनेपर शकराजाकी उत्पत्ति कही गयी है। त्रिलोकसारमें लिखा है—

"पण-छस्सयवस्स पणमास जुद गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तोकक्को चदु-णव-तिय-महियसगमास ॥८५०॥"

वीरभगवान्के निर्वाण जानेके छह सौ पाँच वर्ष पाँच माह पश्चात् शक राजा हुआ। उसके अनन्तर तीन सौ चौरानबे वर्ष सात माहके पश्चात कल्की हुआ है। इस गाथाकी टीकामें माधवचद्र त्रैविद्यदेव कहते है, "श्रीवीरनाथनिर्वृत्ते सकाशात् पचोत्तरषट्शतवर्षाणि (६०५) पच (५) मासयुतानि गत्वा पश्चात् विक्रमाकशकराजो जायते"—यहाँ शकराजाका अर्थ विक्रमराजा किया गया है। इस कथाके प्रकाशमें आचारागके पाठी मुनियोका सद्भाव विक्रम सवत् ६८३ ६०५ = ७८ आता है। विक्रम सवत्के सत्तावन वर्ष पश्चात् ईसवी सन् प्रारभ होता है, अतः ७८-५७=२१ वर्ष ईसाके पश्चात् आचारागी लोहाचार्य हुए। उसके समीप हो धरसेन स्वामीका समय अनुमानित होनेसे उनका काल ईसवीकी प्रथम शताब्दीका पूर्वार्ध होना चाहिए।

दो परंपरा—श्वेताम्बर परपराके अनुसार विक्रमके चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व भगवान् महावीरका निर्वाण कहा जाता है। इस प्रकार दिगम्बर परपरा श्वेताम्बर मान्यतासे एक सौ पैंतीस वर्ष पूर्व वीरनिर्वाणको मानती है। इतिहासकारोके मध्य प्रचलित वीरनिर्वाण काल ईसवी पूर्व पाँच सौ सत्ताईस वर्ष श्वेताम्बर परपराके आधारपर अवस्थित है। ४७० + ५७=५२७ वर्ष ईसाके पूर्व महावीर भगवान् हुए।

मुख्य विचारणीय विषय है कि, 'शकराज'का क्या अर्थ किया जाय ? [1] यदि शालिवाहन शक अर्थ किया जाता है तो महावीर भगवान्‌का निर्वाण काल ईसवीके पाँच सौ सत्ताईस वर्ष पूर्व होता है। उसके आधारपर यदि धरसेन स्वामीका समय निकाला जायगा, तो ईसवी सन् इक्कीसमें एक सौ पैंतीस और जोडने पड़ेंगे। इस प्रकार वह समय एक सौ छप्पन ईसवी होगा, अर्थात् ईसाकी दूसरी शताब्दी हो जायगा। दिगम्बर आगमके कथनमें श्रद्धा करनेवालोंकी दृष्टिमे वीरनिर्वाण काल विक्रम संवत्‌से छह सौ पाँच वर्ष पाँच माह पूर्व माना जायगा। अत विक्रम संवत् २०२०में वीरनिर्वाण संवत् २०२० + ६०५ = २६०५ होगा। दिगंबर श्वेतांबर परंपराओंको ध्यानमे रखते हुए, डॉ० जेकोबीने लिखा था "The traditional date of Mahavira's nirvāna is 470 years before Vikrama according to the Svetambaras and 605 according to the Digambaras"—श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार महावीरका निर्वाण विक्रमसे चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व हुआ था तथा दिगंबरोंकी परंपराके अनुसार वह छह सौ पाँच वर्ष पूर्व हुआ था।

पुरावृत्तज्ञ श्री० राइसने अपने शिलालेख सग्रहकी प्रस्तावनामे महावीर भगवान्‌के निर्वाणके छह सौ पाँच वर्ष बाद उज्जैनके विक्रमादित्यका उल्लेख करते हुए लिखा है —"There was born Vikramaditya in Ujjayini and he by his knowledge of astronomy, having made an almanac established his own era from the year Rudhirodgāri, the 605 year after the death of Vardhamāna"

उज्जैनीमें एक विक्रमादित्य राजा उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने ज्योतिष ज्ञानके बलपर एक पचांग बनाकर रुधिरोद्गारी वर्षमे अपना संवत् चलाया था, जिसका समय वर्धमानके निर्वाणके छह सौ पाँच वर्ष बाद था।

सूत्रकारका समय—

अत दिगम्बर परंपराको ध्यानमे रखते हुए आचार्य धरसेनका समय ईसाकी प्रथम शताब्दीका पूर्वार्ध मानना होगा तथा वही समय उनके पासमे महाकम्म पयडि पाहुडके रहस्यका अभ्यास करनेवाले महाज्ञानी पुष्पदन्त भूतबलि मुनीश्वरोंका मानना सम्यक् प्रतीत होता है। इस प्रकाशमें महाबंधके रचयिता आचार्य भूतबलिका समय ईसाकी प्रथम शताब्दी स्वीकार करना होगा।

महाबंध शास्त्रकी रचना भूतबलि आचार्यने की थी। इस संबन्धमें धवला टीकामें कहा है कि सौराष्ट्र देशके गिरिनगर पत्तनकी चन्द्रा गुफामे अंग तथा पूर्वके [2] एकदेशके ज्ञाता धरसेन आचार्य विराजमान थे। वे अष्टांग महानिमित्त विद्याके पारगामी थे। उनके चित्तमे यह भय उत्पन्न हुआ कि आगे श्रुतज्ञानका विच्छेद हो जायगा, अत प्रवचनवत्सल उन महर्षिने दक्षिणापथके निवासी तथा महिमा नगरीमे एकत्रित आचार्योंके पास अपना एक लेख भेजा, जिसमें उनका मनोगत भाव सूचित किया गया था।

श्रुतावतार कथामें लिखा है—धरसेन आचार्यको अग्रायणी पूर्वके अन्तर्गत पचम वस्तुके चतुर्थ भाग महाकर्म प्राभृतका ज्ञान था। अपने निर्मलज्ञानमे जब उन्हे यह भासमान हुआ कि मेरी आयु थोड़ी

---

१ इस सम्बन्धमे विशेष विवेचन आस्थान महाविद्वान् पंडित शान्तिराज शास्त्रीने मैसूर राज्य द्वारा मुद्रित तत्त्वार्थ सूत्रकी भास्करनन्दी रचित टीकाकी संस्कृत भूमिकामें किया है।

२ "तेण वि सोरट्ठविसय-गिरिणयरपट्टण-चन्दगुहाठिएण अट्ठंगमहाणिमित्तपारएण गंथवोच्छेदो होहदि त्ति जादभयेण पवयणवच्छलेण दक्खिणावहाइरियाण महिमाए मिलियाण लेहो पेसिदो।"

—ध० टी० १।६७

शेष रही है, यदि कोई प्रयत्न नहीं किया जायगा, तो श्रुतका विच्छेद हो जायगा। ऐसा विचारकर उन्होंने देशेन्द्र देशके वेणातटाकपुरमें निवास करनेवाले महामहिमाशाली मुनियोंके निकट एक ब्रह्मचारीके द्वारा पत्र भेजा। उस पत्रमे लिखा था—"स्वस्ति श्री वेणाकतटवासी यतिवरोंको उर्ज्जयन्त तट निकटस्थ चन्द्रगुहानिवासी धरसेनगणि अभिवन्दना करके यह सूचित करता है कि मेरी आयु अत्यन्त अल्प रह गयी है। इससे मेरे हृदयस्थ शास्त्रकी व्युच्छित्ति हो जानेकी संभावना है अतएव उसकी रक्षाके लिए आप शास्त्रके ग्रहण-धारणमे समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि दो यतीश्वरोंको भेज दीजिए।" पश्चात् योग्य विद्वान् मुनीश्वरोंके आनेपर धरसेन स्वामीने अपनी ज्ञाननिधि उन दोनोको सौंप दी थी।

बृहत्कथाकोशमे विशेष कथन—आराधना कथाकोशमें दक्षिणापथसे आगत महिमा नगरीमें विराजमान संघके प्रमुख आचार्यका नाम महासेन दिया गया है। हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (पृ० ४२) मे लिखा है, कि उस समय सौराष्ट्र देशमें धर्मसेन राजाका शासन था तथा उनकी रूपवती रानीका नाम धर्मसेना था। उसके गिरिनगरके समीप चन्द्रगुहामे धरसेन महामुनि रहते थे।

"तत सौराष्ट्रदेशेऽस्ति नगर गिरिपूर्वकम्। धर्मसेननृपस्तत्र धर्मसेनास्य सुन्दरी ॥१॥
तत्पत्तनसमीपे च चन्द्रोपपदिका गुहा। सतिष्ठते गुरुस्तस्या धरसेनो महामुनि ॥२॥"

विबुध श्रीधर रचित श्रुतावतार (पृ० ३१६) से ज्ञात होता है, कि धरसेन महामुनिके समीप भेजे गये दो शिष्योका नाम 'सुबुद्धि' और 'नरवाहन' था। सुबुद्धि दीक्षाके पहले श्रेष्ठिवर थे और नरवाहन नरेश थे।

जिस दिन मुनियुगल धरसेन मुनीन्द्रके समीप पहुँचे थे, उसके प्रभात कालमे धरसेन स्वामीने एक स्वप्न देखा था कि दो सुन्दर धवलवर्ण बैलोंने उनके समीप आकर उनको तीन प्रदक्षिणा दी और नम्रतापूर्वक उनके चरणोमे पड गये। इस स्वप्नको देखकर स्वप्नशास्त्रके अनुसार उन्होंने उसे अत्यन्त शुभसूचक स्वप्न समझा। उन्होने "जयउ सुयदेवदा"—श्रुतदेवताकी जय हो, ये शब्द उच्चारण किये। कुछ क्षणके अनन्तर महिमानगरीसे आगत धारणा तथा ग्रहण शक्तिमे प्रवीण मुनियुगलने गुरुदेवको प्रणाम करके अपने आनेका कारण निवेदन किया, "अणेण कज्जेणम्हा दोवि जणा तुम्ह पादमूलमुवगया"। आचार्य महाराजने कहा "सुट्ठु, भद्द"—ठीक है, कल्याण हो। (ध० टी० १।६८) हरिषेण कथाकोश (पृष्ठ ४२) मे लिखा है—

"उपविश्य क्षण स्थित्वा प्रोचतुस्तौ मुनीश्वरम्।
नाथ ग्रहीतुमायातौ त्वत्तो विद्या मनोज्ञवाम् ॥६॥"

वे क्षण-भर गुरुके चरणोमे बैठे, पश्चात् खडे होकर उन्होने मुनीश्वर धरसेन स्वामीसे कहा, "नाथ! आपके अन्त करणसे प्रसूत विद्याको ग्रहण करनेको हम लोग आये है।"

यह सुनकर धरसेन स्वामीने समागत साधुयुगलकी सत्पात्रताकी परीक्षा करना उचित सोचा, क्योंकि श्रुतज्ञान सामान्य वस्तु नहीं है। वह अमृतसे भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। आज जो पात्रता-अपात्रताका विशेष विचार किये बिना श्रुतदानका कार्य चलता है, उसका फल प्रत्यक्ष दिखाई पडता है कि किन्हींके द्वारा पान किया गया श्रुतज्ञान रूप दुग्ध विषरूप परिणमनको प्राप्त होता है, अत ऐसे लोग परमागमके द्वारा स्व परकल्याण साधनके स्थानमें अपनी शक्तिका उपयोग आगम निषिद्ध कार्योंमें करते हैं। परम विवेकी धरसेन स्वामीने सोचा—'जहाछंदाईणं विज्जादाणं ससारभयवड्ढण'—स्वच्छन्द वृत्तिवालोंको विद्यादान ससारभयका सवर्धक है, अत उन्होने उन साधुयुगलकी सत्पात्रता, वीतरागता, विवेकशीलता तथा निर्भीकता आदिकी परीक्षाके हेतु, कोई शास्त्रीय प्रश्न न पूछकर दो विद्याएँ सिद्ध करनेको दीं। एकका मन्त्र हीनाक्षर था, दूसरेका मन्त्र अधिक अक्षरवाला था। आचार्यने कहा था दो उपवासपूर्वक इनको

सिद्ध करो। जब उन्होंने विद्या सिद्ध की तब एकके समक्ष कानी देवी आयी और अधिक अक्षरवाले साधकके समक्ष दन्तुरा—लम्बे दाँतोवाली देवी आयी। उस समय वे साधकयुगल विचार करने लगे—

"विलोक्य देवता व्यग्रामेताभ्या चिन्तित तदा। काणिकोदन्तुरा देवी दृश्यते न कदाचन ॥१०॥
शोधयित्वा पुनर्विद्या मन्त्रव्याकरणेन तु। ऊनाधिकाक्षरं दत्वा हित्वा ताभ्यां विचिन्तितम् ॥११॥
भूयोऽपि चिन्तिता विद्या ताभ्या देवी समागता। सर्वलक्षणसपूर्णा किंकर्तव्यसमाकुला ॥१२॥
विसृज्य देवतां साधू सिद्धविद्यौ तपस्विनौ। गुरो. समीपतां प्राप्य प्रोचतुस्तौ यथाक्रमम् ॥१३॥"

इन्होने देवताके व्यग्र स्वरूपको देखकर विचार किया कि कोई भी देवी एकाक्षी नही होती तथा विकृत दन्तवाली नहीं होती इसलिए उन्होने मन्त्रके व्याकरणके अनुसार विद्यासाधन हेतु दिये गये मन्त्रको शुद्ध किया। न्यूनाक्षर मन्त्रमे अक्षर जोडे और अधिक अक्षरवालेमें कम किये। इसके पश्चात् उन्होने पुन मत्रका चितवन किया। उस समय सवलक्षणोसे समलकृत देवताका आगमन हुआ और उन्होने उनसे अपने योग्य कर्त्तव्य बतानेका अनुरोध किया। उन तपस्वियोने विद्या सिद्ध कर उनका सम्यक् प्रकार विसर्जन किया और गुरुके समीप आकर निवेदन किया—

"भवद्भिर्दत्तविद्याया दत्तमेक मयाक्षरम्। तथा निरस्तमेक च महातीचारकारिणा ॥१४॥
कृतातीचारपापस्य प्रायश्चित्त त्वमावयोः। प्रदेहि साम्प्रत तेन स्वचेत शुद्धिमिच्छतो ॥१५॥"

भगवन्! आपके द्वारा दी गयी विद्यामे मैने एक अक्षर जोड दिया। दूसरे साधकने कहा मैने एक अक्षर कम कर दिया। ऐसा करनेसे हमारे-द्वारा महान् दोष हुआ है। इस प्रकार अतीचाररूपी पाप करनेके कारण आप हमें अभी प्रायश्चित्त दीजिए, जिससे हमारी मानसिक मलिनता दूर हो।

उसे सुनकर धरसेन आचार्यने कहा—

"ऊनाधिकाक्षरे विद्ये परीक्षार्थं यथाक्रमम्।
वितीर्णे ते भवद्भ्या मे न वा दोषोऽल्पकोऽपि स ॥१७॥"

मैने तुम्हारी परीक्षा करनेके लिए क्रमश ऊन अक्षर और अधिक अक्षर युक्त विद्या तुम्हे दी थी। इसमे तुम्हारा तनिक भी दोष नहीं है।

धरसेन स्वामीकी परीक्षामे वे दोनो साधु विशुद्ध सुवर्ण सदृश प्रमाणित हुए। उन्होने यह देख लिया कि साधु-युगलका चरित्र अत्यन्त निर्मल है, वे अत्यन्त बुद्धिमान्, विवेकी ज्ञानवान है तथा उनका मन विषयोके प्रति पूर्णतया विरक्त है। उन्हे विश्वास हो गया कि इनको दी गयी विद्याका मधुर परिणाम ही होगा इसलिए उन्होने—'सोमतिहि-णक्खत्त-वारे गथो पारद्धो'—शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिनमे ग्रन्थका पढाना प्रारभ किया। आचार्य धरसेन स्वामीने यह नहीं सोचा कि हमे धर्मरूप पवित्र ज्ञाननिधि इन्हे सौंपनी है, इसमें मुहूर्त आदि देखना अर्थहीन है। ऐसा न सोचकर उन परम विवेकी महाज्ञानी गुरुदेवने शुद्ध काल रूप बाह्य सामग्रीको अपने ध्यानमे रखा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सत्कार्य करनेमे बाह्य योग्य सामग्रीकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। वादीभसिंह सूरिने क्षत्रचूडामणि काव्यमे लिखा है, "पाके हि पुण्य-पापाना, भवेद् बाह्य च कारणम्" ॥११-१४॥ पुण्य तथा पापके उदयमे बाह्य सामग्री भी कारण रूप होती है। उन महामेधावी, प्रतिभाशाली तथा लोकोत्तर व्यक्तित्व समलकृत साधुयुगलको महाज्ञानी मुनीन्द्र धरसेन स्वामीने उपदेश देना प्रारभ कर दिया, जिसे उन महर्षियोने अपने स्मृति पलटमे पहले पूणतया अकित कर लिया। इस प्रसगमें द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप सामग्रीचतुष्टय श्रेष्ठ रूपसे विद्यमान थी, अत धरसेनाचार्यका मनोरथ पूर्ण हो गया।

आषाढसुदी एकादशीका महत्त्व—आषाढसुदी एकादशीके पूर्वाह्णमे 'महाकम्म-पयडि पाहुड' गत कर्म-साहित्यका उपदेश पूर्ण हो चुका। प्रवचन प्रेमवश धरसेन स्वामीके मनमें जो पहले भय उत्पन्न हुआ था,

वह भय अब दूर हो गया। उनकी श्रुतप्रेमी आत्माको अवर्णनीय आनन्द हुआ। उन्होने परम शान्ति तथा सतोषका अनुभव किया।

देवों-द्वारा पूजा—धवला टीकामें लिखा है—"विणएण गथो समाणिदोत्ति" (१।७०) विनयपूर्वक ग्रथ समाप्त हुआ। "तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्तु महती पूजा पुष्प-बलि सख तूर-रव सकुला कदा"—इससे सतोषको प्राप्त हुए भूतजातिके व्यतर देवोने पुष्प, बलि, शखोको उच्च ध्वनि युक्त वैभवपूर्ण पूजा की। पवित्र कार्य पूर्ति होनेपर इस पचमकालमें देवताओका आगमन होकर पूजाका काय सपन्न होना असामान्य घटना थी।

नामकरण—उस मगल वेलामें धरसेनाचार्यके मनमे अपने श्रुतज्ञान निधिके उत्तराधिकारी उन शिष्य-युगलके नवीन नामकरणकी भावना उत्पन्न हुई।

धवला टीकामे लिखा है—"त दट्ठूण तस्स 'भूदबलि' त्ति भडारएण णाम कय। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय दत-पति-मोसारिय भूदेहि समीकय दवस्स 'पुप्फयतो' त्ति णामं कय। (१।७१)

उस महान् पूजाको देवताओके द्वारा सम्पन्न हुई देखकर भट्टारक धरसेन स्वामीने भूतजातिके देवो-द्वारा पुष्पादिसे पूजा की जानेके कारण उन मुनीश्वरको 'भूतबलि', यह सज्ञा प्रदान की तथा अस्त-व्यस्त दन्तपक्ति दूर कर भूत देवोने जिनके दतोको समानरूपता प्रदान की ऐसे देवपूजित द्वितीय साधुराजका नाम पुष्पदत रखा।

विबुध[1] श्रीधर विरचित श्रुतावतारमे कहा है कि नरवाहन राजाने मुनि पदको स्वीकार किया था। वे 'भूतबलि' इस सज्ञा युक्त किये गये तथा सद्‌बुद्धि नामक द्वितीय मुनिका नाम पुष्पदत रखा गया। पहले गृहस्थ जीवनमे वे श्रेष्ठिवर थे।

धरसेन स्वामीका मनोगत—अष्टाग-निमित्त-विद्याके पारगामी धरसेन स्वामीको यह ज्ञात हो गया कि अब रत्नत्रयका साधक उनका शरीर अधिक काल तक नही टिकेगा। अब उनका मरण समीप है। ऐसे अवसरपर ये दोनो मुनि यदि मेरे समीप रहेगे, तो इनके चित्तमें मेरे वियोगकी व्यथा उत्पन्न होना सभव है, अत उन वीतराग गुरुदेवने मोहभावका त्याग कर उन शिष्योको उसी दिन प्रस्थान कर अन्यत्र चातुर्मास करनेका आदेश दिया। धवला टीकामे लिखा है—"पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा सतो-गुरुवयणमलघणिज्ज इदि चिंतिऊणागदेहि अकुलेसरे वरिसाकालो कओ" (१।७१) गुरुकी आज्ञानुसार वे भूतबलि-पुष्पदन्त मुनिराज उसी दिन यह सोचकर कि 'गुरुके वचन अलघनीय होते है' वहाँसे रवाना हो गये और उन्होने अकलेश्वरमें चातुर्मास किया।

इद्रनदि आचार्यने लिखा है "दूसरे दिन गुरुने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु निकट है, यदि ये समीप रहेगे तो दु खी होगे। उन दोनोको कुरीश्वर भेज दिया। तब वे ९ दिन चलकर इस नगरमे पहुँच गये और वहाँ पचमीको योग ग्रहण करके उन्होने वर्षाकाल समाप्त किया।"

विबुध श्रीधरने धवलाकारके अनुसार उन मुनिद्वयका अकुलेसुरमे चातुर्मास लिखा है। इसका कारण

---

१ विबुध श्रीधरके शब्दोमे इन्द्रभूति गणधरने श्रेणिक महाराजसे षट्‌खण्डागम सूत्रकी उत्पत्तिके विषयमें प्रकाश डालते हुए कहा था —"धरसेनभट्टारक कतिपयदिनैर्नरवाहन सद्‌बुद्धिनाम्नो पठनाकर्णन-चिन्तनक्रिया कुर्वतोरषाढ-श्वेतेकादशीदिने शास्त्र परिसमाप्ति यास्यति। एकस्य भूता रात्रौ बलिविधि करिष्यन्ति, अन्यस्य दन्तचतुष्क सुन्दरम्। भूतबलिप्रभावाद् भूतबलिनामा नर-वाहनो मुनिर्भविष्यति। समदतचतुष्टयप्रभावात् सद्‌बुद्धि पुष्पदतनामा मुनिर्भविष्यति।

— श्रुतावतार पृ० ३१७।

उन्होंने यह लिखा है कि धरसेन स्वामीने अपनी मृत्युको निकट ज्ञात किया तथा उससे इन मुनिद्वयको क्लेश न हो इसलिए उनका वहाँसे प्रस्थान कराया।[1]

वीतराग चित्तवृत्ति—इस प्रकरणसे जिनेन्द्रके शासनमें गुरुकी वाणीका महत्त्व घोषित होता है। धरसेन आचार्यकी वीतरागताका सजीव स्वरूप समक्ष आता है। अपने शिष्योंको मनोव्यथा न हो, यह विचार उनकी परम कारुणिक मनोवृत्तिको व्यक्त करता है। उनके वीतराग हृदयमें यह मोहभाव नहीं रहा कि मेरे स्वर्ग-प्रयाण करते समय मेरे शिष्य मेरे समीपमें रहें। समाधिमरणके लिए तत्पर धरसेन स्वामी अपनेको शरीरसे भिन्न चैतन्य ज्योति स्वरूप एकाकी आत्मा सोचते थे, इसलिए उन्होंने विशुद्ध भावोंके साथ उन अत्यत गुणी तथा महाज्ञानी साधुओंको सदाके लिए अपने पाससे अलग भेज दिया। अब उनका विशुद्ध मन जिनेन्द्र-चरणोंका स्मरण करते हुए कर्मजालसे विमुक्त चैतन्यकी ओर विशेष रूपसे केन्द्रित हो रहा था।

चातुर्मासका काल व्यतीत होनेपर भूतबलि भट्टारक द्रमिल देश – तामिल देशको गये—'भूदबलि-भडारओ दमिलदेस गदो' तथा पुष्पदन्ताचार्य वनवास देशको गये। प्रतीत होता है कि इस चातुर्मासके भीतर ही महामुनि धरसेन स्वामीका स्वर्गवास हो गया होगा, अन्यथा उनके जीवित रहते हुए कृतज्ञ शिष्य युगल गुरुदेवके पुण्य दर्शन हेतु गये बिना न रहते।

पुष्पदतस्वामीकी रचना—'धवलाटीका'मे लिखा है कि[2] वनवास देशमे पहुचकर पुष्पदन्त स्वामी-ने जिनपालितको दीक्षा दी। बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्र बनाये और उन्हे जिनपालितके द्वारा भूतबलि स्वामीके समीप भेजे।

जिनपालित—इन्द्रनदि श्रुतावतारके कथनानुसार जिनपालित पुष्पदत स्वामीके भानजे थे। विबुध-श्रीधरके श्रुतावतारमे जिनपालितका नाम निजपालित आया है। [3]धर्मकीर्ति शिलालेख न० १ मे (पट्टावली बागडा सघ या लालबागढ) जिनपालितको 'योगिराट्'—योगियोके अधीश्वर लिखा है।

"तेषा नामानि वच्मीत शृणु भद्र महान्वय।
भद्रो भद्रस्वभावश्च धरसेनो यतीश्वर.॥ ६॥
भूतबलि पुष्पदन्तो जिनपालितयोगिराट्।
समन्तभद्रो श्रीधर्मा सिद्धिसेनो गणाग्रणी॥ ७॥"

भूतबलिकी रचना—[4]भूतबलि स्वामीने जिनपालितके पास बीसदि सूत्रोको देखा उनमे अतिम १७७ वॉ सूत्र यह है—'अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाण, केवलीण वा समुग्घादगदाण अजोगिकेवली, सिद्धा चेदि।' उन्हे जिनपालितके द्वारा ज्ञात हुआ, कि पुष्पदन्तका जीवन-प्रदीप शीघ्र बुझनेवाला है, इससे उनके हृदयमे विचार उत्पन्न हुए कि अब 'महाकम्मपयडिपाहुड' का लोप हो जायेगा, अत उन्होंने 'दव्वपमाणाणुगममादि काऊण गथरचणा कदा'—द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रथरचना

१ आत्मनो निकटमरण ज्ञात्वा धरसेन एतयोर्मा क्लेशो भवतु इति मत्वा तन्मुनिविसजन करिष्यति। —श्रुतावतार पृ० ३१७।

२ तदो पुप्फदताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्ख दाऊण वीसदिसुत्ताणि करिय पढाविय पुणो सो भूदवलिभयवतस्स पास पेसिदो। —ध० टी० १।७१।

३ Documents produced by Digambaris bebore the court of Dhwajadand Commissior Udaipur py 29–30

४ भूदबलिभयवदा जिणवालिदासे दिट्ठवीसदिसुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगयजिणवालिदेण महाकम्म-पयडिपाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण बुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादि काऊण गथ-रचणा कदा। —ध० टी० १।७१।

की। षटखण्डागममें भूतबलि स्वामी रचित आदिसूत्र यह है–'दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।' —ध० टी० ३।१।

इस सूत्रके प्रारम्भमें वीरसेनाचार्य धवलाटीकामें लिखते हैं—

"संपहि चोद्दसण्ह जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाण सिस्साण तेसिं चेव परिमाणपडिवोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह" (३।१)

'अब चौदह जीवसमासोंके अस्तित्वको जाननेवाले शिष्योंको परिमाणका अवबोध करानेके लिए भूतबलि आचार्य सूत्र कहते हैं।'

पूर्वोक्त सूत्रको आदि लेकर शेष समस्त षट्खण्डागम सूत्र भूतबलि स्वामीकी उज्ज्वल कृति हैं।

श्रुत पंचमी पर्व—इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारसे विदित होता है कि जब यह रचना पूर्ण[1] हो गयी, तब चतुर्विध सघ सहित भूतबलि स्वामीने ज्येष्ठ सुदी पंचमीको ग्रथराजकी बड़ी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समयसे श्रुतपचमी पर्व प्रचलित हो गया जब कि श्रुत-देवताकी सर्वत्र अभिवन्दना की जाती है। इसके पश्चात् भूतबलि स्वामीने यह रचना जिनपालितके साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भेजी। सौभाग्यकी बात हुई, जो दुर्दैवने पुष्पदन्ताचार्यको उस समय तक नही उठाया था। आचार्य पुष्पदन्तने रचना देखी। अपना मनोरथ सफल हुआ ज्ञात कर वे अत्यन्त आनदित हुए। उन्होने भी चातुर्वर्णसघ सहित सिद्धान्तशास्त्रकी पूजा की।[2]

इस महाशास्त्रके रक्षण कार्यमें जिनपालितकी भी महत्त्वपूर्ण सेवा विदित होती है। हम देखते हैं कि चातुर्मास पूर्ण होनेके पश्चात् पुष्पदन्त अपने साथी भूतबलिको छोड़कर जिनपालितके पास वनवास देशमें पहुँचते है। वे विंशतिसूत्रोंकी रचना करके अपना मतव्य भूतबलिके पास प्रेषित करते है। भूतबलि जब ग्रथराजका निर्माण पूर्ण कर लेते है, तब वे इन्हीं जिनपालितके साथ अपनी अमूल्य जीवन निधि-ज्ञाननिधिको पुष्पदन्ताचार्यके समीप भेजते है, ताकि उनका भी इस आगम-रचनाके विषयमें अभिप्राय ज्ञात हो जाय। जिनपालित योगिराज थे तथा पुष्पदन्त-जैसे महामुनिके अत्यन्त विश्वासपात्र थे। भूतबलि स्वामीने भी उन्हे योग्य समझ अपने समीप स्थान दिया था और अपनी रचना उनके ही साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भिजवायी थी। इससे हमें प्रतीत होता है कि महान् ग्रथ-रचनाकार्यमे वे भूतबलि स्वामीके समीप अवश्य रहे होंगे। बहुत सभव है कि भूतबलि स्वामीके तत्त्व प्रतिपादनको लिखनेका कार्य जिनपालित-द्वारा सपन्न हुआ हो। कमसे कम इतना तो दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्तशास्त्रके उद्धार कार्यमें जिनपालित मुनिराजका विशेष स्थान रहा। इसका वर्णन इसलिए नहीं मिलता, कि पहले लोग कार्यको प्रधान मानते थे, नामकी ओर प्राय कम ध्यान रहता था। इतना बड़ा षट्खण्डागम महाशास्त्र निर्माण करते हुए भी ग्रन्थमे जब भूतबलि स्वामीका नाम कहीं भी नही आया, तब जिनपालितका नाम न आना विशेष आश्चर्यप्रद बात नही है।

---

१ ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्या चातुर्वर्ण्यसंघसमवेत। तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वक पूजाम् ॥१४३॥ श्रुतपचमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप। अद्यापि येन तस्या श्रुतपूजा कुर्वते जैना ॥१४४॥ —इ० श्रु०।

२ विबुध श्रीधरकृत श्रुतावतारसे ज्ञात होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यके साथ चतु सघने तीन दिन पर्यन्त बड़े उत्साहपूर्वक पूजा प्रभावना की थी। धार्मिक समाजने व्रतादिका परिपालन भी किया था। पृ० ३१६।

ग्रंथकी प्रामाणिकता

महाबंध शास्त्रमे संपूर्ण चर्चा आगमिक तथा अहेतुवाद-आश्रित है। आगमकी निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत शास्त्रके विषयमें पूर्णतया चरितार्थ होती है—

"पूर्वापरविरोधादेर्व्यपेतो दोषसन्ततेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः॥" —ध० टी० पृ० ८७५।

—जो पूर्वापरविरोधादि दोषपरम्परासे रहित हो, सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हो तथा आप्तकी वाणी हो, उसे आगम कहते हैं।

कुंदकुंदस्वामीने नियमसारमें कहा है—

"तस्स मुहग्गयवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था॥८॥"

अरहंत परमात्माके मुखसे विनिर्गत, पूर्वापर दोष रहित शुद्धवाणीको आगम कहा है। उस आगमके द्वारा तत्त्वार्थका कथन किया गया है। यह आगम सम्यक्त्वको उत्पत्तिमे निमित्त कारण कहा गया है (नियमसार गाथा ५३)

षट्खंडागम सूत्रोंकी, विशेषकर महाबंधकी चर्चा बहुत सूक्ष्म है। उसमें कहीं भी पूर्वापर विरोधका दर्शन नहीं होता। जितना सूक्ष्म चिन्तक एवं विचारक महाबंधका पारायण करेगा, वह ग्रंथके विवेचनसे उतना ही अधिक प्रभावित होगा। ग्रंथकी महत्ता यथार्थमे पूर्वापर अविरोधितामे है। अपने विषयपर प्रकाश डालनेमे आचार्यने किंचित् भी न्यूनता नहीं प्रदर्शित की है। ग्रंथराज आप्तकी कृति है, अतः यह स्वतः प्रमाण है। किसी हेतुवादरूप साधन-सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। आप्तमीमांसाकार समन्तभद्र स्वामीका कथन है—

"वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम्॥ ७८॥"

—वक्ता यदि अनाप्त है, तो युक्ति-द्वारा जो बात सिद्ध की जायगी, वह हेतुसाधित कही जायगी। और यदि वक्ता आप्त है, तो उनके वचनमात्रसे ही बात सिद्ध होगी। इसे आगमसाधित कहते हैं।

भूतबलिको आप्त किस कारण माना जाय, इस सम्बन्धमें धवला टीकामे सुन्दर तर्कणा की गयी है। शंकाकार कहता है सूत्रकी परिभाषा है—

"सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च॥"

—गणधरका कथन, प्रत्येकबुद्ध मुनिराजकी वाणी, श्रुतकेवलीका कथन, अभिन्नदशपूर्वीका कथन सूत्र है।

"ण च भूदबलिभडारओ गणहरो, पत्तेयबुद्धो, सुदकेवली, अभिण्णदसपुव्वी वा येणेदं सुत्तं होज्ज? जदि एदं सुत्तं ण होदि तो पमाणत्तं कुदो णव्वदे?" 'भूतबलि भट्टारक गणधर नहीं हैं। न वे प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्न दशपूर्वी है, जिससे यह शास्त्र 'सूत्र' हो जाय। यदि यह शास्त्र सूत्र नहीं होता है, तो इसमें प्रामाणिकताका किस प्रकार ज्ञान होगा?

इस शंकाके समाधानमे कहते हैं—"रागदोसमोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरंपराये आगदादो" (ध० टी० पृ० १२८१) 'यह ग्रन्थ प्रमाण है, कारण राग द्वेष-मोहरहित प्रामाणिकता-प्राप्त पुरुषपरंपरासे यह प्राप्त हुआ है।'

इस ग्रथमें अप्रामाणिकताका लेश भी नही है। इस सबधमें वीरसेनाचार्यका कथन महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं[1]–इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणालिकाके द्वारा प्रवाहित होता हुआ महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतरूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारकको प्राप्त हुआ। उन्होने भी गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें भूतबलि, पुष्पदन्तको सपूर्ण महाकर्म प्रकृति-प्राभृत सौपा। तदनतर श्रुतनदीका प्रवाह व्युच्छिन्न न हो जाय, इस भयसे भव्य जीवोके अनुग्रहके लिए उन्होंने 'महाकम्मपयडि पाहुड' का उपसहार करके षट्खण्ड बनाये। अत यह त्रिकालगोचर समस्त पदार्थोंको ग्रहण करनेवाले प्रत्यक्ष तथा अनत केवलज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, प्रमाण-स्वरूप आचार्य प्रणालिकाके द्वारा आगत है और प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणसे अबाधित है। अत. यह शास्त्र प्रमाण है। इसलिए मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओको इसका अभ्यास करना चाहिए।

पुन शकाकार कहता है[2]–"सूत्र विसवादी क्यो नही है?" उत्तरमें कहते हैं–"सूत्रमें विसंवादीपना नही है, कारण यह विसवादके कारण सपूर्ण दोषोसे मुक्त भूतबलिके वचनोसे विनिर्गत है।" पुन. शंकाकार तर्क करता है—"कदाचित् भूतबलिने असबद्ध देशना की हो?" इसके निराकरणमे वीरसेन स्वामी कहते हैं—"ण चासबद्ध भूदबलिभडारओ परूवेदि, महाकम्मपयडिपाहुड-अमियपाणेण ओसारिदासेसराग-दोस-मोहत्तादो"—भूतबलि भट्टारक असबद्ध प्ररूपण नही करेंगे, कारण उन्होने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके अवधारण करनेसे रागद्वेष तथा मोहका निराकरण कर दिया है।

महाधवल मनोवृत्ति—वक्ताका जब विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है, तब उनकी वाणीमें भी स्वय विशेषताका अवतरण हो जाता है। इस चर्चासे यह बात भी ज्ञात हो जाती है, कि महाकर्मप्रकृति प्राभृतके परिशीलनसे राग, द्वेष तथा मोहका विनाश होता है, तब उस महाशास्त्रके उपसहाररूप इस ग्रथराज-के द्वारा भी रागद्वेष मोहकी विशेष मन्दता होती है। कषायादिकी विशेष तीव्र अवस्थामें तो मनोवृत्ति महाबधका अवगाहन भी नहीं कर सकेगी। इसके लिए अत करण वृत्तिकी निर्मलता तथा निश्चिन्तताकी परम आवश्यकता है। गृहस्थ सदृश आकुलतापूर्ण श्रमण भी इस शास्त्रका रसास्वाद नही कर सकता। श्रमणसदृश मनोवृत्ति तथा पवित्र परिणतियुक्त व्यक्ति इस महाशास्त्रका सम्यक् परिशीलन करनेमें समर्थ होगा। गार्हस्थिक आकुलतावाला व्यक्ति इस अमृतनिधिका आनन्द न ले सकेगा। प्रतीत होता है, इस बातको लक्ष्यमे रखकर सर्वसाधारणको इस ज्ञानसिन्धुमे अवगाहन करनेका पात्र नही कहा। महाबंधका रसास्वादन करनेवालेकी मनोवृत्ति महाधवल होनी चाहिए। इस ग्रथराजके द्वारा जीवन महाबधसे मुक्त हो महाधवल रूप होता है।

मंगल-चर्चा

जैन शास्त्रकार अपने शास्त्रके प्रारम्भमें जिनेन्द्र भगवान्के गुणस्मरणरूप मगल-रचना करते हैं। इसका कारण आचार्य विद्यानन्दि यह बताते है कि—

"अभिमतफलसिद्धेरभ्युपाय सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्य तत्प्रसादप्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति॥"

—श्लो० वा० पृ० २।

---

१. एव पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारय सपत्तो। तेण वि गिरिणयरचदगुहाए भूदबलिपुप्फदताण महाकम्मपयडिपाहुड सयल समप्पिद। तदो भूदबलिभडारएण सुद-णइ पवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्मपयडिपाहुड-मुवसंहरियऊण छक्खडागि कयाणि, तदो तिकालगोयरासेस-पयत्थविसय पच्चक्खाणत-केवलणाण-प्पभवादो पमाणीभूदआइरियपणालेणादत्तादो, दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गथो, तम्हा मोक्खत्थिणा अब्भसेयव्वो। –ध० टी० सि० पृ० ७६२।

२ विसंवादी सुत्त किण्ण जायदे ? ण, विसंवादकारण-सयलदोसमुक्क भूदबलि वयणविणिग्गयस्स सुत्तस्स विसवादत्तविरोहादो। –ध० टी० सि० पृ० १०३३।

'अभिमतफल-सिद्धिका उपाय सुबोध है, वह शास्त्रसे प्राप्त होता है और शास्त्रकी उत्पत्ति आप्तसे होती है, अत शास्त्रके प्रसादसे प्रबोध प्राप्त पुरुषोका कर्तव्य है कि आप्तको अपनी प्रणामाजलि अर्पित करें, कारण सत्पुरुष अपनेपर किये गये उपकारको नही भूलते।'

मगलके विषयमें तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—

"पढमे मगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति।
मज्झिम्मे णिव्विग्घं विज्जा, विज्जाफल चरिमे॥१।२९।"

ग्रथके आरम्भमे मगल पाठसे शिष्य लोग शास्त्रके पारगामी होते है। मध्यमे मगलके करनेसे निर्विघ्न विद्याकी उपलब्धि होती है तथा अन्तमे मगल करनेसे विद्याका फल प्राप्त होता है। महाबधका प्रथम पत्र नष्ट हो गया है, अत ग्रथके आदिमे क्या मगल श्लोक या सूत्र रहे, इसका परिज्ञान नही हो सकता। यह भी कल्पना हो सकती है कि कषायप्राभृतके समान यहाँ भी मगल न किया गया हो।

कषायप्राभृतमे मंगलका अभाव—कषायप्राभृतकी टीकामें वीरसेन स्वामी लिखते है—"ववहारणयमस्सिदूण गुणहरभडारयस्स पुण एसो अहिप्पाओ, जहा-कीरउ अण्णत्थ सव्वत्थ णियमेण अरहतणमोक्कारो, मगलफलस्स पारद्धकिरियाए अणुवलभादो। एत्थ पुण णियमो णत्थि, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मंगलफलोवलभादो। एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठ गुणहरभडारएण गंथस्सादीए ण मगल कय।" (११)।

"व्यवहार नयकी अपेक्षा गुणधर भट्टारकका यह अभिप्राय है कि परमागमके अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र नियमसे अरहत-नमस्कार करना चाहिए, कारण प्रारब्धक्रियाओमे मगलफलविघ्नध्वसकताकी अनुपलब्धि है। यहाँ इस बातका नियम नही है। परमागममे उपयोग लगनेपर नियमसे मगलके फलकी प्राप्ति होती है। इस अर्थविशेषका परिज्ञान करानेके लिए गुणधर भट्टारकने ग्रथके आदिमे मगल नहीं किया।

यह विवेचन आपाततः विरोधात्मक दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अनेकान्त शैलीके प्रकाशमे इनका समाधान स्वय हो जाता है।

महाबधका मंगल—महाबधके मगलके विषयमे धवला टीकाके चतुर्थ वेदना नामक खण्डमे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। उसमें आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं—"[1]निबद्ध और अनिबद्धके भेदसे मगल दो प्रकारका है।

अनिबद्ध मगल—तब फिर वेदना खण्डके आदिमे 'णमो जिणाणं' आदि मगल सूत्र है, वे निबद्ध मगल है या अनिबद्ध मगल ? वे निबद्धमगलरूप नही है। कृति आदि चौबीस अनुयोग हैं अवयव जिसके ऐसे महाकर्मप्रकृति प्राभृतके आदिमे गौतमस्वामी द्वारा प्ररूपित मगलको भूतबलि भट्टारकने वहाँसे उठाकर वेदना खण्डके प्रारभमे स्थापित कर दिया, इस कारण इसे निबद्ध मगल माननेमे विरोध आता है। वेदनाखण्ड तो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नही है। अवयवको अवयवी माननेमें विरोध है। अर्थात् वेदनाखण्ड अवयव है उसे महाकर्म प्रकृति प्राभृत रूप अवयवी माननेमें विरोध आता है। भूतबलि तो गौतम है नहीं, विकल

---

१ णिबद्धाणिबद्धभेएण दुविह मगल। तत्थेद किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि। ण ताव णिबद्धमगलमिद ? महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदिआदिचउवीस अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखडस्स आदीए मगलट्ठ तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्तविरोहादो। ण च वेयणाखड महाकम्मपयडिपाहुड, अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो। ण च भूदबली गोदमो, विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदाधारवड्ढमाणंतेवासिगोदमत्तविरोहादो। ण च अण्णो पयारो णिबद्धमगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि। तम्हा अणिबद्धमगलमिद। (ताम्रपत्र प्रति भाग ४, पृ० ३१)

श्रुतके धारी धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकल श्रुतधारी वर्धमान भगवान्के शिष्य गौतम माननेमें विरोध है। निबद्ध मगल माननेमें कारण रूप अन्य प्रकार है नही, अत यह अनिबद्ध मगल है।"

आचार्य अपनी तर्कशैलीसे इसे निबद्धमगल भी सिद्ध करते हैं। महापरिमाणवाले गणधरदेव रचित वेदना खण्डके उपसहाररूप वेदनाखण्डमें वेदनाका अभाव सर्वथा नही है। उनमे प्रमेयकी दृष्टिसे कथचित् ऐक्य हैं। आचार्य भूतबलि और गौतममें भी कथचित् अभिन्नता द्योतित करते हुए कहते हैं—"अथवा भूदवली गोदमो चेव, एगाहिप्पायत्तादो, तदो सिद्ध णिबद्धमगलत्तमपि।" अथवा भूतबलि गौतम है, कारण उनके अभिप्रायमे एकत्व है।

विशेष विचार—वेदना खण्डमे मगलके दो भेद टीकाकारने कहे है। "णिबद्धा-णिबद्धभेएण दुविहं मगल" (पृ० ३१ ताम्रपत्र प्रति) मगलके इन दो भेदोका कथन जीवट्ठाण प्रथम खण्डमें (पृष्ठ ७ ताम्रपत्रीय प्रतिमे) इस प्रकार आया है—"तच्च मगल दुविह णिबद्धमणिबद्धमिदि"—वह मगल निबद्ध, अनिबद्धके भेदसे दो प्रकार है। वेदना खण्डमे निबद्ध, अनिबद्ध शब्दोका उल्लेख करके उनकी परिभाषा नहीं दी गयी है। वहाँ इतना ही कहा है कि णमो जिणाण आदि सूत्र महाकम्म पयडि पाहुडमें गौतम स्वामीने रचे थे। उनको वेदना, वर्गणा तथा महाबध इन तीन खडोका मगल भूतबलि स्वामीने माना है। भूतबलि स्वामीने अन्य मगल नही लिखे। जब ये मगल सूत्र अन्य रचित है (borrowed) तथा अन्य ग्रथसे उद्धृत किये गये है तब ये अनिबद्ध मगल हैं, ऐसा स्पष्ट धवला टीकामें उल्लेख किया गया है।

जीवट्ठाणकी टीकामे मगलके दो भेदोका उल्लेख करके इस प्रकार स्पष्ट किया है—"तत्थ णिबद्ध णाम, जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय देवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल। जो सुत्तस्मादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।" (पृ० ७ ताम्रपत्र प्रति)—जो सूत्रके आरभमें सूत्रकर्ताके द्वारा किया गया अर्थात् रचा गया देवताका नमस्कार है, वह निबद्ध मगल है तथा जो सूत्रके आदिमे सूत्रकर्ताके द्वारा निबद्ध अर्थात् उद्धृत (borrowed) देवताका नमस्कार है वह अनिबद्ध मगल है। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न होता है कि जीवट्ठाणके प्रारभमे पुष्पदत आचार्यने जो 'णमो अरहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरीयाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण' सूत्र लिखा है उसे कौन-सा मगल माना जाये? वेदना खण्डमें गणधर-रचित णमो जिणाण आदि सूत्र उद्धृत होनेसे जैसे अनिबद्ध मगल है, उसी प्रकार "णमो अरिहताण" आदिको भी पारिभाषिक अनिबद्ध मगलरूपता प्राप्त होती है।

शका—इस सबन्धमे शंकाकार कहता है यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। णमोकार मत्र निबद्ध मगल है ऐसा वीरसेन स्वामीने जीवट्ठाणकी टीकामे लिखा है "इद पुण जीवट्ठाण णिबद्धमगल" (पृ० ७, ताम्र पत्र प्रति)—यह जीवट्ठाण निबद्ध मगल है अत यह पुष्पदन्त आचार्यकृत है। यह उनसे पूर्वमे रचित मगल नही है।

समाधान—यह धारणा भ्रान्त है। खण्डागमके प्रथम खण्डका नाम जीवट्ठाण है। वह ग्रथ निबद्ध मगल अर्थात् पारिभाषिक निबद्ध मगल रूप नही है। वहाँ निबद्ध मगल शब्द बहुव्रीहि समास रूप है 'निबद्धं मगल यत्र एवमूत जीवट्ठाण'—जीवट्ठाण ग्रथ मगल युक्त है। यदि निबद्धमगल रूप पारिभाषिक मगल अपेक्षित होता तो पाठ होता—'इद जीवट्ठाणं सणिबद्ध-मगल'। किन्तु ग्रथगत पाठ है 'जीवट्ठाण णिबद्धमंगल' अत. बहुव्रीहि समासकी अपेक्षा जीवट्ठाण मगल युक्त है इतना ही अर्थ होता है। इससे इस कथनके आधारपर णमोकार मत्रको पुष्पदन्ताचार्यकी कृति मानना अनुचित है। जिस तरह णमो जिणाण आदि वेदना खण्डके प्रारभमें निबद्ध सूत्र गौतम गणधर रचित है, यही बात णमोकारमत्रके विषयमे भी है।

प्रश्न—'जीवट्ठाण णिबद्धमगल'—इन शब्दो द्वारा जीवट्ठाण रूप प्रथम ग्रथमे 'निबद्ध मगल' शब्द देनेका क्या प्रयोजन है?

समाधान—टीकाकारका अभिप्राय यह है कि ग्रथके आरभमें मगल होना चाहिए—इस सामान्य शिष्टाचारकी मान्यताका परिपालन जीवट्ठाणमे हुआ है। उसका उल्लघन नही हुआ है। यह उन्होंने सूचित किया है।

प्रश्न—जब मगलके निबद्ध अनिबद्ध ये दो भेद जीवट्ठाणमे किये गये, तब आचार्यने टीकामे वेदना खण्डके समान णमोकार मत्रको अनिबद्ध मगल क्यो नही कहा? यदि णमो जिणाण आदि मगल सूत्रोके समान णमोकार मन्त्रको भी अनिबद्ध मगल कह देते तो भ्रम ही उत्पन्न न होता।

समाधान—णमोकार मन्त्र निबद्ध मगल है या अनिबद्ध है, यह चर्चा टीकाकारने नही की, क्योकि णमोकार मन्त्र अनादि मूल मत्र रूपमे सर्वत्र प्रसिद्ध है, अत उसके विषयमे चर्चा करना धवलाकारको अनावश्यक प्रतीत हुआ। 'णमो जिणाण' आदि मगल सूत्रोके कर्तृत्वके विषयमे अवबोध न रहनेसे वीरसेन स्वामीने अपनी वेदनाखण्डकी टीकामें यह स्पष्ट किया कि ये मगल सूत्र उद्धृत किये गये है, अतः ये अनिबद्ध मगल है, अर्थात् भूतबलि स्वामीकी रचना नही है। जहाँ सदेह या भ्रमकी सभावना हो वहाँ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता होती है।

प्रश्न—यदि णमोकार मत्र अनादि मूल मत्र है तथा वह द्वादशाग वाणीका अग है तो णमोकार मत्रको पुष्पदत आचार्यरचित सूचित करनेके लिए जो मुद्रित धवलाटीकाके प्रथम खण्डमे आदर्श प्रतियोके पाठमें परिवर्तन किया गया, वह कैसा है?

समाधान—आदर्श प्रतियोमे जो पाठ है, उसके अर्थमे पूर्ण सगति बैठनेसे उसमे फेरफार करनेकी कोई भी आवश्यकता नही थी। उसमे परिवर्तन करनेका ही यह फल हुआ, कि जबसे धवला टीका हिन्दीमे मुद्रित हुई, तबसे कोई-कोई लोग इस भ्रममें आ गये कि णमोकार मत्र पुष्पदत आचार्यकी रचना है तथा उसे अनादि मूल मत्र मानना ठीक नही है। मूडविद्रीकी ताडपत्रकी प्रतियोमे इस प्रकार पाठ है—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल' इसका पाठ इस प्रकार बदला गया—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल।'

मूल पाठ यह था—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।'

परिवर्तित पाठ यह किया गया—'सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल' (पृ० ४१, ध० टी० १)।

प्रश्न—इस छोटे से परिवर्तनसे क्या बाधा हो गयी?

समाधान—सूत्र कर्ताके द्वारा स्वय रचित देवताका नमस्कार निबद्ध मगल है तथा जीवट्ठाण निबद्ध मगल है, इससे सामान्य बुद्धिके पाठकोको यह भ्रम हो गया कि णमोकार रूप मगल निबद्ध मगल है। यथार्थ बात यह है कि टीकाकार वीरसेन स्वामीने णमोकार मत्र कौन-सा मगल है, यह चर्चा ही नही की। उन्होने मगलके दो भेद कहनेके पश्चात् इतना मात्र सूचित किया कि जीवट्ठाणमे मगल है। वह ग्रथ मगलरहित नही है। कषायपाहुडमे मगलाचरण नही रचा गया ऐसी अवस्था इस जीवट्ठाणकी नही है, इसे स्पष्ट करनेको आचार्यने कहा—'जीवट्ठाण णिबद्धमगल' (१।४१)—यह जीवट्ठाण ग्रथ मगलाचरण युक्त है। यह ग्रथ निबद्ध मगल नही है।

भूतबलि स्वामीकी विशिष्ट दृष्टि—भूतबलि स्वामी-जैसे महाज्ञानी, प्रतिभासपन्न तथा परमविवेकी आचार्यने वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबध इन तीन खण्डोके लिए स्वतन्त्र मंगल रचना न करके गौतम गणधर रचित महाकम्म पयडि पाहुडके अन्तर्गत वेदना खण्डके आरम्भमें दिये णमो जिणाण, णमो ओहिजिणाण आदि सूत्रोको वहाँसे उठाकर अपनी रचनामें मगलरूपसे स्थापित किया, इससे यह सूचित होता है कि वे महर्षि परम वीतरागभावसपन्न थे। वे अपनी रचना द्वारा अपना पाण्डित्य प्रदर्शन

करनेकी कल्पना नही सोचते थे। प्रतीत होता है कि वे गौतम गणधरके उन सूत्रोसे विशेष प्रभावित थे। अत. उन्हे अन्य मगल रचना करनेकी आवश्यकता नही प्रतीत हुई। अपनी रचनाको वे स्वयकी कृति न सोचकर जिनेन्द्रकी वाणी मानते थे। जैसे समस्त ग्रन्थ गणधर रचित महाकम्म-पयडि पाहुडका अवयव है, उसी प्रकार उन्ही गणधरकी रचना रूप मगलसूत्रको लेना किसी प्रकार भी अनुचित नही प्रतीत हुआ।

'णमो जिणाण' आदि सूत्रोको वीरसेन आचार्य गौतम गणधरकी कृति स्वीकार करते हैं। उन्होने वेदनाखण्डकी धवला टीकामे लिखा है "महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स कदिआदि चउवीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदवलि भडारएण वेयणाखडस्स आदीए मगलट्ठ ततो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्त विरोहादो—तम्हा अणिबद्धमगलमिद" पृ० ३१, ताम्रपत्रीय प्रति। वेदनाखण्ड, वर्गणा खण्ड तथा महाबधके मगलरूप गौतम गणधर रचित 'णमो जिणाण' आदि सूत्र हैं। अत उनके मूलकर्ता भूतबलि स्वामी नहीं है। अन्य कृत रचनाको अपने ग्रथमें निबद्ध करनेके कारण उन सूत्रोको अनिबद्ध मंगल माना गया है। अलकार चितामणिमे लिखा है —

"स्वकाव्यमुखे स्वकृतं पद्य निबद्ध परकृतमनिबद्धम्"

नय दृष्टि—महाबधका प्रथम मगलसूत्र 'णमो जिणाण' द्रव्यार्थिक नयाश्रित लोगोके अनुग्रह हेतु गौतम स्वामीने रचा था, इसके पश्चात् रचित ४३ सूत्रोको पर्यायार्थिक नयाश्रित जीवोके अनुग्रह हेतु रचा था। उनमें 'णमो ओहिजिणाण' प्रथम सूत्र है। वेदना खण्डमे टीकाकार वीरसेन स्वामीने कहा है— "एव दव्वट्ठिय-जणाणुग्गहट्ठ णमोक्कार गोदमभडारओ महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठिय-णयाणुग्गहणट्ठमुत्तर-सुत्ताणि भणदि" (ताम्रपत्रीय प्रति पृ० ४)—इस प्रकार द्रव्यार्थिक दृष्टि युक्त जीवोके अनुग्रह हेतु गौतम भट्टारकने महाकर्म प्रकृति प्राभृतके आरभमें नमस्कार करके पर्यायार्थिक नयवालोके अनुग्रहके हेतु उत्तरसूत्र कहते है। इस प्रकार स्याद्वाद दृष्टिको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखनेवाले महर्षिने दोनो नयोके प्रति समान आदरभाव व्यक्त किया।

गौतम गणधरकी दृष्टि

गणधरदेव गौतम स्वामीने जो मगलसूत्रोकी रचना की थी, वह व्यवहार नयको अपेक्षासे की थी, क्योकि उन्होने व्यवहार नयको अनेक जीवोका कल्याणकारी मानकर उसका आश्रय लिया है। जयधवला टीकाके ये शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है "[1]ववहारणय पडुच्च पुण गोदमसामिणा चदुवीसण्हमणियोगद्दाराण-मादीए मगल कद" व्यवहार नयका आश्रय लेकर गौतम स्वामीने चौबीस अनुयोगद्वारोके प्रारभमें (णमो जिणाण आदि) मगल किया है।

यहाँ यह शका होती है कि गणधर देवने अभूतार्थ व्यवहार नयका आश्रय क्यो लिया, वह तो छोडने योग्य नय है, क्योकि वह असत्य है।

समाधान—'ण च ववहारणओ [2]चप्पलओ। तत्तो सिस्साण-पउत्तिदसणादो। जो बहुजीवाणुग्गह-कारी ववहारणओ, सो[2] चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मगल तत्थकय"—"व्यवहार नय चपल अर्थात् असत्य नहीं है। क्योकि उससे शिष्योको प्रवृत्ति देखी जाती है। गौतम स्थविरने इस बातको मनमे अवधारण करके वहाँ मगल रचना की, कि व्यवहार नय बहुत जीवोका अनुग्रहकारी है और उस व्यवहार नयका आश्रय लेना चाहिए। इसके द्वारा व्यवहार नयका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

णमोकार मंत्रकी प्राचीनतापर प्रकाश—णमोकार मत्र अनादि मूलमत्र है इसके लिए जैन परपरामे यह प्रसिद्धि है —

---

१ जयधवला भाग १, पुस्तक १, पृ० ८।

२ कोशमें चपल शब्दका अर्थ 'असब्ब'—असत्य किया है—दे० नाममाला ३-२०।

"अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशन. ।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथम मगलो मत. ॥"

इसके सिवाय मूलाराधना टीकामे अपराजित सूरिने (पृ० २) कहा है कि गणधरने णमो अरहताण इत्यादि शब्दो द्वारा सामायिक आदि लोकबिन्दुसार पर्यन्त समस्त परमागममे पच परमेष्ठियोको नमस्कार किया है।" प्रथमे ये शब्द आये है, "यद्येव सकलस्य श्रुतस्य सामायिकादेर्लोकबिन्दुसारान्तस्यादौ मगल कुर्वद्भिर्गणधरै णमो अरहताणमित्यादिना कथ पचाना नमस्कार कृत ?"

प्रायश्चित्तमे णमोकारका उपयोग—मुनि-जीवनमे प्रतिक्रमण रूप अन्तरग नयका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान् ऋषभदेव ओर अतिम तीर्थकर महावीरके तीर्थमे अपराध न करनेवाले भी श्रमणोको प्रतिक्रमण रूप प्रायश्चित्त करनेका विधान है। शेष बाईस तीर्थकरोके तीर्थमें होनेवाले मुनियोके लिए ऐसा कथन नही आया है। उनके तीर्थमे दोष लगनेपर ही प्रतिक्रमणरूप प्रायश्चित्त किया जाता था, किन्तु आदि जिन और अतिम जिनके तीर्थमे दोष लगानेको सदा सभावना रहनेसे प्रायश्चित्त कहा है। प्रायश्चित्तके भेद प्रतिक्रमणमे णमोकार मन्त्रके जापका आवश्यक और महत्त्वपूर्ण स्थान है। मूलाचारमे कहा है —

"सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
अवराहे पडिक्रमण मज्झिमयाण जिणवराण ॥७।१५४॥"

आदि जिन तथा पश्चिम जिन अर्थात् वीरभगवान्ने प्रतिक्रमण युक्त धर्मका उपदेश दिया है। अपराध न होनेपर प्रतिक्रमण करना ही चाहिए ऐसी आद्यन्त तीर्थकरोने शिष्योको आज्ञा दी है। मध्यम तीर्थकरोने अपराध होनेपर प्रतिक्रमण कहा है।

इसका हेतु मूलाचारमे यह दिया है—

"मज्झिमया दिढबुद्धी एयग्गमणा अमोहलक्खा य ।
तम्हा हु जमाचरति त गरहता विसुज्झति ॥७–१२७॥"

मध्यम तीर्थकरोके शिष्य दृढबुद्धि अर्थात् मजबूत स्मरण शक्ति युक्त थे, एकाग्रमन थे, मोहरहित होते थे। इससे उनसे जो अतीचार होता था, उस दोषकी वे गर्हा करते थे और शुद्ध चारित्रवाले बनते थे।

"पुरिम-चरिमा दु जम्हा चलचित्ता चेव मोहलक्खा च ।
तो सव्वपडिक्कमण अधलय-घोडय-दिट्ठता ॥१५८॥"

आद्यत तीर्थकरोके शिष्य चचलचित्त है। उनका मन दृढ नही है। मोहसे उनका मन आक्रान्त है। वे ऋजुजड और वक्रजड़ है। अत सर्व प्रतिक्रमण दडकोका वे उच्चारण करते हैं। उनके लिए अधे घोडेका दृष्टान्त हैं। जैसे वैद्य पुत्रने अधे घोडेकी औषधिका ज्ञान होनेसे नेत्रको भिन्न-भिन्न दवाओको क्रम-क्रमसे लगा, उसे रोगमुक्त कर दिया उसी प्रकार सर्व प्रतिक्रमणोका उच्चारण करते है, क्योकि सर्व प्रतिक्रमण दण्डक कर्मक्षयके कारण है।

उच्छ्वासका उपयोग—दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणोमे णमोकारके जपकी आवश्यकता कही गयी है। मूलाचारमे लिखा है, "दैवसिक प्रतिक्रमणके कायोत्सर्गमें एक सौ आठ उच्छ्वास करना चाहिए। अर्थात् छत्तीस बार पच नमस्कारका जाप करना चाहिए। एक बार णमोकारका पाठ करनेमें तीन उच्छ्वासका काल लगता है। 'णमो अरहताण णमो सिद्धाण'मे एक उच्छ्वास, 'णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण'में दूसरा उच्छ्वास तथा 'णमो लोए सव्वसाहूण' पदोच्चारणमें तीसरा उच्छ्वास होता है। प्राण वायुको भीतर लेना और बाहर छोड़ना यह उच्छ्वासका लक्षण है। रात्रिक प्रतिक्रमणमे चौवन उच्छ्वास करना चाहिए अर्थात् १८ बार पच नमस्कार मन्त्रको चौवन उच्छ्वासोमे पढना चाहिए। पाक्षिक प्रतिक्रमण तीन सौ उच्छ्वासोमें अर्थात् सौ बार णमोकार पढना चाहिए। चातुर्मासिक प्रतिक्रमणमें

चार सौ उच्छ्वास, सांवत्सरिकमें पाँच सौ उच्छ्वास कहे हैं। (मूलाचार पृ० ३३८, अ० ७, गा० १८५, १८६)

अनगारधर्मामृत टीका(अ० ८ पृ० ६७५)में यह पद्य उद्धृत किया गया है,

"सप्तविंशतिरुच्छ्वासा संसारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पंचनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति॥"

पंचनमस्कार मन्त्रका नौ बार चिंतवन करनेमें २७ उच्छ्वास होते हैं। इस प्रकार इसका चिंतवन संसारका उच्छेद करनेमें समर्थ होता है।

णमोकार मंत्रके पाठमें तीन उच्छ्वास प्रमाण काल लगता है। यह उच्छ्वास व्यवहार कालका भेद कहा है। 'आवलि असंखसमया संखेज्जावलि समूहमुच्छ्वासो'—असंख्यात समय प्रमाण आवलि होती है तथा संख्यात आवली प्रमाण उच्छ्वास होता है। चरणानुयोग रूप आगममें णमोकारके जापकी गणनाको उच्छ्वासके माध्यमसे भी कहा गया है। जैसे नौ बार णमोकारका जाप करें इसको इस रूपसे कहेंगे, कि २७ उच्छ्वास करते है। अनगारधर्मामृतमें लिखा है—

"उच्छ्वासाः स्युस्तनूत्सर्गे नियमान्ते दिनादिषु।
पंचस्वष्ट-शतार्धं-त्रि-चतुःपंचशतप्रमाः॥८-७२॥"

दिन, रात्रि, पक्ष, चतुर्मास, संवत्सर इन पाँच अवसरोंपर वीर भक्ति करते समय जो कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें क्रमसे एक सौ आठ, चौअन, तीन सौ, चार सौ, और पाँच सौ उच्छ्वास हुआ करते हैं।

अनादि मंत्र माननेमें हेतु—जैनधर्मका प्राण श्रमण धर्म है। उस मुनिधर्मको निर्दोष बनानेके लिए साधुगण सदा प्रतिक्रमणादि-द्वारा अपनी आत्माको परिशुद्ध करते है। उस प्रतिक्रमण कार्यमें पंच णमोकारका स्मरण अत्यन्त आवश्यक अंग है। भगवान् ऋषभनाथ तीर्थंकरके समयमें भी जो साधुराज होते थे वे प्रतिक्रमण करते समय णमोकार मंत्रको पढ़ा करते थे। अतः यह णमोकारमंत्र गौतम गणधरसे ही संबंधित नहीं है किन्तु इसका संबंध प्रथम गणधर वृषभसेन स्वामीसे भी रहा है। यथार्थमें यह अनादि मूल मंत्र है। चौदह पूर्वके अंतर्गत जो विद्यानुवाद नामका दशम पूर्व है, उसमें णमोकार मंत्रको पैंतीस अक्षरोंसे युक्त मंत्रके रूपमें निरूपण किया गया है। अतः चरणानुयोग रूप परमागमके प्रकाशमें भी णमोकार मंत्र अनादि मूल मंत्र निश्चित होता है। ऐसी स्थितिमें मुद्रित हिन्दी धवला टीकाके नामपर जिन्होंने यह धारणा बना ली है, कि यह णमोकार पुष्पदंत आचार्यकी रचना है, वह योग्य नहीं है। यह णमोकार मंत्र उसी प्रकार अनिबद्ध मंगल रूप है जिस प्रकार णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं आदि वेदना खण्ड, वर्गणा खण्ड तथा महाबंधके मंगल सूत्र अनिबद्ध मंगल है।

प्रश्न—षट्खंडागमके प्रारंभमें पुष्पदन्त आचार्य णमोकार मंत्र रूप मंगल सूत्रको उद्धृत करके जीव-ट्ठाणको अलंकृत किया गया, चौथे, पाँचवे तथा छठे खण्डमें भूतबलि स्वामीने भी ग्रन्थान्तरका मंगल उद्धृत किया, तो क्या दूसरे और तीसरे खण्डमें भी इसी प्रकार अनिबद्ध मंगलको अपनानेकी पद्धति अंगीकार की गयी है?

समाधान—दूसरे तथा तीसरे खण्डमें भूतबलि स्वामीने स्वयं मंगल पद्योंको रचकर उन खण्डोंको निबद्ध मंगल युक्त किया है। इस प्रकार षट्खंडागम सूत्रमें निबद्ध और अनिबद्ध दोनों प्रकारके मंगल पाये जाते हैं। अन्य ग्रंथोंमें निबद्ध मंगल ही पाया जाता है।

निबद्ध मंगल—दूसरे खण्डमें क्षुद्रबंधमें यह महत्त्वपूर्ण मंगल श्लोक है—

"जयउ धरसेण णाहो जेण महाकम्म पयडि-पाहुड-सेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स॥"

वे धरसेन स्वामी जयवत हों, जिन्होने महा-कर्म प्रकृति प्राभृत रूप पर्वतको अपनी बुद्धिरूपी मस्तकके द्वारा धारण करके उसे पुष्पदतको सौंपा।

इस गाथामें भूतबलि आचार्यने महाकम्म-पयडि-पाहुड ग्रथको पर्वतसे तुलना की है। पर्वत विशाल होता है, वह दुर्गम होता है, असमर्थ तथा दुर्बल हृदयवाले उस पर्वतके पास नहीं जाते हैं, इसी प्रकार यह कर्मविषयक ग्रथ महान् है, गभीर है तथा सर्व साधारणकी पहुँचके परे है। यह महाज्ञानियोकी बुद्धिके द्वारा गम्य है।

भूतबलि आचार्यकी महत्ता—इस ग्रथका उपदेश धरसेन स्वामीने पुष्पदन्तके साथ भूतबलिको भी दिया था, किन्तु अत्यत विनम्र भावसे भूषित हृदय होनेसे भूतबलि स्वामी अपना कोई भी उल्लेख न करके अपने साथीका ही वर्णन करते हैं।

बध स्वामित्व-विचय नामके तीसरे खडकी मगल गाथा इस प्रकार है —

"साहू-वज्झाइरिए अरहते वंदिऊण सिद्धे वि।
जे पच लोगवाले वोच्छ बधस्स सामित्त॥"

साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत तथा सिद्ध इन पच लोकपालोकी वदना करके मै बध-स्वामित्व विचय ग्रथका कथन करता हूँ।

पाँचो परमेष्ठीका जीवन त्रस तथा स्थावर जीवोका रक्षक होनेसे उनको लोकपाल कहा है। वे प्राणीमात्रका रक्षण करते हैं।

षट्खडागम सूत्रके विषयमें यह बात ज्ञातव्य है कि जीवट्ठाणके १७७ सूत्रोंके सिवाय द्रव्यप्रमाणानुगम आदि समस्त ग्रथ भूतबलि मुनीन्द्रकी रचना होते हुए भी उन्होने प्रकारान्तरसे भी अपने नामकी झलक तक नही दी। वेदना खण्ड (ताम्रपत्र पृ० ४०, ४१) मे टीकाकार वीरसेन स्वामीने कहा है, 'एव पमाणीभूद-महरिसि-पणालेण आगतूण महाकम्मपयडि-पाहुडामिय-जलप्पवाहो धरसेणभडारय सपत्तो। तेण वि गिरिणयर-चदगुहाए भूदबलि पुप्फदताण महाकम्मपयडिपाहुड सयल समप्पिद। तदो भूदबलिभडारयेण सुदणई-पवाह-वोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्म-पयडिपाहुड उवसहरिय छखडाणि कयाणि"—इस प्रकार प्रमाणरूप महर्षिरूप प्रणालिकासे आता हुआ महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतरूप अमृत जलका प्रवाह धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ। उन्होने गिरिनगरकी चद्रगुहामे भूतबलि तथा पुष्पदतको सपूर्ण महाकर्मप्रकृति प्राभृत प्रदान किया। इसके अनन्तर भूतबलि भट्टारकने श्रुतज्ञान रूप नदीके प्रवाहके व्युच्छेदके भयसे भव्यलोकके अनुग्रहके हेतु महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपसहार करके छह खण्ड रूप रचना की।" इस प्रकार धवलाटीकाकार भूतबलि भट्टारकके विषयमे प्रकाश डालते है, जिससे यह प्रतीत हो जाता है, कि इस ग्रथरचनामें उनका बहुत बडा हाथ था, फिर भी वे महापुरुष अपने विषयमें मौन धारण करते हैं, ऐसी विश्वपूज्य आत्माओका जीवन धन्य माना गया है। यथार्थमें धरसेन स्वामी, पुष्पदत स्वामी, भूतबलि स्वामी ये रत्नत्रय तुल्य थे—

आचार्य धरसेनकी विशेषता—वीरसेन स्वामी धरसेन भट्टारकके विषयमें लिखते हैं —

"पसियउ महु धरसेणो पर-वाइ-गओह-दाण-वर-सीहो।
सिद्धतामिय-सायर-तरग संघाय-धोय-मणो॥४॥"

वे धरसेन आचार्य मुझपर प्रसन्न हों जो परवादी रूप गजसमूहके मदको नष्ट करनेके लिए श्रेष्ठ सिंहके समान है तथा जिनका अत.करण सिद्धात रूपी अमृतके सागरकी तरगोके समूहसे परिशुद्ध हो चुका है।

पुष्पदंतको प्रणामांजलि—

"पणमामि पुप्फदंतं दुकयंत दुण्णयधयार-रविं।
भग्ग-सिव-मग्ग कटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं॥५॥"

मैं उन पुष्पदंत आचार्यको प्रणाम करता हूँ जो दुष्कृतोंका अन्त करनेवाले हैं, कुनयरूपी अंधकारके लिए सूर्यके समान हैं, जिन्होंने मोक्षमार्गके कटकोंको नष्ट कर दिया है, जो ऋषि समाजके स्वामी हैं तथा निरंतर इन्द्रियोंका दमन करते हैं।

भूतबलि भट्टारक—

भूतबलि स्वामीके विषयमे आचार्य वीरसेन कहते हैं —

"पणमह कय-भूय-बलि भूयबलि केस-वास परिभूय-बलि।
विणिहय-वम्मह पसर वड्ढाविय विमल-णाण-वम्मह-पसर ॥६॥"

जो प्राणिमात्र अथवा भूत जातिके व्यंतर देवोंसे पूजे गये है, जिन्होंने अपने केशपाशके द्वारा जरा आदिसे उत्पन्न हुई शिथिलताको तिरस्कृत किया है जिन्होंने कामभावके प्रसारको नष्ट करके वर्द्धमान, निर्मल ज्ञानके द्वारा ब्रह्मचर्यके प्रसारको बढाया है, ऐसे भूतबलि स्वामीको प्रणाम करो।

जैनी दीक्षामे उपयोग—इस महामन्त्र णमोकारका जैन सस्कृतिमे दीक्षा प्रदान करते समय उपयोग किया जाता है। महापुराणमे नवीन जैन दीक्षा लेनेवाले व्यक्तिके लिए इस प्रकार सस्कारका वर्णन आया है—"जिनेन्द्र भगवान्‌के समवशरण मगलकी पूजा हो जानेके उपरान्त आचार्य उस भव्य पुरुषको जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सम्मुख बैठावे और बार-बार उसके मस्तकको स्पर्श करता हुआ कहे कि यह तेरी श्रावककी दीक्षा है "तवोपासकदीक्षेय" (पर्व ३९, श्लोक ४१)। पच गुरु मुद्राक विधानपूर्वक उसके मस्तकका स्पश करे तथा तू दीक्षासे पवित्र हुआ है–"पूतोऽसि दीक्षया" इस प्रकार कहकर उससे पजाके शेषाक्षत ग्रहण करावे।

"तत पचनमस्कारपदान्यस्मा उपादिशेत्।
मन्त्रोऽयमखिलात्पापात्त्वा पुनीतादितीरयन् ॥४३॥"

इसके पश्चात् आचार्य उस भव्यको पचनमस्कार पदोका उपदेश दे तथा उसके पूर्व यह आशीर्वाद दे, कि यह मत्र समस्त पापोसे तुझे पवित्र करे।

यह अडतालीस प्रकारकी दीक्षान्वय क्रियाके अन्तर्गत तीसरी स्थानलाभ नामकी क्रिया कही गयी है।

गणधर कथित पर्युपासनामे णमोकार—गौतम गणधर रचित प्रतिक्रमण ग्रथत्रयीमें प्रतिक्रमण करते समय यह पाठ पढा जाता है, "जाव अरहताण भयवताण णमोकार करेमि, पज्जुवास करेमि ताव काय पावकम्म दुच्चरिय वोस्सरामि"—जबतक मै अरहत भगवानको नमस्कार करता हूँ, पयुपासना करता हूँ, तबतक मै पापकर्म तथा दुश्चरित्रके कारण शरीरके प्रति "उदासीनो भवामि"—मै उदासीनता धारण करता हूँ। पर्युपासनाके विषयमे टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द इस प्रकार प्रकाश डालते है, "एकाग्रेण हि विशुद्धेन मनसा चतुर्विंशत्युत्तरशतत्रयाद्युच्छ्वासैरष्टोत्तरशतादिवारान् पञ्चनमस्कारोच्चारणमर्हता पर्युपासनकरण"—(बृहत्प्रतिक्रमण पृष्ठ १५१)—एकाग्रचित्त हो विशुद्ध मनोवृत्तिपूर्वक तीन सौ चौबीस उच्छ्वासमे एक सौ आठ बार पचनमस्कारका उच्चारण करना अर्हन्तकी पर्युपासना है।" इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिक्रमण करते समय १०८ बार णमोकारका जापरूप पर्युपासनाका कार्य आवश्यक है। अत णमोकार मत्रकी रचना षट्खडागम सूत्रोके मगल रूपमे आचार्य पुष्पदन्त-द्वारा की गयी है, यह धारणा पूर्णतया भ्रान्त प्रमाणित होती है। यह द्वादशागवाणीका अग है।

यह णमोकार मत्र जैन सस्कृतिका हृदय है। श्रमणो तथा उपासकोके लिए प्राणसदृश है। धर्मध्यानके दूसरे भेद पदस्थ ध्यानमे मत्रोके जाप और ध्यानका कथन किया गया है। पचपरमेष्ठीके वाचक पैंतीस अक्षर रूप मत्रका ध्यान तथा जपका उल्लेख आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने द्रव्यसग्रह गाथा ४९ मे किया

है। उसकी टीकामें द्वादश सहस्र श्लोकप्रमाण पंचनमस्कार ग्रंथका उल्लेख किया गया है।[1]

निष्कर्ष—इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी प्राचीनताके विषयमें शास्त्राधार तथा गुरुपरंपराका सद्भाव होनेसे उसे द्वादशांग वाणीका अंग मानना चाहिए। इस चर्चासे यह ज्ञात होता है कि सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्रोंके प्रारम्भमें महाज्ञानी मुनीन्द्र पुष्पदन्त स्वामीने णमोकारमन्त्र रूप अनिबद्ध मंगलको निबद्ध किया था तथा वेदना, वर्गणा तथा महाबंध रूप तीन खण्डोंके लिए "णमो जिणाणं" आदि ४४ मन्त्रोंको भूतबलि स्वामीने मंगल सूत्र बनाये, जो कि णमोकार मन्त्रके समान ही द्वादशांग वाणीके ही साक्षात् अंग रूप हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी णमोकार मन्त्रको प्राचीनतम माना है। वास्तवमें यह हमारा अनादिमूलमन्त्र है तथा यथार्थमें यह अपराजित मन्त्रराज है। 'अनादिमूलमन्त्रोऽयम्' यह पाठ पूजाके समय पढ़ा जाता है, वह वास्तविकतासे संबंध रखता है।

यह भी स्मरणीय बात है कि श्वेताम्बर जैन साहित्यमें भी इस महामन्त्रको दिगम्बरोंके समान ही पूज्य और प्राचीन माना गया है।

जिस प्रकार गौतम गणधरके मंगलसूत्रोंको भूतबलि स्वामीने अपनी रचनाका मंगल बनाया, तदनुसार इस हिन्दी टीकामें भी वीरसेन स्वामीके मंगलपद्योंको हमने विघ्न विनाश निमित्त अपने मंगलरूपमें ग्रहण किया।

प्रतिलिपिके विषयमें

महाबन्धकी मूल प्रति ताडपत्रपर कन्नड लिपिमें है। भाषा प्राकृत है। प्राचीन प्रति होनेके कारण उसकी लिपि भी पुरातन कन्नड है। महाबन्धग्रन्थ २१९ ताडपत्रोंमें है। इसके आरम्भके २६ ताडपत्रोंका महाबन्धसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसमें सत्कर्मपंजिका है, जो षट्खण्डागमके अन्य विषय स्थलोंपर प्रकाश डालती है। महाबन्धका प्रारम्भिक ताडपत्र अनुपलब्ध है। सम्पूर्णग्रन्थके १४ पत्र नष्ट हो चुके हैं। इससे लगभग तीन-चार सहस्र श्लोक प्रमाण शास्त्र तो सदाके लिए हमारे दुर्भाग्यसे चला गया। कहीं-कहीं पत्र इतस्तत त्रुटित भी है। इसके कारण अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका अवबोध नहीं हो सकता, तथा किसी विषयका सहसा रसभंग हो जाता है, कारण प्रसंग-परम्पराका अभाव हो गया है। ऐसे अवसरपर हृदयमें अवर्णनीय वेदना होती है, कि हमारी असावधानीके कारण उस द्वादशांग वाणीकी महानिधिका अंश लुप्त हो गया, जो जगत्के कल्याण निमित्त धरसेन स्वामीने भूतबलि मुनीन्द्रके द्वारा बड़ी कठिनतासे नष्ट होनेसे बचाया था। आज उस लुप्त अंशकी पूर्तिकी कथा ही दूर, उसकी पंक्तियोंकी पूर्ति करना भी असम्भव है, कारण भूतबलि स्वामी-सदृश क्षयोपशम किसे प्राप्त है?

आचार्य शांतिसागर महाराजकी श्रेष्ठ श्रुतसेवा—इस सम्बन्धमें यह कथन उल्लेखनीय है कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराजने सन् १९४३ के दशलक्षण पर्वके समय स्वर्गीय ब्रह्मचारी फतेचन्द्रजी परवारभूषणके द्वारा एक पत्र भिजवाया था। उसमें यह लिखा था, कि "१०८ पूज्य आचार्य महाराज महाबंधके सूत्रोंकी प्रतिलिपि चाहते हैं, अतः उसको लिखकर शीघ्र भिजवावें।" उस समय हमने आचार्य महाराजको समाचार भेजा था, कि "महाबंध भूतबलि स्वामी रचित सूत्ररूप ही है। उसपर कोई टीका नहीं है। चालीस हजार प्रमाण ग्रंथकी प्रतिलिपिके लिए लेखक भिजवाना आवश्यक होगा। दुर्भाग्यसे ग्रंथके १४ ताडपत्र नष्ट हो जानेसे तीन-चार हजार श्लोक सदाके लिए विलुप्त हो गये।"

हमारे पत्रको प्राप्त कर प्रवचनभक्ति-भावना भूषित आचार्य महाराजके हृदयमें अपार चिन्ता उत्पन्न हो गयी। उन्होंने कहा था, "तुम्हारे पत्रको पाकर हमें ऐसी ही चिन्ता हो गयी थी, जैसी चिन्ता धरसेन स्वामीके

१ "द्वादश सहस्र-प्रमित-पंचनमस्कारग्रन्थ कथितक्रमेण लघुसिद्ध-चक्र, बृहत्सिद्धचक्रमित्यादिदेवार्चन-विधान भेदाभेद रत्नत्रयाराधक-गुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम् ॥" २०४ बृहत् द्रव्यसंग्रह।

मनमें शास्त्रके उद्धार हेतु हुई थी। रात्रिको नींद नहीं आयी। हमने सोचा तीन, चार हजार श्लोक तो नष्ट हो चुके। यदि शीघ्रतासे ग्रंथोंकी रक्षाका कार्य नहीं किया गया, तो और भी अपार क्षति हो जायेगी। इससे हमने कुथलगिरिमें संघपति गेंदनमल, भट्टारक जिनसेन (नांदणी मठ), चन्दूलाल सराफ, बारामती आदिके समक्ष कहा था कि हमारी इच्छा है कि धवल, महाधवल और जयधवल, इन आगम-ग्रन्थोंको ताम्रपत्रमें खुदवाकर उनकी रक्षा की जाये, जिससे वे चिरकाल तक सुरक्षित रह सकें। उस समय संघपति सेठ गेंदनमलने कहा कि वे इस कामके लिए सारा खर्चा देनेको तैयार हैं, किन्तु हमने कहा कि यह काम एकका नहीं है। समाजके द्वारा यह कार्य होना चाहिए। लोगोंने रात्रिके समय बैठक करके इस कार्यके लिए अर्थकी व्यवस्था की। इस कार्यके लिए जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी स्थापना की गयी। 'महाराजने हमसे कई बार कहा था कि इन सिद्धान्त ग्रन्थोंको ताम्रपत्रमें उत्कीर्ण किये जानेमें मुख्य कारण तुम हो। तुम्हारे पत्रके कारण ही हमारा ध्यान ताम्रपत्रमें ग्रन्थको उत्कीर्ण करानेको गया था।" उक्त संस्थाके मंत्री श्री बालचंद्र देवचंद शहा बी० ए० सोलापुरने महत्त्वपूर्ण सेवा की।

उन जगद्वन्द्य, बालब्रह्मचारी, श्रमणशिरोमणि आचार्य महाराजकी प्रेरणासे एक लाख सत्तर हजार श्लोकके लगभग सिद्धान्त शास्त्र ताम्रपत्रमें उत्कीर्ण हो गये तथा उनकी पाँच सौ प्रतियाँ भी कागजमें मूल रूपमें मुद्रित हो गयीं। उन प्रभावक मनस्वी गुरुदेवके प्रभावसे जैनधर्म तथा रत्नत्रयकी ज्योति बहुत दीप्तिमान् हुई थी, किन्तु उनके कार्योंमें सिद्धान्त शास्त्र-संरक्षण तथा उसका प्रचार कार्य सर्वोपरि गिना जायेगा। उन्हीं साधुराजकी इच्छानुसार संपूर्ण मूल रूप, महाबंधके संशोधन, संपादनका कार्य करके ताम्रपत्रमें उत्कीर्ण करानेमें हमें भी अपनी नम्र आनरेरी सेवा अर्पण करनेका परम सौभाग्य मिला। हमने संपूर्ण महाबंध मुद्रित कराकर सन् १९५४ के दशलक्षण पर्वमें फलटणके जिनालयमें, आचार्य शान्तिसागर महाराजके कर-कमलोंमें सविनय समर्पण कर उनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त किया था। हमारे द्वारा एक वर्षमें ही संपूर्ण कार्यको संपन्न देखकर उन गुरुदेवको अपार आनन्द तथा संतोष हुआ था।[1]

महाबंधकी प्रतिलिपि—महाबंध आदि सिद्धान्त ग्रंथोंकी जो कन्नड लिपिमें ताडपत्रमें उत्कीर्ण प्रति मूडबिद्रीके सिद्धान्त मंदिरमें विद्यमान है, वह यथार्थमें मूल प्रति नहीं है। वह प्रति सात या आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है। उस प्रतिके आधारपर अन्य प्रतियाँ तैयार कराकर कुछ स्थानोंपर भेजी गयी हैं। हमने मूडबिद्री जाकर इन ग्रंथोंको देखा, कारण ताम्रपत्रकी प्रति तैयार करनेमें कोई त्रुटि न रह जाये, अतः मूडबिद्रीकी कापीका सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक था। महाबंधकी हमारी प्रतिमें पाठ कहीं-कहीं दूसरा था,

---

१ श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्थाकी रिपोर्टमें लिखा है, "आचार्य शांतिसागर महाराजने अनेक बार यह कहा था, कि इस जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्थाके कार्यपूर्तिके कारण दिवाकरजी हैं, क्योंकि इनके द्वारा जब पूज्यश्रीको महाधवल ग्रंथके चार, पाँच हजार श्लोकोंके नष्ट होनेकी सूचना प्रेषित की गयी, तब आचार्यश्रीके मनमें श्रुतरक्षणकी ऐसी ही तीव्र भावना उत्पन्न हुई जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामीको श्रुतरक्षणकी चिंता उत्पन्न हुई थी। श्री पं० सुमेरचंदजी दिवाकर शास्त्रीजीने महाधवलके संपादन, प्रकाशन आदिका कार्य बहुत धर्मप्रेमवश परिश्रमपूर्वक किया और उसके बदलेमें किसी भी प्रकारकी आर्थिक सहायता या भेंट स्वीकार नहीं की। फलटणमें उक्त पं० जीको आचार्यश्रीके समक्ष संवत् २०१० भाद्रपद बदी ५ को सम्मानित किया। आचार्यश्रीने पं० दिवाकरजीकी निःस्वार्थ सेवा और किसी प्रकारकी भेंट स्वीकार न करनेपर अत्यन्त हर्ष प्रदर्शित करते हुए पंडितजीको मंगलमय पवित्र आशीर्वाद प्रदान किया।" (पृष्ठ ६ तथा ७, संवत् २०१० से २०१६ का अहवाल, प्रकाशक बालचंद देवचंद शहा बी० ए० मंत्री तथा माणिकचंद मलूकचंद दोशी बी० ए० एल-एल बी, उपमंत्री, फलटण (महाराष्ट्र)।

ज्ञानपीठ काशीसे मुद्रित प्रतिमे भिन्न था। इससे मूडबिद्रीके ताडपत्रके शास्त्रका क्या पाठ है यह जानना आवश्यक तथा पुण्य कर्तव्य था। हम अपने साथमे सन् १९५३ मे छोटे भाई अभिनदन कुमार दिवाकर एम० ए० एल०-एल० बी० एडवोकेटको भी मूडबिद्री ले गय थे, क्योकि ग्रथका सम्यक्-परिशीलन बडे उत्तर-दायित्वका कार्य था। प० चद्रराजैय्या कन्नडी भाषाके विशेषज्ञसे ग्रथको हम बँचवाते थे। उस समय हमे ज्ञात हुआ था, कि ताडपत्रकी प्रतियाँ कही-कही अशुद्ध पाठयुक्त भी है। प० लोकनाथजी शास्त्री, प० नागराजजी शास्त्री तथा प० चद्रराजेन्द्रजीने पहले हमारे लिए देवनागरी लिपिमे प्रतिलिपि तैयार की थी। उसमे कुछ त्रुटियोको दखकर ताडपत्रकी प्रतिलिपिके साथ अपनी प्रतिलिपिका दोबारा सतुलनका कार्य प० चद्रराजेन्द्र शास्त्रीने बडे परिश्रमसे सपन्न किया था। फलत. महत्त्वपूर्ण भूलोको सुधारा गया।

महारानी मल्लिकादेवीका शास्त्रदान—मूडबिद्रीमें विद्यमान ताडपत्रीय प्रतिके विषयमें यह बात ज्ञातव्य है, कि वनितारत्न महारानी मल्लिकादेवीने अपने पचमी व्रतके उद्यापनमे उक्त प्रतिलिपि तैयार कराकर यतिपति मुनिराज श्री माघनदि महाराजको अर्पण की थी। अत. भूतबलि स्वामीके द्वारा लिखित महाबधकी मूल प्रति मूडबिद्रीमे है ऐसी कल्पना अयथार्थ है। प्रथम प्रतिके जीर्ण होकर नष्ट होनेके पूर्व दूसरी प्रति श्रुतभक्त व्यक्तियो-द्वारा तयार की गयी थी। ऐसा ही क्रम अन्य ग्रथोके विषयमे रहा है। अत ग्रथोके पाठोमे सशोधन आदि काय करते समय जो यह सोचा जाता है कि यह परिवर्तन भूतबलि, पुष्पदत रचित मूल सूत्रोके विषयमे किया गया है, यथार्थसे यह बात नहीं है। वास्तवमे बात यह है कि मूडबिद्रीकी प्रतियाँ भी प्रतिलिपियाँ ही है। इतने बडे ग्रथोको ताडपत्रमे उत्कीर्ण करनेके अनेक वर्षके परिश्रमसाध्य कार्यमे प्रमाद, क्षयोपशमकी मन्दता अथवा शारीरिक परिस्थिति आदि अनेक कारणोमे कही कुछ अयथाथ लिखा जाना असभव नही है। पापभीरु आगमभक्त श्रुतसेवी विद्वान पूर्वापर सबध, परपरा आदिके प्रकाशमे कार्य किया करते हैं।

मूड़बिद्रीकी प्रति—पूर्ण महाबध २१९ ताडपत्रोमे अकित है, उसमे २७ पत्र पजिकाके है, जिसका महाबधसे कोई सबध नही है। ग्रथके १४ ताडपत्र नष्ट हो गये, इस प्रकार महाबधकी ताडपत्रीय प्रति १७८ पत्रोमे विद्यमान है।

महाबधमे प्रकृतिबधका कथन ताडपत्र ५० पर्यन्त है। महाबधके इस प्रथम खण्डमे २२ ताडपत्रोका मूल तथा अनुवाद छापा जा रहा है। स्थितिबधका वर्णन ताडपत्र ११३ पर्यन्त है, अनुभागबधका वर्णन एक सौ तेरह ताडपत्र तक है तथा प्रदेशबध दो सौ उन्नीस ताडपत्र पर्यन्त है। मूडबिद्रीके पडित लोकनाथजी शास्त्रीके नेतृत्वमे हमने देवनागरी लिपिमे प्रतिलिपि तैयार करायी थी। उन्होने हमे लिखा था, कि ताडपत्रकी प्रति लगभग सात सौ या आठ सौ वर्ष प्राचीन होगी। महाबधकी ताडपत्रकी राशिमे चार-पाँच त्रुटित ताड़पत्र भी अलग हैं, जो किसी-किसी प्रकरणके त्रुटित अशके पूरक प्रतीत होते है।

महाबध शास्त्र द्वादशागवाणीसे साक्षात् सबध रखता है। इस ग्रथराजपर कोई भी टीका उपलब्ध नही होती है। कहते है तुम्बुलुर नामक आचार्यने महाबधपर सात हजार श्लोक प्रमाण टीका रची थी, किन्तु उसकी अबतक उपलब्धि नही हुई है। महाबधके सूत्र गद्यरूप है। इसके प्रारम्भमे सोरह गाथाएँ आयी है। स्थितिबधाधिकारमे तीन गाथाएँ और पायी जाती है।

महाबधमे भिन्न परपराका सकेत—यह चालीस हजार श्लोकप्रमाण महाबध शास्त्र भूतबलि स्वामीकी अनुपम रचना है। इस ग्रथमें आचार्य भूतबलि स्वामीने कही-कही भिन्न गुरुपरपराका द्योतक उल्लेख भी किया है। वे काल प्ररूपणामे (ताम्रपत्र पृ० १२, १३) तेजोलेश्याकी अपेक्षा प्ररूपण करते है, "थीणगिद्धितिग अणुताणुब० ४ एय०। उक्क० वेसागरोव० सादिरे०। णवरि केसि च जह० एगस०।" पक्षलेश्याका कथन करते हुए आचार्य लिखते हैं, "थीणगिद्धि० अणताणु० ४ एगस (स०)। उक्क० अट्ठारस० सादि०। णवरि केसि च एगस०।" यहाँ 'केसि च' शब्द-द्वारा अन्य पक्षका प्रतिपादन किया है। यह अन्य पक्ष किनका है, इसका उल्लेख नही हुआ है। यह प्रकृतिबध खडका कथन है।

महाबंधके स्थितिबंध खंडमें (ताम्रपत्र प्रति ७७) अद्धच्छेद परूवणाका निरूपण करते हुए कहते हैं "सुहुमसं० पवणाणा० चदुदस० पंचतरा० उक्क० ट्ठिदि० मुहुत्तपुधत्त, अतोमु० आबाधा० णिसे० । सादावे० जसगि० उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० मासपुधत्त अतो० आबा० णिसे० । अथवा पवणा० चदुदस० पचतरा० उक्क० ट्ठिदि० दिवसपुधत्त अतो० आबा० णिसे० । सादा० जसगि० उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० वासपुधत्त, अतो० आबा० णिसे०" यहाँ 'अथवा'के द्वारा भिन्न परपराका कथन किया गया प्रतीत होता है ।

यतिवृषभ आचार्यका भिन्न मत

गोम्मटसारमे भूतबलि आचार्यके कथनसे भिन्न कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभका कथन मिलता है । यतिवृषभ आचार्य कहते हैं कि नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवमें उत्पन्न हुए जीवके प्रथम समयमे क्रमश क्रोध, माया, मान तथा लोभका उदय होता है अर्थात् नारकीके क्रोधका, तिर्यंचके मायाका, मनुष्यके मानका और देवके लोभका उदय प्रथम समयमे पाया जाता है, किन्तु भूतबलि आचार्यका कथन है कि इस विषयमे कोई नियम नही है । नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने दोनो मान्यताओंका प्रतिपादन इस गाथामे किया है—

"णारय-तिरिक्ख-णर-सुरगईसु उप्पण्ण-पढमकालम्हि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥" —जीवकाण्ड ।

इस कालमे इस क्षेत्रमे केवली, श्रुतकेवलीका असद्भाव रहनेसे गोम्मटसारमे दोनों मान्यताओंका कथन किया है । सस्कृत टीकाकारके शब्द महत्त्वपूर्ण है, "अस्मिन् भरते तीर्थंकर-श्रुतकेवल्याभावात्, आरातीयाचार्याणा सिद्धान्तशास्त्रकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवतामभावाच्च"—इस भरत क्षेत्रमे तीर्थंकर तथा केवलीका अभाव है और उक्त सिद्धान्तशास्त्रोके कर्ताओसे अधिक ज्ञानीके पश्चात्वर्ती आचार्योंका अभाव है । ऐसी स्थितिमे दोनों मतोका कथन करनेके सिवाय अन्य मार्ग नही है ।

गोम्मटसार कर्मकाडमें भी भूतबलि स्वामीका मत प्रतिपादनके साथ दूसरा मत भी प्रदर्शित किया है । उदय व्युच्छित्तिका वर्णन करते हुए भूतबलि आचार्यका मत इस गाथा-द्वारा व्यक्त किया है—

"पण-णव-इगि-सत्तरस-अड-पच च चउर छक्क छच्चेव ।
इगि-दुग-सोलस-तीस बारस उदये अजोगता ॥२६४॥"

मिथ्यात्व गुणस्थानमे ५, सासादनमे ९, मिश्रमे १, अविरतमे १७, देशविरतमे ८, प्रयत्तसयतमे ५, अप्रमत्तसयतमे ४, अपूर्वकरणमे ६, अनिवृत्तिकरणमे ६, सूक्ष्मसापरायमे १, उपशातकषायमे २, क्षीणकषायमें १६, सयोगीजिनमे ३० तथा अयोगकेवलीमे १२ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति कही है ।

अन्य आचार्य-परपराका कथन इस गाथामें किया है—

"दस-चउ-रिगि-सत्तरस अट्ठ य तह पच चेव चउरो य ।
छच्छक्क-एक्क-दुग-दुग-चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधि ॥२६३॥"

मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें दस, चार, एक, सत्रह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, दो, चौदह, उन्तीस तथा तेरह प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति कही है ।

महाबंधका प्रभाव

समस्त जैनवाङ्मयमें बंधके विषयमे महाबध श्रेष्ठ रचना है । इतना ही नही किन्तु विश्वके कर्म-सबंधी साहित्यमे यह श्रेष्ठ कृति हो अत्यन्त प्राचीन, पूज्य तथा प्रामाणिक ग्रथ होनेके कारण यह महाशास्त्र भूतबलि स्वामीके पश्चाद्वर्ती प्राय सभी महान् शास्त्रकारोका बधके विषयमे मार्गदर्शक रहा है । तत्त्वार्थ-वार्तिकालकारके देखनेसे ज्ञात होता है, कि अकलक स्वामीपर महाबधका प्रभाव पडा है । वे महाबधको

'आगम' शब्दसे सकीर्तित करके अपना आदर तथा श्रद्धाका भाव व्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं—

"आगमे शुष्क मनसा मन· परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति, इति मनसात्मनेत्यर्थः। तमात्मनावबुध्यात्मन परेषा च चिंता-जीवित-मरण-सुख-दु.ख-लाभालाभादीन् विजानाति। व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम्।"

—स० रा० पृ० ५८।

"मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि। जीविदमरणं लाभालाभं सुहदुक्खं णगरविणास देहविणास जणपदविणास अदिवुट्टि अणावुट्टि-सुवुट्टि-दुवुट्टि सुभिक्खं दुभिक्ख खेमा-खेम भयरोग उब्भम इब्भम सभम वत्तमाणाण जीवाण, णोअवत्तमणाण जीवाण जाणदि।"

—महाबंध, ताम्रपत्र प्रति, पृ० २

गोम्मटसारपर भी महाबधका प्रभाव स्पष्टतया दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थ, इस प्रकृतिबधाधिकारके बधसामित्तविचय अध्यायसे तुलना करे, तो पता चलेगा, कि यहाँ वर्णित कर्मप्रकृतियोके बधको, अबधको आदिका कथन गोम्मटसार कर्मकाण्डकी 'मिच्छत्तहुडसढा' आदि गाथा ९५ से १२० तक पद्यरूपमे निबद्ध है। महाबधमें बधके सादि अनादि ध्रुव अध्रुवरूप भेदोका वर्णन ३३-४३ पृष्ठपर किया गया है। वह गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १२२ से १२४ में निरूपित हुआ है।

महाबधके पृ० २१–२४ मे 'ओगाहणा जहण्णा' आदि सोलह गाथाएँ हैं, वे तनिक परिवर्तनके साथ गोम्मटसार जीवकाण्डकी ज्ञानमार्गणामे वर्णित है।

अन्य आगमपर महाबधका प्रभाव प्रकट ज्ञात होगा, जहाँ भी उनमे महाबधके प्रमेयसबधी चर्चा की गयी है, कारण बधविषयके विशदरूपसे प्रतिपादक महाबधसे प्राचीन ग्रथराजकी अनुपलब्धि है।

ग्रंथकी उपयोगिता

भौतिक उपयोगितावादी महाबधको देखकर आनन्दामृत पान नही कर सकेगा, कारण उसकी दृष्टिमे बाह्य पदार्थोंकी उपलब्धि ही आत्मोपलब्धि है। अनेक व्यक्तियोको यह धारणा रही है कि इन सिद्धान्तग्रथोमें अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व विद्याका भडार है, जिसके बलसे लोहा सोना रूपमे परिणत किया जा सकता है, आकाशमें विमान उडाये जा सकते है आदि विविध वैज्ञानिक चमत्कारोका आकर होनेकी मधुर कल्पनाके कारण लोगोको इन शास्त्रोके प्रति अत्यधिक ममता रही, किन्तु प्रत्यक्ष परिचयके द्वारा जब यह ज्ञात होता है, कि महाबन्धमें केवल प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशरूप बधचतुष्टयका सूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन है, तब वह सोचता है, इमसे हमे करना क्या है? अपना काम करो, ऐसी रचनाओमें अपने बहुमूल्य समयका व्यय क्यो किया जाये? आपातत यह दृष्टि प्रिय तथा आकर्षक मालूम पडती है, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्तिको यह विचार अविद्यान्धकारपूर्ण प्रतीत होता है। लौकिक अर्थभक्त, अनर्थकी जननी तथा आत्मनिधिका लोप करनेवाली सामग्रीको सर्वस्व मानता है। वह इन ग्रथोमें भौतिक विज्ञानकी सामग्री न पा निराश होता है, किन्तु ज्ञानवान् तथा आत्मनिधिके वैभवको समझनेवाला सत्पुरुष यह अनुभव करता है, कि वास्तविक वैज्ञानिक चमत्कारपूर्ण सामग्रीसे यह महाशास्त्र आपूर्ण है। आत्मा अपने प्रयत्नसे कर्मोंके जालमे फँसता है। जो ज्ञान नामक सामग्री बधनको ओर पुष्ट करती है, वह तो महान् अविद्या है। श्रेष्ठ कला, विद्या, विज्ञान या चमत्कार तो इसमे है कि यह आत्मा कर्मोंकी राशिको पृथक् करके अपने अनत तथा अमर्यादित विभूतियोसे अलंकृत 'आत्मत्व' को अभिव्यक्त करे। भगवान् वृषभदेवने आसमुद्रान्त विशाल साम्राज्यको छोडकर

'आत्मवान्' की प्रतिष्ठा[1] प्राप्त की थी। अर्थशास्त्री रुपयोके हानि-लाभपर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्माके स्वरूपको ढकनेवाले आस्रवको हानि तथा संवर और निर्जराको अपना लाभ समझता है। वही सच्चा संपत्तिशाली है, जिसे आत्मत्वकी उपलब्धि है और वही चमत्कारपूर्ण शक्ति विशिष्ट है, जिसने कर्म-राशिको चूर्ण किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसारमें कितनी सुन्दर बात कही गयी है—

"जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिकै।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाड़ो भयो मूछ मोरिकै॥
आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिकै।
आस्रव पछाड्यो रणथम्भ तोड़ि डार्यो ताहि निरखि बनारसि नमत कर जोरिकै॥"

अभिमानी आस्रव सुभटको पछाड़कर विजय प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानीको महाबंधसदृश शास्त्र अपूर्व बल प्रदान करते है। कर्मोंका आत्माके साथ जो बंध है, वह इतना सुदृढ और सूक्ष्म है कि भयंकरसे भयंकर अस्त्र-शस्त्रादिके प्रहार होनेपर भी उसपर कुछ भी असर नही होता। आध्यात्मिक शक्तिके जागृत होते ही कर्मोंका सुदृढ बंधन ढीला होने लगता है। ऐसे ग्रंथ उस आत्मीक तेजको प्रवृद्ध करते हैं, जिसके द्वारा यह आत्मा कर्मबंधनके प्रपंचसे मुक्त होनेके मार्गमें लग जाता है। कर्मोंके प्रपंचसे छूटनेका उपाय ही यथार्थमें सबसे बडा चमत्कार है। संसारके समस्त भौतिक चमत्कार और अन्वेषण एक ओर रखकर दूसरी ओर कर्मनाश करनेकी आत्मचातुरी अथवा चमत्कारको रख संतुलन किया जाये, तो वह आत्मबोधकी कला ही श्रेष्ठ निकलेगी, जो अनन्तभवसे बँधे हुए अनंत दु:खोके मूलकारण कर्मोंका पूर्णतया उन्मूलन कर आत्मामे अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य तथा अनंतसुखको अभिव्यक्त कर देती है। भौतिकताकी आराधनासे आत्मत्वका ह्रास ही हुआ करता है। इसका ही कारण है जो जीव अपने 'स्व' को भूलकर 'पर' का उपासक बनता है। अनादि कालसे मोह-महाविद्यालयमें अभ्यास करनेवाला यह जीव जहाँ भी जाता है और जिस किसी पदार्थके संपर्कमें आता है, वहाँ वह या तो आसक्ति धारण करता है या द्वेषभाव रखता है। वीतरागताका प्रकाश कभी भी इसकी जीवनवृत्तिको आलोकित न कर पाया।

महाबंधसदृश शास्त्रके परिशीलनसे आत्माको पता चलता है, कि किस-किस कर्मका मेरे साथ संबंध होता है, उसके स्वरूपादिका विशद बोध होनेसे राग, द्वेष तथा मोहका अभ्यास एवं अभ्यास मंद होने लगता है। आर्त और रौद्र नामक दुर्ध्यानोका अभाव होकर धर्मध्यानकी विमल चन्द्रिकाका प्रकाश तथा विकास होता है जो आनन्दामृतको प्रवाहित करती है और मोहके संतापका निवारण करती है। समुद्रके तलमें डुबकी लगानेवालेको बाह्यजगत्की शुभ, अशुभ बातोका पता नही चलता, इसी प्रकार कर्मराशिका विशद तथा विस्तृत विवेचन करनेवाले इस ग्रंथार्णवमे निमग्न होनेवाले मुमुक्षुके चित्तमें राग-द्वेषादि संतापकारी भाव नही उत्पन्न होते। वह बडी निराकुलता तथा विशिष्ट शान्तिका अनुभव करता है।

व्यायामादिका सम्यक् अभ्यासशील व्यक्ति व्याधियोके आक्रमणसे प्राय बचा रहता है, इसी प्रकार ऐसे पुण्यानुबंधी वाङ्मयके परिशीलन-द्वारा भव्य जीव उस आध्यात्मिक परिशुद्ध व्यायामको करता है, जिससे आत्मा बलिष्ठ होती है, और भौतिक चमक दमक चित्तमें चमत्कृति या विकृति उत्पन्न नहीं कर पाती तथा काम-क्रोध-मोहादि दोष आत्मशक्तिको न्यून नही कर पाते।

विपाक विचय धर्मध्यानका साधक—शास्त्रकारोने[2] धर्मध्यान और शुक्लध्यानको निर्वाणका कारण बताया है। धर्मध्यानके चार भेदोमे विपाकविचय नामका ध्यान कहा गया है। आचार्य अकलंक

---

१ "विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः॥"—बृहत्स्व० ३।

२ "परे मोक्षहेतू"—त० सू० ९, २९।

लिखते हैं—"कर्मफलानुभवनविवेकं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्र-काल-भव-भावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः।" —त० रा० ३५३। "कर्मोके फलानुभव विवेकके प्रति उपयोगका होना विपाकविचय है। ज्ञानावरणादिक कर्मोका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तसे जो फलानुभवन होता है, उस ओर चित्तवृत्तिको लगाना विपाकविचय है।" कर्मोके विपाक आदिके विषयमें अनुचिंतन करनेसे रागादिकी मन्दता होती है और कषायविजयका कार्य सरल हो जाता है। समयप्राभृतकारके शब्दोमे जीव विचारता है—

"जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२॥
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गट्ठाणया केई ॥५३॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥५४॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥५५॥"

इस जीवके न तो वर्ग है, न वर्गणा है, न स्पर्धक है, न अध्यवसायस्थान है, न अनुभागस्थान है। जीवके न योगस्थान है, न बंधस्थान है, न उदयस्थान है, न मार्गणास्थान है, न स्थितिबंधस्थान है, न संक्लेशस्थान है, न विशुद्धिस्थान है, न संयमलब्धिस्थान है। जीवके न जीवस्थान है, न गुणस्थान है, कारण ये सब पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं।

यह है परिशुद्ध परमार्थ दृष्टि। मुमुक्षु व्यवहारदृष्टिको भी दृष्टिगोचर रखता है। यदि एकान्त शुद्ध दृष्टिपर आश्रित हो जाये तो फिर वह मोक्षमार्गके विषयमें अकर्मण्य बनकर विषयादिमें प्रवृत्ति कर पाप-पंकमें अधिक निमग्न होता है। जिसने अपूर्ण अवस्थामें भी अपनेको साक्षात् पूर्ण मान लिया है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार निश्चयैकान्तका आश्रय ह्रासका हेतु बन जाता है। व्यवहारैकान्त-वाला तात्त्विक दृष्टिको सर्वथा भुला अपनेको 'दासोऽहं का पाठ पढनेवाला समझता है। 'सोऽहं'की विमल दृष्टि उसे नही प्राप्त होती है। 'सोऽहं'का भक्त यदि कल्याण चाहता है तो उसे 'दासोऽहं'के पूर्वमें 'उदासोऽहं' का पथ भी पकडना आवश्यक है, अन्यथा एकान्तवादकी महामारी उसका पिण्ड नही छोडती है। इस कारण समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

"निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥" —आ० मी० ॥१०८॥

विवेकी साधक व्यवहारदृष्टिसे विचारता है—

"ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥" —स० प्रा०।

ये वर्ण आदि गुणस्थान पर्यन्त भाव व्यवहार नयसे पाये जाते हैं। निश्चय नयकी अपेक्षा वे कोई नही है।

अल्पज्ञानी पुरुषोके लिए बंधके विषयमे परिज्ञान करानेके लिए सूत्रकार उमास्वामीने लिखा है—

"प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥" —त० सू० ८।३।

उस बंधके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशबंध ये चार भेद है। विस्तृतरुचि एवं सूक्ष्मबुद्धिधारी महाज्ञानियोके लिए यही तत्त्व महर्षि भूतबलिने चालीस हजार श्लोक प्रमाण महाबंधशास्त्र-द्वारा निबद्ध किया है। महाबंधके विमल और विपुल प्रकाशसे साधक अपनी आत्माके अंतस्तलमे छुपे हुए अज्ञान एवं

मोहान्धकारको दूर कर जीवनको महाधवल बनाता है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी आराधनाके द्वारा पूजक जिनेन्द्रका पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महाधवलके सम्यक् परिशीलन तथा स्वाध्यायसे जीवन भी महाधवल हो जाता है। अनुभागबंधकी प्रशस्तिमें ग्रंथको 'सत् पुण्याकर' बताया है। यथार्थमें यह सातिशय पुण्यकी उत्पत्तिका कारण है। प्रशस्त पुण्यका भंडार है। श्रेयोमार्गकी सिद्धिका निमित्त है। प्रवचनसारमें कुंदकुंद स्वामीने अर्हन्तकी पदवीको पुण्यका फल कहा है। 'पुण्यफला अरहंता' (गाथा १, ४५)। अमृतचंद्र सूरिने टीकामें पुण्यको 'कल्पवृक्ष' कहते हुए उसके पूर्ण परिपक्व फलको 'अर्हन्त' कहा है। 'अर्हन्त खलु सकल-सम्यक् परिपक्व-पुण्य-कल्पपादपफला एव' (प्रवचनसार टीका पृष्ठ ५८)

प्रशस्ति-परिचय

महाबंध ग्रंथमे ऐतिहासिक उल्लेखका दर्शन नहीं होता। प्रकृतिबंध-अधिकारके प्रारंभिक अंशके नष्ट हो जानेसे उसके ऐतिहासिक उल्लेखका परिज्ञान होना असंभव है। इस अधिकारके अंतमें प्रशस्तिरूपमें भी कोई उल्लेख नही है। स्थितिबंध, अनुभागबंध तथा प्रदेशबंध इन तीन अधिकारोके अंतमें ही प्रशस्ति पायी जाती है।

प्रशस्तिमें ग्रंथकर्ताका नाम तक नही आया है। स्थितिबंधके पद्य नं० ७ और प्रदेश-बंधके पद्य नं० ५ से, जो समान है, विदित होता है, कि सेनवधू वनितारत्न मल्लिका देवीने अपने पंचमी व्रतके उद्यापनमें शांत तथा यतिपति माघनंदि महाराजको इस ग्रंथकी प्रतिलिपि अर्पण की थी।

मल्लिका देवीको शीलनिधान, ललनारत्न, जिनपदकमलभ्रमर, सिद्धान्तशास्त्रमें उपयुक्त अंत करणवाली तथा अनेकगुणगण अलंकृत बताया है। उन्होने पुण्याकर महाबंध पुस्तक जिन माघनंदि मुनीश्वरको भेंट की थी, वे गुप्तित्रयभूषित, शल्यरहित, कामविजेता, सिद्धान्तसिन्धुकी वृद्धि करनेको चन्द्रमातुल्य तथा सिद्धांतशास्त्रके पारगत विद्वान् थे।

वे मेघचन्द्र व्रतपतिके चरणकमलके भ्रमर-सदृश थे।

मल्लिका देवी सारे जगत्मे अपने गुणोके कारण विख्यात थी। 'सत्कर्म-पंजिका'से ज्ञात होता है कि प्रशस्तिमे आगत 'सेन'का पूरा नाम शांतिषेण है। ये राजा थे। राजपत्नी मल्लिकादेवी-द्वारा व्रतोद्यापनके अवसरपर शास्त्रका दान इस बातको सूचित करता है, कि उस समय महिला जगत्के हृदयमें जिनवाणी माताके प्रति विशेष भक्ति थी[1]।

राजा शांतिषेण सद्गुण-भूषित थे। प्रशस्तिमे गुणभद्रसूरिका भी उल्लेख आया है। उनको कामविजेता, नि शल्य बताया है। उग्रादित्य नामके लेखकने महाबंधकी कापी लिखी थी, यह बात सत्कर्मपंजिकासे ज्ञात होती है। प्रशस्ति इस प्रकार है—

स्थितिबंधाधिकारके अंतकी प्रशस्ति

नमस्सिद्धेभ्य । नमो वीतरागाय शांतये
यो दुर्जयस्मरमदोत्कटकुम्भिकुम्भसंभेदनोत्सुकतरोग्र-मृगाधिराज ।
शल्यत्रयादपगतस्त्रयगौरवारि संजातवान्स भुवने गुणचन्द्रसूरि ॥१॥

---

१ कर्नाटकके गंगवंशकी महिलाओंने प्राचीन कालमें महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इस वंशकी महिला अत्तिमब्बेने अपने द्रव्यके द्वारा महाकवि पोन्न रचित शांतिनाथ पुराणकी एक हजार प्रतियाँ लिखवाकर दान की थी। ऐसी प्रसिद्धि है कि उस वीरांगनाने सोना चाँदी जवाहरात आदिकी बहुमूल्य सैकडो मूर्तियाँ मंदिरोमें विराजमान की थीं।

दुर्वारमारमदसिन्धुरसिन्धुरारि शल्यत्रयाधिकरिपुस्त्रयगुप्तियुक्त ।
सिद्धान्तवार्धिपरिवर्धन शीतरश्मि श्रीमाघनन्दिमुनिपोऽजनि भूतलेऽस्मिन् ।।२।।

स्रग्धरावृत्तम् (कन्नड़)

वरसम्यक्त्वद-देशसयमद सम्यग्बोधदत्यतभासुरहारत्रिकसौख्यहेतु-वेनिसिर्दा-दानदौदार्यदेल्तरदि
गो(दो)तने जन्मभूमि येनुत सानर्दिक्कर्तुभूभरमेल्ल पोगकुत्तमिर्पुदभिमानाधीनन सेननम् ।।३।।
सुजनते सत्यमोलपुदयेशील-गुणोन्नति पेंपु जैन-मार्गज गुणमेंब सद्गुणमिवत्यधिक तनगोप्पनूत्नघ-
र्मजनिवनेंदु कित्ते सुमतीधरे मेदिनि गोप्पे तोर्व्वेचित्तजसमरूपन नेगत्नद 'सेनन' नुद्धगुणप्रधानम् ।५।

कन्नड़ कंदपद्य

अनुपमगुणगणदतिवर्मन शीलनिदानमेसेव जिनपदसत्को-
कनद-शिलीमुखियेने मातनदिद 'मल्लिकब्बे ललनारत्नम्' ।।६।।
आवनिता रत्नदो, पेंपावग पोगललरिदु जिनपूजये नाना-
विधद-दानदमलिन-मात्रदोला 'मल्लिकब्बेय' पोल्ववरार
श्री पञ्चमिय नोतुद्यापनम माडि बरेसि राद्धातगना (राद्धातमना) ।
रूपवती 'सेनवधू' जितकोप श्रीमाघनदियतिपति-गित्तल् ।।७।।

अनुभागबंधाधिकारके अन्तकी प्रशस्ति

स्रग्धरावृत्तम्

जितचेतोजातनुर्वीश्वर-मकुटतटोद्घृष्टपादारविन्द-
द्वितय वाक्कामिनी पीवरकुचकलशालकृतोदारहार-
प्रतिम दुर्द्धोरससृत्यतुल-विपिनदावानल माघनदि-
व्रतिनाथ शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशोराजिता शातकातम् ।।१।।

कंदपद्य

भावभवविजयि-वरवाग्देवीमुखनूत्नरत्नदर्पनान-
न्नावनि-पालकनेनिसिद-नला विश्रुतकित्ते माघनदिमुनीन्द्रम् ।।२।।

महास्रग्धरावृत्तम्

वरराद्धातामृताभोनिधि-तरल-तरगोत्कर-क्षालितात -
करण श्रीमेघचद्रव्रतिपतिपदपकेरुहासक्तसत्स(त्व)
ट्वरण तीव्रप्रतापोद्धृत-विततबलोपेत-पुष्पेषुभृतस-
हरण सैद्धातिकाग्रेसरनेने नेगल्द माघनदिव्रतीन्द्रम् ।।३।।

कंदपद्य

महनीय गुणनिधान, सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधियेन नेगल्द
महि बिनुतकित्ते कित्तित [मही] महिमान मानिताभिमानं सेनम् ।।४।।
विनयद-शीलदोल गुणदोलादिय पेंपिन पुड्डिजमनो-
जनरतिरूपि नोल्पनिलिसिर्द मनोहरमप्पुदोदु-
रूपिनमने दानदा(सा)गरमेमिप्प बधूत्तमे यप्प संदसे-
नन सति मल्लिकब्बेगे धरित्रियोलार्दोरे सद्गुणगलि ।।५।।
सकलधरित्रीविनुत-प्रकटितयशे मल्लिकब्बे बरेयिसि सत्पु-
ण्याकर महाबंधद पुस्तकम श्रीमाघनंदि मुनिपति गित्तल् ।।६।।

प्रदेशबंधाधिकारके अन्तकी प्रशस्ति

कंदपद्य

श्रीमलधारिमुनीन्द्रपदामलसरसीरुहभृगनमंक्तिकित्ते ।
प्रेम मुनिजनकैरवासोमनेनन्माघनदियतिपतियेसेद ॥१॥
जितपपचेपु-प्रतापानलनमलतरोत्कृष्टचरित्रराराजिततेत भारती-भासुरकुचकलशालीढ-भाभारनूतना ।
यत् तारोदारहार समदमनियमालकृत माघनदि-
यतिनाथ शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशो-वल्लरी-चक्रवालम् ॥२॥
जिनवक्त्राभोज-नीनिर्गत हितनुतराद्धान्तकिजल्कसुस्वादन-
.... जपदनतभूपेन्द्रकोटीरसेना ।
तिनिकायभ्राजिताघ्रिद्वयनखिल जगद्भव्यनीलोत्पलाल्हादन-
तीराधीशने केवलमें भुवनदोल् माघनदिव्रतीन्द्रम् ॥३॥
वरराद्धान्तामृताभोनिधितरलतरगोत्करक्षालितातः-
करण श्रीमेघचद्रव्रनपतिपदपकेरुहासक्तषट् चरण ॥
.... रस ।
च्चारण सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगदमाघनदिव्रतीन्द्रम् ॥४॥
श्री पचमिय नोंतुद्यापनम माडि बरेसि राद्धातमना
रूपवती सेनवधू जितकोप श्रीमाघनदियतिपतिगित्तल् ॥५॥

कर्मबन्धमीमांसा

"जह भारवहो पुरिसो वहइ भर गेहिऊण कावडिय ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभर कायकावडिय[1] ॥"—गो० जी० २०१ ॥

महाबध शास्त्रका प्रमेय बध तत्त्व है। षट्खडागमके द्वितीय खड 'खुद्दाबध' (क्षुद्रबध) की अपेक्षा षष्ठखडमें बधके विषयमे विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होनेके कारण प्रतीत होता है उसे महाबध कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र बधके विषयमे यह व्याख्या करता है—

"सकषायत्वात् जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध ।" ८।२

'जीव कषायसहित होनेसे कर्मरूप परिणत होने योग्य पुद्गलोको—कार्माण वर्गणाओको ग्रहण करता है, उसे बध कहते है ।'

यहाँ बधको समझनेके पूर्व कर्मसिद्धान्तपर प्रकाश डालना उचित जँचता है कारण, बधके विवेचनकी आधारभूमि कर्मतत्त्वको हृदयगम करना परमावश्यक है। कर्मकी अवस्था-विशेषका ही नाम बध है।

कर्मविषयक मान्यताएँ

जैन आगममें कर्मसाहित्यका अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ कर्मके विषयमे सर्वांगीण, सुव्यवस्थित

१ जैसे कोई बोझा ढोनेवाला पुरुष काँवड़को ग्रहण कर बोझा ढोता है, इसी प्रकार यह जीव शरीर-रूप काँवड़में कर्मभारको रखकर ढोता है।

एव वैज्ञानिक (Scientific) पद्धतिसे विवेचन किया गया है। अन्य धर्मो तथा दर्शनोने भी कर्मको महत्त्व प्रदान किया है। अज्ञ जगत्मे भी कर्मसिद्धान्तकी मान्यता पायी जाती है। 'जैसा करो, तैसा भरो' यह सूक्ति इसी सिद्धान्तकी ओर निर्देश करती है। अँगरेजी भाषामें 'As you sow, so you reap'—'जैसा बोओ, तैसा काटो'—कहावत प्रचलित है। तुलसीदासका कथन है—

"तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥"

कहते है एक बार गौतम बुद्ध भिक्षार्थ किसी सपन्न किसानके यहाँ गये। उस कृषकने कहा, "आप मेरे समान किसान बन जाइए। मेरे समान आपको धन-धान्यकी प्राप्ति होगी। ऐसे करनेसे भीख माँगनेका प्रसग नहीं प्राप्त होगा। बुद्धने कहा, "भाई! मै भी तो किसान हूँ। मेरा खेत मेरा हृदय है, इसमे सत्कर्म-रूपी बीज बोकर मै विवेकरूपी हल चलाता हूँ। मै विकार-वासनारूपी घास आदिकी निराई करता हूँ और प्रेम तथा आनदकी अपार फसल काटता हूँ।"

दार्शनिक ग्रन्थोके परिशीलनसे ज्ञात होता है, कि कर्म शब्दका अनेक अर्थोंमे प्रयोग हुआ है। मीमासा-दर्शन पशुबलि आदि यज्ञ तथा अन्य क्रियाकाण्डको कर्म मानते है। वैयाकरण पाणिनि अपने 'कर्तुरीप्सित-तम कर्म' (१।४।७९) सूत्र-द्वारा कर्ताके लिए अत्यन्त इष्टको कर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शनने अपने सप्तपदार्थोंकी सूचीमें कर्मको भी स्थान प्रदान किया है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद कहते है,[1]—"जो एक द्रव्य हो—द्रव्यमात्रमे आश्रित हो, जिसमें कोई गुण न रहे तथा जो सयोग और विभागमे कारणान्तरकी अपेक्षा न करे, वह कर्म है। [2]उसके उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुचन, प्रसारण तथा गमन ये पाँच भेद कहे गये हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य क्रियाओको भी कर्म कहते है। साख्यदर्शनने सस्कार अर्थमे कर्मको ग्रहण किया है। ईश्वरकृष्णकी साख्यकारिकामें लिखा है[3]—'सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी पुरुष सस्कारवश—कर्मके वशसे शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त चक्र सस्कारके वशसे भ्रमण करता रहता है।'

वाचस्पति मिश्रका कथन है—"[4]क्लेशरूपी जलसे सिंचित बुद्धिरूपी भूमिमें कर्मरूपी बीज अकुरोको उत्पन्न करते है। तत्त्वज्ञानरूपी ग्रीष्मकालके द्वारा जिसका सपूर्ण क्लेशरूप जल सूख चुका है, उस शुष्क भूमिमें कर्मबीजोका अकुर कैसे उत्पन्न होगा ?"

गीतामे[5] कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है। [6]कहा है—"अकर्मण्य रहनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है। [7]सन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी हैं, किन्तु कर्मसन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्पद है।"

---

१ एकद्रव्यमगुण सयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्।" १।७।
—समन्वय वैशेषिक दर्शन ४।३५।

२ "उत्क्षेपण ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चन तथा। प्रसारण च गमन कर्माण्येतानि पञ्च च॥"
—सि० मुक्तावली ६।

३ "सम्यक्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ। तिष्ठति सस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद्धृतशरीर॥"
—सां० त० कौ० ६७।

४ "क्लेशसलिलावसिक्ताया हि बुद्धिभूमौ कर्मबीजान्यङ्कुर प्रसुवते। तत्त्वज्ञाननिदाघनिपीतसकल-क्लेशसलिलायामूषराया कुत कर्मबीजानामङ्कुरप्रसव ?" —सां० त० कौ०, पृ० ३१५।

५ "योग कर्मसु कौशलम्।"

६ "कर्मज्यायो ह्यकर्मण।" —गी० ३।८।

७ "सन्यास कर्मयोगश्च नि श्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥"
—गी० ५।२।

महाभारत शान्तिपर्वमें लिखा है—

"कर्मणा बध्यते जन्तु, विद्यया तु प्रमुच्यते।" (२४०, ७)

—यह प्राणी कर्मसे बँधता है, और विद्याके द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पतञ्जलि योगसूत्रमें कहते हैं—"[1]क्लेशका मूल कर्माशय—कर्मकी वासना है। वह इस जन्ममें या जन्मान्तरमें अनुभवमें आती है। अविद्यादिरूप मूलके सद्भावमें जाति, आयु तथा भोगरूप कर्मोंका विपाक होता है। वे आनन्द तथा सताप प्रदान करते है, क्योकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।" योगीके अशुक्ल तथा अकृष्ण कर्म होते हैं। ससारी जीवोंके शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्ल-कृष्ण कर्म होते हैं।

न्यायमजरीमे लिखा है—"[2]जो देव, मनुष्य तथा तिर्यचोमें शरीरोत्पत्ति देखी जाती है, जो प्रत्येक पदार्थके प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्माके साथ मनका ससर्ग होता है, वह सब प्रवृत्तिके परिणामका वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक है, अत क्षणिक हैं, फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म अधर्म पदवाच्य आत्म-सस्कार कर्मके फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।"

अशोकके शिलालेख न० ८मे लिखा है—"इस प्रकार देवताओका प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मोंसे उत्पन्न हुए सुखका उपभोग करता है।[3]

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सम्राट्से जो प्रश्नोत्तर किये थे, उनसे कर्मोंके विषयमें बौद्ध दृष्टिका अवबोध होता है[4]—

राजा बोला—भन्ते! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरहके नही होते? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई बडे सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बडे प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान् क्यो होते है?

स्थविर बोले—महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक-सी नही होती? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कडवी, कोई कषायली और कोई मधुर क्यो होती है?

भन्ते! मै समझता हूँ कि बीजोकी भिन्नताके कारण ही वनस्पतियोमें भिन्नता है।

---

१ "क्लेशमूल कर्माशय दृष्टादृष्टजन्यवेदनीय। सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा। ते ह्लादपरितापफला पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।" –यो० सू० २।१२–१४। "कर्माशुक्लकृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" –यो० द० कवल्यपाद० ७।

२ "यो ह्यय देव-मनुष्य तिर्यग्भूमिषु शरीरसर्ग, यश्च प्रतिविषय बुद्धिसर्ग, यश्चात्मना सह मनसा ससर्ग स सर्व प्रवृत्तेरेव परिणामविभव। प्रवृत्तेश्च सर्वस्याः क्रियात्वात् क्षणिकत्वेऽपि तदुपहितो धर्माधर्मशब्दवाच्य आत्मसस्कार कर्मफलोपभोगपर्यन्तस्थितिरस्त्येव।" –न्या० म०, पृ० ७०।

३ बुद्ध और बुद्धधर्म, पृ० २५६।

४ "राजा आह–भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सब्बे समका, अञ्ञे अप्पायुका, अञ्ञे दीघायुका, अञ्ञे बह्वाबाधा, अञ्ञे अप्पाबाधा, अञ्ञे दुब्बण्णा, अञ्ञे वण्णवन्तो, अञ्ञे अप्पेसक्खा, अञ्ञे महेसक्खा, अञ्ञे अप्पभोगा, अञ्ञे महाभोगा, अञ्ञे नीचकुलीना, अञ्ञे महाकुलीना, अञ्ञे दुप्पञ्ञा, अञ्ञे पञ्ञावन्तीति।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं है। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊँचे-नीचे हुए हैं।

भन्ते—"आपने ठीक कहा।"

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह ज्ञापित करेगी कि कर्मसिद्धांतकी किसी-न-किसी रूपमे दार्शनिक जगत्में अवस्थिति अवश्य है। जैनवाङ्मयमे कर्मसिद्धांतपर बड़े-बडे ग्रंथ बने हैं। उनसे विदित होता है, कि जैनसिद्धांतमें कर्मका सुव्यवस्थित, शृंखलाबद्ध तथा विज्ञान दृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

जैनदर्शनमे कर्म

जैनदृष्टिसे कर्मपर विचार करनेके पूर्व यदि हम इस विश्वका विश्लेषण करें, तो हमे सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते है। पुद्गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पाँच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस

थेरो आह, किस्स पन, महाराज ! रुक्खा न सव्वे समका, अञ्ञे अविला, अञ्ञे लवणा, अञ्ञे तित्तका, अञ्ञे कटुका, अञ्ञे कसावा, अञ्ञे मधुराति।
मञ्ञामि भंते ! बीजाना नानाकरणेनाति।
एवमेव खो महाराज कम्मान नानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका०। भासित पेत महाराज ! भगवता कम्मस्स कामाणवसत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबन्धु, कम्मपरिसरणा, कम्म सत्ते विभजति यदिद हीनप्पणीततायोति। कल्लोसि भंते नागसेन,ति।"
—Pali Reader P 39 मिलिन्दपञ्ह in अगुत्तनिकाय मिलिन्दप्रश्न ८१

Thus spake king Milinda 'How comes it, reverend Sir, that men are not alike ? some live long and some are short lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful and some with no power, some rich, some poor, some born of noble stock, some meanly some wise born, and some foolish '

To whom Nagasena the Elder made answer

'How comes it that all plants are not alike ? Some have a sour taste and some are salt, some are acid, some acid, some bitter and some sweet '
'It must be, I take it, reverend sir, that they spring from various kinds of seed.'

'Even so, O Maharaja, it is beccause of differences of action that men are not alike for some live long, and some are short-lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful, and some without pōwer, some rich, some poor, some born of noble some meanly born, stock, some wise and some foolish.'

—The Heart of Buddhism p 85

प्रकार छह द्रव्योमे जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिस्पदात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमें प्रदेश-सचलनरूप क्रिया नहीं पायी जाती। इनमें अगुरुलघु गुणके कारण षड्गुणीहानिवृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता।

इसी बातको पचाध्यायीकार दूसरे शब्दोमें प्रकट करते हैं—

"भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ।
तौ च शेषचतुष्क च षडेते भावसस्कृता.॥
तत्र क्रिया प्रदेशाना परिस्पन्दश्चलात्मकः।
भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्येकवस्तुनि॥" २।२५, २६।

—"जीव तथा पुद्गलमें भाववती तथा क्रियावती शक्ति पायी जाती है। शेष चार द्रव्योमें तथा पूर्वके दो द्रव्योमें भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोके सचलनरूप परिस्पदनको क्रिया कहते हैं। धारावाही एक वस्तुमें जो परिणमन है, वह भाव है।"

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमें ही प्रदेशोका हलन-चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल-विशेषका परस्परमे बधन होता है, कारण जीवमे बधका कारण वैभाविक शक्तिका सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका सश्लेष नही होता।[1]

जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोके कारण कार्माणवर्गणा[2] तथा आहार, तैजस, भाषा तथा मनरूप नोकर्मवर्गणाओको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुद्गलद्रव्यके तेईस प्रकारोमें कार्माण वर्गणा नामका एक भेद है।[3] अनतानत परमाणुओके प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावोके कारण जीवका कर्मोंके साथ सबध होता है। जीवका अहित धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्रव्यो-द्वारा नही होता है। पद्मनदि पर्चाविशतिकामें कहा है—

"धर्माधर्मनभांसि काल इति मे नैवाहित कुर्वते
चत्वारोऽपि सहायतामुपगतास्तिष्ठन्ति गत्यादिषु।
एकः पुद्गल एव सन्निधिगतो नोकर्म-कर्माकृति
वैरी बन्धकृदेष सप्रति मया भेदासिना खण्डित.॥२५॥" —आलोचनाधिकार

—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य मेरा अहित नहीं करते। ये चारो गमनादि कार्योंमें मेरी सहायता करते है। एक पुद्गल द्रव्य ही कर्म तथा नोकर्म रूप होकर मेरे समीप रहता है। अब मै उस बधके कारण रूप कर्म शत्रुका भेदविज्ञानरूपी तलवारके द्वारा विनाश करता हूं।

परिभाषा

परमात्मप्रकाशमें कर्मकी इस प्रकार परिभाषा की गयी है—

"विसयकसायहिं रगियह, जे अणुया लग्गंति।
जीवपएसह मोहियह, ते जिण कम्म भणंति॥६२॥"

---

१ "अयस्कान्तोपलाकृष्टसूचीवत्तद्द्वयो पृथक्। अस्ति शक्ति. विभावाख्या मिथो बधाधिकारिणी॥" —पचा० २।४२।

२ "देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्म।
पडिसमय सव्वगं तत्तायसपिण्डओव्व जल॥"—गो० क० ३।

३. "परमाणूहि अणतांहि वग्गणसण्णा दु होदि एक्का हु।"—गो० जी० २४४।

प्रवचनसार टीकामें अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—"क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म, तन्निमित्तप्राप्त-परिणाम पुद्गलोऽपि कर्म।" (पृ० १६५)

—"आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे क्रियाको कर्म कहते हैं। उसके निमित्तसे परिणमनको प्राप्त पुद्गल भी कर्म कहा जाता है।" इसका अभिप्राय यह है कि आत्मामे कपनरूप क्रिया होती है, इस क्रियाके निमित्तसे पुद्गलके विशिष्ट परमाणुओमे जो परिणमन होता है, उसे कर्म कहते हैं। यह व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टिसे की गयी है।

जीवके परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गलकी अवस्था, जिससे जीव परतन्त्र—सुख दु खका भोक्ता किया जाता है, कर्म कहलाती है।

आचार्य अकलकदेव अपने राजवार्तिक (पृ० २९४) मे लिखते है—"यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलाना मदिराभावेन परिणाम', तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थितानां योगकषाय-वशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्य ।" जैसे पात्रविशेषमे डाले गये अनेक रसवाले बीज, पुष्प तथा फलो-का मदिरारूपमें परिणमन होता है, उसी प्रकार योग तथा कषायके कारण आत्मामें स्थित पुद्गलोका कर्मरूप परिणाम होता है।

महर्षि कुदकुद समयसारमें लिखते हैं—

"जीवपरिणामहेदु कम्मत्त पुग्गला परिणमति ।
पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥"

—"जीवके परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गलका कर्मरूप परिणमन होता है। इसी प्रकार पौद्गलिक कर्मके निमित्तसे जीवका भी परिणमन होता है।"

केशवसिहने क्रियाकोषमे कहा है—

"सूरज सन्मुख दरपण धरै, रूई ताके आगे करै।
रवि दर्पण को तेज मिलाय, अगन उपज रूई बलि जाय ॥ ५४ ॥
नहि अगनी इकली रुइ माहि, दरपन मध्य कहूँ है नांहि।
दुहुयनि को सयोग मिलाय, उपजै अगनि न स्शै थाय ॥ ५५ ॥"

समयसारमें कहा है—

"ण वि कुव्वइ कम्मगुणो जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हपि ॥ ८१ ॥"

—"तात्त्विकके दृष्टिसे विचार किया जाये, तो जीव न तो कर्ममें गुण करता है और न कर्म ही जीवमें कोई गुण उत्पन्न करता है। जीव तथा पुद्गलका एक दूसरेके निमित्तसे विशिष्ट परिणमन हुआ करता है।"

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमे स्थित है। उसके परिणमनमें अन्य द्रव्य उपादान कारण नही बन सकता। जीव न पुद्गलका कारण है और न पुद्गल जीवका उपादान हो सकता है। इनमें उपादान-उपादेय-भावके स्थानमें निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। इससे जो सिद्धान्त स्थिर होता है, उसके विषयमें कुदकुद स्वामीका कथन है—

"एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाण दु कत्ता सव्वभावाण ॥ ८२ ॥"

—"इस कारण आत्मा अपने भावका कर्त्ता है। वह पुदगलकर्मकृत समस्त भावोका कर्त्ता नही है।"

इस विषयपर अमृतचन्द्रसूरि इन शब्दोमे प्रकाश डालते हैं—

"जीवकृतं परिणाम निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये ।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गला कर्मभावेन ॥" –पु० सि० १२।

—"जीवके रागादि परिणामोका निमित्त पा पुद्गलोका कर्मरूपमें परिणमन स्वयमेव हो जाता है।"

जैसे मेघके अवलंबनसे सूर्यकी किरणोका इन्द्रधनुषादिरूप परिणमन हो जाता है इसी प्रकार स्वयं अपने चैतन्यमय भावोसे परिणमनशील जीवके रागादिरूप परिणमनमें पौद्गलिक कर्म निमित्त पड़ा करता है।[1] यदि जीव और पुद्गलमें निमित्त भावके स्थानमें उपादान उपादेयत्व हो जाये, तो जीव द्रव्यका अभाव होगा, अथवा पुद्गल द्रव्य नहीं रहेगा। दोनोमें भिन्नत्वका अभाव होकर स्थापित होगा। भिन्न द्रव्योंमें उपादान-उपादेयता नही पायी जाती है।

प्रवचनसारमें लिखा है—

"कम्मत्तण-पाओग्गा खधा जीवस्स परिणइं पप्पा।
गच्छति कम्मभाव ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥"—२।७७।

—"[2]जीवकी रागादिरूप परिणतिविशेषको प्राप्त कर कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गलस्कन्ध कर्मभावको प्राप्त करते हैं। उनका कर्मत्वपरिणमन जीवके द्वारा नहीं किया गया है।"

"ते ते [3]कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणोवि जीवस्स।
संजायते देहा देहतरसकम पप्पा।" —२।७८।

—"कर्मत्वको प्राप्त पुद्गलकाय जोवके देहान्तररूप सक्रम परिवर्तनको पाकर पुन देहरूपको प्राप्त करते हैं।

"आदा कम्ममलिमसो परिणाम लहदि कम्मसजुत्त।
तत्तो सिलसदि कम्म तम्हा कम्म तु परिणामो।" २।२९।

—"कर्मके कारण मलिनताको प्राप्त आत्मा कर्म सयुक्त परिणामको प्राप्त करता है, इससे कर्मोंका सम्बन्ध होता है। अत परिणामको भी कर्म कहते है।"

इस विषयको स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—

'परमार्थ दृष्टिसे देखा जाये, तो जीव आत्मपरिणामरूप भाव कर्मका कर्ता है। पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्मका कर्ता नही है। द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है? पुद्गलका परिणाम स्वय पुद्गलरूप है। इससे परमार्थदृष्टिसे पुद्गलात्मक द्रव्यकर्मका कर्ता पुद्गलका परिणाम स्वय है। वह आत्मपरिणाम स्वरूप भावकर्मका कर्ता नही है। इससे जोव आत्मस्वरूपसे परिणमन करता है, पुद्गलरूपसे परिणमन नहीं करता है।'

कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गये है। आचार्य नेमिचद्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती कहते हैं—[4]'पुद्गलका पिंड द्रव्य कर्म है। उस पिंडस्थित शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म हैं।' अध्यात्म

---

१ "परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै॰ स्वयमपि स्वकैर्भावै।
भवति हि निमित्तमात्र पौद्गलिक कर्म तस्यापि ॥"—पु० सि० १३।

२ यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढ-जीवपरिणाममात्र बहिरगसाधनमाश्रित्य जीव परिणमयितारमन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिन पुद्गलस्कन्धा॰ स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति। ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डाना कर्मत्वकर्ता पुरुषोऽस्ति-पृ० २३१—प्रवचनसार टीका तत्त्व-प्रदीपिकावृत्तिः—अमृतचद्रसूरिकृत।

३ कर्मभाव ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायम्—जयसेनाचार्य।

४ "पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्म तु ॥"—गो० क० ६।

शास्त्रकी दृष्टिसे आत्माके प्रदेशोका सकप होना भावकर्म है । इस कथनके कारण पुद्गलोकी विशिष्ट अवस्थाकी उत्पत्तिको द्रव्यकर्म कहा है ।

बंधका स्वरूप

कर्मोंकी अवस्थाविशेषको बध कहते है । जीव और कर्मोंके संबन्ध होनेपर दोनोके गुणोमे विकृतिकी उत्पत्ति होना बध है । उदाहरणार्थ, हल्दी और चूनाके सम्बन्धसे जो विशेष लालिमाकी उत्पत्ति हुई है, वह वर्ण एक जात्यतर है । वह न हल्दीमे है और न चूनेमें ही पाया जाता है । इसी प्रकार राग-द्वेषादि विकारी भाव न शुद्ध आत्मामे उपलब्ध होते है और न जीवसे असम्बद्ध पुद्गलमे उनकी प्राप्ति होती है । बधकी अवस्थामें जिन दो वस्तुओका परस्परमे बध्य बधक भाव उत्पन्न होता है, उन दोनोके स्वगुणोमे विकृति उत्पन्न होती है । कहा भी है—

"हरदी ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद ।
दोऊ मिल एकहि भए, रह्यो न काहू भेद ॥"

पचाध्यायीमें कहा है—

"बन्ध· परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी ।
तस्या सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयो स्वगुणच्युति ॥२।१३०॥"

—'अन्यके गुणोके आकाररूप परिणमन होना बध है । इस परिणमनके उत्पन्न होनेपर अशुद्धता आती है । उस समय उन दोनो बध होनेवालोके स्वगुणोका विपरिणमन होता है ।'

जीवके रागादि भाव न शुद्ध जीवके है और न शुद्ध पुद्गलके है । 'बधोऽय द्वन्द्वज. स्मृत '—यह बध दो से उत्पन्न होता है । एक द्रव्यका बन्ध नही होता ।

इस प्रसगमें बृहद्द्रव्यसग्रह टीकाका यह कथन विशेष उद्बोधक है—आगममें बधके कारण मोह, राग और द्वेष कहे गये हैं । मोह शब्द दर्शनमोहनीय अर्थात् मिथ्यात्वका सूचक है । राग और द्वेष चारित्र मोह रूप है—'मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत् चारित्र मोहो रागद्वेषौ भण्येते ।"

प्रश्न—चारित्रमोह शब्दमे राग-द्वेप किस प्रकार कहे जाते हैं—

"चारित्रमोहो शब्देन रागद्वेषौ कथ भण्येते ? इति चेत् ।"

उत्तर—"कषायमध्ये क्रोध मानद्वय द्वेषाङ्गम्, मायालोभद्वय च रागाङ्गम्, नोकषायमध्ये तु स्त्री-पु नपुसकवेदत्रय हास्य-रतिद्वय च रागाङ्गम्, अरति-शोकद्वय भयजुगुप्साद्वय च द्वेषाङ्गमिति ज्ञातव्यम् ।"—कषायमें द्वेषके अग रूप क्रोध तथा मान अतर्भूत है । रागके अग माया तथा लोभ अतर्भूत है । नोकषायमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ये तीन तथा हास्य और रतिद्वय रागके अगरूप है । अरति, शोक तथा भय और जुगुप्सा युगल द्वेषके अग है ।

प्रश्न—राग द्वेष आदिक परिणाम क्या कर्मजनित है अथवा जीवसे उत्पन्न हुए है ?[1]

---

१. अत्राह शिष्य —रागद्वेषादय. किं कर्मजनिता , किं जीवजनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्री-पुरुषसयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधा-हरिद्रासयोगोत्पन्नवर्णविशेष इवोभयसयोगजनिता इति । पश्चान्नयविवक्षावशेन विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते । तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीवजनिता इति । स चाशुद्धनिश्चय शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अथ मतम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम् ? तत्रोत्तरम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्रीपुरुष-सयोगरहितपुत्रस्येव सुधाहरिद्रासयोगरहितरङ्ग विशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तर प्रयच्छाम इति । बृहद्द्रव्यसग्रह, गाथा ४८ की टीका, पृष्ठ २०१ २०२ ।

उत्तर—स्त्री और पुरुषके सयोगसे उत्पन्न हुए पुत्रके समान, चूना तथा हल्दीके सयोगसे उत्पन्न हुए वर्ण-विशेषके समान राग और द्वेष जीव और कर्मके सयोगसे उत्पन्न हुए है। नयकी विवक्षाके अनुसार विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे राग द्वेष कर्मजनित कहलाते हैं तथा अशुद्ध निश्चयनयसे जीवजनित कहलाते है। यह अशुद्ध निश्चयनय शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहारनय ही है।

प्रश्न—साक्षात् शुद्ध निश्चयनयसे ये राग-द्वेष किसके है ?

उत्तर—स्त्री और पुरुषके सयोग बिना पुत्रकी अनुत्पत्तिके समान तथा चूना और हल्दीके सयोग बिना रगविशेषकी अनुत्पत्तिके समान साक्षात् शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे राग-द्वेषादिकी उत्पत्ति ही नही होती, क्योकि शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमे जीव और पुद्गल दोनो ही शुद्ध है और इनके सयोगका अभाव है।

नेमिचन्द्र सिद्धातचक्रवर्ती कहते है—

"बज्झदि कम्म जेण दु चेदणभावेण भावबधो सो।
कम्मादपदेसाण अण्णोण्णपवेसण इदरो॥"—द्र० स० ३२।

जिस चैतन्य परिणतिसे कर्मोंका बध होता है, उसे भावबध कहते है। आत्मा और कर्मके प्रदेशोका परस्परमें प्रवेश हो जाना द्रव्यबध है।

सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करनेपर विदित होता है, कि जिस प्रकार कर्मोंको यह जीव बाँधता है—पराधीन करता है, उसी प्रकार कर्म भी इस जीवको पराधीन बनाते हैं। बधमे दोनोकी स्वतत्रताका परित्याग होता है। दोनो विवश किये जाते है।

पडितप्रवर आशाधरजी लिखते है—

"स बन्धो बध्यन्ते परिणतिविशेषेण विवशी-
क्रियन्ते कर्माणि प्रकृतिविदुषो येन यदि वा।
स तत्कर्माम्नातो नयति पुरुष यत् स्ववशता
प्रदेशाना यो वा स भवति मिथ. श्लेष उभयोः॥"
—अन० धर्मा० २।३८।

—'जिस परणतिविशेषसे कर्म अर्थात् कर्मत्व परिणत पुद्गल-द्रव्यकर्मविपाक-अनुभव करनेवाले जीवके द्वारा परतत्र बनाये जाते है—योगद्वारसे प्रविष्ट होकर पुण्य पापरूप परिणमन करके भोग्यरूपसे सम्बद्ध किये जाते है, वह बध है। अर्थात् आत्माके जिन भावोसे कर्मत्वपरिणत पुद्गल जीवके द्वारा परतत्र किया जाता है, वह बध है। अथवा, जो कर्म जीवको अपने अधीन करता है वह बध है, अथवा जीव और पुद्गलके प्रदेशोका परस्पर मिल जाना बध है।'

बधके विषयमे यह बात तो सर्वसाधारणके दृष्टिपथमे रहती है, कि जीव कर्मोंको बाँधता है, किन्तु कर्म भी जीवको बाँधते हैं, प्राय यह बात ध्यानमे नही लायी जाती। प० आशाधरजीने यही विषय बताया कि बधमे दोनोकी स्वतत्रताका परित्याग होता है। जीव तथा कर्म दोनो स्वतत्र नही रहते है। अर्थात् वे परतत्र हो जाते है।

यह बध आत्मा और कर्मकी परस्पर अनुकूलता होनेपर ही होता है। प्रतिकूलोका बध नही होता है। यही बात पंचाध्यायीमे कही गयी है—

'सानुकूलतया बन्धो न बन्धः प्रतिकूलयो॥"—२।१०२।

मुनीन्द्र कुदकुद कहते है—

"फासेहिं पुग्गलाण बंधो जीवस्स रागमादीहि।
अण्णोण्णस्सवगाहो पुग्गलजीवप्पगो भणिदो॥"—प्रव० सा० २।८५।

—'यथायोग्य स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्शसे पुद्गल कर्म-वर्गणाओका परस्परमें पिण्डरूप बध होता है। रागद्वेष मोहरूप परिणामोसे जीवका बध होता है। जीवके परिणामोका निमित्त पाकर जीवपुद्गलका बध होना जीव-पुद्गलका बंध है।'[1]

"सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति हि जति बज्झति ॥—२।८६।"

यह आत्मा असख्यातप्रदेशी है। उसके प्रदेशोमे आत्मप्रदेश-परिस्पदनरूप योगके अनुसार मन-वचन-कायवर्गणाओकी सहायतासे पुद्गलकर्म-वर्गणारूप पिड आकर प्रविष्ट होता है। वे कार्माण-वर्गणाएँ राग-द्वेष तथा मोहके अनुसार अपनी स्थिति प्रमाण ठहरकर क्षीण हो जाती है।

यथार्थ बात यह है, कि राग द्वेप, मोहके कारण आत्मामे एक उत्तेजनाविशेष उत्पन्न होती है, उससे वह कर्मोको आकर्षित कर बांधता है, जैसे गरम लोहपिड जलराशिको आत्मसात् किया करता है।

रागादिसे बन्ध होता है

समयसारमे सक्षेपमे बधतत्त्वको इस प्रकार समझाया है—

"रत्तो बधदि कम्म, मुचदि कम्मेहि रागरहिदप्पा।
एसो बधसमासो जीवाण जाण णिच्छयदो ॥१५०॥"

रागपरिणाम विशिष्ट जीव कर्मोका बन्ध करता है। रागरहित आत्मा कर्मोसे मुक्त होता है। जीवोके बधका सक्षेपमे यही तात्त्विक वर्णन है।

राग-द्वेषसे बध होता है, रागादिके अभाव होनेपर क्रियाओके होते हुए भी बन्ध नही होता, इसे सोदाहरण कुन्दकुन्द स्वामी इन शब्दोमे स्पष्ट करते है—

"जह णाम कोवि पुरिसो णेहमत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेहि सत्थेहि वायाम ॥२३७॥
छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताण करेइ दव्वाणमुवघाय ॥२३८॥
उवघाय कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहिं।
णिच्छयदो चितिज्जदु कि पच्चयगो दु रयबधो ॥२३९॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं ॥२४०॥
एव मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चिट्ठासु।
रायाई उवओगे कुव्वतो लिप्पइ रयेण ॥२४१॥" –स० सा०

—आचार्य महाराजके कथनका भाव यह है, कोई व्यक्ति अपने शरीरमें तेल लगाता है तथा धूलिपूर्ण स्थलमे जाकर शस्त्र-सचालनरूप व्यायाम करता है तथा ताड केला बाँस आदिके वृक्षोका छेदन-भेदन करता है। इन क्रियाओके करते हुए जो धूलि उड़कर उसके शरीरपर चिपकती है, उसका कारण व्यायाम क्रिया नहीं है। उसका वास्तविक कारण है शरीरमे तेलका लगाना। इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अनेक चेष्टाओको

---

१ यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणाम. स केवलपुद्गलबन्ध। यस्तु जीवस्यौपाधिक-मोह-राग-द्वेषपर्यायैरेकत्वपरिणाम स केवलजीवबन्ध। य पुनः जीवकर्म पुद्गलयोः परस्परनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतर परस्परमवगाह स तदुभयबन्ध"—प्र० सा० टीका, अमृतचन्द्रसूरि कृत २।८५॥

करता है। अपने उपभोग-परिणामोमें रागादि धारण करता है, इससे वह कर्मरूपी धूलिके द्वारा लिप्त होता है।

यहाँ यह शका उत्पन्न होती है, कि शरीरमें रज-लेपका कारण तेलके स्थानमें व्यायाम क्रियाको क्यो न माना जाये ? इसका समाधान स्वामी कुन्दकुन्द अधिक स्पष्टतापूर्वक करते हुए लिखते हैं—

"जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये सते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायाम ॥२४२॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताण करेइ दव्वाणमुवघाय ॥२४३॥
उवघाय कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु कि पच्चयगो ण रयबंधो ॥२४४॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण रयबधो।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ॥२४५॥
एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु।
अकरतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥२४६॥"

इसका भाव यह, कि वही पूर्वोक्त पुरुष अपने शरीरके तेलको पोछकर उसी प्रकार धूलिपूर्ण प्रदेशमे शस्त्र-द्वारा व्यायाम तथा वृक्ष-छेदनादि कार्य करता है। अब तेलका अभाव होनेसे उसके शरीरपर धूलि नही जमती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारके योगोमे विद्यमान रहता है, किन्तु उसके उपयोगमें रागादिका अभाव रहता है, इस कारण वह कर्म-रजसे लिप्त नही होता।[1]

शरीरपर धूलि जमनेका कारण व्यायाम नही है, कारण शस्त्रसचालनका अन्वय व्यतिरेक धूलि जमनेके साथ नही देखा जाता। शस्त्र सचालन दोनो अवस्थाओम होते हुए भी धूलि लेप तब होता है, जब शरीर तैललिप्त रहता है। शरीरपर तैलके अभावमे धूलिका लेप भी नही पाया जाता, इससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि धूलिके जमनेमें कारण तैलका लेप है। इसी प्रकार रागादिके होनेपर कर्मोंका लेप होता है। आसक्तिजनक रागादिके अभाववश कर्मोंका भी लेप नहीं होता। आशाधरजीने कहा है—

"भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया
हेय वैषयिकं सुख निजमुपादेय त्विति श्रद्दधत्।
चौरो मारयितुं धृतस्तलवरेणेवात्मनिन्दादिमान्
शर्माक्ष भजते रुजत्यपि पर नोत्तप्यते सोऽप्यघै ॥" —सा० ध० १।१३।

अप्रत्याख्यानावरणादि कषायके अधीन रहनेवाला अविरत सम्यक्त्वी सर्वज्ञदेवके वचनानुसार विषय सुखको त्याज्य और आत्मीक आनदको ग्राह्य श्रद्धान करता हुआ भी, जैसे कोट्टपालके द्वारा मारनेके लिए पकड़ा गया चोर आत्मनिन्दा गर्हा आदिमे प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार वह कषायोद्रेकवश इद्रियजन्य सुखका अनुभव करनेमे प्रवृत्त होता है, और प्राणियोको पीडा भी देता है किन्तु वह पापोसे पीडित नही होता।[2] अनासक्त भावसे विषय सेवन करनेके कारण वह बधकी तीव्र व्यथा नही उठाता। इसका भाव यह नहीं है

---

१ "तैल-म्रक्षणाभावे यथा रजोबन्धो न भवति, तथा वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागाद्यभावाद्बन्धो न भवति"—जयसेनाचार्यकी टीका पृ० ३३८, गाथा २४६ स० सा०। जैसे तेलकी चिकनाईके अभावमें धूलिका बध नहीं होता, उसी प्रकार वीतराग सम्यक्त्वी जीवके रागादिके अभावसे बध नहीं होता है, अर्थात् सरागी सम्यक्त्वीके रागके कारण बध होता है।

२ "नोत्तप्यते नोत्कृष्ट क्लिश्यते। कोऽसौ, सोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टि, कि पुन त्यक्तविषयसुख सर्वारम्भैकदेशेन वा हिंसादिभ्यो विरतश्चेत्यपि शब्दार्थ।" —स्वोपज्ञ टीका सा० ध० १।१३।

कि चतुर्थगुणस्थानवाला सर्वथा बंध विमुक्त हो जाता है। अनंतानुबंधीका उदय न होनेसे उस सम्बन्धसे होनेवाला बंध नहीं होता है। एकान्त नही है।

कर्मबंधपर परमार्थदृष्टि

जीव परमार्थदृष्टिसे अपने भावोका कर्ता है फिर उसे कर्मका कर्ता क्यो कहते है? इसके समाधानार्थ समयसारकार कहते है—

"जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणाम।
जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमत्तेण ॥१०५॥
जोधेहि कदे जुद्धे राएण कद त्ति जप्पदे लोगो।
तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण ॥"—समयसार १०६॥

'जीवके निमित्तको पाकर कर्मबन्धरूप परिणमन देखकर उपचारवश कहते है कि जीवने कर्मबन्ध किया। उदाहरणार्थ, यद्यपि योद्धा लोग ही युद्ध करते है, किन्तु लोग कहते है राजा युद्ध करता है, इसी प्रकार व्यवहारनयसे कहते है कि जीवने ज्ञानावरणादिका बंध किया है।'[1]

अमृतचन्द्र स्वामीकी इसी प्रसगपर बडी सुन्दर उक्ति है—

"जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिबर्हणाय सङ्कीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ॥३।१८।"

'यदि जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नही है, तो उसका कर्ता कौन है? ऐसी आशका होनेपर शीघ्र मोह निवारणार्थ कहते है, उसे सुन लो कि पौद्गलिक कर्मोका कर्ता पुद्गल ही है।'

आत्मा परभावोका कर्ता नही होगा, वह अपने निज भावका कर्ता है, यह बात समझाते हुए कहते है—

"आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् पर सदा।
आत्मैव ह्यात्मनो भावा परस्य पर एव ते ॥"—स० सार पृ० १४४।

'आत्मा सदा अपने भावोका कर्ता है, पर अर्थात् पुद्गल सदा पौद्गलिक भावोका कर्ता है। आत्माके भाव आत्मरूप ही हैं, इसी प्रकार पुद्गलके भाव भी पुद्गलरूप है।'

उपरोक्त सत्यको हृदयगम करनेवाले ज्ञानी जीवके विषयमे कुन्दकुन्द स्वामी कहते है—

"परमप्पाणमकुव्व अप्पाण पि य पर अकुव्वतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥"—स० सार ९३।

'ज्ञानी जीव परको आत्मरूप न मानता है और न आत्माको पर ही करता है, वह कर्मोका अकर्ता होता है।' जयसेनाचार्य अपनी टीकामे यह स्पष्ट करते है, "स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीवः कर्मणामकर्ता भवतीति"—निर्मल आत्मानुभूति स्वरूप भेदज्ञानी जीव कर्मोका अकर्ता होता है।

यहाँ यह गभीर बात समझाते है, कि जब आत्मा अपने भावके सिवाय परमार्थसे परभावोका कर्ता नहीं है, तब जीवमे कर्मोका कर्तृत्व एव भोक्तृत्व नहीं रहेगा।

---

१ अनादिबन्धपर्यायवशेन वीतरागस्वसंवेदनलक्षण-भेदज्ञानाभावाद् रागादिपरिणामस्निग्ध सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलद्रव्य कुम्भकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति करोति स्थितिबंध बध्नात्यनुभागबन्ध परिणमयति प्रदेशबन्ध तप्तायःपिण्डो जलवत् सर्वात्मप्रदेशैर्गृह्णाति चेत्यभिप्रायः ॥—जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति टीका।

नाटक समयसारमें कहा है—

"जो लौं ज्ञान को उद्योत तोलों नहिं बंध होत बरतै मिथ्यात्व तब नानाबंध होहि है।
ऐसो भेद सुन के लग्यो तू विषय भोगन सूं जोगनि सूं उद्यम की रीति तै बिछोहि है॥
सुनो भैया सत तू कहे मैं समकितवत यहू तो एकत परमेश्वर का द्रोही है।
विषै सु विमुख होहि अनुभव दशा आरोहि मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है॥३६॥"

जिस आत्माके हृदयमे सम्यक्ज्ञानकी निर्मल ज्योति प्रदीप्त होती है, उस आत्माका जीवन सहज पवित्रताके रससे शोभित होता है। वह विषय-सुखोंमें आसक्त होता है, ऐसा जिन्हे भ्रम है, उनके समाधान निमित्त कविवर बनारसीदासजी कहते है—

"ज्ञानकला जिसके घट जागी। ते जग माँहि सहज बैरागी॥
ज्ञानी मगन विषै सुख माँही। यह विपरीत संभवै नाही॥ ४०॥
ज्ञानशक्ति वैराग्यबल शिवसाधे समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखे दोऊ ताल॥ ४१॥"

अमृतचद्रस्वामीने कहा है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियत ज्ञानवैराग्य-शक्ति
स्व वस्तुत्व कलयितुमय स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्त्वत स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात्॥१३६॥"—स० कलश

सम्यक्त्वीके नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति होती है, क्योकि यह सम्यग्दृष्टि अपने वस्तुपना – यथार्थ स्वरूपका अभ्यास करनेको अपने स्वरूपका ग्रहण और परके त्यागकी विधि कर 'यह तो अपना स्वरूप है और यह पर द्रव्यका है', ऐसे दोनोका भेद परमार्थसे जानकर अपने स्वरूपमे ठहरता है और पर द्रव्यसे सब तरह रागका योग छोडता है।

आत्मा सर्वथा अकर्ता नही है

कोई लोग कर्मके मर्मको यथार्थ रूपसे समझकर आत्माको सर्वथा अकर्ता मानते हैं—और कहते हैं, कि जो कुछ भी परिणमन होता है, सबका कर्तृत्व कर्मपर है। जडकी क्रिया होती है। साख्यदर्शन भी पुरुष॰ को कमलपत्र सम मानकर कर्म-जलसे उसे पूर्णतया अलिप्त बताता है। वह प्रकृतिको ही सब कुछ कर्ता-धर्ता मानता है। इस प्रकारकी दृष्टिको महर्षि कुन्दकुन्द एकान्तवादी कहते है—

"कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहि॥ ३३२॥"

—'यह जीव कर्मके ही द्वारा अज्ञानी किया जाता है। उसके द्वारा ही वह ज्ञानी किया जाता है। कर्म ही जीवको सुलाता है कर्म ही उसे जगाता है।'

"कम्मेहि भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोय च।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुह जित्तिय किंचि॥ ३३४॥"

—'कर्मके कारण ही जीव ऊर्ध्व, मध्य तथा अधोलोकमे भ्रमण करता है। जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म है, वे भी कर्मके ही द्वारा किये जाते है। इस प्रकार कर्मकान्त माननेवालेके अनुसार कर्मको ही कर्ता, हर्ता, दाता आदि माना जाये, तो क्या आपत्ति है? इसपर कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

"जम्हा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति ज किंचि।
तम्हाउ सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा॥ ३३५॥"

'यतः कर्म ही सब कुछ करता है, देता है, हरण करता है, अत सर्व जीवोमें अकारकत्व आ गया।' पुन इस एकान्त मान्यतामें दोषोद्भावन करते है—

"पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्म च पुरिसमहिलसइ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसि दु सुई॥ ३३६॥
तम्हा ण कोवि जीवो अबमचारी उ अम्ह उवएसे।
जम्हा कम्म चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणिय॥ ३३७॥
जम्हा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति॥ ३३८॥
तम्हा ण कोवि जीवो बधायओ अत्थि अम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्म चेव हि कम्म घाएदि इदि भणिय॥ ३३९॥
एव सखुवएस जेउ परूविंति एरिस समणा।
तेसिं पयडी कुव्वई अप्पा य अकारया सव्वे॥ ३४०॥"

इस विषयमे आचार्य कहते है—'पुरुष नामक कर्मके उदयसे स्त्रीकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। स्त्री-कर्मके कारण पुरुषकी वाछा होती है। ऐसी बात स्वीकार करनेपर कोई भी अब्रह्मचारी नही होगा, कारण कर्म ही कर्मकी अभिलाषा करता है, यह कहा जायेगा।

कोई जीव दूसरेको मारता है या मारा जाता है, इसका कारण परघात, उपघात नामकी प्रकृतियाँ हैं। यह माननेपर कोई वध करनेवाला न होगा। कारण यह कथन किया जायेगा, कि कर्म ही कर्मका घात करनेवाला है। इस प्रकार जो साख्यसिद्धान्तके अनुसार मानते है, उनके यहाँ प्रकृति ही करती है और सर्व आत्मा अकारक हुए।

समन्वय पथ—इस जटिल समस्याको सुलझाते हुए अनेकान्त विद्याके मार्मिक आचार्य अमृतचन्द्र कहते है—

"माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुष सांख्या इवाप्याहेता.
कर्तार कलयन्तु त किल सदा भेदावबोधादध।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियत प्रत्यक्षमेव स्वय
पश्यन्तु च्युतकर्मभावमचलं ज्ञातारमेक परम्॥" —समयसारकलश २०५।

—'अर्हन्त भगवान्के भक्तोको यह उचित है कि वे साख्योके समान जीवको सर्वथा अकर्ता न माने, किन्तु उनको भेदविज्ञान होनेके पूर्व आत्माको सदा कर्ता स्वीकार करना चाहिए। जब भेदविज्ञानकी उत्पत्ति हो जाये, तब आत्माको कर्मभावरहित, अविनाशी, प्रवृद्ध ज्ञानका पुज, प्रत्यक्षरूप एक ज्ञातारूपमें दर्शन करो।'

आचार्य महाराजकी देशनाका भाव यह है कि जबतक भेदविज्ञान ज्योतिके प्रकाशसे आत्मा आलोकित नही हुई है, तबतक आत्माको रागादिरूप भाव कर्मोंका कर्ता मानो। भेदविज्ञानकी उपलब्धिके पश्चात् आत्माको ज्ञाता द्रष्टा मानो। बहिरात्मामें कर्म-कर्तृत्वका भाव मानना चाहिए। परिग्रह-रहित योगीरूप अन्तरात्माको अपने ज्ञान स्वभावका कर्ता जानना उचित है। आत्मा निर्विकल्प समाधिकी अवस्थामें अकर्ता कहा गया है। भेदज्ञान शब्द निर्विकल्प समाधिरूप अवस्थाका ज्ञापक है। जयसेनाचार्य समयसार टीकामें कहते हैं, "तत. स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति किं तर्हि रागादिविकल्परहित समाधि-लक्षण भेदज्ञानकाले कर्मणः कर्ता न भवति, शेष काले कर्तेति" (गाथा ३४४)—अत यह बात जाननी चाहिए कि आत्मा साख्यमतके समान अकर्ता नहीं है। वह रागादि विकल्परहित समाधिरूप भेदविज्ञानके कालमें कर्मोंका कर्ता नहीं है, शेषकालमें कर्ता होता है। यह विकल्परहित समाधि गृहस्थावस्थामें असम्भव

है। मुनिपदमें ही वह होती है। इसप्रकार दृष्टिभेदसे आत्मामे कर्तृत्व और अकर्तृत्वका समन्वय किया जाता है। अकर्तापनेका एकान्तपक्ष साख्यदर्शनकी मान्यता है। स्याद्वादशासनकी मान्यता एकान्तवाद रूप नहीं हो सकती है।

साख्यतत्त्वकौमुदीमें कहा है—

"तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
ससरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति ॥ ६२ ॥"

इससे कोई भी पुरुष न बँधता है, न मुक्त होता है, न परिभ्रमण करता है। अनेक आश्रयोको ग्रहण करनेवाली प्रकृतिका ही ससार होता है, बध होता है तथा मोक्ष होता है।

भेद ज्ञानका रहस्य—इस पद्यसे स्पष्ट हो जाता है कि जो आत्माकी निश्चयनयकी अपेक्षा प्रतिपादित शुद्धताको ही एकान्त रूपसे ग्रहण कर उसे सर्वथा कर्मबध रहित मानते है, वे यथार्थमें साख्यदर्शनवाले बन जाते हैं। सर्वज्ञ अरहन्त भगवान्की वाणी अनेकान्त तत्त्वको सत्यका स्वरूप बताती है। इस कारण जयसेनाचार्यने कहा है "तत. स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति। किं तर्हि? रागादिविकल्परहित-समाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेषकाले भवति" (समयसार गाथा ३४४–टीका)—अत यह बात निर्णीत है कि आत्मा एकान्तरूपसे साख्यमतके समान अकर्ता नही है। फिर आत्मा कैसी है? रागादि विकल्परहितसमाधिरूप भेदज्ञानके समय वह कर्मोका कर्ता नही है। शेष कालमे आत्मा कर्मोका कर्ता होता है। अर्थात् जब वह अभेद समाधिरूप नही होता है, तब उसके रागादिके कारण बध हुआ करता है। भेदज्ञानका अर्थ अविरत सम्यक्त्वीका ज्ञान समझनेसे यह भ्रम होता है कि अविरत सम्यक्त्वीके बध नहीं होता है। भेदविज्ञान निर्विकल्प समाधिका द्योतक है, जो मुनिपद धारण करनेके उपरान्त ही प्राप्त होती है। विकल्पजालपूर्ण गृहस्थावस्थामे उसकी सम्यक् कल्पना भी अशक्य है।

आत्मा कर्मस्वरूप नही होता

मुनीन्द्र कुन्दकुन्दका कथन है—

"जह सिप्पिओ उ कम्म कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण तम्मओ होइ ॥" –समयसार ३४९।

—जैसे शिल्पकार आभूषण आदिके निर्माण कार्यको करता है, किन्तु वह स्वय आभूषण स्वरूप नहीं होता, उसीप्रकार यह जीव कर्मोको बाँधता हुआ भी कर्मस्वरूप नही होता।

शिल्पकार सुनार आभूषण निर्माणमें निमित्त कारण है, अत वह अपने स्वरूपसे भी च्युत नहीं होता और निमित्त कारण भी बनता है। इसीप्रकार जीव भी अपने स्वरूपका नाश नही करता है और कर्मोके बन्धनमे निमित्त रूप भी रहा आता है। उपादान-उपादेय भावका यहाँ निषेध किया गया है, निमित्त-नैमित्तिक-भावकी अपेक्षा कर्ता, कर्म, भोक्ता, भोग्यपनेका व्यवहार उपयुक्त माना है। अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

"ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहार"।

—समयसार पृ० ४५५।

शंका—सच्चा नय तो निश्चय नय है। व्यवहार तो अभूतार्थ है, मिथ्या है, अत साख्यदर्शनकी तरह आत्माको सदा पुरुषके समान निर्लेप शुद्ध मानना चाहिए। प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें भय नही करना चाहिये।

समाधान—सम्यग्ज्ञानके अग होनेसे जितना सत्यपना निश्चय नयमें है, उतना ही समीचीनपना व्यवहार नयमे भी है। जो नय परस्परमें निरपेक्ष हो, अन्य नयको मिथ्या मानता है, वह स्वय मिथ्या-

रूपताको प्राप्त होता है। निश्चयका यह कथन यथार्थ है कि जीव शुद्ध है, किन्तु व्यवहारका कथन भी सम्यक् है कि जीवमें कथचित् कर्तृत्व आदि भाव भी पाये जाते है। इस सबधमें आचार्य पद्मनदिका 'पच-विंशतिका'के निश्चय पचाशत् अधिकारमे किया गया प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। वे कहते है :—

"व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो देशितस्तु शुद्धनय ।
शुद्धनयमाश्रिता ये प्राप्नुवन्ति यतय पद परमम् ॥९॥"

व्यवहार नय अभूतार्थ है तथा शुद्धनय भूतार्थ कहा है। जो मुनीश्वर शुद्धनयका आश्रय लेते है वे परम पदको प्राप्त करते है। यहाँ श्लोकमें आगत 'यतय' शब्द महत्त्वपूर्ण है। उससे गृहस्थकी व्यावृत्ति हो जाती है। आकुलताके जालमें फँसा हुआ परिग्रह पिशाचके द्वारा छला गया गृहस्थ शुद्ध दृष्टिका पात्र नही है। उसका कल्याण व्यवहार नय द्वारा प्रतिपादित पथका आश्रय ग्रहण करनेमे है। सविकल्प अवस्थावाले श्रमणका भी अवलबन व्यवहार नय रहा करता है। शुद्धोपयोगी निर्विकल्प समाधिवाला दिगम्बर मुनि अभेद दृष्टि रूप निश्चय नयका आश्रय लेता है। पद्मनदि आचार्य कहते है :—

"तत्त्व वागतिवर्ति व्यवहृतिमासाद्य जायते वाच्यम् ।
गुण पर्यायादि-विवृत्ते प्रसरति तच्चापि शतशाखम् ॥१०॥"

वास्तविक दृष्टिसे अथवा निश्चय नयकी अपेक्षा तत्त्वका स्वरूप वचनके अगोचर है किन्तु व्यवहार नयका आश्रय ले वह कथचित् वाणीका विषय हो जाता है। गुण, पर्याय आदिके भेदसे वह सैकडो भेद युक्त हो जाता है। वस्तुका विवेचन भेदग्राही व्यवहार नयके द्वारा ही सभव है। एकान्तवादी व्यवहार नयको तिरस्कार और निंदाका पात्र मानता है, किन्तु अनेकान्त तत्त्वज्ञानका सौदर्य समझनेवाला स्याद्वादी व्यवहार नयको भी आदरणीय स्वीकार करता है।

महत्त्वकी बात—पद्मनदि पचविशतिकाका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

"मुख्योपचार विवृति व्यवहारोपायतो यत सन्त ।
ज्ञात्वा श्रयन्ति शुद्ध तत्त्वमिति व्यवहृति. पूज्या ॥११॥"

मुनीश्वर व्यवहारनयकी सहायतासे मुख्य तथा उपचारके भेदको समझकर शुद्ध तत्त्वका आश्रय लेते हैं, इस कारण व्यवहार-नय पूज्य है। 'व्यवहृति पूज्या" शब्द महान् आध्यात्मिक मुनीश्वरके द्वारा कहे गये है।

अभेद रत्नत्रयरूप अद्वैत तत्त्वमें स्थित निश्चय नयवाला योगी परम पदवीको प्राप्त करता है। एकत्व वितर्क नामक शुक्लध्यानके द्वितीय भेदका आश्रय कर शुक्लध्यानी शुद्धोपयोगी मोहनीय कर्मको नष्ट करता है। वास्तवमे शुद्ध तत्त्व नयादिके विकल्पोसे अतीत है। उस अनुभवकी दशामे व्यवहारनय और निश्चयनय दोनो समान रूपसे अग्राह्य बन जाते है। पद्मनदि आचार्य कहते है —

"नय-निक्षेप-प्रमिति-प्रभृति-विकल्पोज्झित परं शान्तम् ।
शुद्धानुभूति-गोचरमहमेक धाम चिद्रूपम् ॥५४॥" निश्चयपचाशत् ।

मै नय, निक्षेप, प्रमाण आदि विकल्पोसे रहित, परमशान्त, शुद्धानुभूति गोचर चिद्रूप तेजस्वरूप हूँ।

जिनागमका रस पान करनेवालेको एकान्तवादके दलदलसे बचना चाहिए। तत्त्वज्ञान-तरगिणीका यह कथन हृदयग्राही है —

"व्यवहारेण विना केचिन्नष्टा. केवल निश्चयात् ।
निश्चयेन विना केचित् केवल-व्यवहारत ॥"

कोई लोग व्यवहारका लोप करके निश्चयके एकान्तसे विनाशको प्राप्त हुए और कोई निश्चय दृष्टिको भूलकर केवल व्यवहारका आश्रय ले विनष्ट हुए। अतएव समन्वयकी पद्धति अभिवदनीय है। अतः उक्त ग्रथकार कहते हैं —

"द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम् ।
यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं च स्याद्वादिभि ॥"

जैसे दोनो नेत्रोके विना सम्यक् प्रकारसे वस्तुका अवलोकन नहीं होता है, उसी प्रकार दोनो नयोंके बिना भी यथार्थरूपमें वस्तुका ग्रहण नहीं होता है, ऐसा भगवान्ने कहा है।

महान् भ्रम—लोग प्रायः लोकाचार तथा लौकिक व्यवहारको (formalities) व्यवहार नय सोचते है और निश्चयको सुदृढ विचार (determination) समझकर भ्रान्त धारणा बनाते हैं। इसीके आधारपर वे कहते हैं कि किसी कार्यके संपादनके पूर्व निश्चय नय होता है, पश्चात् उसकी पूर्ति हेतु प्रवृत्ति व्यवहारनय है। यह कथन इतना ही विपरीत है, जितना बकराजको हंसराज बताना मिथ्या है। शब्दोके अनेक अर्थ होते है, जिनका आगमानुसार अर्थ करना तत्त्वज्ञका कर्तव्य है। सम्यग्ज्ञानके भेदनयका उपभेद व्यवहारनय निश्चयनयका साधक है। दोनोमें साधनसाध्यभाव है। तत्त्वानुशासनमे कहा है—

"मोक्षहेतु पुनर्द्वेधा निश्चयाद् व्यवहारत ।
तत्राद्य. साध्यरूप. स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥२८॥"

मोक्षका मार्ग निश्चय तथा व्यवहारके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें निश्चयमोक्षमार्ग साध्यरूप है तथा व्यवहार मोक्षमार्ग साधनरूप है। तत्त्वार्थसारमें अमृतचद्र सूरिने भी लिखा है—

"निश्चय-व्यवहाराभ्या मोक्षमार्गो द्विधा स्थित ।
तत्राद्य साध्यरूप. स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥"

साधनसे साध्यकी सिद्धि की जाती है, इससे साधनरूप व्यवहारनय पूर्ववर्ती होगा और साध्यरूप निश्चयनय पश्चाद्वर्ती होगा। इसका विपरीत कथन करना ऐसी ही विचित्र बात होगी, जैसे यह कहना कि पहले मोक्ष होता है, फिर बंध होता है। बुद्धिमान् तथा विवेकी व्यक्ति जैसे बधपूर्वक मोक्षको स्वीकार करता है, उसी प्रकार अनेकात दृष्टि तत्त्वज्ञ साधनरूप व्यवहार दृष्टिको प्राथमिकता देकर साध्यरूप दृष्टिको पश्चाद्-वर्ती मानेगा।

निश्चयनय और व्यवहारनयका आगममे क्या अर्थ है यह तत्त्वानुशासनमे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

"अभिन्न-कर्तृ-कर्मादि-विषयो निश्चयो नय ।
व्यवहारनयो भिन्न कर्तृ-कर्मादि-गोचर ॥२९॥"

निश्चयनयमे कर्ता, कर्म, करण आदि भिन्न नही होते है अत. वह अभिन्न कर्तृ कर्मादि विषयक है। वह अभेदग्राही (synthetic approach) है। व्यवहारनय कर्ता कर्मादि भेदका ग्राहक है। वह (analytic approach) भेद दृष्टि युक्त है। समतभद्र स्वामीने आप्तमीमासामे वस्तुका स्वरूप भेद तथा अभेद रूप माना है—"भेदाभेदौ न सवृतौ"—भेद तथा अभेद वस्तु रूप हैं, कल्पना नही है।

निर्विकल्प समाधिकी स्थिति सामान्य बात नही है। उस अवस्थामे अद्भुत रूपसे आत्मनिमग्नता पायी जाती है। भीम, अर्जुन तथा युधिष्ठिरने मुनिपदको स्वीकार कर जब निर्विकल्प समाधिमें तल्लीनता प्राप्त की थी, तब उनके शरीरपर जलते हुए लोहेके आभूषण पहनाये जानेपर भी वे पूर्णतया स्थिर थे। जब सुकुमाल मुनि निर्विकल्प समाधिका रस पान कर रहे थे, तब स्यालनी उनका शरीर भक्षण कर रही थी, फिर भी वे स्वरूपमें निमग्न थे। सुकौशल मुनिकी भी ऐसी ही अभेद रत्नत्रय रूप परिणति थी, जब व्याघ्रीने उनके शरीरका भक्षण किया था। उस निर्विकल्प समाधिकी स्थितिके अनुसार सांख्यका आत्माका अकर्तृत्व पक्ष निर्दोष तथा यथार्थ है, किन्तु वह सविकल्पदशामे भी अकर्तृत्व कहता है, इससे उसकी मान्यता पूर्णतया अवास्तविक बन जाती है।

अभेद स्वरूपमें निमग्न योगी अद्वैत भावको प्राप्त होता है। वेदान्त दर्शन भी उस अद्वैतका कथन करता है। इस प्रकार शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टि वेदान्तकी अद्वैत विचारधाराके सदृश प्रतीत होती है, किन्तु उसमें और जैन विचारधारामे इतना अन्तर है कि जैनदर्शन सविकल्प अवस्थामे भेदरूप द्वैत दृष्टिको भी यथार्थ मानता है। वेदान्ती द्वैत दृष्टिको अयथार्थ तथा काल्पनिक बताता है। स्याद्वाद सिद्धान्तमें अद्वैत दृष्टि प्राप्त व्यक्ति इस प्रकार अनुभव करता है—

'एकमेव हि चैतन्य शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाश विकल्पाना तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥१५॥"—प० प० एकत्वाशीति।

शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा चैतन्य एक है, अद्वैत रूप है। उस अखण्ड आत्मस्वरूपमे विकल्पोके लिए कोई स्थान नही है।

"बद्धो मुक्तोऽहमथ द्वैते सति जायते ननु द्वैतम्।
मोक्षायेत्युभय-मनाविकल्परहितो भवति मुक्त ॥४६॥"

मै बद्ध हूँ, मै मुक्त हूँ, ऐसी द्वैतबुद्धि द्वैतभावके होनेपर होती है। बद्ध और मुक्तके दोनो मानसिक विकल्पोका क्षय होना मोक्षका कारण है।

"बद्धो वा मुक्तो वा चिद्रूपो नय-विचारविधिरेष।
सर्वनय पक्षरहितो भवति हि साक्षात्समयसारः ॥५३॥"

चिद्रूप बद्ध है अथवा मुक्त है यह नय दृष्टिका कथन है। सर्व प्रकारके नयपक्षरहित साक्षात् समयसार है।

पचास्तिकायमे कहा है —

"जो ससारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्म कम्मादो होदि गदिसुगदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इदियाणि जायते।
तेहिं दु विसयग्गहण तत्तो रागो य दोसो वा ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेव भावो ससारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥ १३० ॥"

—'जो जीव ससारमे स्थित है, उसके राग-द्वेष रूप परिणाम होते है। उन भावोसे कर्मोंका बन्धन होता है। कर्मोंके कारण नरक आदि गतियोमें गमन होता है। गतियोमे जानेपर शरीरकी प्राप्ति होती है। शरीरसे इन्द्रियोकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियोके द्वारा विषयोका ग्रहण होता है। इससे राग द्वेष उत्पन्न होते है। ससार चक्रमे परिभ्रमण करते हुए जीवके इस प्रकारके भाव होते है। जिनेन्द्रने कर्मको सततिकी अपेक्षा अनादि-निधन और पर्यायकी अपेक्षा सादि कहा है। इस विवेचनका निष्कर्ष यह है, कि यह जीव राग-द्वेषके कारण इस अनादिनिधन ससार चक्रमे परिभ्रमण किया करता है।

कर्मको पौद्गलिक एवं मूर्तीक माननेमे युक्ति

आत्मासे सम्बद्ध कर्मोको पौद्गलिक प्रमाणित करते हुए पचास्तिकायमे लिखा है—

"जम्हा कम्मस्स फल विसय फासेहि भुजदे नियद।
जीवेण सुह दुक्ख तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥ १३३ ॥

'जीव कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दु खके हेतुस्वरूप विषयोको मूर्तिमान् इन्द्रियोके द्वारा भोगता है, इससे कर्म मूर्तिक है।'

एक पुद्गल द्रव्य ही स्पर्श, रस, गध तथा वर्ण विशिष्ट होनेके कारण मूर्तीक है। अत कर्मोंमें मूर्तीक-पना सिद्ध होनेपर उनकी पौद्गलिकता स्वय प्रमाणित होती है।

टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—'मूर्तं कर्म मूर्तसम्बन्धेनानुभूयमानमूर्तफलत्वादाखुविषवत्, इति'—कर्म मूर्तीक हैं, कारण उसका फल मूर्तीक द्रव्यके सम्बन्धसे अनुभवगोचर होता है, जैसे चूहेके काटनेसे उत्पन्न हुआ विष। चूहेके काटनेसे शरीरमे जो शोथ आदि विकार उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियगोचर होनेसे मूर्तिमान् है, इससे उसका मूल कारण विष भी मूर्तिमान् होना चाहिए। इसी प्रकार यह जीव मणि, पुष्प, वनितादिके निमित्तसे सुख तथा सर्प सिंहादिके निमित्तसे दु खरूप कर्मके विपाकका अनुभव करता है, अत इस सुख-दु खका कारण जो कर्म है, वह भी मूर्तिमान् मानना उचित है।[1]

जयधवला टीका (१।५७) मे लिखा है—"तपि मुत्त चेव। त कथ णव्वदे? मुत्तोसहसबधेण परिणामातरगमणण्णहाणुववत्तीदो। ण च परिणामांतरगमणमसिद्धं, तस्स तेण विणा जरकुट्ठक्खयादीण विणासाणुववत्तीए परिणामतरगमणसिद्धीदो।"—

'कर्म मूर्त है यह कैसे जाना? इसका कारण यह कि यदि कर्मको मूर्त न माना जाय तो मूर्त ओषधिके सम्बन्धसे परिणामान्तरकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् रुग्णावस्थामे ओषधिग्रहण करनेसे रोगके कारण कर्मोंकी उपशान्ति देखी जाती है वह नही बन सकती है। ओषधिके द्वारा परिणामान्तरकी प्राप्ति असिद्ध नही है, क्योकि परिणामान्तरके अभावमे ज्वर, कुष्ठ तथा क्षय आदि रोगोका विनाश नहीं बन सकता, अत कर्ममें परिणामान्तरकी प्राप्ति होती है, यह सिद्ध हो जाता है।'

कर्म मूर्तिमान् तथा पौद्गलिक है। जीव अमूर्तीक तथा अपौद्गलिक है, अत जीवसे कर्मोंको सर्वथा भिन्न मान लिया जाय, तो क्या दोष है? इस विषयमें वीरसेनाचार्य जयधवलामे इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—'जीवसे यदि कर्मोंको भिन्न माना जावे, तो कर्मोंसे भिन्न होनेके कारण अमूर्त जीवका मूर्त शरीर तथा ओषधिके साथ सम्बन्ध नही हो सकता। इससे जीव तथा कर्मोंका सम्बन्ध स्वीकार करना चाहिए। शरीर आदिके साथ जीवका सम्बन्ध नही है, ऐसा नही कह सकते, कारण शरीरके छेदे जानेपर दु खकी उपलब्धि देखी जाती है। शरीरके छेदे जानेपर आत्मामें दु खकी उत्पत्तिसे जीवकर्मका सम्बन्ध सूचित होता है। एकके छेदे जानेपर दूसरेमे दु खकी उत्पत्ति नही पायी जाती। ऐसा माननेपर अव्यवस्था होगी।

भिन्नता पक्ष माननेपर जीवके गमन करनेपर शरीरका गमन नही होना चाहिए, कारण दोनोमें एकत्वका अभाव है। ओषधिसेवन भी जीवकी नीरोगताका सपादक नही होगा, कारण ओषधि शरीरके द्वारा पीई गयी है। अन्यके द्वारा पीई गयी ओषधि अन्यकी नीरोगताको उत्पन्न नही करेगी। इस प्रकारकी उपलब्धि नही होती। जीवके रुष्ट होनेपर शरीरमे कप, दाह, गलेका सूखना, नेत्रोंकी लालिमा, भौहोंका चढ़ना, रोमाचका होना, पसीना आना आदि बातें शरीरमें नही होनी चाहिए, कारण उनमे भिन्नता है। जीवनकी इच्छासे शरीरका गमनागमन, हाथ, पाँव, सिर तथा अगुलियोका हलन-चलन भी नही होना चाहिए। कारण वे पृथक है। सपूर्ण जीवोके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतवीर्य, विरति, सम्यक्त्वादि हो जाना चाहिए, कारण सिद्धोंके समान जीवसे कर्मोंका पृथक्पना है। अथवा सिद्धोमे अनतगुणोका अभाव मानना होगा किन्तु ऐसी बात नही पायी जाती, इससे कर्मोंको जीवसे अभिन्न श्रद्धान करना चाहिए।

अमूर्त स्वभाव आत्माको मूर्तीक कर्मोंने क्यो बाँधा?

प्रस्तुत समस्यापर प्रकाश डालते हुए अकलकदेव आत्माको कथचित् मूर्तीक और कथचित् अमूर्तीक बताते हैं। उन्होने लिखा है

१ "यदाखुविषवन्मूर्तसम्बन्धेनानुभूयते।
यथास्व कर्मण पुसा फलं तत्कर्म मूर्तिमत्॥"—अन० धर्मा० २।३०।

"अनादिकर्मबन्धसन्तानपरतन्त्रस्यात्मन अमूर्तिं प्रत्यनेकान्तो बन्धपर्याय प्रत्येकत्वात् स्यान्मूर्तम्, तथापि ज्ञानादिस्वलक्षणापरित्यागात् स्यादमूर्ति । मदमोहविभ्रमकरी सुरां पीत्वा नष्ट-स्मृतिर्जन काष्ठवदपरिस्पन्द उपलभ्यते, तथा कर्मेन्द्रियाभिभवादात्मा नाविर्भूतस्वलक्षणो मूर्त इति निश्चीयते ।"—त० रा० पृ० ८१ ।

"अनादिकालीन कर्मबन्धकी परपराके अधीन आत्माके अमूर्तत्वके विषयमे अनेकान्त है । बन्धपर्यायके प्रति एकत्व होनेसे आत्मा कथचित् अमूर्तीक है, किन्तु अपने ज्ञानादि लक्षणका परित्याग न करनेके कारण कथचित् अमूर्तीक भी है । मद, मोह तथा भ्रमको उत्पन्न करनेवाली मदिराको पीकर मनुष्य स्मृतिशून्य हो काष्ठकी भाति निश्चल हो जाता है तथा कर्मेन्द्रियोके अभिभव होनेसे अपने ज्ञानादि स्वलक्षणका अप्रकाशन होनेसे आत्मा मूर्तीक निश्चय किया जाता है ।"[1]

इस विषयमें प्रवचनसारमे एक मार्मिक बात कही गयी है—

"रूवादिएहि रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि ।
दव्वाणि गुणे य जधा तह बन्धो तेण जाणीहि ॥२।८२।"

—'जिस प्रकार रूपादिरहित आत्मा रूपी द्रव्यो तथा उनके गुणोको जानता देखता है, उसी प्रकार रूपादिरहित जीव पुद्गल कर्मोंसे बाँधा जाता है । कदाचित् ऐसा न माना जाय, तो यह शका उत्पन्न होती है, कि अमूर्तीक आत्मा मूर्तीक पदार्थोंको क्यो देखता जानता है ।[2] निष्कर्ष यह है, अमूर्तीक आत्मा अपने विशिष्ट स्वभावके कारण जैसे मूर्तीक पदार्थोंका ज्ञाता द्रष्टा है, उसी प्रकार वह अपनी वैभाविक शक्तिके परिणमन विशेषसे मूर्तीक कर्मोंके-से बधको प्राप्त करता है । वस्तुस्वभाव तर्कके अगोचर है ।

तत्त्वार्थसारमें[3] कहा है—"आत्मा अमूर्तीक है, फिर भी उसका कर्मोंके साथ अनादिनित्य सम्बन्ध है । उसके ऐक्यवश आत्माको मूर्तीक निश्चय करते है ।"

आत्माको कर्मबद्ध माननेका कारण ?

कोई-कोई सोचते है यह हमारा भ्रम है, जो हम अपनी आत्मामे कर्मोंका बन्धन स्वीकार करते है । यथार्थज्ञान हानेपर विदित होता है, कि आत्मा कर्मादि विकारोसे रहित पूर्णतया परिशुद्ध है । ऐसे विचार-वालोके समाधाननिमित्त विद्यानदिस्वामी आप्तपरीक्षा (पृ० १) मे लिखते है—

"विचार प्राप्त ससारी जीव बँधा हुआ है, कारण यह परतत्र है, जैसे हस्तिशालाके स्तंभमे बँधा हुआ हाथी परतत्र रहता है । इसी प्रकार ससारी जीव भी पराधीन होनेके कारण बँधा हुआ है ।"

जीवकी पराधीनताको सिद्ध करनेके लिए आचार्य कहते हैं—"यह ससारी जीव पराधीन है, कारण इसने हीनस्थानको ग्रहण किया है । कामवासनावश श्रोत्रिय ब्राह्मण वेश्याके घरको अगीकार करता है । वेश्याका घर निन्द्य स्थान है । वहाँ उच्च ब्राह्मणकी उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वह अपनी वासनाके वेगसे अत्यन्त पराधीन बन चुका है । इसी प्रकार हीनस्थानको अगीकार करनेवाला ससारी जीव परतत्र सिद्ध होता है ।"

---

१ "वण्ण-रस-पचगधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो सति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बधादो ॥"—द्रव्यसग्रह ।७।

२ येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणाश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभि कर्मपुद्गलै किल बध्यते, अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात् (अमृतचद्राचार्यकी टीका)

३ "अनादिनित्यसम्बन्धात् सह कर्मभिरात्मन ।
अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ॥५।१७।"

हीनस्थान क्या है, इसपर प्रकाश डालते हैं कि "ससारी जीवका शरीर ही हीनस्थान है, कारण वह शरीर दु खका कारण है। जैसे कारागार दु खप्रद होनेके कारण हीनस्थान माना जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी हीनस्थान है।"

आत्मा यदि स्वतत्र होता, तो वह मूत्रपुरीषभडाररूप इस महान् अपावन घृणित देहको अपना आवासस्थल कभी न बनाता। विवश हो जीवको इस शरीरमे रहना पडता है। मोहवश वह फिर इसमें आसक्त हो जाता है। प्रबुद्ध पुरुष शरीरमें ममत्वभावका त्याग करते हैं। जीवको विवश करनेवाला कर्म है।

यह विश्ववैचित्र्य कर्मोंके कारण दृष्टिगोचर होता है। कोई धनवान् है, कोई गरीब है, कोई बीमार है तो कोई नीरोग है आदि विविधताओका कारण कर्म है।

"अह प्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात्।
एको दरिद्र एको हि श्रीमानिति च कर्मण ॥" २-५० पचाध्यायी

'मै हूँ' इस प्रकार अह प्रत्ययसे जीवका अस्तित्व ज्ञात होता है। यह ज्ञान अन्वय रूपसे पाया जाता है। एक दरिद्र है, एक श्रीमान् है यह भेद कर्मके कारण है।

यह आत्मा तात्त्विक दृष्टिसे विचार करे तो उससे प्रतीत होगा कि यह जगत् एक रग मचके समान है। यहाँ जीव विविध वेष धारण कर अपना अभिनय दिखाते हैं। अपना खेल दिखानेके अनन्तर वे वेष बदलते हैं। कर्मविपाकके अनुसार उनका वेष और अभिनय हुआ करता है। (१)

विश्ववैचित्र्य कर्मकृत है

कोई लोग कर्मकृत विश्ववैचित्र्यको स्वीकार करते हुए भी कहते है, ईश्वर ही कर्मोंके अनुसार इस अज्ञ जीवको विविध योनियोमे पहुँचा कर दु ख और सुख देता है। महाभारतमें लिखा है—

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुखदु खयो।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥" वनपर्व ३०।२८।

कोई ईश्वरको सुख-दु खका केवल निमित्त कारण मानते है, इस विषयमें स्वामी समन्तभद्र अपनी आप्तमीमासामे कहते है—

"कामादिप्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धित ॥९९॥"

'काम, क्रोध, मोहादिका उत्पत्तिरूप जो भावससार है, वह अपने-अपने कर्मके अनुसार होता है। वह कर्म अपने कारण रागादिकोसे उत्पन्न होता है। वे जीव शुद्धता, अशुद्धतासे समन्वित होते है।'

इसपर तार्किक पद्धतिसे विचार करते हुए आचार्य विद्यानदी अष्टसहस्रीमे लिखते है[२] कि अज्ञान, मोह, अहकाररूप यह भाव-ससार है। वह एक स्वभाववाले ईश्वरकी कृति नहीं है, कारण उसके कार्यमें

१ All the world's a stage,
And all the men and women merely players,
They have their exits and their entrances,
And one man in his time plays many parts,
Shakespeare —AS YOU LIKE IT. Act II, Sc VII.

२ अष्टस० पृ० २६८–२७१।

सुख-दु खादिमें विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। जिस वस्तुके कार्यमें विचित्रता पायी जाती है, उसका कारण एक स्वभाव विशिष्ट नहीं होता है। जैसे अनेक धान्य अकुरादिरूप विचित्र कार्य अनेक शालिबीजादिकसे उत्पन्न होते है, उसी प्रकार सुख-दु खविशिष्ट विचित्र कार्यरूप जगत् एक स्वभाववाले ईश्वरकृत नहीं हो सकता।[1]

जब कारण एक प्रकारका है, तब उससे निष्पन्न कार्यमें विविधता नही पायी जाती। एक धान्य-बीजसे एक ही अकुरकी उद्भूति होती है। इस प्राकृतिक नियमके अनुसार एक स्वभाववाला ईश्वर क्षेत्र, काल तथा स्वभावकी अपेक्षा भिन्न शरीर, इन्द्रिय तथा जगत् आदिका कर्ता नहीं सिद्ध होता है।[2]

अनादि कर्मबधका अन्त क्यो है ?

प्रश्न—जब कर्मबध और रागादिभावका चक्र अनादि कालसे चलता है, तब उसका भी अत नही होना चाहिए ?

समाधान—यह शका ठीक नहीं है। कारण अनादिकी अनन्तताके साथ कोई व्याप्ति नही है। अनादि होते हुए भी सातताकी उपलब्धि होती है। बीज वृक्षकी सततिको परपराकी अपेक्षा अनादि कहते है। बीजको यदि दग्ध कर दिया जाये, तो फिर वृक्ष परपराका अभाव हो जायेगा। कर्मबीजके नष्ट हो जानेपर भवाकुरकी उत्पत्ति नही हो सकती। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्त प्रादुर्भवति नाङ्कुर ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भवाङ्कुरः ॥८।७।"

अकलक स्वामीका कथन है कि[3] आत्मामे आनेवाला कर्ममल प्रतिपक्षरूप है, अत वह आत्मगुणोके विकास होनेपर क्षयशील है।

जैसे प्रकाशके आते ही सदा अन्धकाराक्रान्त प्रदेशसे अन्धकार दूर होता है अथवा सदा शीत भूमिमें गरमीके प्रकर्ष होनेपर शीतका अपकर्ष होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके प्रकर्षसे मिथ्यात्वादिक विकारोका अपकर्ष होता है। रागादि विकारोके अपकर्षमे हीनाधिकता देखकर तार्किक समन्तभद्र कहते हैं कि[4] ऐसी भी आत्मा हो सकती है जिसमे रागादिका पूर्णतया क्षय हो चुका हो। उसे ही परमात्मा कहते है।[5]

अनादि-सादि बधके विषयमे अनेकान्त

प्रश्न—शकाकार कहता है—आपका यह कथन कि 'कामादिप्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपत' 'विचित्र कामादिककी उत्पत्ति कर्मबन्धके अनुसार होती है', निर्दोष नही है। हम पूछते हैं, जीव और कर्मोंका सम्बन्ध कबसे है ?

---

१ "ससारोऽय नैकस्वभावेश्वरकृत., तत्कार्यसुख-दु खादिवैचित्र्यात्। न हि कारणस्यैकरूपत्वे कार्य-नानात्व युक्त शालिबीजवत्",—अष्टशती

२ इस सबधमें विशद चर्चा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तपरीक्षा आदि जैन ग्रथोमे की गयी है।

३ "प्रतिपक्ष एवात्मनामागन्तुको मल परिक्षयी, स्वनिर्ह्रासनिमित्तविवर्धनवशात्।"—अष्टशती।

४ "दोषावरणयोर्हानिर्नि शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥" – आ० मी० ४।

५ अमितगति आचार्य कहते है—
"यो दर्शन ज्ञान-सुखस्वभाव समस्त-ससारविकारबाह्य ।
समाधिगम्य परमात्मसज्ञ स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥"

समाधान—द्रव्यदृष्टि अथवा संततिकी अपेक्षा यह बन्ध अनादि है। पर्यायकी अपेक्षा यह सादि कहा जाता है। पचाध्यायीकारका कथन है—

"यथाऽनादि स जीवात्मा यथाऽनादिश्च पुद्गल ।
द्वयोर्बन्धोऽप्यनादि स्यात् सम्बन्धो जीवकर्मणो ॥" -२।३५ ॥

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है, उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है। जीव और कर्मोंका सम्बन्धरूप बध भी अनादि है।

"द्वयोरनादिसम्बन्ध कनकोपलसन्निभः ।
अन्यथा दोष एव स्यादितरेतरसश्रय ॥" –।३६ ॥

जीव और कर्मोंका अनादि सम्बन्ध है, जैसे सुवर्ण-पाषाणमें सुवण द्रव्य किट्टकालिमादि विशिष्ट पाया जाता है, उसी प्रकार ससारी जीव भी अशुद्ध रूपमे उपलब्ध होता है। ऐसा न माननेपर अन्योन्याश्रय-दोष आता है।

"तद्यथा यदि निष्कर्मा जीवः प्रागेव तादृश ।
बन्धाभावेऽथ शुद्धेऽपि बन्धश्चेन्निर्वृति कथम् ॥३७॥"

यदि जीव पूर्वमें कर्मरहित माना जाये, तो उसके बन्धका अभाव होगा। शुद्धात्माके भी बन्ध माननेपर मुक्ति कैसे होगी ?

यहाँ आचार्यका भाव यह है कि पूर्व अशुद्धताके बिना बन्ध नहीं होगा। पूर्वमे शुद्ध जीवके भी कर्म-बंध मान लेनेपर निर्वाणका लाभ असभव हो जायेगा। जब शुद्ध जीव कर्म बाँधने लगेगा, तब ससारका चक्र पुन -पुन चलनेसे मुक्तिका अभाव हो जायेगा।

यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध माना जाये, तो क्या बाधा है ? पचाध्यायीकार कहते हैं—

"अथ चेत्पुद्गलः शुद्ध सर्वत प्रागनादितः ।
हेतोर्विना यथा ज्ञान तथा क्रोधादिरात्मनः ॥३८॥
एव बन्धस्य नित्यत्व हेतो सद्भावतोऽथवा ।
द्रव्याभावो गुणाभावे क्रोधादीनामदर्शनात् ॥३९॥"

—यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध मान लिया जाये तो जैसे बिना कारणके स्वभावत जीवमें ज्ञान पाया जाता है उसी प्रकार क्रोधादि भी जीवके स्वभाव या गुण हो जायेंगे। क्रोधादिके सदा सद्भाववश बधमें नित्यता आ जायेगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणोका अभाव माना जायेगा तो स्वभाववान् या गुणी जीवका भी लोप हो जायेगा। क्रोधादिका अदर्शन पाया जाना है।

यहाँ अभिप्राय यह है, कि यदि कामादिक कर्मबधसे उत्पन्न नही हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, तब ऐसी स्थितिमे क्रोधादिक जीवके स्वभाव हो जावेंगे। सयमी पुरुषोमे क्रोधादि विकारोका अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभावका अभाव होनेपर स्वभाववान् आत्माका भी लोप हो जायेगा। अत पुद्गलको अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादिको जीवका स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावोको कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। ग्रथकार कहते है—

"पूर्वकर्मोदयाद्भावो भावात्प्रत्यग्रसचय ।
तस्य पाकात्पुनर्भावो भावाद् बन्धः पुनस्तत. ॥
एवं सन्तानतोऽनादि· सम्बन्धो जीवकर्मणो ।
ससारः स च दुर्मोच्यो विना सम्यग्दृगादिना ॥"—पञ्चाध्यायी ४२-४३

—पूर्वकर्मोदयसे रागादि भाव होते है। उन भावोसे आगामी कर्मका सचय होता है। उस कर्म-विपाकसे पुन रागादिभाव होते है। उन भावोसे पुन बध होता है। इस प्रकार जीव तथा कर्मका सम्बन्ध सतानकी अपेक्षा अनादि है। सम्यग्दर्शनादिके बिना यह ससार दुर्भेद्य है।

निष्कर्ष—आत्मा और कर्मका सादि सम्बन्ध स्वीकार करनेपर दोषोका उद्भावन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतन्त्र है। वह कर्मोके अधीन है। यह कर्मबधन सादि स्वीकार करनेमे भयकर आपत्तियाँ आती है, यदि आत्माको शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, आनदमय तथा अनत शक्तिमान् माना जाये, तो यह प्रश्न होता है कि वह ससारके बधनमे कैसे फँस गया ? पूर्वमें शुद्धका बधनमें आना ऐसा ही असगत और असभव है जैसे बीजके दाह किये जानेपर उससे वृक्षका प्रादुर्भाव मानना असगत और असभाव्य है। जीवकी बधन अवस्था स्वयसिद्ध अनुभव गोचर है। उसके लिए तर्ककी जरूरत नही है।

ऐसी स्थितिमे एक ही मार्ग निरापद बचता है कि कर्म और आत्माका अनादि सम्बन्ध माना जाये। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नही है। आत्मशक्तिके विकसित होनेपर कर्मोका बधन शिथिल होने लगता है और शक्तिके पूर्ण प्रवृद्ध होनेपर कर्मोका नाश हो जाता है। फिर वह शुद्ध जीव कर्मबधनमे नही फँसता है। सर्वज्ञ तथा अनतशक्ति युक्त शुद्ध जीव कर्मोके जालमे फँसनेका कदापि उद्योग नही करेगा।

कर्मोके आस्रवका कारण योग है

इस जीवके कर्मबधनका कारण रागादिभावोको कहा है कर्मोके आगमनमे कारण है आत्म-प्रदेशोका परिस्पदन होना। मनोवर्गणा, वचनवर्गणा अथवा कायवर्गणाके अवलबनसे आत्मप्रदेशोमें सकपपना पाया जाता है। मन वचन कायका क्रियारूप योगके द्वारा नवीन कर्मोका आस्रव—आगमन तथा जीवके साथ सयोग होता है। योगोके त्रयात्मक भेदोपर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धवलाटीका (१,२७९) में लिखते है—"क पुन मनोयोग इति चेद्भावमनस समुत्पत्त्यर्थ प्रयत्नो मनोयोग। तथा वचस समुत्पत्त्यर्थ प्रयत्नो वाग्योग। कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थ प्रयत्न काययोग.।"—'मनोयोगका क्या स्वरूप है ? भावमनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे मनोयोग कहते है। इसी प्रकार वचनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते है और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे काययोग कहते है।' यह योग ध्यानरूप योगमे भिन्न है।

पुण्य-पापका विश्लेषण

प्रश्न—सर्वार्थसिद्धिमे यह शका की गयी है, कि जिस योगके द्वारा पुण्य कर्मका आस्रव होता है, उसी योगके द्वारा क्या पापका आस्रव होता है ?

समाधान—'शुभ पुण्यस्याशुभ पापस्य' (त० सू० ६।३)—शुभयोगके द्वारा पुण्यका आस्रव होता है तथा अशुभयोगके द्वारा पापका आस्रव होता है। शुभयोग-अशुभयोगकी परिभाषा 'सर्वार्थसिद्धि'में इस प्रकार दी गयी है, "शुभपरिणामनिर्वृत्तो योग शुभ अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभ"—शुभ परिणामोसे रचित योग शुभ है तथ अशुभ परिणामोके द्वारा रचित योग अशुभ है।

जिस शुभ परिणामके द्वारा पुण्यका आस्रव होता है, उसके विषयमे कुदकुदस्वामीने प्रवचनसारमें इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"देवद-जदि-गुरु-पूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोव ओगप्पगो अप्पा ॥१।६९॥"

जिनेन्द्र भगवान् रूप देवता, इन्द्रियजयके द्वारा शुद्धात्म स्वरूपके विषयमें प्रयत्नमे तत्पर यति (इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूप प्रयत्नपरो यति), स्वय भेदाभेदरूप रत्नत्रयके आराधक तथा उस रत्नत्रयके आकाक्षी

भव्योको जिनदीक्षा देनेवाले गुरु (स्वय भेदाभेद-रत्नत्रयाराधकस्तदर्थिना भव्याना जिनदीक्षादायको गुरु) तथा उनकी प्रतिमाकी द्रव्य तथा भावरूप पूजा (द्रव्य-भावरूपा पूजा), चार प्रकारका दान देना, शील-व्रतादिका परिपालन तथा उपवासादि शुभ अनुष्ठानोमे जो व्यक्ति अनुरक्त होता है तथा अशुभ अनुष्ठानोसे विरत रहता है, वह जीव शुभ उपयोगवाला होता है।

जीवघात, चोरी आदि अशुभ कार्य, सत्य, पीडाकारी हिंसारूप अशुभ वचन तथा ईर्ष्या, जीव-बंधादि रूप अशुभ मनसे अशुभ उपयोग होता है। प्रवचनसारमें लिखा है—

"धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध सपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुह सुहोवजुत्तो व सग्ग सुह ॥१-११॥"

धर्मसे परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोग रूप परिणतिको धारण करता है, तब वह निर्वाण सुखको प्राप्त करता है। धर्मसे परिणत आत्मा जब शुभोपयोगको प्राप्त होता है, तब वह स्वर्ग सुखको प्राप्त करता है।

इस विषयको स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति टीकामें कहते है- "तत्र यच्छुद्ध सप्रयोगशब्द-वाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप वीतरागचारित्र तेन निर्वाण लभते"—गाथामें आगत 'शुद्ध सप्रयोग' शब्दके द्वारा वाच्य जो शुद्धोपयोग स्वरूप वीतराग चारित्र है, उससे निर्वाण प्राप्त होता है। वीतराग चारित्र ध्यानस्थ मुनिके ही होता है। आत्मसमाधिमें स्थित परमध्यानी मुनिराजके ही शुद्धोपयोग होता है। सरागसयमी अवस्थामे मुनिराजके शुद्धोपयोग नही होता है। अत गृहस्थावस्थामे शुद्धोपयोगकी कल्पना भी नही की जा सकती।

जब सरागी सकलसयमी महाव्रती भावलिंगी मुनीश्वरके शुद्धोपयोगका अभाव है, तब असयमी अथवा देशसयमी श्रावकके शुद्धोपयोगका अभाव स्वयमेव सिद्ध होता है। "निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धोपयोग-शक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूप सरागचारित्रेण परिणमति, तदाऽपूर्वमनाकुलत्वलक्षण पारमार्थिकसुख-विपरीतमाकुलत्वोत्पादक स्वर्गसुख लभते, पश्चात् परमसमाधि-सामग्रीसद्भावे मोक्ष च लभते"—निर्विकल्प समाधि (अभेदरत्नत्रयरूपपरिणति) रूप शुद्धोपयोगकी सामर्थ्यके अभाव होनेपर जब वह जीव शुभोपयोग रूप (भेदरत्नत्रय रूप परिणति) सराग चारित्रको धारण करता है, उस समय वह अपूर्व, अनाकुलता-स्वरूप परमार्थ सुखके विपरीत आकुलताका उत्पादक स्वर्ग सुखको प्राप्त करता है। इसके अनतर वह परम समाधि (शुद्धोपयोग) की सामग्रीका लाभ होनेपर मोक्षको भी प्राप्त करता है। इससे अमृतचन्द्र स्वामी कहते है कि शुद्धोपयोग परिणतिके द्वारा निर्वाणका सुख प्राप्त होता है अत "शुद्धोपयोग उपादेय"—शुद्धोपयोग उपादेय है। सविकल्प अवस्थारूप भेद रत्नत्रयस्वरूप शुभोपयोगसे आकुलताका उत्पादक स्वर्गका सुख प्राप्त होता है, निर्वाणका सुख नही मिलता है, इससे "शुभोपयोगो हेय" मुनिराजके लिए कथचित् शुभो-पयोग हेय है। (प्र० सा० १।११। पृ० १३)

हेय तथा उपादेय उपयोग—मुनि अवस्थामे शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनो होते है, अत उस अपेक्षासे उपादेय तथा हेयका कथन किया गया है। गृहस्थावस्थामे शुद्धोपयोगकी पात्रता ही नही है, अत उसकी अपेक्षा एकमात्र शुभोपयोग आश्रय योग्य होगा। शुभोपयोग कथचित् हेय है, तो कथचित् उपादेय भी है। निर्विकल्प समाधि निमग्न महामुनिकी अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु उस उच्च ध्यानकी प्राप्तिमें असमर्थ मुनिराजके लिए शुभोपयोग उपादेय है। ऐसी स्थितिमे गृहस्थके लिए शुभोपयोगको हेय नही कहा जा सकता है। परम हेयरूप गृहस्थकी दशा है। उस स्थितिको ध्यानमे रखते हुए उस आर्त, रौद्रध्यानके जालमे जकडे हुए जीवका उद्धार शुभोपयोगके द्वारा ही होगा। यदि शुद्धोपयोगको उपादेय मानते हुए परिग्रह तथा पापाचारके त्यागसे विमुख गृहस्थने शुभोपयोगको हेय सोच उसे छोड दिया, तो अशुभोपयोगके द्वारा उस गृहस्थकी दुर्गति होगी। अमृतचन्द्र सूरि कहते है, "अत्यन्तहेय एवायमशुभोपयोग"—

अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। शुद्धोपयोग उपादेय है। उसकी अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। ऐसी स्थितिमें अशुभोपयोगकी अपेक्षा शुभोपयोग उपादेय है। बुद्धिमान् व्यक्ति अत्यन्त हेय अशुभका त्याग कर शुभका आश्रय लेता है क्योंकि वह lesser art अपेक्षाकृत अल्प दोषरूप है।

उदाहरणार्थ—सत्पुरुषको ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। वह श्रेष्ठ व्रत है, किन्तु जिसकी आत्मा पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनमें असमर्थ है उसे स्वस्त्रीसतोषव्रती बननेका कथन किया जाता है। यदि वह परस्त्री-सेवनमें प्रवृत्ति करता है, तो सत्पुरुष उसे महापापी कहते हैं। यद्यपि दोनो ही ब्रह्मचर्य व्रत पालन नही करते है और ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा स्त्रीमात्रका सेवन हेय है, किन्तु असमर्थ व्यक्तिकी अपेक्षा स्वदार-संतोषव्रतीको शीलवान् कहकर उसकी स्तुति की जाती है, तथा उसको परस्त्री सेवनका त्यागी होनेसे आदरका पात्र मानते है। इस उदाहरणके प्रकाशमे शुद्धोपयोग ब्रह्मचर्यके समान परम उपादेय है। शुभोपयोग स्वदारसतोषव्रतके समान कथचित् उपादेय है तथा अशुभोपयोग परस्त्री सेवनरूप महापापके समान सर्वथा हेय है—अत्यन्त हेय है। स्वदारसतोषी तथा परस्त्रीसेवी इन दोनोमे स्त्रीसेवनरूपताका सद्भाव होते हुए भी स्वस्त्रीसतोषी गृहस्थकी अवस्था उपादेय है। किन्तु परस्त्रीसेवनका कार्य अत्यन्त निषिद्ध है। इसी प्रकार अशुद्धोपयोगपना शुभ तथा अशुभ उपयोगमे है किन्तु गृहस्थके लिए शुभ उपयोग उपादेय है तथा अशुभ उपयोग सर्वथा हेय है। दोनोको समान मानकर अशुभकी प्रवृत्तिसे विमुख न होनेवाला अपार कष्ट पाता है। शीलव्रती सीता स्वर्ग गयी। कुशील परिणामवाला रावण नरक गया। दोनोको एक समान मानने-वाला चतुर व्यक्ति नही कहा जायेगा। अशुभोपयोगके विषयमे प्रवचनसारमे इस प्रकार कथन किया गया है—

"असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहि सदा अभिंदुदो भमदि अच्चत ॥१-१२॥"

अशुभोपयोग परिणतिके द्वारा आत्मा दीन दु खी मनुष्य, तियच तथा नारकी होकर हजारो दु खोसे दु खी होता हुआ ससारमे निरतर भ्रमण करता है।

अशुभोपयोगके कारण सचित पापोदयवश जीव इष्ट वियोग, अनिष्ट सयोग, पीडाचितवन आदि मलिन सामग्रीको प्राप्त कर सक्लेशभाव द्वारा पुन पापका बध करता है।

पुण्य पापमे समानता तथा भिन्नता—ससारके कारणपनेकी अपेक्षा यद्यपि शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग और उनके द्वारा प्राप्त पुण्य तथा पाप समान हैं, किन्तु उनमे दूसरी अपेक्षासे महान् भिन्नता है। पूर्ण ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा विचार करनेपर स्वस्त्रीसतोष तथा परस्त्रीसेवन दोनोमे स्त्रीके सपर्कका त्याग नही है, किन्तु जैसे उन दोनोके फलको देखकर उनको भिन्न माना जाता है उसी प्रकार अशुद्धोपयोगताकी अपेक्षा शुभ और अशुभ उपयोग यद्यपि समान हैं किन्तु उनमे महान् भिन्नता भी है। अध्यात्म शास्त्रमे निश्चय नयकी मुख्यतासे शुद्धोपयोगको आदर्श मान अन्य उपयोगोको हेय कहा है, किन्तु निर्विकल्प समाधिमे असमर्थ व्यक्ति-की दृष्टिसे शुभोपयोग और अशुभ उपयोगमे भिन्नता माननी होगी। अमृतचद्रसूरिने तत्त्वार्थसारमे कहा है—

"हेतु-कार्यविशेषाभ्यां विशेषः पुण्य-पापयो।
हेतू शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥१०३॥"—आस्रवतत्त्व।

साधन और फलकी भिन्नतासे पुण्य तथा पापमें भिन्नता है। पुण्य और पापके कारण भिन्न भिन्न हैं। पुण्यका कारण शुभ परिणाम है, पापका कारण अशुभ परिणाम है। पुण्यका फल इद्रियजनित सुखकी उप-लब्धि है तथा पापका फल दु खकी प्राप्ति है।

तात्त्विक बात—कुदकुद स्वामीने बारह अणुवेक्खामे यह महत्त्वपूर्ण कथन किया है—

"सुहजोगेसु पवित्ती सवरण कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण सभवदि ॥६३॥"

शुभ योगोमें प्रवृत्ति होनेपर अशुभ योगका सवर होता है। शुभ योगका सवर शुद्धोपयोगरूप परम-समाधि द्वारा सभव है। सामान्यतया अध्यात्मशास्त्रका ऊपरी पल्लवग्राही परिचय प्राप्त व्यक्ति पूजा, दान, स्वाध्याय आदि सत्कार्योंको शुभोपयोगरूप कहकर उसके विरुद्ध अमर्यादित आक्षेपपूर्ण शब्द कहता है, किन्तु वह स्वयंको विकथा, पचपाप, सप्तव्यसन आदि अशुभोपयोगके महान् दूतोके हाथोमें सौंपता है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि शुभोपयोग शुद्धोपयोगके द्वारा रुकेगा। शुद्धोपयोगरूप अभेद रत्नत्रयकी आराधना महान् मुनीन्द्रोको भी कठिन है, परिग्रही गृहस्थको वह उसी प्रकार असभव है, जिस प्रकार देव पर्यायवाले जीवको मोक्षकी प्राप्ति असभव है। इसी कारण भव्य जीवोके कल्याणार्थ आचार्योंने शुभोपयोग-द्वारा पुण्य-सचयको प्रशस्त मार्ग कहा है। हिन्दीके कुछ लेखको और कवियोने पुण्यबध और शुभोपयोगके विरुद्ध इतना अतिरेकपूर्ण प्रतिपादन किया है कि वह एकान्तवादकी सीमाका स्पर्श कर जाता है।

पुण्य-सचयकी प्रेरणा—अध्यात्मशास्त्रके मार्मिक आचार्य पद्मनदि भव्य जीवको पुण्यसचयके लिए प्रेरणा करते है। अपनी पचविंशतिकाके दानपचाशत् अध्यायमें वे कहते हैं—

> "दूरादभीष्टमभिगच्छति पुण्ययोगात्
>
> पुण्याद्विना करतलस्थमपि प्रयाति।
>
> अन्यत्पर प्रभवतीह निमित्तमात्र
>
> पात्रं बुधा भवत निर्मलपुण्यराशेः ॥१७॥"

पुण्यके होनेपर दूरसे भी अभीष्ट वस्तुका लाभ होता है। पुण्यके विना अर्थात् पापोदय होनेपर हाथमें रखी हुई वस्तु भी उपभोगमे नही आ पाती। पुण्यको छोडकर अन्य सामग्री निमित्तमात्र है। अत विवेकियो! निर्मल पुण्यकी राशिके पात्र बनो, अर्थात् पवित्र पुण्यका सग्रह करो।

वे पुन. कहते है—

> "ग्रामान्तर व्रजति यः स्वगृहाद् गृहीत्वा
>
> पाथेयमुन्नततर स सुखी मनुष्य.।
>
> जन्मान्तरं प्रविशतोऽस्य तथा व्रतेन
>
> दानेन चार्जितशुभ सुखहेतुरेकम् ॥२६॥"

जो व्यक्ति अपने घरसे देशान्तरको जाते समय बढिया पाथेय-(कलेवा) साथमे रखता है, वह सुखी रहता है। इसी प्रकार इस भवको छोडकर अन्य भवमे यदि सुख चाहिए तो व्रत पालन और पात्रदान करो। इससे प्राप्त किया गया शुभ अर्थात् पुण्य ही सुखका हेतु होगा।

उनका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

> "नार्थ पदात्पदमपि व्रजति त्वदीयो
>
> व्यावर्तते पितृवनादपि बन्धुवर्ग.।
>
> दीर्घे पथि प्रवसतो भवतः सखैक
>
> पुण्य भविष्यति तत. क्रियतां तदेव ॥४३॥"

अरे जीव! तेरा धन एक डग भी तेरे साथ नहीं जाता है। बंधुवर्ग श्मशान तक जाकर लौट जाते हैं। एक तेरा मित्र पुण्य ही तेरे साथ दूर तक जायेगा। इससे उस पुण्यको प्राप्त करो। आचार्यके ये शब्द ध्यान देने योग्य है। "पुण्य भवत सखा भविष्यति"—पुण्य ही तेरा मित्र रहेगा, क्योकि वह तेरा साथ देगा।

वे महान् आचार्य जिनेन्द्रकी स्तुति करते समय अपनेको "पुण्य-निलयोऽस्मि"—मैं पुण्यका घर हूँ, ऐसा कहते हैं।

"धन्योऽस्मि पुण्यनिलयोऽस्मि निराकुलोऽस्मि
शान्तोऽस्मि नष्टविपदस्मि विदस्मि देव।
श्रीमज्जिनेन्द्र भवतोऽङ्घ्रियुग शरण्य
प्राप्तोऽस्मि चेदहमतीन्द्रिय-सौख्यकारि ॥१॥" —क्रियाकाण्डचूलिका।

हे जिनेन्द्र ! मै अतीन्द्रिय आनदके प्रदाता आपके चरणोके शरणको प्राप्त हुआ हूँ, इससे मै धन्य हूँ। मै पुण्यका भवन हूँ। मै निराकुल हूँ। मै शात हूँ। मै सकटमुक्त हो गया हूँ तथा मैं ज्ञानवान बन गया हूँ।

कल्याणमदिर स्तोत्रमे जिनेन्द्र भगवान्को करुणा तथा पुण्यकी निवास भूमि कहा है—

"त्व नाथ ! दु खि-जन-वत्सल हे शरण्य !
कारुण्य-पुण्यवसते वशिना वरेण्य !।
भक्त्यानते मयि महेश दया विधाय
दु खाङ्कुरोद्दलन-तत्परता विधेहि ॥३९॥"

हे स्वामिन् ! आप दु खी जीवोके प्रति प्रेमभाव धारण करते है अत आप दु खीजनवत्सल है। हे शरण्यरूप भगवन् ! हे करुणा और पुण्यकी निवासभूमि, जितेन्द्रियाके शिरोमणि महेश, भक्तिपूर्वक मुझ विनतपर आप दयाभाव धारण करके तत्काल मेरे दु खोके अकुरोको उच्छेद करनेकी कृपा कीजिए।

भगवज्जिनसेन स्वामीने सहस्रनाम पाठमे जिनेन्द्र भगवान्को पुण्यगी अर्थात् पुण्यवाणी युक्त, पुण्यवाक्, पुण्यनायक, पुण्यधी, पुण्यकृत्, पुण्यशासन आदि नामयुक्त बताया है—

"गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुण पुण्यगीर्गुण ।
शरण्य पुण्यवाक् पूतो वरेण्य पुण्यनायक ॥४॥
अगण्य पुण्यधीर्गण्य पुण्यकृत्पुण्यशासन ।
धर्मारामो गुणग्राम पुण्यापुण्य-निरोधक" ॥५॥ —महाशोकध्वजादिशतकम्।

भगवान्को पुण्यराशि भी कहा है—

"शुभयु सुखसाद्भूत पुण्यराशिरनामय ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक" ॥१०॥ —दिग्वासादिशतम्।

अनेकात शैलीका मर्म न समझकर कोई-कोई निश्चयाभासी व्रतशून्य गृहस्थ पुण्यको पापके समान घृणा योग्य मानते हुए पुण्यको छोडकर पापकी ओर प्रवृत्त होते हुए ऐसे लगते है, मानो वे गगाको छोडकर वतरिणीकी ओर प्रवृत्ति करते है अथवा अमृतघटको फोडकर विषकुभके रसको प्रेम तथा श्रद्धासे सेवन करते है।

पुण्यके फलकी कथा विकथा नही है। वह तो धर्मकथाका अग है उसे सवेदनी कथा कहा है। "काणि पुण्णफलाणि ? तित्थयर-गणहर रिसिचक्क-वट्टि-बलदेव वासुदेव-सुर-विज्जाहर-रिद्धाओ" (ध० टी० १।१०५)

पुण्यके फल क्या है ? तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, सुर, विद्याधरकी ऋद्धियाँ पुण्यके फल है। इन पुण्यफलोकी प्राप्ति शुभोपयोगसे होती है।

जिनेन्द्रदेवकी आराधना-द्वारा पुण्यकी हो प्राप्ति होती है। भरत चक्रवर्तीने समवशरणमे जाकर आदिनाथ भगवान्का स्तवन करते हुए कहा था—

"भगवस्त्वद् गुणस्तोत्राद् यन्मया पुण्यमर्जितम्।
तेनास्तु त्वत्पदाम्भोजे परा भक्ति सदाऽपि मे ॥२३॥" ।१९६॥ म० पुराण।

हे भगवन् ! आपके गुणस्तवन-द्वारा जो मैंने पुण्य प्राप्त किया है, उसके फलस्वरूप आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा श्रेष्ठ भक्ति होवे। भगवज्जिनसेनकी यह वाणी इस विषयके अज्ञानांधकारको दूर कर देती है, कि विवेकी गृहस्थको पुण्यरूपी वृक्षका रक्षण करना चाहिए या उसका उच्छेद करके पापरूप विषका वृक्ष बोना चाहिए। आचार्य जिनसेन कहते है—

"पुण्याच्चक्रधर-श्रियं विजयिनीमैन्द्रीं च दिव्यश्रियं
पुण्यात्तीर्थंकरश्रियं च परमां नैश्रेयसीं चाश्नुते।
पुण्यादित्यसुभृच्छ्रियां चतसृणामाविर्भवेद् भाजनं
तस्मात्पुण्यमुपार्जयन्तु सुधियः पुण्याज्जिनेन्द्रागमात् ॥ ३०।१२९ ॥"

पुण्यसे सर्वविजयिनी चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। पुण्यसे इन्द्रकी दिव्यश्री प्राप्त होती है। पुण्यसे ही तीर्थंकरकी लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा परम कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्यसे प्राप्त होती है। इस प्रकार पुण्यसे ही यह जीव चार प्रकारकी लक्ष्मीको प्राप्त करता है। इसलिए हे सुधीजनो ! तुम लोग भी जिनेन्द्र भगवान्‌के पवित्र आगमके अनुसार पुण्यका उपार्जन करो।

प्रश्न—आगममें पुण्य प्राप्तिका क्या उपाय कहा है ? यह प्रश्न उत्पन्न होता है।

समाधान—महाकवि जिनसेन इस विषयका समाधान इस महत्त्वपूर्ण पद्य-द्वारा करते हैं—

"पुण्यं जिनेन्द्र-परिपूजनसाध्यमाद्यं
पुण्यं सुपात्र-गत-दानसमुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥२८।२१९॥" —महापुराण।

जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजामें उत्पन्न होनेवाला पुण्य प्रथम है। सुपात्रको दान देनेसे उत्पन्न पुण्य दूसरा है। व्रतोंके पालनसे उत्पन्न पुण्य तीसरा है। उपवास करनेसे चौथा पुण्य होता है। इस प्रकार पुण्यार्थी पुरुषको पूजा, दान, व्रत तथा उपवास-द्वारा पुण्यका उपार्जन करना चाहिए।

प्रश्न—पूजा, दान, व्रत तथा उपवाससे आत्माको क्या लाभ होगा ?

समाधान—इन चार कारणोंसे कषायभाव मन्द होते हैं। आत्माकी विभाव परणति न्यून होने लगती है। उससे अशुभका संवर होता है। पूर्वबद्ध पापराशि प्रलयको प्राप्त होती है। इसी प्रकार पुण्यबंधके साथ मोक्षके अगरूप संवर और निर्जरा तत्त्वोंकी भी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षुका मोक्षाभाव—जैन धर्मका कथन निरपेक्ष नहीं है। शुद्धोपयोगरूप परम समाधिकी स्थितिमें पुण्य उपादेय नहीं रहता है। उस अवस्थामें यह जीव मुमुक्षु भी नहीं कहा जा सकता है। सूक्ष्म-दृष्टिसे विचारनेपर यह कहना होगा कि मोक्ष जानेवाले व्यक्तिको मुमुक्षुकी भी उपाधिसे विमुक्त होना पड़ेगा। जबतक यह जीव मुमुक्षु रहेगा, तबतक उसे मोक्ष नहीं प्राप्त होगा और वह संसारमें परिभ्रमण करेगा। "मोक्तुमिच्छुः मुमुक्षुः"—जिसके मोक्षकी इच्छा है, वह मुमुक्षु है। जबतक मोक्षकी इच्छा है, तबतक राग भाव है, क्योंकि इच्छा रागरूप परिणाम है। रागीको मोक्ष नहीं प्राप्त होता है, विरागी ही मोक्ष प्राप्त करता है।

पद्मनंदिने पंचविंशतिकामें कहा है—

"मोक्षेऽपि मोहादभिलाषदोषो विशेषतो मोक्षनिषेधकारी।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो मुमुक्षुर्भवेत्किमन्यत्र कृताभिलाषः ॥ ५५ ॥"

मोहवश मोक्षकी इच्छा भी दोष रूप है, जो विशेषरूपसे मोक्षकी प्राप्तिमें बाधक है, इससे आत्म-तत्त्वमें लीन मुमुक्षु अन्य पदार्थकी इच्छा कैसे करेगा ?

उन्होंने यह भी कहा है कि परिग्रहधारीके सच्चा कल्याण असम्भव है। "परिग्रहवतां शिव यदि तद्दानलः शीतल '—यदि परिग्रही व्यक्तिको कल्याणका लाभ हो जाये, तो कहना होगा, कि अग्नि शीतल हो गयी।

परम प्रवीण वीतराग ऋषियोंने ससारी विषयलोलुपी जीवकी मनोदशाको सम्यक् प्रकार ज्ञात कर उसे पुण्यके माध्यममे श्रेष्ठ इन्द्रियजनित सुखोकी ओर आकर्षित करते हुए धर्मकी ओर आकर्षित किया है तथा पश्चात् विषयसुखकी निस्सारताका उपदेश देकर उसे निर्वाण दीक्षाकी ओर आकर्षित करते है और शुद्धोपयोगी बना मुक्तिश्रीका स्वामी बना देते हैं। उनकी तत्त्वदेशनाकी पद्धति यह है कि जीवको सर्व प्रथम पापोसे विमुख बनकर पुण्यकी ओर उन्मुख कर उसके फल वैभवको भी त्याग कर अकिंचन भावना-द्वारा उसे त्रिलोकीनाथ बनाया जाये। जो व्यक्ति हीनप्रवृत्तिको अपनाकर पापमें निमग्न हो रहा है, उसे कोई पापसे विमुख न बनाकर पुण्यक्रियाओसे विमुख बनाता है, तो वह उस जीवके कल्याणके प्रति महान् शत्रुता दिखाता है।

पूज्यपाद स्वामीका यह कथन स्मरणीय है—

"अपुण्यमव्रतै पुण्य व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्यय ।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥८३॥" —समाधिशतक ।

असयमी जीवन-द्वारा पापका सचय होता है। अहिंसादि व्रतोके द्वारा पुण्यकी प्राप्ति होती है। पुण्य-पाप दोनोके क्षय होनेपर मोक्ष होता है। इससे मोक्षार्थी मुनि अभेद रत्नत्रयरूप निर्विकल्प समाधिका आश्रय ले अव्रतके समान विकल्पात्मक व्रतोको भी त्यागे।

विकास क्रम—कोई-कोई सद्गुरुका शरण न मिलनेसे पापको तो जोरसे पकडते है और पुण्यको छोड़कर यह सोचते है, कि उन्होंने मोक्षमार्गको प्राप्त कर लिया है, उन्हें पूज्यपाद स्वामी-द्वारा समाधि-शतकमें प्रतिपादित त्यागका यह क्रम हृदयगम करना चाहिए—

"अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः ।
त्यजेत्तानपि सप्राप्य परम पदमात्मन ॥८४॥"

सर्वप्रथम प्राणातिपात, अदत्तादान, असत्यभाषण, कुशील सेवन, परिग्रहाभिलाषरूप पापके कारणोको अव्रतोको छोडकर अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहरूप व्रतोमे पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। इसके पश्चात् आत्माके निर्विकल्प रूपमें लीन हो परम समाधिको प्राप्त करता हुआ उन विकल्परूप व्रतोको छोडकर आत्माके परम पदको प्राप्त करे।

जब सविकल्प दशावाले परिग्रह त्यागी मुनीश्वरोके लिए पुण्यका कारण शुभयोग अथवा शुभोपयोग-युक्त सरागसयम आश्रयणीय है, तब प्रमादमूर्ति परिग्रही गृहस्थके लिए आर्त रौद्र ध्यानमे सबधित अशुभ-योगका त्याग करते हुए पुण्यका हेतु शुभयोग सदा उपादेय रहता है। शुद्धोपयोग सर्वश्रेष्ठ निधि है, किन्तु विषय कषायोके कारण जिसकी आत्मा अत्यन्त अशक्त है, वह निर्विकल्प परम समाधिरूप अप्रमत्त दशाको नहीं प्राप्त कर सकता है, अत उसके लिए शुभोपयोग कथंचित् उपादेय है तथा अशुभयोग दुर्गतिका बीज होनेसे सर्वथा तथा सर्वदा हेय है। अमृतचद्र सूरिको यह वाणी सर्वदा स्मरण योग्य है, "अत्यन्तहेय एवाय-मशुभोपयोग"।

आत्मानुशासनमे गुणभद्राचार्य कहते है—

"परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य-पापयो प्राज्ञा ।
तस्मात्पापापचय पुण्योपचयश्च सुविधेयः ॥२३॥"

ज्ञानी पुरुष पुण्य तथा पापका कारण जीवका परिणाम ही कहते हैं, अत निर्मल परिणामोके द्वारा पूर्वसचित पापका विनाश तथा आगामी पुण्यका संचय करना चाहिए।

उन्होने कहा है—

"शुभाशुभे पुण्यपापे सुख-दुःखे च षट् त्रयम् ।
हितमाद्यमनुष्ठेय शेषत्रयमथाहितम् ॥२३९॥"

शुभ-अशुभ, पुण्य पाप, सुख-दु ख ये छह अर्थात् तीन युगल हैं। इनमे आद्य शुभ, पुण्य तथा सुख—ये तीन उपादेय हैं तथा शेष अशुभ, पाप और दु ख त्याज्य है।

"तत्राप्याद्य परित्याज्य शेषौ न स्त स्वत स्त्रयम् ।
शुभ च शुद्धे त्यक्त्वाऽन्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥२४०॥"

पूर्वोक्त शुभ, पुण्य और सुख इनमें-से प्रथम शुभका त्याग होनेपर पुण्य तथा इद्रियजनित सुख स्वयमेव दूर हो जायेंगे। राग द्वेषरहित उदासीनतारूप शुद्ध परिणतिको प्राप्त होनेपर शुभका त्याग कर मोक्षरूप उत्कृष्ट पदको प्राप्त होता है।

यह बात स्मरण योग्य है, कि योग्यके द्वारा कर्मोंका आस्रव होता है, इसके पश्चात् आत्मा और कर्मोंका एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धरूप बध है।[1] उस समयकी अवस्थाको पचाध्यायीकार इस प्रकार समझाते हैं—

"जीव कर्मनिबद्धो हि जीवबद्ध हि कर्म तत् ॥"—२।१०४

—जीव कर्मसे निबद्ध हो जाता है और कर्म जीवसे बद्ध हो जाता है। दोनोका परस्परमें सश्लेष होता है। इस सश्लेष तथा परस्पर बधनबद्धताका भाव यह है कि कर्म अपना फलोपभोग दिये बिना आत्मासे पृथक् नही होते।

शंका—तत्त्वार्थसूत्रमे मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगको बधका कारण कहा है (अ० ८, सू० १०)। इसी प्रकार समयसारमें भी मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग बधका कारण गिनाया है। कहा भी है—

"सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णति बधकत्तारो ।
मिच्छत्त अविरमण कसाय-जोगा य बोधव्वा ॥१०९॥"

गोम्मटसार कर्मकाण्डमे मिथ्यात्व आदिको आस्रवरूप कहा है—

"मिच्छत्तं अविरमण कसाय-जोगा य आसवा होंति ।
पण बारस पणु वीस पण्णारसा होंति तब्भेया ॥७८६॥"

इस प्रकार भिन्न कथनोमें कैसे समन्वय किया जा सकता है?

समाधान—इस विषयमें अध्यात्मकमलमार्तण्डसे इस प्रकार समाधान प्राप्त होता है। उसमें कहा है कि मिथ्यात्व आदि चारो कारण बध और आस्रवमें हेतु है, क्योकि उनमें दोनो प्रकारकी शक्तियाँ पायी जाती हैं, जिस प्रकार अग्निमें दाहकत्व और पाचकत्वरूप शक्तियोका सद्भाव पाया जाता है। जो मिथ्यात्वादि प्रथम समयमे आस्रवके कारण होते हैं, उन्हीसे द्वितीय क्षणमें बध होता है इसलिए पूर्वोक्त कथनोमे अपेक्षा भेद है, वस्तुत देशनाओमें भिन्नता नही है। अध्यात्मकमलमार्तण्डके निम्नलिखित पद्य ध्यान देने योग्य हैं—

---

१ "आत्मकर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशात्मको बन्धः।"—स० सि०।

"चत्वार प्रत्ययास्ते ननु कथमिति भावास्रवो भावबन्ध-
श्चैकत्वाद्वस्तुतस्तो बत मतिरिति चेतन्न शक्तिद्वयात्स्यात् ।
एकस्यापीह वह्नेर्दहन पचन-भावात्म-शक्तिद्वयाद्वै
वह्निः स्याद्दाहकश्च स्वगुणगणबलात्पाचकश्चेति सिद्धे ।
मिथ्यात्वाद्यात्मभावा प्रथमसमय एवास्रवे हेतव स्युः
पश्चात्तत्कर्मबन्ध प्रतिसमसमये तौ भवेता कथञ्चित् ।
नव्याना कर्मणागमनमिति तदात्वे हि नाम्नास्रव स्याद्
आयत्या स्यात्स बन्ध स्थितिमिति लयपर्यन्तमेषोऽनयोर्भित् ॥" –परिच्छेद ४

शंका—श्लोकवार्तिकमें एक शका उत्पन्न करके समाधान किया गया है। शकाकार कहता है, "योग एव आस्रव सूत्रितो न तु मिथ्यादर्शनादयोऽपीत्याह"—योग ही आस्रव कहा गया है, मिथ्यादर्शनादिको आस्रव नहीं कहा गया है, इसका क्या कारण है ?

समाधान—ज्ञानावरणादि कर्मोंके आगमनका कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्यादृष्टिके ही होता है सासादन सम्यग्दृष्टि आदिके नही होता है। अविरति पूर्णतया असयतके ही पूर्णतया तथा एकदेश रूपसे पायी जाती है, सयतके नही पायी जाती है। प्रमाद भी प्रमत्तपर्यन्त पाया जाता है, अप्रमत्तादिके नहीं। कषाय सकषायके ही पायी जाती है, उपशान्त कषायादिके नही पायी जाती है। योगरूप आस्रव सयोगकेवली पर्यन्त सबके पाया जाता है। अत उसे आस्रव कहा है। मिथ्यादर्शनादिका सक्षेपसे योगमे ही अतर्भाव हो जाता है। (६, २, पृ० ४४३)

आस्रवके भेद—द्रव्यसंग्रहमे कहा है, जीवके जिन भावोसे कर्मोंका आगमन होता है उनको भावास्रव कहते है। कर्मोंका आगमन द्रव्यास्रव है। भावास्रवमें मिथ्यात्वादिका समावेश किया गया है।

"मिच्छत्ताविरदि पमाद-जोग-कोधादओऽथ विण्णेया ।
पण-पण-पण-दस तिय-चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥"

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग तथा क्रोधादि कषाय ये भावास्रवके भेद हैं। उनके क्रमश पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन तथा चार भेद कहे गये है।

"णाणावरणादीण जोग्ग ज पुग्गल समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥"

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों रूप परिणमन करने योग्य जो पुद्गल आता है, वह द्रव्यास्रव है, उसके अनेक भेद होते हैं, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

आस्रवके उत्तर क्षणमे बंध

आस्रव और बधके पौर्वापर्यके विषयमें विचार करते हुए पडितप्रवर आशाधरजी अपने अनगारधर्मामृतमें लिखते है—

"प्रथमक्षणे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रव, आगमनानन्तरं द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थानं बन्ध इति भेद ।"—पृ० ११२।

प्रथम क्षणमें कर्मस्कन्धोका आगमन—आस्रव होता है। आगमनके पश्चात् द्वितीय क्षणादिकमें कर्मवर्गणाओकी आत्मप्रदेशोमे अवस्थिति होती है उसे बध कहते हैं। यह उनमें अन्तर है। और भी ज्ञातव्य बात यह है—

"आस्रवे योगो मुख्यो बन्धे च कषायादि.। यथा राजसभायामनुग्राह्यनिग्राह्ययोः प्रवेशने राजादिष्ट-पुरुषो मुख्यः, तयोरनुग्रहनिग्रहकरणे राजादेशः" (११२)।

"आस्रवमे योगकी मुख्यता है तथा बधमें कषायादिककी प्रधानता है। जैसे राजसभामें अनुग्रह करने योग्य तथा निग्रह करने योग्य पुरुषोके प्रवेश करानेमें राज्य-कर्मचारी मुख्य है, किन्तु प्रवेश होनेके पश्चात् उन व्यक्तियोको सत्कृत करना या दडित करना इसमे राजाज्ञा मुख्य है।" इस प्रकार योगकी मुख्यतासे कर्मोके आगमनका द्वार खोल दिया जाता है। आगत कर्मोंका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना कषायादिकी मुख्यतासे होता है।

योगकी प्रधानतासे आकर्षित किये गये तथा कषायादिको प्रधानतासे आत्मासे सम्बन्धित कर्म किस भाँति जगत्की अनत विचित्रताओको उत्पन्न करनेमे समर्थ होता है? कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय है आदि ८४ लाख योनियोंमें जीव कर्मवश अनत वेष धारण करता फिरता है। यह परिवर्तन किस प्रकार सपन्न होता है, इस विषयको कुन्दकुन्दस्वामी इन शब्दो द्वारा स्पष्ट करते हैं—

"जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविह।
मसवसारुहिरादीभावे उयरग्गिसजुत्तो ॥१७९॥"
तह णाणिस्स दु पुव्व बद्धा पच्चया बहुवियप्प।
बज्झते कम्म ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥१८०॥"—समयसार।

जैसे पुरुषके द्वारा खाया गया भोजन जठराग्निके निमित्तवश मास, चर्बी, रुधिर आदि पर्यायोको प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् जीवके पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव बहुत भेदयुक्त कर्मोंको बाँधते है। वे जीव परमार्थ दृष्टिसे रहित है।

आचार्य पूज्यपाद[1] तथा अकलक स्वामीने सर्वार्थसिद्धि (८।२) और राजवार्तिक (९।७) में भी यही लिखा है।

जिस प्रकार भोज्यवस्तु प्रत्येकके आमाशयमे पहुँचकर भिन्न भिन्न रूपमे परिणत होती है, उसी प्रकार योगके द्वारा आकर्षित किये गये कर्मोंका आत्माके साथ सश्लेष होनेपर अनन्त प्रकार परिणमन होता है। इस परिणमनकी विविधतामें कारण रागादि परणतिकी हीनाधिकता है।

क्या बन्धका कारण अज्ञान है?

आत्माके बन्धन-बद्ध होनेका कारण कोई लोग अज्ञान या अविद्याको बताते है।[2] अज्ञानसे ही बन्ध होता है और ज्ञानसे मुक्ति लाभ होता है, इस विचारकी मीमासा करते हुए स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

"अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद् बहुतोऽन्यथा ॥" –आ० मी० ९६

—"अज्ञानके द्वारा नियमसे बन्ध होता है, ऐसा सिद्धान्त अगीकार करनेपर कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ-केवली न हो सकेगा, कारण ज्ञेय अनन्त है। अनत ज्ञेयोका बोध न होगा, अत जिनका ज्ञान न हो सकेगा, वे बन्धके हेतु होगे। इससे सर्वज्ञका सद्भाव न होगा। कदाचित् यह कहा जाये कि समीचीन अल्पज्ञानसे मोक्ष प्राप्त हो जायेगा, तो, अवशिष्ट महान् अज्ञानके कारण बध भी होगा। इस प्रकार किसीको भी मुक्तिका लाभ नही होगा।

---

१. "जठराग्न्यनुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्"
—स० सि० ८।२।२५२।

२ "ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्ध ॥" —सांख्यकारिका ४४।

शकाकार कहता है—आपके सिद्धान्तमे भी तो अज्ञानको बध तथा दु खका कारण बताया गया है, फिर 'अज्ञानसे बध होता है' इस पक्षके विरोध करनेमे क्या कारण है ? देखिए, अमृतचन्द्रसूरि क्या कहते हैं ?

"अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातु मृगाः
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जना. ।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुला ॥५८॥"

—अज्ञानके कारण मृगगण मृगतृष्णामें जलकी भ्रान्तिवश पानी पीनेके लिए दौडते है । अज्ञानके कारण लोग रस्सीमे सर्पकी भ्रान्ति धारण कर भागते है । जैसे पवनके वेगसे समुद्रमे लहरें उत्पन्न होती है, उसी प्रकार अज्ञानवश विविध विकल्पोको करते हुए स्वय शुद्धज्ञानमय होते हुए भी अपनेको कर्ता मानकर ये प्राणी दु खी होते है ।

समाधान—यहाँ मिथ्यात्व भाव विशिष्ट ज्ञानको अज्ञान मानकर उस अज्ञानकी प्रधानताकी विवक्षावश उपरोक्त कथन किया गया है । यथार्थमें देखा जाये, तो बधका कारण दूसरा है । राग द्वेषादि विकारोसहित अज्ञान बधका कारण है । थोडा भी ज्ञान यदि वीतरागता सपन्न हो तो कर्मराशिको विनष्ट करनेमे समर्थ हो जाता है । परमात्मप्रकाश टीकामे लिखा है—

"वीरा वेरग्गपरा थोव पि हु सिक्खिऊण सिज्झति ।
ण हु सिज्झति विरागेण विणा पढिदेसु वि सव्वसत्थेसु ॥"–(पृ० २२७)

–वैराग्यसपन्न वीर पुरुष अल्प ज्ञानके द्वारा भी सिद्ध हो जाते हैं । सपूर्ण शास्त्रोके पढनेपर भी वैराग्यके बिना सिद्ध पदकी प्राप्ति नही होती ।

कुदकुद स्वामीने भावपाहुडमे कहा है—

"अगाइ दस य दुण्णिय चउदस-पुव्वाइ सयलसुयणाण ।
पढिओ अ भव्वसेणो ण भाव-सवणत्तण पत्तो ॥ ५२ ॥"

भव्यसेन मुनिने बारह अग तथा चौदह पूर्व रूप सकल श्रुतज्ञानको पढा था, फिर भी वे अन्तरगसे श्रमणपनेको—भाव लिगी मुनिपनेको नही प्राप्त हुए ।

"तुसमास घोसतो भावविसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुड जाओ ॥ ५३ ॥"

निर्मल परिणाम युक्त तथा महान् प्रभाववाले शिवभूति मुनिराजने 'तुष माष' भिन्न—दाल और छिलका जैसे पृथक् है, इस प्रकार मेरा आत्मा भी कर्मरूपी छिलकेसे जुदा है इस पदको स्मरण करते हुए केवलज्ञान पाया था ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि शास्त्रका अभ्यास व्यर्थ है । उसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु ऐसा नही है कि ज्ञानावरणके उदयवश मन्दज्ञानी किन्तु विशुद्धचरित्र व्यक्तिको मोक्ष नही मिले । सम्यक्-चारित्रसे समलकृत मन्दज्ञानी भी कैवल्यश्रीका स्वामी होता है । मोहका क्षय अत्यन्त आवश्यक है । उसके साथमे आवश्यक अल्पज्ञान भी अद्भुत शक्तियुक्त हो जाता है ।

तार्किक समन्तभद्र अपने युक्तिवाद द्वारा इस समस्याको सुलझाते हुए कहते हैं—

"अज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद्वीतमोहत. ।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥" –आ० मी० ९८ ।

—'मोहविशिष्ट अर्थात् मिथ्यात्वयुक्त व्यक्तिके अज्ञानसे बंध होता है। मोहरहित व्यक्तिके ज्ञानसे बंध नहीं होता है। मोहरहित अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। मोहीके ज्ञानसे बन्ध होता है।'

यहाँ बन्धका अन्वयव्यतिरेक ज्ञानकी न्यूनाधिकताके साथ नही है। इससे ज्ञानको बंध या मुक्तिका कारण नही माना जा सकता। मोहसहित ज्ञान बंधका कारण है और मोहरहित ज्ञान मुक्तिका कारण है। अत यह बात प्रमाणित होती है कि बंधका कारण मोहयुक्त अज्ञान है और मुक्तिका कारण मोहका अभाव युक्त ज्ञान है क्योकि इसके साथ ही अन्वयव्यतिरेक सुघटित होता है।

शंका—यहाँ यह आशका सहज उत्पन्न होती है कि इस कथनका सूत्रकार उमास्वामीके इस सूत्रके साथ विरुद्धता है—"मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव"—(८, १)—तत्त्वका अनवबोध, असयम, असावधानता, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मन, वचन, कायकी चचलताके द्वारा बन्ध होता है।

समाधान—इस विषयका समाधान करते हुए विद्यानन्दिस्वामी कहते है (अष्टसह० पृ० २६७) कि मोहविशिष्ट अज्ञानमे सक्षेपसे मिथ्यादर्शन आदिका सग्रह किया गया है। इष्ट अनिष्ट फल प्रदान करनेमें समर्थ कर्म बन्धनका हेतु कषायैकार्थसमवायी अज्ञानके अविनाभावी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगको कहा गया है। मोह और अज्ञानमे मिथ्यात्व आदिका समावेश हो जाता है। दोनो आचार्योंके कथनमें तात्त्विक भेद नही है, केवल प्रतिपादनशैलीकी भिन्नता है।

एकान्तदर्शनोमे कर्म सिद्धान्तका असभवपना

स्वामी समन्तभद्रका कथन है कि यह कर्मबंधकी व्यवस्था स्याद्वाद शासनमे ही निर्दोष रीतिसे बनती है। एकान्त दर्शनोमे कर्मबंध फलानुभवन आदि बातें असभव है। वे कहते है[1] "हे जिनेन्द्र! अनित्यैकान्त आदि सिद्धान्तवादियोके यहाँ पुण्य कर्म, पाप कर्म, परलोक सिद्ध नहीं होते। एकान्तग्रहाविष्ट लोग अनेकान्त पक्षके विरोधी तो है ही, साथ ही वे स्वपक्षके भी घातक है।"

नित्यैकान्त अथवा अनित्यैकान्त पक्षमे क्रम तथा अक्रमपूर्वक अर्थक्रिया नही बनती। अर्थक्रियाकारित्वपनेके अभावमे पुण्य-पाप बंधादिकी व्यवस्था भी नही हो सकती। उदाहरणार्थ, बौद्धदर्शनमें कर्मकी मान्यता है यह स्थविर नागसेन और सम्राट् मिलिन्दके पूर्व प्रतिपादित प्रश्नोत्तरसे ज्ञात होता है, किन्तु बौद्धदर्शनके सर्व क्षणिकवाद तत्त्वके साथ उस कथानकका सामजस्य नही होता। बात यह है कि क्षणिक पक्षमे प्रत्येक पदार्थ क्षणस्थितिशील है, अत. उसमें कर्मोंका बंधन और फलोपभोग आदिकी बाते क्षणिकत्व सिद्धान्तके विरुद्ध पडती है। हिंसादि पापोका कर्त्ता अकुशल कर्मका सपादन तथा फलानुभवन नही करेगा, कारण उसका हिंसादि कार्य क्षणमें क्षय हो गया, अत फलोपभोक्ता अन्य व्यक्ति होगा। क्षणिक पक्षमें वस्तु तथा लोकव्यवस्था नही बनती।

इसे आप्तमीमासाकार इस प्रकार समझाते है—[2] "हिंसाका सकल्प करनेवाला द्वितीय क्षणमे नष्ट हो चुका, अत सकल्पविहीन व्यक्तिने हिंसा की, ऐसा कहना होगा। हिंसक व्यक्तिका भी उत्तर क्षणमें विनाश हो गया, इससे हिंसनकार्यके फलस्वरूप पीडा प्राप्त करनेवाला और बन्धनमे फँसनेवाला ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने न तो हिंसाका सकल्प किया है और न हिंसा ही की है। इसी न्यायके अनुसार बंधनबद्ध व्यक्ति तो नष्ट हो गया, मुक्ति प्राप्तकर्त्ता दूसरा ही होगा।" सूक्ष्म दृष्टिसे विचारनेपर इस प्रकारकी विचित्र स्थिति और अव्यवस्था क्षणिकैकान्त पक्षमे उत्पन्न होती है।

---

१ "कुशलाऽकुशल कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु॥"—आ० मी० ८।

२. "हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।
बध्यते तद्द्वयोपेत चित्त बद्ध न मुच्यते॥"—आ० मी० ५१।

क्षण क्षणमे पदार्थोंका सर्वथा नाश स्वीकार करनेपर किसी प्रकारकी नैतिक जिम्मेदारी भी नहीं होगी। किये गये कर्मोंका नाश और अकृत कर्मोंका फलोपभोग होगा, ऐसे सिद्धान्तमे कर्मबन्ध व्यवस्था नहीं बन सकती।[1]

नित्यैकान्तमे दोष

एकान्त नित्य पक्ष अंगीकार करनेपर क्रियाशीलताका अभाव होगा। अत देशक्रमका कारण देशान्तर गमन नहीं होगा। शाश्वतिक होनेसे कालक्रम नही बनेगा। सकल कालकलाव्यापी वस्तुको विशेष कालमें स्थित माननेपर नित्यत्वका विरोध होगा। कदाचित् सहकारी कारणकी अपेक्षा वस्तुमें क्रम मानते हो, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सहकारी कारण उस पदार्थमे कुछ विशेषता उत्पन्न करते हैं या नही ? यदि उसमें विशेषताकी उत्पत्ति मानते हो तो नित्यत्वका एकान्त नही रहता है। यदि नित्य वस्तुमें विशेषता उत्पन्न किये बिना भी सहकारी कारणोके द्वारा क्रम मानते हो, तो यह क्रमतत्त्व सहकारियोमे ही रहेगा। दूसरी बात यह है कि नित्य वस्तुमें देशक्रम कालक्रम नही पाया जाता।

नित्य पदार्थमे युगपद् अर्थक्रियाकारित्व माननेपर एक ही समयमे समस्त कार्योंकी उत्पत्ति हो जायेगी और द्वितीय क्षणमे क्रियाके अभावमें अवस्तुत्व हो जायेगा। अत नित्यैकान्त पक्षमें अर्थक्रियाका अभाव होनेसे कर्मबन्धको व्यवस्था भी नही बनती। ऐसी स्थितिमे सांख्यादिकोकी कर्ममान्यता उनकी मनोनीत सत् कार्यवाद रूप तत्त्व व्यवस्था आदिके प्रतिकूल सिद्ध होती है।

अद्वैत मान्यतामे बाधा

अद्वैत पक्ष माननेपर कर्मव्यवस्था नही बनती।[2] लौकिक-वैदिक कर्म, कुशल अकुशल कर्म, पुण्य-पाप कर्म आदिको स्वीकार करनेपर अद्वैत मान्यतापर वज्रपात होता है। अविद्याके कारण कर्मद्वैत मानना भी युक्तिसगत नही है, कारण ऐसी स्थितिमे विद्या, अविद्याका द्वैत उपस्थित होगा। स्वामी समन्तभद्रका (आप्तमी० २६, २७) कथन है कि द्वैतके बिना अद्वैत नहीं बनता, जैसे हेतुके अभावमे अहेतु नही पाया जाता है। प्रतिषेध्यके बिना सद्भावान् पदार्थका प्रतिषेध नही किया जा सकता। उनकी एक सुन्दर तथा सरल युक्ति है। यदि युक्तिसे अद्वैततत्त्व मानते हो, तो साधन और साध्यका द्वैत उपस्थित होता है। कदाचित् अपने वचनमात्रसे अद्वैतको प्रमाणित करते हो, तो इस पद्धतिसे द्वैत पक्ष भी क्यो नही सिद्ध किया जा सकता ? अत प्रमाण एव युक्तिविरुद्ध अद्वैतकी एकान्त मान्यतामे कर्मसिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।

अनेकात शासनमे ही समीचीन रूपसे कर्म-बध व्यवस्था सिद्ध होती है। एकातवादी अपनी दार्शनिक मान्यताके आधारपर कर्म-व्यवस्थाको प्रमाणित नही कर सकते।

कर्मसिद्धातका अतिरेक

कर्मसिद्धातका अतिरेक भी इष्ट साधक नही है। इसके अतिरेकवश मनुष्य दैवके नामपर अकर्मण्यताका आश्रय ले, अपने विकासके मार्गको अवरुद्ध करता है। कर्मको ही सब कुछ समझनेवाला कहता है—"यदत्र लिखित भाले तत्स्थितस्यापि जायते" जो भालमे लिखा है वह उद्यम न करनेपर भी प्राप्त हुए बिना न रहेगा। पौरुष करनेमे शक्ति लगाना व्यर्थ है 'विधिरेव शरणम्' भाग्य ही का भरोसा है, इस

---

१ प्रतिक्षण भङ्गिषु तत्पृथक्त्वान्न मातृघाती स्वपति स्वजाया।
दत्तग्रहो नाधिगतस्मृतिर्न न क्त्वार्थ-सत्य न कुल न जाति.॥ युक्त्यनुशासन १६॥

२ "कर्मद्वैत फलद्वैत लोकद्वैत च नो भवेत्। विद्याऽविद्याद्वय न स्याद्बन्धमोक्षद्वय तथा॥"
—आ० मी० २५।

प्रकार दैवैकांतके चक्रमें फँसे हुए व्यक्ति प्रलाप करते हैं। स्वामी समंतभद्र कहते हैं[1]—"दैवसे ही यदि प्रयोजन सिद्ध होता है, तो यह बताओ, जीवके प्रयत्नके द्वारा, दैवकी उत्पत्ति क्यों होती है? आज जो हमारा पुरुषार्थ है, भावी जीवनके लिए वह दैव बन जाता है। पूर्वकृत कर्मको छोड़कर दैव और क्या है?

यदि दैवके द्वारा दैवकी उत्पत्ति मानते हो और उसमें बुद्धिपूर्वक किये गये मानव प्रयत्नोंका तनिक भी हस्तक्षेप नहीं मानते, तो मोक्षकी प्राप्ति संभव न होगी, क्योंकि पूर्वकृत कर्मबंधके अनुसार ही आगामी कर्मका बंध होगा, इस प्रकारकी परंपरा चलनेसे मोक्षका अवसर नहीं मिलेगा और पौरुष अकार्यकारी ठहरेगा।

दैवैकांतकी दुर्बलतासे लाभ उठाते हुए पुरुषार्थवादी कहता है, बिना पौरुषके कोई कार्य नहीं बनता। सोमदेव सूरिके शब्दोंमें वह कहता है—

"येषां बाहुबलं नास्ति, येषां नास्ति मनोबलम्।
तेषां चन्द्रबलं देव! किं कुर्यादम्बरस्थितम्॥"—यशस्तिलक ३।५४।

जिनकी भुजाओंमें बल नहीं है और न जिनके पास मनोबल है ऐसे व्यक्तियोंका आकाशमें स्थित चन्द्रबल—जन्मकालीन नक्षत्र आदिकी स्थिति क्या करेगी?"

केवल भाग्यको ही भगवान् माननेवाले पुरुषोंका कृषि आदि कार्य करना कोई अर्थ नहीं रखता है।

पुरुषार्थका एकांत भी बाधित है

पुरुषार्थके अनन्य भक्तसे स्वामी समंतभद्र पूछते हैं[2] यदि, पुरुषार्थसे ही तुम कार्य सिद्धि मानते हो तो यह बताओ दैवसे तुम्हारा पुरुषार्थ कैसे उत्पन्न होता है? कदाचित् यह मानो कि हम सब कुछ पुरुषार्थके द्वारा ही संपन्न करते हैं, तब संपूर्ण प्राणियोंका पुरुषार्थ जयश्री समन्वित होना चाहिए। कर्मका तीव्र उदय आनेपर पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है। समान पुरुषार्थ करते हुए भी पूर्वकृत कर्मोदयानुसार फलमें भिन्नता पायी जाती है। समान श्रम करनेवाले किसान दैववश एक समान फसल नहीं काट पाते हैं।

समन्वय पथ

इस दैव और पुरुषार्थके द्वन्द्वमें अनेकांत समन्वय शैली-द्वारा मैत्री स्थापित करता है।[3] सोमदेव सूरि कहते है, "इस लोकमें फल प्राप्ति दैव—पूर्वोपार्जित कर्म तथा मानुषकर्म—पुरुषार्थ इन दोनोंके अधीन है। ऐसा न माननेवालोंसे आचार्य पूछते हैं कि क्या कारण है, समान चेष्टा करनेवालोंके फलोंमें–सिद्धिमें भिन्नता प्राप्त होती है?।" आचार्य कहते हैं—

"परस्परोपकारेण जीवितौषधयोरिव।
दैवपौरुषयोर्वृत्तिः फलजन्मनि मन्यताम्॥" —यशस्तिलक ३, ६३।

जैसे औषधि जीवनके लिए हितप्रद है और आयुकर्म औषधिके प्रभावके लिए आवश्यक है, अर्थात् जैसे फलोत्पत्तिमें आयुकर्म और औषधिसेवन परस्परमें एक-दूसरेको लाभ पहुँचाते हैं उसी प्रकार दैव और पौरुषकी वृत्ति समझना चाहिए।

---

१ दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत्॥"
—आ० मी० ८८।

२ "पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्। पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम्॥"
—आ० मी० ८९

३ "दैवं च मानुषं कर्म लोकस्यास्य फलाप्तिषु। कुतोऽन्यथा विचित्राणि फलानि समचेष्टिषु॥"
—य० ति०, ३, ६०

[1]वे कहते हैं, दैव चक्षु आदि इन्द्रियोके अगोचर अतींद्रिय आत्मासे सबंधित है और प्राणियोकी सपूर्ण क्रियाएँ पुरुषार्थपर निर्भर है, इसलिए उद्यमकी ओर ध्यान रहना चाहिए।

सत्परामर्श—आत्मानुशासनमे भव्य प्राणीको यह सत्परामर्श दिया है कि वह वर्तमान जीवनको सुखी बनानेके लिए जो अधिक श्रम उठाता है वह अच्छा नही है। उसे उज्ज्वल भविष्य निर्माणके क्षेत्रमें विशेष प्रयत्नशील होना चाहिए। वर्तमान जीवन तो अतीतके पुरुषार्थका पुरस्कार है जो दैवके नामसे वर्तमानमे माना जाता है। भदन्त गुणभद्रके महत्त्वपूर्ण शब्द इस प्रकार हैं—

"आयु श्रीवपुरादिक यदि भवेत्पुण्य पुरोपार्जित
स्यात् सर्वं न भवेन्न तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि।
इत्यार्या सुविचार्य कार्यकुशला कार्येऽत्र मन्दोद्यमा-
द्रागागामिभवार्थमेव सतत प्रीत्या यतन्तेतराम् ॥३७॥"

—यदि पूर्वमे सचित पुण्य पासमे है, तो दीर्घ जीवन, धन तथा शरीर, सपत्ति आदि मनोवाछित पदार्थ प्राप्त हो सकते है। यदि वह पुण्य नही है, तो स्वयको अपार कष्ट देनेपर भी वह सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव उचित-अनुचितका सम्यक् रूपसे विचार करनेमे प्रवीण श्रेष्ठजन भावी जीवन निर्माणके विषयमें शीघ्र ही प्रीतिपूर्वक विशेष प्रयत्न करते हैं तथा इस लोकके कार्योंके विषयमें उद्यम नहीं करते।

कोई-कोई प्रमादी मानवोचित पुरुषार्थ करनेसे जो चुराते हुए भाग्यका अथवा नियति (Destiny) का आश्रय लेकर अपने मिथ्या पक्षको उचित बतानेका प्रयत्न करते है। वे लोग कहते है कि जिस समय जैसा होना है उस समय वैसा ही होगा। नियतिके विधानको बदलनेकी किसीमे सामर्थ्य नही है। उसका उल्लघन नही हो सकता। आचार्य नेमिचद्र सिद्धातचक्रवर्तीने ऐसे भीरुतापूर्ण भावोको मिथ्यात्वका भेद नियतिवाद कहा है—

"जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्त तदा।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु॥८८२॥

जो जिस कालमें जिसके द्वारा जैसे जिसके नियमसे होता है वह उस कालमे उससे उस प्रकार उसके होता है। इस प्रकारका पक्ष नियतिवाद है।

विवेकी व्यक्ति आत्मशक्ति, जिनेंद्रभक्ति तथा जिनागमकी देशनाका आश्रय लेकर अपना जीवन सयम तथा सदाचार समलकृत बनाता हुआ, दैवका दास न बनकर अपने भविष्यका निर्माता बनता है। जो दैव या नियति आदिकी ओटमें पापसे चिपके रहते है, वे अपने नरजन्म रूपी चिंतामणिरत्नको समुद्रमें फेंक देते हैं।

समन्तभद्र स्वामी इस सबधमें अत्यत महत्त्वपूर्ण मार्ग दर्शन करते है—अबुद्धि[2]पूर्वक इष्ट अनिष्ट कार्य अपने दैवकी प्रधानतासे होता है। बुद्धिपूर्वक इष्ट अनिष्ट फल प्राप्तिमे पौरुषकी प्रधानता है।

सोते हुए व्यक्तिका सर्पसे स्पर्श होते हुए भी मृत्यु न होनेमें दैवकी प्रधानता है। लेकिन सर्प देखकर बुद्धिपूर्वक आत्मरक्षा करनेमे पुरुषार्थकी विशेषता कारण है।

भोगी प्राणी दैव और पुरुषार्थके महोदधिको मथकर अमृतके स्थानपर विष निकाल कर सोचता है, और तदनुसार नि सकोच हो प्रवृत्ति भी करता है, वह अविवेकी मोक्ष मार्गके लिए दैवकी ओर निहारा

---

१ "तथापि पौरुषायत्ता सत्त्वाना सकला क्रिया। अतस्तच्चिन्त्यमन्यत्र का चिन्तातीद्रिन्यात्मनि॥"
—य० ति० ३, ६४

२. "अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवतः। बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात्॥"
—आ० मी० ९१

करता है और विषय भोगके लिए कमर कसकर पुरुषार्थी बनता है। मुमुक्षु प्राणी विषयादिकोके विषयमें पुरुषार्थको अधिक महत्त्व नही देता। वह अपने पौरुषका प्रयोग कर्म जालके काटनेमें करता है। तत्त्वकी बात यह है कि मुमुक्षुके धर्माराधनरूप प्रयत्नसे विरुद्ध भी कर्म क्षोण-शक्तियुक्त बन जाता है। इस प्रकार आत्म विकासका मार्ग अधिक सरल और उज्ज्वल हो जाता है।

जैन शासनमे यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थके द्वारा यह जीव अनादि कालसे आगत पुरातन कर्म पुजको अतर्मुहूर्तके भीतर ही विनष्ट करनेमे समर्थ होता है। आत्मकल्याणके क्षेत्रमें दैव या नियतिका आश्रय ले प्रमादी तथा विषयासक्त न बनकर सत्साहसपूर्वक कर्मोंको नष्ट करनेके हेतु सत्प्रयत्न करते जाना चाहिए। मोक्ष पुरुषार्थीको मिलता है। वह स्वय चतुर्थ पुरुषार्थ कहा गया है।

कर्मोका विभाजन

इस कर्मके शब्दकी अपेक्षा असख्यात भेद हैं। अनतानत प्रदेशात्मक स्कन्धोके परिणमनकी अपेक्षा कर्मके अनत भेद होते है। ज्ञानावरणादिके अविभागी प्रतिच्छेदोकी अपेक्षा भी अनन भेद कहे जाते है।[1] इस कर्मकी बध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना रूप दस करणात्मक अवस्थाएँ पायी जाती है[2]। बधकी परिभाषा की जा चुकी है। उत्कर्षण[3] करणमें कर्मके अनुभाग तथा स्थितिकी वृद्धि होती है। अपकर्षणमे इसके विपरीत बात होती है। सक्रमण करणमे एक कर्मप्रकृतिका अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मोंको उदय कालके पूर्व उदयावलीमे लाना उदीरणा करण है। कर्मोंका सत्तामें रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावलीमे न आकर कर्मोंकी उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मोकी ऐसी अवस्था, जिसमें उत्कर्षण, अपकर्षण करणके सिवाय उदीरणा तथा सक्रमण न हो सके, निधत्ति है। ऐसी कर्म-स्थिति, जिसमे उदीरणा, सक्रमण, उत्कर्षण, तथा अपकर्षण न हो सके, निकाचना कही जाती है।

कर्मोंकी इन दस अवस्थाओपर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह जीव अपने परिणामोके अनुसार कर्मोको हीनशक्ति और महान् शक्तियुक्त बना सकता है। यह उदीरणाके द्वारा उदयकालके पूर्व भी कर्मोको उदय अवस्थामे ला निर्जीर्ण कर सकता है। कभो कर्म शक्तिहीन बनकर निर्जराको प्राप्त होते हैं। सार बात यह है कि जीव अपने परिणामोके अनुसार कर्मोको भिन्न रूपमें परिणत कर सकता है।

कर्मका फल भोगना ही पडेगा—"नाभुक्त क्षीयते कर्म" यह बात जैन सिद्धातमे सर्वथा रूपमें सभव नही है। जब आत्मामे रत्नत्रयकी ज्योति प्रदीप्त होती है तब अनतानत कार्माणवर्गणाएँ बिना फल दिये हुए निर्जराको प्राप्त हो जाती है। केवली भगवान्‌को असाता प्रकृति कुछ भी बिना फल दिये हुए साता रूपमे परिणत होकर निकल जाती है। इसलिए वीतराग शासनमे केवलीके असाता निमित्तक क्षुधा तृषा आदिकी पीडाका अभाव माना गया है।

बंधके प्रकार

कर्मबधके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश ये चार भेद बताये गये है। महाबधके इस प्रथम खडमें प्रकृतिबधका विविध अनुयोग द्वारोसे वर्णन किया गया है। प्रकृति शब्दका अर्थ है स्वभाव, जैसे गुडकी प्रकृति मधुरता है। ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव ज्ञानका आवरण करना है। दर्शनावरणकी प्रकृति

१ अन० धर्मा० पृ० ३००।

२ 'बधुक्कट्टणकरण सकममोकट्टुदीरणा सत्तं।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी।।"—गो० क० ४३७

३ गो० क० ४३८–४०।

दर्शन गुणको ढाँकना है। वेदनीयका स्वभाव सुख दु:खका अनुभवन कराना है। मोहनीयका स्वभाव आत्माके दर्शन और चारित्र गुणोको विकृत करना है। यह आत्माके सुख गुणको भी नष्ट करता है। मनुष्यादिके भवधारणका कारण आयु कर्म है। नर नारकादि नामसे जोव सकीर्तित होता है, इसका कारण नामकी रचनाविशेष है। उच्च या नीच शरीरमें जोवको रखना गोत्रकी प्रकृति है। दान-भोगादिमे बाधा डालना अतराय कर्मकी प्रकृति है।

इन आठ कर्मोंके नामके अनुसार उनकी प्रकृति कही गयो है। इन कर्मोका स्वभाव समझानेके लिए जैन आचार्योंने निम्नलिखित उदाहरण दिये है। ज्ञानावरणका उदाहरण परदा है। दर्शनावरणका द्वारपाल है, कारण उसके द्वारा इष्ट दर्शनका आवरण होता है। मधुलिप्त असिधाराके समान वेदनीय कर्म है। वह मधुरताके साथ जीभ कटनेका सताप पैदा करतो है। मोहनीय मदिराके समान जीवको आत्म-स्मृति नहीं होने देता है। आयु कर्म काष्ठके खाडा—बधनविशेष—द्वारा व्यक्तिको कैदी बनानेके समान है। नामकर्म भिन्न भिन्न शरीर आदिकी रचना चित्रकारके समान किया करता है। गोत्रकर्म, जीवको उच्च, नीच शरीरधारी बनाता है, जैसे कुम्भकार छोटे-बडे बर्तन बनाता है। भडारी जिस प्रकार स्वामी-द्वारा स्वीकृत द्रव्यको देनेमें बाधा पैदा करता है, उसी प्रकार विघ्न करना अतरायका स्वभाव है।

इन आठ कर्मोंके १४८ भेद कहे गये हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय कर्म जीवके क्रमश ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व तथा अनत वीर्यरूप अनुजीवी गुणोको घातनेके कारण घातिया कहे जाते हैं। आयु, नाम, गोत्र तथा वेदनीयको अघातिया कर्म कहा है। ये जीवके अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्व नामक प्रतिजीवी गुणोको घातते हैं।

स्थितिबध उसे कहते हैं, जिसके कारण प्रत्येक कर्मके बधनकी कालमर्यादा निश्चित होती है। कर्मोंके रस प्रदानकी सामर्थ्यको अनुभागबध कहा है। कर्मवर्गणाओके परमाणुओकी परिगणनाको प्रदेशबध कहते है। कहा भी है—

"स्वभाव प्रकृति प्रोक्ता स्थिति. कालावधारणम्।
अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोंऽशविकल्पनम्॥"

योगके कारण प्रकृति और प्रदेश बध होते हैं। कषायके कारण कर्मोंमें स्थिति और अनुभागका बध होता है।

कर्मकृत परिणमनपर वैज्ञानिक दृष्टि

गधक, शोरा, तेजाब आदिके मिलनेपर रासायनिक प्रक्रिया प्रारभ होती है, तथा भिन्न प्रकारके तत्त्वविशेषकी उपलब्धि होती है इसी प्रकार कर्मोका जोवके साथ सम्मेलन होनेपर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारभ होती है। और उससे अनत प्रकारकी विचित्रताएँ जीवके भावानुसार व्यक्त हुआ करती है। जोवके परिणामोमे वह बीज विद्यमान है जो प्रस्फुटित तथा विकसित होकर अनतविध विचित्रताओको विशाल वट वृक्षके समान दिखाता है। कोई जोव मरकर कुत्ता होता है तो श्वान पर्यायमे उत्पन्न होनेके पूर्व व्यक्तिकी मनोवृत्तिमे श्वान वृत्तिके बीज सार रूपमें सगृहीत होगे, जिनके प्रभावसे गृहीत कार्माणवर्गणा श्वान सबधी सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देंगी या उस रूप परिणत होगी।

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिए उसे बाँधनेवाली कार्माण वर्गणाओका पुज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुजमें अनत प्रकारके परिणमन प्रदर्शनकी सामर्थ्य है। अणु बममें (Atom bomb) आकारकी अपेक्षा अत्यन्त लघुताका दर्शन होता है, किंतु शक्तिकी अपेक्षा वह सहस्रो विशाल बमोसे अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राईके दानेसे भी छोटा बम बन सकता है जो ससार-भरको हिला दे।

आत्माके साथ मिली हुई कार्माण वर्गणाओंमें अनतानत प्रदेश कहे गये हैं, जो अभव्य जीवोंसे अनत गुणित हैं फिर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे इन्द्रियोके अगोचर हैं। उनमे विद्यमान कर्मशक्ति (Karmic-energy) अद्भुत खेल दिखाती है। किसी जीवको निगोद अपर्याप्तक पर्यायवाला जीव बना एक श्वासमे अठारह बार शरीर निर्माण और ध्वस-द्वारा जीवन-मरणको प्रदर्शित करती है। वह आत्माकी अनंत ज्ञान-शक्तिको ढाँककर अक्षरके अनतवे भाग बना देती है। कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है—

> "का वि अपुव्वा दीसदे पुग्गलदव्वस्स एरिसो सत्ती।
> केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥ २११ ॥"

—पुद्गल कर्मकी भी ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है, जिसके कारण जीवका केवलज्ञान स्वभाव विनाशको प्राप्त हो गया है।

उस कर्म शक्तिके कारण गाय, बैल, ऊँट आदिका आकार-प्रकार प्राप्त होता है। ऐसा कौन-सा काम है जो उस शक्तिकी परिधिके बाहर हो। ज्ञानावरणके रूपमे उसके द्वारा बुद्धिकी हीनाधिकताका विचित्र दृश्य निर्मित होता है, लेकिन जिस प्रकार नाटकका अभिनय करानेवाला सूत्रधार होता है जिसके सकेतके अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारक जीवके भाव हैं। उन भावोकी हीनता, उच्चता, वक्रता, सरलता, समलता, विमलता आदिपर जिन बाह्य क्रियाओका प्रभाव पड़ता है उनसे भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्म बँधते हैं उनका वर्णन जैन महर्षियोने किया है जिनके अध्ययनसे मानव इस बातकी कल्पना कर सकता है कि उसका अतीत कैसा था जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवनके अनुसार वह अपने किस प्रकारके भविष्यका निर्माण कर सकता है।

उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति अत्यत मद ज्ञानी है। इसका क्या कारण है ? शरीरशास्त्री तो शारीरिक कारणोके द्वारा मस्तिष्कके परमाणुओकी दुर्बलताको दोषी ठहरायेगा, किंतु कर्मसिद्धान्तका ज्ञाता कहेगा कि इस जीवने पूर्वमे जब कि इसके वर्तमान जीवनका निर्माण हो रहा था ज्ञानको ढाँकनेवाली साधन सामग्रीको सगृहीत किया था। इसी प्रकार अन्य प्रकारके बाह्य और आभ्यन्तर कार्योंके विषयमें कर्म सिद्धान्तवाला समर्थन करेगा।

कर्मोंके आगमनके कारणोका स्पष्टीकरण

ज्ञानावरणके कारण—ज्ञानावरण कर्ममे विशेष कारण निम्नलिखित बाते बतायी गयी है जैसे—निर्मल ज्ञानके प्रकाशित होनेपर मनमें दूषित भाव रखना, ज्ञानको छिपाना, योग्य व्यक्तिको दुर्भाववश ज्ञान प्रदान न करना, दूसरेकी ज्ञान-साधनामे बाधा डालना, वाणी अथवा प्रवृत्तिके द्वारा ज्ञानवान्के ज्ञानका निषेध करना, पवित्र ज्ञानमे लाछन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञानका अभिमान तथा ज्ञानियोका अपमान, अन्याय पक्ष समर्थनमे शक्ति लगाना, अनेकात विद्याको दूषित करनेवाला कथन करना आदि। इस प्रकारके कार्योंसे जो जीवके मलिनभाव होते है उनके द्वारा इस प्रकारका मलिन कर्मपुज गृहीत होता है, जो ज्ञानके प्रकाशको ढाँकता है।

दर्शनावरणके कारण—उपरोक्त बाते दर्शनके विषयमे करनेसे दर्शनावरण कर्म आता है। उसके अन्य भी कारण है जैसे अधिक सोना, दिनमे सोना, आँखोको फोड देना, निर्मल दृष्टिमे दोष लगाना, मिथ्या मार्गवालोंकी प्रशसा करना आदि।

वेदनीयके कारण—जिस असाता वेदनीयके कारण जीव कष्टमय जीवन बिताता है उसके कारण ये है—स्व, पर अथवा दोनोको पीडा पहुँचाना, शोकाकुल रहना, हृदयमे दुःखी बने रहना, रुदन करना, प्राणघात करना, अनुकम्पा उत्पादक फूट-फूटकर रोना, अन्यकी निन्दा और चुगली करना, जीवोपर दया न करना, अन्यको सताप देना, दमन करना, विश्वासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आजीविका, साधुजनोकी

निंदा करना, उन्हें सदाचारके मार्गसे डिगाना, जाल, पिंजरा आदि जीवघातक पदार्थोंका निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्तिका विनाश करना आदि।

जीवको आनंदप्रद अवस्था प्राप्त करानेवाले साता वेदनीयके कारण ये हैं—जीवमात्रपर दया करना, सन्त जनोंपर स्नेह रखना, उन्हें दान देना, प्रेमपूर्वक संयम पालन करना, विवशतामें शांत भावसे कष्टोंको सहन करना, क्रोधादिका त्याग करना, जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा, सत्पुरुषोंकी सेवा-परिचर्या आदि।

मोहनीयके कारण—मोहनीय कर्मके कारण मदोन्मत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता, और न सच्चे कल्याणके मार्गमें लगता है।[1] दर्शन मोहनीयके कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वोंके विषयमें यह सम्यक् श्रद्धासे वंचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टिसे श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाशको नहीं प्राप्त करता। इसके कारण ये हैं—जिनेन्द्रदेव वीतराग वाणी तथा दिगम्बर मुनिराजके प्रति काल्पनिक दोष लगा संसारकी दृष्टिमें मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्मके फलरूप श्रेष्ठ आत्माओंमें पाप प्रवृत्तियोंके पोषणकी सामग्रीको बता भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्गका प्रचार करना आदि।

चारित्र मोहनीयके कारण यह जीव अपने निज स्वरूपमें स्थित न रहकर क्रोधादि विकृत-अवस्थाको प्राप्त करता है। क्रोधादिके तीव्र वेगवश मलिन प्रचण्ड भावोंका करना, तपस्वियोंकी निन्दा तथा धर्मका ध्वंस करना, संयमी पुरुषोंके चित्तमें चंचलता उत्पन्न करनेका उपाय करनेसे, कषायोंका बंध होता है। अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरेके उपहाससे हास्यका पात्र बनता है। विचित्र रूपसे क्रीडा करनेसे, औचित्यकी सीमाका उल्लंघन करनेसे रति वेदनीयका आगमन होता है। दूसरेके प्रति विद्वेष उत्पन्न करना, पापप्रवृत्तिवालोंका संसर्ग करना, निंद्य प्रवृत्तिको प्रेरणा प्रदान करना आदि अरति प्रकृतिके कारण हैं। दूसरेको दुःखी करना और दूसरेको दुःखी देख हर्षित होना शोक प्रकृतिका कारण है। भय प्रकृतिके द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, उसका कारण भयके परिणाम रखना, दूसरोंको डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है। ग्लानिपूर्ण अवस्थाका कारण जुगुप्सा प्रकृति है। पवित्र पुरुषोंके योग्य आचरणकी निन्दा करना, उनसे घृणा करना आदिसे यह बँधती है। स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेदका कारण महान् क्रोधी स्वभाव रखना, तीव्र मान, ईर्ष्या, मिथ्यावचन, तीव्रराग, परस्त्रीसेवनके प्रति विशेष आसक्ति रखना, स्त्री सम्बन्धी भावोंके प्रति तीव्र अनुराग भाव है। पुरुषत्व सम्पन्न पुरुषवेदके कारण क्रोधकी न्यूनता, कुटिल भावोंका अभाव, लोभ तथा मानका त्याग, अल्प राग, स्वस्त्रीसंतोष, ईर्षा-परिणामकी मंदता, आभूषण आदिके प्रति उपेक्षाके भाव आदि हैं। जिसके उदयसे नपुंसक वेद मिलता है, उसके कारण प्रचुर प्रमाणमें क्रोध, मान, माया, लोभसे दूषित परिणामोंका सद्भाव, परस्त्रीसेवन, अत्यंत हीन आचरण, तीव्र राग आदि हैं।

आयुके कारण—नरक आयुके कारण बहुत आरंभ और अधिक परिग्रह हिंसाके परिणाम, मिथ्यात्व-पूर्ण आचरण, तीव्र मान तथा लोभ, दूसरेको संताप पहुँचाना, सदाचार तथा शीलहीनता, काम, भोगसंबंधी अभिलाषामें वृद्धि, बध बंधन करनेके भाव, मिथ्याभाषण, पापनिमित्तक आहार, सन्मार्गमें दूषण लगाना, कृष्ण लेश्या युक्त रौद्र ध्यान सहित मरण करना है।

---

१ आत्माको पराधीन बनाकर दुःखी बनानेमें प्रमुख स्थान मोहनीय कर्मका है। मोहके कारण ज्ञान अज्ञानरूप बनता है। तत्त्वानुशासनमें मिथ्याज्ञानको मोह महाराजका मंत्री कहा है—
"बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितं। मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रयत ॥१२॥"
बंधके कारणोंमें मोह चक्रवर्ती कहा गया है। मिथ्याज्ञानने सचिवरूपमें उसका आश्रय लिया।
"ममाहंकारनामानौ सेनान्यौ च तत्सुतौ। यदायत्तः सुदुर्भेदो मोहव्यूहः प्रवर्तते ॥१३॥"
उस मोहके ममकार अहंकार नामके दो पुत्र सेनानायक हैं। उन दोनोंके आधीन मोहका व्यूह–सेना चक्र कार्य करता है।

पशु पर्यायके कारण कुटिल तथा छलपूर्ण मनोवृत्ति तथा प्रवृत्ति, अधर्म प्रचार, विसवाद उत्पन्न करना, जाति, कुल तथा शीलमें कलक लगाना, नकली नाप-तौलका सामान रखना, नकली सोना, मोती, घी, दूध, अगर, कपूर, कुकुम आदिके द्वारा लोगोको ठगना, सद्गुणोका लोप करना, आर्तध्यान युक्त मरण करना आदि है।

मनुष्यायुके कारण अल्पारभ तथा अल्पपरिग्रह, मृदुल परिणाम, महान् पुरुषोका सम्मान, सतोष वृत्ति, दानमें प्रवृत्ति, सक्लेशका अभाव, वाणीका सयम, भोगोके प्रति उदासीनता, पापपूर्ण कार्योंसे निवृत्ति, अतिथि सविभागशीलता आदि है। प्रेमपूर्वक पूर्ण तथा अल्प सयमका धारण करना, सकट आनेपर शात भाव धारण करना, तत्त्वज्ञान शून्य तपश्चर्या, दयापूर्ण अतःकरण आदिसे देवायुकी प्राप्ति होती है।

नामके कारण—विकृत अग उपाग होना, शरीर सबधी दोषोका सद्भाव, अपयश आदिका कारण अशुभ नाम कर्म है। वह मन, वचन, कायकी कुटिलता, मिथ्याप्रचार, मिथ्यात्व, परनिन्दा, मिथ्या, कठोर तथा निरकुश भाषण, महा आरभ और परिग्रह, आभूषणोमे आसक्ति, मिथ्यासाक्षी, नकली पदार्थोंका देना, वनमे आग लगाना, पापपूर्ण आजीविका करना, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाम, मदिरके धूप, गध, माल्य, आदिका अपहरण करना, अभिमान करना, अन्यके घातक यत्र आदि बनाना, दूसरेके द्रव्यका अपहरण करनेसे सम्पादित होता है। इस अशुभ नाम कर्मके कारण आज जगत्में शारीरिक विकृतियोकी बहुलता दिखती है। शुभ नाम कर्मका कारण पूर्वोक्त प्रवृत्तियोसे विपरीतपना है।

गोत्रके कारण—लोकनिन्दित कुलोंमें जन्म धारण करनेका कारण नीच गोत्र है। वह जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य आदिका मद, दूसरोका तिरस्कार अथवा अपवाद, सत्पुरुषोकी निंदा, यशका अपहरण करना, पूज्य पुरुषोका तिरस्कार करना, अपनेको बडा बताना, दूसरोकी हँसी उडाना आदिमे प्राप्त होता है। श्रेष्ठ कुलोमें उत्पन्न होकर लोकप्रतिष्ठा लाभका कारण उच्च गोत्र कर्म है। यह मानरहितपना, सत्पुरुषोका आदर करना, जाति कुल आदिका उत्कर्ष होते हुए उसका अभिमान नही करना, अन्यका तिरस्कार, निंदा, उपहास न करना, अनुपमगुणभूषित होते हुए भी निरभिमानिता, भस्मसे ढँकी हुई अग्निके समान अपनी महिमाका स्वय प्रकाशित न करना, धर्मके साधनोका सम्मान करना आदिसे प्राप्त होता है।

अतरायके कारण—प्रत्येक कार्यमें विघ्न उपस्थित करनेवाला अतराय कर्म है। वह प्राणिवध, ज्ञानका निषेध करना, धर्म कार्योंमे विघ्न उत्पन्न करना, देवताको अर्पित नैवेद्यका प्रमादपूर्वक ग्रहण करना, भोजन पान आदिमे विघ्न करना, निर्दोष सामग्रीका परित्याग, गुरु तथा देवपूजाका व्याघात करना आदिके द्वारा सम्पन्न होता है। यह अतराय कर्म दान देना, पदार्थोकी प्राप्ति, उनका भोग तथा उपभोगमे बाधा उत्पन्न करता है। इसके ही कारण जीव शक्तिहीन होता है।

उपरोक्त कारणोसे ज्ञानावरण आदिको विशेष अनुभाग मिलता है कारण आयु कर्मको छोडकर शेष कर्मोका निरतर बध हुआ करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसीने यदि ज्ञानके साधनोमे बाधा उपस्थित की तो उसके मोहनीय अतराय आदि कर्मोंका भी आस्रव होगा। इतनी विशेषता होगी कि ज्ञानावरणको विशेष अनुभाग मिलेगा, ज्ञानावरणके रसमे प्रकर्षता होगी।

तत्त्वज्ञानीके बंध होता है या नही ?

इस बधतत्त्वके विषयमे कुछ लोगोकी ऐसी समझ है कि सम्यक्त्वकी आत्मनिधि मिलनेपर आत्माकी बध-परम्परा नष्ट हो जाती है। वे कहते हैं बधका कारण अज्ञान चेतना है। सम्यग्दृष्टिके ज्ञान चेतना होती है, इसलिए वह बधनकी व्यथासे मुक्त है। ज्ञानसे मुक्ति लाभका समर्थन साख्य, बौद्ध, नैयायिक आदि भी करते हैं। यदि ज्ञान अथवा सम्यग्दर्शनके द्वारा कर्मोका अभाव हो जाये, तो रत्नत्रय मार्गकी मान्यताके साथ कैसे समन्वय होगा ?

सम्यग्दृष्टिके बधके विषयमें अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—"ज्ञानी जीव आस्रव-भावनाके अभिप्रायके अभाववश निरास्रव है। वहाँ उसके भी द्रव्यप्रत्यय प्रत्येक समय अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मोंको बाँधते हैं। इसमे ज्ञानगुणका परिणमन कारण है।"

यहाँ शकाकार पूछता है—ज्ञानगुणका परिणमन बधका हेतु किस प्रकार है?

इसपर महर्षि कुन्दकुन्द कहते हैं—

"जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।
अण्णत्त णाणगुणो तेण दु सो बधगो भणिदो॥"—स० सा० १७१।

—'यत ज्ञानगुण जघन्य ज्ञानगुणसे पुन अन्यरूप परिणमन करता है, तत वह ज्ञानगुण कर्मका बधक कहा गया है।'

इस प्रकार प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्र सूरि कहते है—"ज्ञानगुणस्य यावज्जघन्यो भावः, तावत् तस्यान्तर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुन पुनरन्यतयाऽस्ति परिणामः। स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्ताद्वश्यम्भाविरागसद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात्" 'जबतक ज्ञानगुणका जघन्यभाव है—क्षायोपशमिक भाव है, तबतक उसका अतमुहूर्तमे विपरिणमन होता है, इस कारण पुन पुन अन्यरूप परिणमन होता है। वह ज्ञानका परिणमन यथाख्यात चारित्ररूप अवस्थाके नीचे निश्चयसे रागसहित होनेसे बधका ही कारण है।"

सर्वार्थसिद्धिमे कहा है, "यथाख्यात-विहारशुद्धि-सयता उपशान्तकषायाद्योऽयोगकेवल्यन्ता" (१।८ पृष्ठ १२)—यथाख्यात विहारशुद्धि सयमी उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानसे अयोगी जिनपर्यन्त पाये जाते है। अत कषायरहित जीवोके ही अबध होता है। अध्यात्मशास्त्रमें सम्यक्त्वीके अबधकपनेका अर्थ यही है, कि कषायरहित सम्यक्त्वीके बध नही होता है। शेषके बध होता है। जिसके कषाय है, उसके अवश्य बध होता है।

यदि ज्ञान गुणका जघन्य भावरूप परिणमन बधका कारण है, तो ज्ञानीको कैसे निरास्रव कहा? इस शकाके समाधानमे आचार्य कुन्दकुन्द कहते है—

"दसणणाणचरित्त ज परिणमदे जहण्ण-भावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण॥"—समयसार १७२।

—'दर्शनज्ञानचारित्रका जघन्य भावसे परिणमन होता है, इससे ज्ञानी जीव अनेक प्रकारके पुद्गल कर्मोंसे बधता है।"

इस विषयपर विशेष प्रकाश डालते हुए टीकाकार जयसेनाचार्य लिखते हैं (समयसार पृ० २४५)
—"इस कारण भेदज्ञानी अपने गुणस्थानोके अनुसार परम्परा रूपसे मुक्तिके कारण तीर्थंकर नामकर्म आदि प्रकृतिरूप पुद्गलात्मक अनेक पुण्यकर्मोमे बँधता है।"

शंका—कोई स्वाध्यायशील व्यक्ति पूछता है यदि उपरोक्त कथन ठीक है, तो उसका भगवत्कुन्दकुन्दके इस वचनसे किस प्रकार समन्वय होगा—

"रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स॥" १७७

'सम्यक्त्वीके राग, द्वेष, मोह रूप आस्रवोका अभाव है।' इस गाथाके उत्तरार्धमे आचार्य लिखते है—

"तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति।"

—अर्थात् इस कारण आस्रवभावके अभावमें द्रव्य प्रत्यय कर्मबन्धके कारण नहीं होते है।

समाधान—इस विषयमे विरोधकी कल्पनाका निराकरण करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—
—"सम्यग्दृष्टिके अनतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, मिथ्यात्वोदय जनित राग-द्वेष मोह नही है, अन्यथा

वह चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसम्यक्त्वी नही हो सकेगा। अथवा अनंतानुबधी अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभोदयजनित राग द्वेष मोह सम्यक्त्वीके नहीं पाये जाते हैं, अन्यथा पचम गुणस्थानका अविनाभावी सरागसम्यक्त्व नही हो सकेगा। अथवा अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभोदयजनित राग द्वेष मोह भाव सम्यक्त्वीके नहीं पाये जाते हैं, कारण षष्ठ गुणस्थानरूप सरागचारित्रके अविनाभावी सरागसम्यक्त्वकी अन्य प्रकारसे उपपत्ति नही पायी जाती है। अथवा अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभोदय जनित प्रमादके उत्पादक राग द्वेष मोह सम्यक्त्वीके नही है, कारण अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्ती वीतरागचारित्रके साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखनेवाले वीतराग सम्यक्त्वकी अन्य प्रकारसे उपपत्ति नही पायी जाती है।"

इस सुव्यवस्थित तथा सुस्पष्ट निरूपण द्वारा आचार्य महाराजने यह समझा दिया है, कि सम्यक्त्वीके बध अबधका कथन एकान्तरूपसे नहीं है। अविरत सम्यक्त्वीके मिथ्यात्व तथा अनतानुबधी निमित्तक प्रकृतियोका बध नही होता है, किन्तु अन्य कषायादि निमित्तक प्रकृतियोका बध होता है। मिथ्यात्व, अनतानुबधी निमित्तक प्रकृतियोके अभावको मुख्य बना अविरत सम्यक्त्वीके अबधका वर्णन सुसगत है। इस विवक्षाको गौण बनाकर बधको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोकी अपेक्षा बन्धका कथन भी समीचीन है।

शका—सम्यक्त्वीके बन्धाभावका एकान्तपक्षवाले कहते है कि 'अविरत सम्यक्त्वीके जो अप्रत्याख्यानावरण, वज्रवृषभ सहनन औदारिक शरीर आदिका बध है, वह बध नहीके समान है।'

समाधान—इस कथनमें तात्त्विक विचारका अभाव है। जब अविरतसम्यक्त्वीके द्वारा बाँधे गये कर्मोंमें कषाय और योगके कारण प्रकृति प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बध होते है, तब उनको बिलकुल ही तुच्छ मानना और सर्वथा अबध घोषित करना जैन दृष्टि—स्याद्वाद विचार शैलीके अनुकूल नही कहा जा सकता। जयसेनाचार्यने पूर्णतया विश्लेषण करके सम्यक्त्वीको कथचित् बधक और कथचित् अबधक प्रमाणित कर दिया है।

आगमकी आज्ञा—इस प्रसगमें षट्खडागमसूत्रके दूसरे खण्ड क्षुद्रबधमें भूतबलि भट्टारक रचित महत्त्वपूर्ण सूत्र आया है। षट्खडागम सूत्रका साक्षात्, सबध गणधरकी वाणीसे रहा है अत. उस सूत्रका सर्वोपरि महत्त्व हो जाता है। वह सूत्र इस प्रकार है, "सम्मादिट्ठी बधा वि अत्थि, अबधा वि अत्थि" ३६—सम्यक्त्वीके बध होता है, अबध भी होता है। इसपर धवला टीकाकार कहते है, "कुदो? सासवाणासवेसु सम्मद्दसणुवलभा"—

प्रश्न—उपरोक्त कथन क्यो किया गया?

उत्तर—आस्रव युक्त तथा आस्रव रहित जीवोमें सम्यग्दर्शनका सद्भाव पाया जाता है।

इस कथनसे दो प्रकारके सम्यक्त्वी ज्ञात होते है। एक सम्यक्त्वी सास्रव है और दूसरा आस्रव रहित है। आस्रवके उत्तर क्षणमें बध होता है अत बध सहित भी सम्यक्त्वी होता है यह सर्वज्ञकी प्ररूपणा शिरोधार्य करना श्रेयस्कर है। आस्रवका कारण योग है "काय-वाड् मन कर्म योग, स आस्रव"। ऐसी स्थितिमे सयोगकेवलीको आस्रव युक्त मानना होगा। आस्रव रहित अयोगकेवली माने गये हैं "णिरुद्धणिस्सेस-आसवो जीवो गय जोगो केवली"—जब केवली भगवान्के सयोगी होनेपर कर्मबध माना है, तब अविरत सम्यक्त्वीको सर्वथा बध रहित कहना उचित नही है। उनके आस्रव तथा बधके चार कारण अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पाये जाते हैं।

बधका लक्षण सूत्रकारने इस प्रकार किया है "सकषायत्वाज्जीव. कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध."—(८।२) जीव सकषाय होनेके कारण जो कर्मोंके योग्य पुद्गलोको ग्रहण करता है, उसे बध कहते है। यह लक्षण अविरत सम्यक्त्वी आदिके द्वारा गृहीत कर्मोंमे गर्भित होनेसे उनके पाया जानेवाला

बध काल्पनिक नहीं है। सम्यग्दर्शनकी प्राथमिक दशामें अल्प मात्रामें निर्जरा होती है। अविरति आदि कारणोसे कर्मोका निरतर बध होता रहता है। अविरत दशावाला कर्मोकी महान् निर्जरा करता है, उसके बध नही होता, ऐसा साहित्य प्रचारमे आता है, उससे प्रभावित चित्तवालोको पक्षमोह छोडना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण कथन—गुणभद्र आचार्यका यह कथन ध्यानसे मनन करने योग्य है। उन्होने उत्तर-पुराणमे विमलनाथ भगवान्‌के वैराग्यभावका उल्लेख करते हुए कहा है कि भगवान् इस प्रकार सोचते है, जबतक ससारकी अवधि है, तबतक इन उत्तम तीन ज्ञानोसे क्या काम निकलता है और इस वीर्यसे भी क्या लाभ है, यदि मैने श्रेष्ठ विकास मोक्षको नहीं प्राप्त किया"। भगवान् अपने चित्तमे विचारते है —

> "चारित्रस्य न गन्धोऽपि प्रत्याख्यानोदयो यतः।
> बन्धश्चतुर्विधोऽप्यस्ति बहुमोहपरिग्रहः ॥३५॥
> प्रमादाः सन्ति सर्वेऽपि निर्जराप्यल्पिकैव सा।
> अहो मोहस्य माहात्म्यं मान्द्यास्म्यहमिहैव हि ॥३६, सर्ग ५९ ॥"

प्रत्याख्यानावरण कषायके उदय होनसे मेरे चारित्रकी गध तक नही है तथा बहुत मोह और परिग्रह जनित प्रकृति प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग रूप चतुर्विध बध हो रहा है। मेरे सभी प्रमाद पाये जाते है। मेरे कर्मोकी निर्जरा भी अत्यत अल्प प्रमाणमे होती है। अहो! यह मोहकी महिमा है, जो मै (तीर्थंकर होते हुए भी) इस ससारमें ही बैठा हूँ" भगवान् विमलनाथके विचारोके माध्यमसे चतुर्थ, पचम गुणस्थानवर्ती व्यक्तिकी मनोदशाका यथार्थ स्वरूप समझा जा सकता है तथा इस प्रकाशमें देखनेपर यह प्रतीत होता है कि कुछ आध्यात्मिक कवियो, लेखको तथा भजन निर्माताओने जो अविरत सम्यक्त्वीके महत्त्वपर गहरा रग भरा है, और उसे अबधक कहा है वह उनकी निजी वस्तु है। आगम तो यह मानता है कि अविरत दशामें अविरति आदि कारणोसे बध होता रहता है तथा पूर्वबद्ध कर्मोकी निर्जरा अत्यत अल्प मात्रामें होती है।

प्रश्न—चौथे गुणस्थानसे आगेके गुणस्थान चारित्रके विकाससे सबध रखते है। असली रत्न कहो, विधि कहो, वह तो सम्यक्त्व है। चारित्रका कोई विशेष महत्त्व नहीं है

समाधान—यह धारणा सर्वज्ञ प्रणीत देशनासे विपरीत है। सम्यक्त्वका महत्त्व सर्वोपरि है, किन्तु बिना चारित्रके वह सम्यक्त्व मोक्षका कारण नही हो सकता। सम्यक्त्वी जिस वीतरागताकी चर्चा करता है, वह रागरहितपना चारित्रधारणके बिना असभव है। राग चारित्र मोहका भेद है। जितना-जितना चारित्रका धारण होता है, उतना-उतना रागरहित भाव जागृत होता जाता है। सोमदेवऋषिने बडी मार्मिक बात कही है —

> "सम्यक्त्वात्सुगतिः प्रोक्ता ज्ञानात्कीर्तिरुदाहृता।
> वृत्तात्पूजामवाप्नोति त्रयाच्च लभते शिवम् ॥"

सम्यक्त्वसे मनुष्य तथा देवगतिमें जन्म प्राप्त होता है, ज्ञानके द्वारा कीर्ति मिलती है तथा चारित्रके द्वारा पूज्यता प्राप्त होती है। तीनोके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सम्यक् चारित्रका महत्त्व—आचरणके बिना श्रद्धा शोभायमान नही होती। सम्यक् श्रद्धा तथा चारित्रका योग मणि-काचन योग सदृश है। कुदकुद स्वामीने रयणसारमें कहा है—

> "णाणी खवेई कम्मं णाणबलेणेदि सुबोलए अण्णाणी।
> विज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही ॥७२॥"

ज्ञानी पुरुष ज्ञानके प्रभावसे कर्मोका क्षय करता है, यह कथन करनेवाला अज्ञानी है। मै वैद्य हूँ, मैं औषधिको जानता हूँ, क्या इतने जानने मात्रसे व्याधि दूर हो जायगी?

केवल सम्यग्दर्शनसे सुगति प्राप्त होती है तथा मिथ्यात्वसे नियमत कुगति मिलती है, यह कथन कुन्दकुन्द स्वामीको भी सम्मत है इससे वे कहते हैं—

"सम्मत्तगुणाइ सुगइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा ।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुचेइ तं कुणहो ॥६६॥"

सम्यक्त्वके कारण सुगति तथा मिथ्यात्वसे नियमत दुर्गति होती है, ऐसा जानो । अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ? जो तुझको रुचे, वह कर ।

प्रवचनसारमे कहा है —

"ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहण जदि वि णत्थि अत्थेसु ।
सद्दहमाणो अत्थे असजदो वा ण णिव्वादि ॥३।३७॥"

यदि पदार्थोंकी सम्यक् श्रद्धा नही है तो शास्त्रज्ञानके बलमे मोक्ष नही होगा । कदाचित् पदार्थोंकी श्रद्धा भी है और सयम नही है तो ऐसा असयमी सम्यक्त्वी भी मोक्ष नहीं पायेगा । अत अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं, "तत. सयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः ।" (पृ० ३२८)

अयोगकेवली रूप सम्यक्त्वीके सर्वथा बधका अभाव है । उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय तथा सयोगी जिनके केवल सातावेदनीयका प्रकृति तथा प्रदेशबध योगके कारण होता है । उससे नीचे चारो बध होते है ।

सम्यक्त्वी ही कुछ प्रकृतियोंका बंधक—कर्मोंमे कुछ प्रकृतियाँ तो मिथ्यात्वी जीव बाँधता है और कुछ ऐसी प्रकृतियाँ जिनके लिए विशुद्धभाव कारण होनेसे सम्यक्त्वी ही बधक कहा गया है । इतना ही नही शुक्लध्यानी, शुद्धोपयोगी मुनीन्द्र तक पुण्य कर्म रूप प्रकृतियोका बध करते है । जिनके क्रोध, मान तथा माया कषायका अभाव हो चुका है, ऐसे सूक्ष्म लोभ गुणस्थान वाले मुनिराजके उच्चगोत्र, यश कीर्ति रूप पुण्य प्रकृतियाँ उत्कृष्ट अनुभागबध युक्त बँधती है । महाबधमे लिखा है, "आहारसरीर-आहारसरीरगोवगाण को बधको ? को अबधको ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए सखेज्जभाग गतूण बधो वोच्छिज्जदि । एदे बधा, अवसेसा अबधा—आहारकशरीर तथा आहारकशरीरांगोपागका कौन बधक है, कौन अबधक है ? अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि तथा अपूर्वकरणके कालमे सख्यातभाग व्यतीत होनेपर बधकी व्युच्छित्ति होती है । उपरोक्त गुणस्थानवाले बधक है, शेष अबधक है ।

"तित्थयरस्स को बंधको, को अबधो ? असजदसम्माइट्ठि याव अपुव्वकरण० बधा० । अपुव्वकरणद्धाए सखेज्जभाग गतूण० । एदे बधा, अवसेसा अबधा ।—" तीर्थंकर प्रकृतिका कौन बधक है, कौन अबधक है ? असयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बधक है । अपूर्वकरणके कालके सख्यातभाग व्यतीत होने तक बध होता है । आगे बधकी व्युच्छित्ति हो जाती है । अत पूर्वोक्त बधक है तथा शेष अबधक है । (महाबध प्रकृतिबध भाग १, ताम्र पत्र प्रति पृ० ५) जीवके भावोंकी विचित्रताका रहस्य सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है । सकल सयमके धारक शुक्लध्यानमें निमग्न शुद्धोपयोगकी उच्च स्थितिको प्राप्त व्यक्तिके जब पुण्य प्रकृतियोका बध होता है, तब नीचेकी अवस्थावाले अविरत सम्यक्त्वीको बधरहित कहना, सोचना, समझना तथा समझाना परमागमकी देशनाके विपरीत कथन करना है ।

क्या सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना ही होती है

शंका—सम्यक्त्वीके बधाभावका समर्थन शकाकार अन्य प्रकारसे करता हुआ कहता है । सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना होती है, इससे उसके बंधका अभाव आगमाविरुद्ध है ।

समाधान—मिथ्यात्वीके ज्ञानचेतनाका अभाव सबको इष्ट है । सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना ही होती

है, ऐसी बात नही है। चेतनाके स्वरूपपर विशेष प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्रसूरि समयसारकी टीकामें (पृ० ४८९) लिखते है—"ज्ञानसे अन्यत्र मैं 'यह' हूँ, इस प्रकारका चिन्तन अज्ञानचेतना है। वह कर्मचेतना कर्मफलचेतनाके भेदसे दो प्रकारकी है। ज्ञानसे पृथक् मैं 'यह' करता हूँ, यह चिंतन कर्मचेतना है। ज्ञानसे अन्य मैं यह अनुभव करता हूँ, इस प्रकारका चिंतन कर्मफलचेतना है। दोनो चेतनाएँ समान रसवाली है तथा ससारकी कारण है। ससारका बीज अष्टविध कर्मोके बीजरूप होता है। अत. मुमुक्षुको उचित है कि वह अज्ञानचेतनाको दूर करनेके लिए सम्पूर्ण कर्मोंके त्यागकी भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्यागकी भावनाको नृत्य कराकर आत्मस्वरूपवाली भगवती ज्ञानचेतनाको ही नित्य नृत्य करावे।"

इस विषयको अधिक स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—'मेरा कर्म है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञानभावसे मन वचन कायकी क्रिया करना कर्मचेतना है। आत्मस्वभावसे रहित अज्ञानभाव-द्वारा इष्ट अनिष्ट विकल्परूपसे, हर्ष, विषाद, सुख-दुखका जो अनुभवन करना है, वह कर्मफल चेतना है। (पृ० ४९०) कुदकुद स्वामी प्रवचनसारमे कहते है—

"परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥२।३१॥"

—'चेतनाकी ज्ञानरूप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कर्मचेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल चेतना है।'

इससे यह प्रकट होता है कि ज्ञानचेतनामें ज्ञातृत्व भाव है, कर्मचेतनामे कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतनामें भोक्तृत्व भाव है।

सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मफल चेतनाका सद्भाव

सम्यक्त्वीके ज्ञान चेतना ही पायी जाती है, इस भ्रमका निवारण करते हुए पचाध्यायीकार कहते है—

"अस्ति तस्यापि सद्दृष्टेः कस्यचित् कर्मचेतना।
अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥२।२७५॥"

—'किसी सम्यक्त्वीके कर्म तथा कर्मचेतना भी पायी जाती है। किन्तु परमार्थमे सम्यक्त्वीके ज्ञानचेतना पायी जाती है।'

यहाँ पूर्णज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वीको लक्ष्यमें रखकर उसके ज्ञानचेतनाका परमार्थ रूपसे सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूर्ण ज्ञानीकी अपेक्षा कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही है। इस दृष्टिका स्पष्टीकरण निम्नलिखित पद्यमे होता है—

"चेतनायाः फलं बन्धस्तत्फले वाऽथ कर्मणि।
रागाभावान्न बन्धोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥२।२७६॥"

—'कर्म तथा कर्मफल चेतनाका फल बंध कहा है। उस सम्यक्त्वीके रागका अभाव होनेसे बध नही है। अत उसके ज्ञानचेतना है।' यहाँ रागाभाव होनेसे बधका अभाव कहा है। यह रागाभाव उपशान्तकषायादि गुणस्थानमें होगा, अत उसके पूर्व रागभावका सद्भाव होनेसे बधका होना स्वीकार करना होगा। यथार्थ ज्ञानचेतना केवलज्ञानीके होगी जिनके अज्ञानका अभाव हो गया है और छद्मस्थ अवस्थासे अतीत हो गये हैं। कुदकुद स्वामीकी यह गाथा इस विषयमें बहुत उपयोगी है[1]—

१ "सर्वे कर्मफलं मुख्यभावेन स्थावरास्त्रसाः। सकार्यं चेतयन्तस्ते प्राणित्वाज्ज्ञानमेव च ॥"
—अन० ध० २।३५

"सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥"—प० का० ३९ ।

—"सम्पूर्ण स्थावर जीवोके कर्मफल चेतना है। त्रस जीवोमें कर्मफलके सिवाय कर्मचेतना भी पायी जाती है। प्राणी इस व्यपदेशको अतिक्रान्त जीवन्मुक्त ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते है। यहाँ जीवन्मुक्त शब्दका अर्थ अविरत सम्यक्त्वी नही, किन्तु केवली भगवान् है, कारण टीकाकार अमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि सपूर्ण मोह कलंकके नाशक, ज्ञानावरण-दर्शनावरणके ध्वंस करनेवाले, वीर्यान्तरायके क्षयसे अनन्तवीर्यको प्राप्त करनेवाले अत्यन्त कृतकृत्य केवली भगवान् ज्ञानचेतनाको ही अनुभव करते है।

पचास्तिकाय टीकाके ये शब्द महत्त्वपूर्ण है—"तत्र स्थावरा कर्मफलं चेतयन्ते। त्रसा. कार्यं चेतयन्ते। केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयन्ते" (पचास्तिकाय टीका पृ० १२) स्थावर जीव कर्मफल चेतनाका अनुभवन करते है। त्रस जीव कर्मचेतनाका अनुभव करते है। केवलज्ञानी ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते है।

अनगार धर्मामृतकी सस्कृत टीका (पृ० १०७) मे पंडितप्रवर आशाधरजी लिखते है—"जीवन्मुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम्। गौणतया त्वन्यदपि। सा चोभयमपि जीवन्मुक्तेर्गौणी बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्"—जीवन्मुक्तोके मुख्यतासे ज्ञानचेतना है। गौणरूपसे उनके अन्य भी चेतनाएँ है। वे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ जीवन्मुक्तमें मुख्य नही, किन्तु गौणरूप है, कारण उनमें बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अभाव हो चुका है।

इस विवेचनसे यह विदित हो जाता है, कि केवली भगवान्से नीचेके गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी जीवोंमें कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती हैं। अविरत सम्यक्त्वीके विचित्र कार्योंको बन्धरहित बताना और उसे सदा सजग ज्ञानचेतनाका ही स्वामी कहना बड़ी आश्चर्यप्रद बात है। क्षायिक सम्यक्त्वी श्रेणिक महाराजने आत्मघात करके प्राण परित्याग किये। परम धार्मिक सीताके प्रतीन्द्र पर्यायके जीवनने तपश्चर्यामें निमग्न महामुनि रामचन्द्रको धर्मसे डिगानेका मोहवश प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजीका सीताके स्वर्गमे ही उत्पाद हो जाये। ये क्रियाएँ शुद्धचेतनाके प्रकाशको नही बताती है। इनपर कर्म, कर्मफल चेतनाओका प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। चारित्रमोहोदयवश ये क्रियाएँ हुआ करती है। 'सदन निवासी, तदपि उदासी ताते आस्रव छटाछटीसी—यह सम्यक्त्वी गृहस्थका चित्रण सपूर्ण आस्रवके निरोधको नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनतानुबधी तथा असयम निमित्तक आस्रवके निरोधका ज्ञापक है। अत परमागमके प्रकाशसे ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वीके जघन्य अवस्थामे ज्ञानचेतनाके सिवाय कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती हैं, उनके कारण वह किन्ही प्रकृतियोका बध नही करता है और किन्ही कर्म प्रकृतियोका बध भी करता है। इस प्रकारका स्याद्वाद है।

ग्रथका विषय—महाबधके इस पयडिबधाहियार—प्रकृतिबधाधिकार नामक खडमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वबध, नोसर्वबध, उत्कृष्टबध, अनुत्कृष्टबध, जघन्यबध, अजघन्यबध, सादिबध, अनादिबध, ध्रुवबध, अध्रुवबध, बधस्वामित्वविचय, बधकाल, बध-अन्तर, बधसन्निकर्ष, भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन चौबीस अनुयोगद्वारोसे प्रकृतिबधपर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबधनके कारण अनंत ज्ञान आनद शक्ति आदिका अधिपति यह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन बिता कष्ट उठाता है। इस आत्माका यथार्थ कल्याण आत्मीय दोषोके निर्मूल करनेमे है। समाधिकी प्रचण्ड अग्नि-द्वारा इस दोष-पुञ्जका अविलम्ब क्षय होता है। सवर और निर्जरा रूप परिणतिसे उस स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते है। इस पदका प्रधान कारण भेदज्ञानकी प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञानदर्शनमय है, शेष सर्व अनात्म भाव है। इस विद्याके प्रभावसे सिद्धत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बधकी विपत्तिसे बचनेके लिए योगीन्द्रदेव कहते हैं—

"अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुं, अप्पा विमलु मुएवि ॥" अध्यात्मप्रकाश ९६ ।

"आत्मन् ! तू दूसरे तीर्थोंको मत जा, अन्य गुरुकी शरणमें मत पहुँच, अन्य देवका चिंतवन मत कर । अपनी निर्मल आत्माका चिंतन कर ।"

जब आत्मा यह समझ लेता है, कि मैं कर्मोंके बन्धनमें बद्ध हो गया हूँ किंतु मैं इससे भिन्न स्वरूप-वाला हूँ, तब उसे सच्चा प्रकाश प्राप्त हो जाता है । तत्त्वकी बात तो इतनी है—

"भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥"

'जो जीव सिद्ध हुए हैं, वे सब अभेदरत्नत्रय स्वरूप भेद विज्ञानसे सिद्ध हुए हैं । जो अबतक संसारमें बद्ध हैं, वे उस निर्विकल्पज्ञानके अभावसे बँधे हैं ।

भेद विज्ञानकी लोकोत्तरता

भेदविज्ञानकी उपलब्धि सरल कार्य नहीं है । उसके लिए ही सर्व उद्योग मुमुक्षुपुरुष किया करते हैं । विश्वके अतुलनीय साम्राज्य और विभूतिका त्याग करके भी उसकी प्राप्ति दुर्लभ रहती है । भेदविज्ञानके पश्चात् अद्वैत भावनाके अभ्यास द्वारा निर्विकल्प समाधिको प्राप्त करके जब जीव एकत्व-वितर्क नामके द्वितीय शुक्लध्यानको प्राप्त करता है, तब कर्मोंका राजा मोहनीय क्षयको प्राप्त होता है । उस समय क्षण-मात्रमें आत्मा अर्हन्त बनकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्य रूप अनंत चतुष्टयसे समलंकृत होता है । उस प्राप्तव्य परम पदवीके लिए उपायरूप मार्गदर्शन गुणभद्राचार्यके इन शब्दों-द्वारा प्राप्त होता है—

"अकिंचनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः ।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥११०॥"—आत्मानुशासन ।

हे भद्र ! 'अकिंचनोऽहं' 'मेरा कुछ नहीं है', इस भावनाके साथ स्थित हो । ऐसा करनेसे तू त्रिलोकी-नाथ बन जायेगा । मैंने यह तुझको परमात्माका रहस्य कहा है, जो योगियोंके ही अनुभवगम्य है ।

सत्पथ—इस अकिंचनपनेकी भावनाके साथ संयमशील पुनीत जीवन भी आवश्यक है । वे मुनीश्वर यह मार्मिक बात कहते हैं—

"दुर्लभमशुद्धमपसुखमविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः ।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम् ॥१११॥"

यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ, अशुद्ध, सुखरहित है । इस पर्यायमें आगामी मरण कब होगा, यह अविदित है । अन्य पर्यायोंकी तुलनामें आयु भी थोड़ी है । यह विशेष बात है कि तप साधना इसी पर्यायमें संभव है । कर्मक्षयरूप मुक्ति उसी तपसे प्राप्त होती है । इससे तपका आचरण भी करना चाहिए ।

आचार्य वादीभसिंहसूरि क्षत्रचूडामणिमें कहते हैं—

"नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मतः ।
तिरश्चि निरये पापाद्दिवि पुण्याद्द्वयान्नरे ॥११-३६॥"

"हे आत्मन् ! तू अपने कर्मके उदयसे नाटकके नटके समान जगत्में भ्रमण करता है । पापके उदयसे तिर्यंच और नरक पर्याय पाता है । पुण्यके उदयसे देव होता है तथा पाप और पुण्यके संयुक्त उदयसे मनुष्य पर्याय पाता है ।"

"त्वमेव कर्मणां कर्ता भोक्ता च फलसन्तते ।
भोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे ॥४१॥"

हे आत्मन् ! तू ही अपने कर्मोंका बंध करता है और उसकी फलपरंपराका भोक्ता भी तू है । तू ही कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ है । हे तात ! मुक्ति तेरे स्वाधीन है, उसके लिए क्यों नहीं उद्योग करता है ?

कवि कर्मोंके कुचक्रमे बचनेके हेतु आत्माको सचेत करता हुआ कहता है, भद्र ! तू इन कर्माष्टकके दुष्कृत्योपर दृष्टि देकर उनके विषयमें धोखा मत खा । इन कर्मोंका ढग बडा अद्भुत है । क्षणभरमें ये तुझे सिंहासनका अधिपति बनाकर दूसरे कालमें ये तुझे भिखारी भी बना सकते हैं । इनपर विश्वास मत कर—

"आठन की करतूति विचारहु कौन-कौन ये करते हाल ।
कबहूँ सिर पर छत्र फिरावे, कबहूँ रूप करें बेहाल ॥
देव लोक सुख कबहूँ भुगते, कबहूँ रंच नाज को काल ।
ये करतूति करें कर्मादिक चेतन रूप तू आप सम्हाल ॥"

सारकी बात

मोक्ष प्राप्त करनेके लिए पुरुषार्थी मानवको आत्मा और अनात्माका पूर्णतया स्पष्ट अवबोध आवश्यक है । इसके पश्चात् जीव परम-यथाख्यात चारित्रके द्वारा कर्म शैलके ध्वंस करनेमे समर्थ होता है । आचार्य कुंदकुंदकी यह अमृतवाणी अमृतपथको इन सारगर्भित शब्दो-द्वारा स्पष्ट करती है—

"बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्म विमोक्खणं कुणइ ॥२९३॥"

जो विवेकी बंधका तथा आत्माका स्वभाव सम्यक् प्रकारसे अवगत कर बंधसे विरक्त होता है, वह कर्मोंका पूर्णतया क्षय करता है ।[1]

तत्त्वानुशासनकी यह तत्त्वदेशना अभिवंदनीय है—

"कर्मजेभ्य समस्तेभ्य भावेभ्यो भिन्नमन्वहम् ।
ज्ञ-स्वभावमुदासीनं पश्यदात्मानमात्मना ॥१६४॥"

मेरा आत्मा संपूर्ण कर्मजनित भावोसे सर्वदा भिन्न है तथा वह ज्ञान स्वभाव एवं उदासीनरूप (राग द्वेषरहित) है, ऐसा अपनी आत्माके द्वारा आत्माका दर्शन करे ।

---

1 Whoever with a clear knowledge of the nature of Karmic bondage as well as the nature of the Self, does not get attracted by bondage—that person obtains liberation from karmas (Samayasara by Prof A. Chakravarti, P. 189)

महाबंध

[मूल और हिन्दी अनुवाद]



महाबंधस्स

पयडिबंधो

पढमो अत्थाहियारो

मंगल-स्मरणम्

बारह-अंगगिज्झा वियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया ।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं ॥ १ ॥



जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडि-पाहुडसेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स ॥ २ ॥



पणमह कय-भूय-बलि भूयबलि केस-वास-परिभूय-बलिं ।
विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-बम्मह-पसरं ॥ ३ ॥



भूतबलिप्रणीतं तं बन्धतत्त्वप्रकाशकम् ।
महाधवलविख्यातं महाबन्धं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥



सिद्धानां कीर्त्तनादन्ते यः सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाक् ।
सोऽनाद्यनन्तसंतानः सिद्धान्तो नोऽवताच्चिरम् ॥ ५ ॥



जिणवयणमोसहमिणं विसयसुह-विरेयणं अमिदभूयं ।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ ६ ॥

जयउ सुय-देवदा

सिरि भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[पढमो पयडिबंधाहियारो]

[अनुवादकर्त्ताका मंगल]

महाधवल नामसे प्रसिद्ध इस महाग्रन्थ महाशास्त्रकी टीकानिर्माणका कठिन कार्य निर्दोष तथा निरन्तराय सम्पन्न हो, इस कामनासे वेदनाखण्डकी धवलाटीकाके प्रारम्भमे वीरसेनाचार्यकृत मगलगाथाओं-द्वारा पंच परमेष्ठीका पुण्य स्मरण किया जाता है—

सिद्धा दड्ढट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसव्वत्था।
तिहुवण-सिर-सेहरया पसियंतु भडारया सव्वे॥ १॥

अर्थ—जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्ममलको दग्ध कर दिया है, जिन्होंने विशुद्ध बुद्धि–केवलज्ञान-द्वारा समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि की है–उनका पूर्ण बोध प्राप्त किया है, जो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुटके समान विराजमान हैं, वे सम्पूर्ण सिद्ध भट्टारक प्रसन्न होवें।

भावार्थ—आत्माका सहज स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य है। मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्मोंका मल आत्मामें अनादिसे लगा हुआ है, जिससे यह संसारी आत्मा जगत्में परिभ्रमण किया करती है। सिद्ध भगवान्ने उस कर्ममलका ध्वंस कर दिया है। विशुद्धज्ञानके कारण समस्त पदार्थोंका बोध होता है। जिस प्रकार दर्पणके तलसे मल दूर होनेपर बाह्य वस्तुएँ स्वयमेव दर्पणकी निर्मलताके कारण उसमें प्रतिबिम्बित होती है, उसी प्रकार कर्ममलरहित आत्मामें स्वतः सर्व पदार्थ झलकते हैं।

निर्मल तथा पूर्णबोधयुक्त होनेसे तथा कर्ममलरहित होनेके कारण सिद्ध परमात्मा जगत्में श्रेष्ठ हैं। उनके द्वारा विश्व शोभित होता है। वे लोकके अग्रभागमें विद्यमान ईषत्प्राग्भार पृथ्वीके ऊपर अवस्थित हैं और ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुट ही हों। यहाँ लोककी पुरुषाकृतिको दृष्टिमें रखकर सिद्धोंको मुकुट कहा गया है।

सिद्ध परमात्माकी निवासभूमिके विषयमें तिलोयपण्णत्तिमें इस प्रकार कथन किया गया है, "सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमानके ध्वज-दण्डसे द्वादश योजन मात्र ऊपर जाकर आठवीं पृथ्वी स्थित है। उसके उपरिम और अधस्तन तलमें-से प्रत्येकका विस्तार पूर्व-पश्चिममें

१ "सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसब्भावा····· "–प्रा० सिद्धभ० श्लो० ५।

रूपरहित एक राजू है। वेत्रासनके सदृश वह पृथ्वी उत्तर-दक्षिण भागमें कुछ कम सात राजू लम्बी तथा आठ योजन बाहुल्यवाली है। यह पृथ्वी घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वायुओंसे युक्त है। इनमे प्रत्येक वायुका बाहुल्य बीस हजार योजन प्रमाण है (८-६५४, ति० प०)।"

इसके बहुमध्य भागमे चॉदी तथा सुवर्णके समान नाना रत्नोंसे परिपूर्ण ईषत् प्राग्भार नामका क्षेत्र है। यह क्षेत्र ऊर्ध्वमुखयुक्त धवल छत्रके समान सुन्दर और पैतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तारसहित है। उसका मध्य बाहुल्य अष्ट योजन और अन्तमे एक अगुल-मात्र है। अष्टम भूमिमे स्थित सिद्ध क्षेत्रकी परिधि मनुष्य क्षेत्रकी परिधिके समान है। (गाथा ६५२ से ६५८ पृ० ८६४ ति० प०)

त्रिलोकसारमे अष्टम पृथ्वीको ईषत्प्राग्भारा कहा है—

> त्रिभुवन-मूर्धारूढा ईषत्प्राग्भारा धराष्टमी रुन्द्रा।
> दीर्घा एक-सप्तरज्जू अष्टयोजन-प्रमितबाहुल्या॥ ५५६॥

त्रिलोकसारके शिखरपर स्थित ईषत्प्राग्भारा नामकी आठवीं पृथ्वी है। वह एक राजू चौड़ी, सात राजू लम्बी तथा आठ योजन प्रमाण बाहुल्य युक्त है।

उस पृथ्वीके मध्यमे जो सिद्धक्षेत्र छत्राकार कहा है, उसका वर्ण त्रिलोकसारमे चॉदीका बताया है।

> तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यमही-व्यासम्।
> सिद्धक्षेत्रं मध्येऽष्टवेधक्रमहीनं बाहुल्यम्॥ ५५७॥

इस सिद्धक्षेत्रके ऊपर तनुवातवलयमे अष्टगुणयुक्त तथा अनन्त सुखसे सन्तुष्ट सिद्ध भगवान रहते है। आठवीं पृथ्वीके ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धोंका निवास है।

राजवार्तिकके अन्तमें लिखा है—

> तन्वी मनोज्ञा सुरभिः पुण्या परमभासुरा।
> प्राग्भारा नाम वसुधा लोकमूर्ध्नि व्यवस्थिता॥ १९॥
> नृलोकतुल्यविष्कम्भा सितच्छत्रनिभा शुभा।
> ऊर्ध्वं तस्याः क्षितेः सिद्धाः लोकान्ते समवस्थिताः॥ २०॥

त्रिलोकसारके मस्तकपर स्थित प्राग्भारा नामकी पृथिवी है जो तन्वी अर्थात् स्थूलता-रहित है, मनोज्ञ है, सुगन्धयुक्त है, पवित्र है तथा अत्यन्त देदीप्यमान है।

वह पृथ्वी नरलोक तुल्य विस्तारयुक्त है। श्वेत वर्णके छत्र समान तथा शुभ है। उस पृथ्वीके ऊपर लोकके अन्तमे सिद्ध भगवान् विराजमान है। सकलज्ञ सिद्धोंका निवास-स्थल ही यथार्थमें ब्रह्मलोक है। धवलवर्णयुक्त निर्वाण-स्थलमे महाधवल परणतियुक्त परमात्माका निवास पूर्णतया सुसंगत प्रतीत होता है।

सिद्ध भगवान्ने राग-द्वेष, मोहादि विभावोका त्याग कर स्वभावकी उपलब्धि की है। वे वीतराग हो चुके है। किसीकी स्तुतिसे वे प्रसन्न नहीं होते और न निन्दासे खिन्न ही

होते है। वे राग-द्वेषकी दुविधाके चक्करसे परे पहुँच चुके है। ऐसी व्यवस्था होते हुए मंगलगाथामें सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थनाका क्या रहस्य है? यह विशेष विचारणीय है। यदि भगवान् यथार्थमें प्रसन्न हो गये, तो उनकी वीतरागता कहाँ रही और यदि वे प्रसन्न न हुए, तो प्रसन्नताकी प्रार्थना अप्रयोजनीक ठहरती है।

यथार्थ बात यह है कि प्रसन्न—निर्मलभावपूर्वक प्रभुकी आराधना करनेवाला भक्त उपचारसे प्रभुमे प्रसन्नताका आरोप करता है।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामे लिखते है—वीतरागमे क्रोधके समान सन्तोषलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरण-द्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षासे भगवान्‌को प्रसन्न कहते है जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मै नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्त कर भक्त उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है[1]।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गयी है।

तिहुवण-भवणप्पसरिय-पच्चक्खवबोह-किरण-परिवेदो।
उइओ वि अणत्थवणो अरहत-दिवायरो जयऊ[2] ॥ २ ॥

अर्थ—वे अरहन्त भगवान्‌रूपी सूर्य जयवन्त हो, जो तीन लोकरूपी भवनमे फैली हुई ज्ञानकिरणोंसे व्याप्त है, तथा जो उदित होते हुए भी अस्तको प्राप्त नहीं होते हे।

भावार्थ—यहाँ अरहन्त भगवान्‌की सूर्यके साथ तुलना की है। सूर्य स्वपरप्रकाशक है। अरहन्त भगवान्‌का केवलज्ञान भी स्वपरप्रकाशक है। लोकप्रसिद्ध सूर्यकी अपेक्षा अरहन्त-सूर्यमे विशेपता है। लौकिक सूर्य जब कि मध्यलोकके थोडे-से प्रदेशको आलोकित करता है, तब अरहन्त सूर्य सकल विश्वको प्रकाशित करता है। सूर्यका उदय और अस्त होता है, किन्तु केवलज्ञान सूर्यका उदय तो होता है, पर अस्त नहीं। जब कैवल्यका प्रकाश आत्मामे उत्पन्न हो चुका, तब उस सर्वज्ञ आत्माकी ज्ञानज्योतिको कर्मपटल पुनः कैसे ढाँक सकेंगे? अतः केवलज्ञानसूर्य उदययुक्त होते हुए भी अस्तरहित है। वह अनन्तकाल पर्यन्त प्रकाशित रहता है। अरहन्तसूर्यकी किरणे ज्ञानात्मक है, लौकिक सूर्यकी किरणे पौद्गलिक है।

ति-रयण-खग्ग-णिहाएणुत्तारिय-मोह-सेण्ण-सिर-णिवहो।
आइरिय-राउ पसियउ परिवालिय-भविय-जिय-लोओ ॥ ३ ॥

---

१ "प्रसाद पुन परमेष्ठिनस्तद्विनेयाना प्रसन्नमनोविषयत्वमेव, वीतरागाणा तुष्टिलक्षणप्रसादासभवात् कोपामभववत्। तदाराधकजनैस्तु प्रसन्नेन मनसोपास्यमानो भगवान् प्रसन्न इत्यभिधीयते रसायनवत्। यथैव हि प्रसन्नेन मनसा रसायनमासेव्य तत्फलमाप्नुवन्त सन्तो रसायनप्रसादादिदमस्माकमारोग्यादिफल समुत्पन्नमिति प्रतिपद्यन्ते तथा प्रसन्नेन मनसा भगवन्त परमेष्ठिनमुपास्य तदुपासनफल श्रेयोमार्गाधिगमलक्षण प्रतिपद्यमानास्तद्विनेयजना भगवत्परमेष्ठिन प्रसादादस्माक श्रेयोमार्गाधिगम सम्पन्न इति समनुमन्यन्ते।"—आप्तप० पृ० २,३। २. "नास्त, कदाचिदुपयासि न राहुगम्य स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ॥ नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभाव सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्रलोके ॥"—भक्तामर० श्लो० १७।

अर्थ—जिन्होंने रत्नत्रयरूपी खड्गके प्रहारसे मोहरूपी सेनाके शिर-समूहका नाश कर दिया है तथा भव्य-जीव-लोकका परिपालन किया है वे आचार्य महाराज प्रसन्न होवें।

भावार्थ—यहाँ आचार्य महाराजको राजासे तुलना की गयी है। जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी प्रचण्ड तलवारके प्रहारसे शत्रुसैन्यका नाश करता है, उसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी अजेय खड्गसे मोहरूपी सेनाके मस्तकोंका नाश करते हैं। जिस प्रकार राजा अत्याचारीका अन्त करके धर्मपरायण प्रजाका रक्षण करता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज मोहका ध्वंस करके भव्यात्माओंका रक्षण करते हैं। मोहके कारण संसारमें भव्य जीव बहुत कष्ट पा रहे थे। आचार्य महाराजने रत्नत्रयसे अपनी आत्माको सुसज्जित करके अपनी पुण्य अभय वाणी तथा जीवनदात्री लेखनी-के द्वारा जो वीतरागताकी धारा बहायी, उससे भव्यात्माओंके अन्तःकरणमें जो मोहका आतंक था, वह दूर हुआ और उन्होंने अपने निज रूपकी उपलब्धि की। भव्यात्माओंको जब भी मोहका आतंक व्यथा पहुँचाता है, तब ही वे आचार्य परमेष्ठीके चरणोंका आश्रय ले अभय अवस्थाको प्राप्त होते है।

अण्णाणयंधयारे अणोरपारे भमंत-भवियाणं।
उज्जोवो जेहि कओ पसियंतु सया उवज्झाया[1] ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके ओर-छोरका पता नहीं है, ऐसे अज्ञान-अन्धकारमे भटकनेवाले भव्य-जीवोको जिन्होंने प्रकाश प्रदान किया है वे उपाध्याय प्रसन्न होवे।

भावार्थ—यहाँ अज्ञानको अन्धकारकी उपमा दी गयी है। जिस प्रकार चक्षुष्मान् व्यक्ति प्रकाशरहित स्थलमे अन्धेकी भाँति आचरण करता है, उसी प्रकार सम्यक्ज्ञानज्योतिके अभावमे यह जीव परद्रव्यको स्व मानकर तथा आत्मतत्त्वको अनात्म पदार्थ मानकर अन्धेके समान प्रवृत्ति करता है। इस मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके आदि-अन्तका पता नहीं चलता है। वह अपार है। उसमें भव्य जीव भटक रहे हैं और परको अपना मानकर दुःखी हो रहे है। यह मिथ्याज्ञानका ही प्रभाव है कि जीव कल्याणके मार्गको न पाकर चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता फिरता है। जैसे अन्धकारमें भटकनेवाले जीवोंको प्रकाशका दर्शन होते ही हित-मार्ग सूझने लगता है, उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके प्रसादसे सम्यक्-ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे यह मोहान्ध प्राणी पंच परावर्तनरूप संसारका परिभ्रमण छोड़कर शाश्वतिक शान्तिमय शिवपुरकी ओर उन्मुख हो जाता है।

उपाध्यायके[2] समीप सविनय आकर भव्यात्माएँ आगमका अभ्यास करती है, और सम्यक्ज्ञानका लाभ करती हैं, इस कारण अज्ञान अन्धकार निवारण करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीसे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गयी है।

दुह-तिव्व-तिसा-विणदिय-तिहुवण-भवियाण सुहुराएण।
परिठविया धम्म-पवा सुअ-जल-वाणप्पयाणेण ॥ ५ ॥

---

१ "अण्णाणघोरतिमिरे दुरन्तीरम्हि हिंडमाणाणं। भवियाणुज्जोयपरा उवज्झाया वरमदिं देंतु ॥" –ति० प० गा० ४। २. "विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागम श्रुताख्यमधीयते स उपाध्याय।"–त० रा० पृ० ३४६।

अर्थ—दुःखरूप तीव्र प्यासके पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागवश जिन्होंने श्रुतज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा—प्याऊ स्थापित की है, वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होवे।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंको विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयतृष्णाके तापसे नहीं बच सके हैं। उनकी तृष्णाग्नि तो और अधिक प्रज्वलित रहती है। इस तृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हुआ करती है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी तृषानिवृत्ति-निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था करते हैं, जिससे सबको मधुर शीतल जलकी प्राप्ति हो, उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीने परम करुणाभावसे विषयोंकी तृष्णासे सन्तप्त भव्योंके कल्याणार्थ श्रुतज्ञानरूप प्रपा स्थापित की है। उनके द्वारा शास्त्रका उपदेश होते रहनेसे तथा आगमका शिक्षण होनेसे भव्यात्माओंकी विषयतृष्णा कम होती जाती है ओर वे आत्मोन्मुख बनकर विषयोंकी आशा ही नहीं करती है। श्रुतज्ञान प्रपाके जलका पान करनेसे भोगोंकी अभिलाषारूप तृषा दूर होती है तथा आत्मा, स्वरूपकी उपलब्धि कर, महान् शान्तिका लाभ करती है। द्वादशांगरूप महाशास्त्र-सिन्धुमे अवगाहन कर अपनी पिपासाकी शान्ति साधारण आत्माएँ नहीं कर पाती हैं अतः उनके हितार्थ प्रपा बनायी गयी, जहाँ अपनी मन्दमतिरूपी चुल्लूमे श्रुतरूपी पानी भरकर आत्मा पिपासाकी शान्ति करती है। जितना-जितना यह जीव श्रुतज्ञानके रसका पान करता है और अपनी आत्माको तृप्त करता है, उतना-उतना वह सन्तापमुक्त हो शान्ति लाभ करता है।

---

१ शंका—राग परिणाम मोहनीय कर्मका भेद है। मोहनीय कर्म घातिया कर्मोमे प्रमुख है। घातिया कर्म जब पाप प्रकृतियोमे अन्तर्भूत है, तब रागभाव भी पापप्रकृति रूप स्वय सिद्ध होता है। अतएव पाप-प्रकृति रूप राग परिणामको 'सुट्ठु' (शुभ) रूप कहना कैसे उचित होगा ?

समाधान—इस विषयमे सन्देह निवारण हेतु महर्षि कुन्दकुन्द स्वामीके प्रवचनसारसे प्रकाश प्राप्त होता है। वहाँ ज्ञेयाधिकारमे रागभावके शुभ तथा अशुभ रूप भेद कहे गये है—"सुहो व असुहो हवदि रागो ॥ (१८०) उक्त ग्रन्थके चारित्र अधिकारमे लिखा है—"रागो पसत्थभूदो" (२५५) राग प्रशस्त रूप होता है। अत राग परिणाम प्रशस्त रूप भी होता है, यह कथन आगमके प्रतिकूल नही है। रागको शुभ या प्रशस्त कहनेका कारण यह है कि उसके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है। जिस रागात्मक चित्त-वृत्तिके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है उस पुण्यबन्धके उत्पादक राग भावको आगममे शुभ राग या प्रशस्त राग माना गया है। शुभ भाव पुण्यबन्धका कारण कहा गया है। कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये॥ १८१॥

—प्रवचनसार

शुभ परिणाम रूप रागभावमे पुण्यका बन्ध होता है और अशुभ भावसे पापका बन्ध होता है। अन्यमें रमण न करनेवाला शुद्धभाव आगममें समस्त दुःखोंके क्षयका कारण कहा गया है।

इस कारण शुभ रागभावसे प्रेरित होकर उपाध्याय परमेष्ठी दुःखी जीवोका सन्ताप दूर करते है।

संधारिय-सीलहरा उत्तारिय-चिरपमाद-दुस्सीलभरा।
साहू जयंतु सव्वे सिवसुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभया[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने शीलरूप हारको धारण किया है, चिरकालीन प्रमाद तथा कुशीलके भारको दूर कर दिया है, जो शिव-सुखके मार्गमें स्थित है तथा निर्भीक है, वे सर्व साधु जयवन्त हों।

भावार्थ—हारके धारण करनेसे कण्ठ शोभनीक मालूम पडता है, इसीलिए साधुओंने शीलरूप हारसे अपने कण्ठको भूषित किया है। कण्ठमें स्थित हार प्रत्येकके देखनेमें आता है, साधुओंकी दिगम्बर वृत्ति होनेके कारण उनके शीलरूपी हारको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है। प्रायः संसारी जन प्रमाद तथा कुशील (अनात्मभाव) में निमग्न रहा करते हैं किन्तु मुनिराज प्रमादोंका परित्याग करते है, तथा ब्रह्मचर्यमे निमग्न रहनेके कारण कुशील रूप विकारी भावसे दूर रहते है। निरन्तर कर्मशत्रुओंका सहार करनेमें सलग्न रहनेके कारण उनके पास प्रमादका अवसर ही नहीं आता है। आत्मकल्याणमें वे सदा सावधान रहते है। महर्षि पूज्यपाद[2] के शब्दोंमें वे मुनिराज बोलते हुए भी मौनीके समान रहते है, गमन करते हुए भी नहीं गमन करते हुए सरीखे है, देखते हुए भी नही देखते हुए सदृश है, कारण उन्होंने आत्मतत्त्वमे स्थिरता प्राप्त की है। सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग करके तथा सकल संयमको अगीकार करनेके कारण वे निराकुलतापूर्ण यथार्थ निर्वाण सुखके मार्गमे प्रवृत्त है। उन्हे जीवनकी न ममता है, न मृत्युका भय है। तिलतुषमात्र भी परिग्रह न रहनेसे किसी प्रकारकी भीति नहीं है। वे आत्माको अजर-अमर तथा अविनाशी आनन्दका भण्डार समझ भयमुक्त रहते हैं। ऐसी उज्ज्वल आत्माओंके प्रसादसे अनुवादक निर्विघ्न रूपसे ग्रन्थसमाप्तिके लिए मंगलकामना करता है।

[मूलग्रन्थका मंगल]

महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतके प्रारम्भमे गौतम गणधर-द्वारा विरचित मगलको वहाँसे उद्धृत कर भूतबलि आचार्य इस शास्त्रका मगल मान ग्रन्थारम्भ करते है। द्रव्यार्थिक नयाश्रित भव्य[3] जीवोंके अनुग्रहार्थ गौतम स्वामी सूत्रका प्रणयन करते हुए कहते है—

णमो जिणाणं[4] ॥ १ ॥

अर्थ—जिन भगवान्‌को नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिन शब्दसे तात्पर्य उन श्रेष्ठ आत्माओंसे है, जिन्होने सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमे निबिड रूपसे निबद्ध घातियाकर्मरूप मेघपटलको दूर करके अनन्तज्ञान, अनन्त-

१ "धीरधरियसीलमाला ववगयराया जमोहपडहत्या। बहु-विणय-भूसियगा सुहाइ साहू पयच्छतु ॥"—ति० प० गा० ५। २ "ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति। स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥"—इष्टोप० श्लो० ४१। ३ "एव दव्वट्ठिय-जणाणुग्गहणट्ठ णमोक्कार गोदमभडारओ महाकम्म-पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण "—ध० टी०। ४ "ॐ ह्रौं अर्हं णमो अरिहताण, णमो जिणाण।" —भ० क० य० १। "ॐ ह्रौं जिणाण " —भ० क० य० २।

दर्शन[1], अनन्त-दानादि नव केवल लब्धियोंको प्राप्त किया है, जिन्होंने अनेक विषम भवोंके गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्मशत्रुओंको जीता है—निर्जरा की है, वे जिन है। जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया है वे सकल अर्थात् पूर्णरूपसे जिन कहलाते है। उनमें अरहन्त और सिद्ध गर्भित है। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एकदेश जिन कहे जाते है।

शंका—इसपर विशेष प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे सूत्रके टीकाकार वीरसेनाचार्य कहते हैं – यह सूत्र क्यो कहा गया ?

समाधान—मगलके लिए कहा गया है। पुनः प्रश्न उठता है कि मगल क्या है ? पूर्व-सचित कर्मोंका विनाश मंगल है।

शंका—यदि मगलका यह भाव है, तो यह सूत्र निष्फल है कारण जिनेन्द्रके मुखसे विनिर्गत है अर्थ जिसका, जो अविसंवादसे केवलज्ञानके समान है तथा वृषभसेनादि गणधर देवोंके द्वारा जिनकी शब्दरचना की गयी है ऐसे सर्व सूत्रोंके पठन, मनन तथा क्रियामे प्रवृत्त सम्पूर्ण जीवोंके प्रतिसमय असख्यात गुणश्रेणी रूपसे पूर्व सचित कर्मोंकी निर्जरा होती है। कदाचित् यह मगलसूत्र सफल है, तो ग्रन्थरूप सूत्रका अध्ययन निष्फल है, क्योंकि उससे उत्पन्न कर्मक्षयकी उपलब्धि इसके ही द्वारा हो जायेगी।

समाधान—यह ठीक नहीं है। सूत्राध्ययन-द्वारा सामान्यरूपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, किन्तु इस मंगल सूत्रसे स्वाध्यायमें विघ्नकारक कर्मका नाश होता है। इस कारण मगल सूत्रका प्रारम्भ हुआ।

शंका—तीव्र[3] कषाय, इन्द्रिय तथा मोहका विजय करनेसे सकल जिनोका नमस्कार पापनाशक हो, कारण उनमे सम्पूर्ण गुणोका सद्भाव पाया जाता है, किन्तु यह बात देशजिनोंमें नही पायी जाती। अतः 'णमो जिणाण' सूत्र-द्वारा अरहन्त-सिद्धके सिवाय आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीका नमस्कार मानना युक्तियुक्त नही है।

---

१. "सकलात्मप्रदेश - निबिड - निबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनवकेवललब्धिवान् जिन।" –गो० जी० जी० प्र०। "अनेकविषमभवगहनदुःखप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयन्ति, निर्जरयन्तीति जिना॥" –गो० जी० म० प्र० टी०। २ किमट्ठमिदं वुच्चदे ? मगलट्ठ। किं मगल ? पुव्वसचियकम्मविणासो। जदि एव तो जिणवयणविणिग्गयत्थादो अविसवादेण केवलणाणसमाणादो उसहसेणादिगणहरदेवेहि विरइयसद्दरयणादो सव्वसुत्तादो तप्पढण-गुणण किरियावावदाण सव्वजीवाण पडिसमयमसखेज्जगुणसेडीए पुव्वसचिदकम्मणिज्जरा होदि त्ति णिप्फलादिसुत्तमिदि। अह सफलमिद, णिप्फल सुत्तज्झयण, तत्तो समुवजायमाणकम्मक्खयस्स एत्थेवोवलभो त्ति। ण एस दोसो, सुत्तज्झयणेण सामण्णकम्मणिज्जरा कीरदे एदेण पुण सुत्तज्झयण–विग्घ–फल–कम्मविणासो कीरदि त्ति, भिण्णविसयत्तादो सुत्तज्झयणविग्घफलकम्मविणासो सामण्णकम्मविरोहसुत्तब्भासादो चेव होदि त्ति मगलसुत्तारभो। जिणा दुविहा सयल–देसजिणभेएण। खवियघाइकम्मा सयलजिणा। के ते ? अरिहतसिद्धा। अवरे आइरिय–उवज्झाय साहू देसजिणा, तिव्वकसाय-इदियमोहविजयादो।" –ध० टी० वे०। ३ "सयलासयलजिणट्ठियतिरयणाण ण समाणत्त, सपुण्णासपुण्णाण समाणत्तविरोहादो। सपुण्ण–तिरयणकज्जमसपुण्ण-तिरयणाणि ण करेंति, असमाणत्तादो त्ति। ण, दसणणाण-चरणाणमुप्पण्णसमाणत्तुवलभादो। ण च असमाणाण कज्ज असमाणमेवेत्ति णियमो अत्थि, सपुण्णग्गिणा कीरमाणदाहकज्जस्स तदवयवेवि उवलभादो। अमियघडसएण कीरमाण णिव्विसीकरणादिकज्जस्स अमिय–चुलुवेवि उवलभादो वा। ण च तिरयणाणं देसजिणट्ठियाणं सयलजिणट्ठिएहि भेओ। एव गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स पज्जवट्ठियणयाणुग्गहणट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणदि।"–ध० टी० वेदना० प० ६२३।

समाधान—रत्नत्रयकी अपेक्षा पाँचों परमेष्ठी समान हैं, कारण सकल जिनोंके समान एकदेश जिनोंमें भी रत्नत्रय विद्यमान हैं। देवत्वके लिए रत्नत्रयके सिवाय अन्य कारण नहीं है। इससे सकल जिनोंके समान देशजिनोंका नमस्कार भी कर्मक्षयकारी जानना चाहिए।

शंका—सकल और असकल जिनोंके रत्नत्रयमें समानता नहीं पायी जाती है। सम्पूर्ण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय और असम्पूर्ण रत्नत्रयमे समानताका विरोध है। सम्पूर्ण रत्नत्रयका कार्य असम्पूर्ण रत्नत्रय नहीं करते, कारण वे असमान है। ज्ञान, दर्शन और चारित्रमे समानताकी उपलब्धि नहीं पायी जाती है ?

समाधान— असमानोंका कार्य असमान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। सम्पूर्ण अग्निके द्वारा क्रियमाण दाह-कार्यकी उपलब्धि उसके अवयवमें भी देखी जाती है। अमृतके शतघटों-द्वारा सम्पादित किया जानेवाला निर्विषीकरणरूप कार्य चुल्लू-भर अमृतमें भी पाया जाता है। रत्नत्रयकी अपेक्षा देश तथा सकल जिनोंमें भेद नहीं पाया जाता है।

अब पर्यायार्थिक नयाश्रित जीवोंके कल्याणार्थ **गौतमस्वामी** आगामी सूत्रोंको कहते हैं—

णमो ओहिजिणाणं ॥ २ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—यहाँ 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति आगे भी करनी चाहिए। अवधिज्ञानी देव, नारकी, मनुष्य तथा तिर्यंच भी होते हैं। उन सबको नमस्कार करनेसे क्या कर्मोंकी निर्जरा हो सकती है ? उससे तो कर्मोंका बन्ध ही होगा। 'जिन' शब्दका ग्रहण करनेसे ऐसी आशंकाका निराकरण हो जाता है। इससे रत्नत्रयसे भूषित अवधिज्ञानियोको नमस्कार करना यहाँ इष्ट है।

णमो परमोहिजिणाणं[1] ॥ ३ ॥

अर्थ—परमावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

[3]**णमो सव्वोहिजिणाणं** ॥ ४ ॥

अर्थ—सर्वावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो अणंतोहिजिणाणं[4] ॥ ५ ॥

अर्थ—अनन्त अवधिवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—अनन्त है अवधि-मर्यादा जिसकी, ऐसे केवलज्ञानधारक अनन्तावधि जिनोंको नमस्कार हो।

---

१ परमावधयश्च ते जिनाश्च परमावधिजिना तेभ्यो नम । २ "ॐ ह्री अर्हं णमोहिजिणाण ' " –भ०क०य०३। "ॐ ह्रीं अर्हं णमोहिबुद्धीण"–भ०क०य०१२। ३ 'ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वोहिजिणाण "–भ०क०य०४। ४ "ॐ, ह्री अर्हं णमो अणतोहिजिणाण "–भ०क०य०५। ५ अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधि· । न विद्यतेऽन्तो यस्य स अनन्तावधिः। अभेदाज्जीवस्यापीयं सज्ञा। अनन्तावधयश्च ते जिनाश्च अनन्तावधिजिना, तेभ्यो नम । अणतोहिजिणा णाम केवलणाणिणो।

णमो कोट्ठबुद्धीणं[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—कोष्ठबुद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिस प्रकार किसी कोठेमें पृथक्-पृथक् तथा सुरक्षित बहुत-से धान्यके बीजों-का संग्रह रहता है, उसी प्रकार कोष्ठबुद्धिनामक ऋद्धिमे परोपदेशके बिना ही तत्त्वोंके अर्थ, ग्रन्थ तथा बीजोंका अवधारण करके पृथक्-पृथक् अवस्थान किया जाता है। इस बुद्धिमें कोष्ठके समान भिन्न-भिन्न बहुत तत्त्वोंकी अवधारणा रहती है (त०रा० अ०३, पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है कि उत्कृष्ट धारणासम्पन्न कोई पुरुष गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रन्थोंसे विस्तारपूर्वक लिंगसहित शब्दरूप बीजोंको अपनी बुद्धिसे ग्रहण करके बिना मिश्रणके अपनी बुद्धिरूपी कोठेमें धारण करता है, उसे कोष्ठबुद्धि कहते है (पृ० २७२)।

णमो बीजबुद्धीणं[2] ॥ ७ ॥

अर्थ—बीजबुद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जैसे सम्यक् प्रकार हल-बखरसे तैयार की गयी उपजाऊ भूमिमे योग्य काल-मे बोया गया एक भी बीज बहुत बीजोको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण, श्रुत-ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम-प्रकर्षसे एक बीज पदके ग्रहण-द्वारा अनेक पदार्थोंको जाननेवाली बीजबुद्धि है। (राजवा० पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे विशुद्ध हुई किसी भी महर्षिकी जो बुद्धि, संख्यातस्वरूप शब्दोके बीचमे-से लिंगसहित एक ही बीजभूत पदको परके उपदेशसे प्राप्त करके उस पदके आश्रयसे सम्पूर्ण श्रुतको विस्तार कर ग्रहण करती है, वह बीजबुद्धि है (पृ० २७२)।

णमो पदाणुसारीणं[3] ॥ ८ ॥

अर्थ—पदानुसारी ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—दूसरे व्यक्तिसे एक पदके अर्थको सुनकर आदि, मध्य तथा अन्तके शेष ग्रन्थार्थका निश्चय करना पदानुसारित्व है। यह अनुश्रोतृ, प्रतिश्रोतृ तथा उभयरूप तीन प्रकार है। तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—जो बुद्धि आदि, मध्य अथवा अन्तमे गुरुके उपदेशसे एक बीज पदको ग्रहण करके उपरिम ग्रन्थको ग्रहण करती है वह अनुसारिणी बुद्धि है। गुरुके उपदेशसे आदि, मध्य अथवा अन्तमे एक बीज पदको ग्रहण करके जो बुद्धि अधस्तन ग्रन्थको जानती है, वह प्रतिसारिणी बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि नियम अथवा अनियमसे एक बीज शब्दको ग्रहण करनेपर उपरिम और अधस्तन ग्रन्थको एक साथ जानती है वह उभयसारिणी है। ये पदानु-सारित्वके तीन भेद है। (गा० ९८१-८३)।

णमो संभिण्णसोदाराणं[4] ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।[5]

---

१ '"ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीण "—भ० क० य० ६। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीण " भ० क० य० ७। ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहताण णमो पादानुसारीण "—भ० क० य० ८। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताण णमो संभिण्णसोदराण "—भ० क० य० ९। ५ सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन भिन्ना अनुविद्धा सम्भिन्ना। सम्भिन्नाश्च ते श्रोतारश्च सम्भिन्नश्रोतारः।

विशेषार्थ– नौ योजन लम्बी, बारह योजन चौड़ी चक्रवर्तीकी सेनाके हाथी, घोड़ा, ऊँट तथा मनुष्यादिकोंके एक साथमें उत्पन्न अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अनेक प्रकारके शब्दोंको तपोबलविशेषके कारण सर्वजीव-प्रदेशोमें कर्ण-इन्द्रियका परिणमन होनेसे सर्व शब्दोंका एक कालमें ग्रहण करना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है।

तिलोयपण्णत्तिमे कहा है--श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अंगोपांग नाम कर्मके उदय होनेपर श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दसों दिशाओमे सख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रमे स्थित मनुष्य एवं तिर्यंचोके अक्षरात्मक-अनक्षरात्मक बहुत प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शब्दोंको सुनकर जिससे उत्तर दिया जाता है वह सम्भिन्न-श्रोतृत्व है।

णमो उजुमदीणं[1] ॥ १० ॥

अर्थ—ऋजुमति मन पर्यय ज्ञानी जिनोको नमस्कार हो।

णमो विउलमदीणं[2] ॥ ११ ॥

अर्थ--विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोको नमस्कार हो।

णमो दसपुव्वीणं[3] ॥ १२ ॥

अर्थ—दश पूर्वधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--महारोहिणी आदि विद्याओंके द्वारा अपने रूप, सामर्थ्य आदिका प्रदर्शन करनेपर भी अडिग चारित्रधारीका जो दशमपूर्व रूप दुस्तर सागरके पार पहुँचना है, वह दशपूर्वित्व है। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अभिन्नदशपूर्वित्वका ग्रहण किया है[4]।

तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—दशम पूर्वके पढनेमे रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं तथा अगुष्ठप्रसेनादिक सात सौ क्षुद्र विद्याओंके द्वारा आज्ञा माँगनेपर भी जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नहीं करते हैं, वे 'विद्याधरश्रमण' या 'अभिन्नदशपूर्वी' कहलाते है। (पृ० २७४)।

णमो चोद्दसपुव्वीणं[5] ॥ १३ ॥

अर्थ--चौदह पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ--जो सम्पूर्ण श्रुतकेवलीपनेको प्राप्त है, वे चतुर्दशपूर्वी कहलाते है।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण "–भ० क० य० १३। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउ-लमदीण " भ० क० य० १४। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण " –भ० क० य० १५। ४ "एत्थ दसपुव्विणो भिण्णाभिण्णभेएण दुविहा होंति। भिण्णदसपुव्वीण कथ पडिणियत्ती ? जिणसद्दाणु-वत्तीदो। ण च तसि जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो।"–ध० टी०। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउद्दसपुव्वीण '– भ० क० य० १६।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं[1] ॥ १४ ॥

अर्थ—अष्टांग महानिमित्त विद्यामे प्रवीण जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[2]अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न—ये आठ महानिमित्त कहे जाते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, ताराओंके उदय, अस्त आदिसे भूत-भविष्यत्सम्बन्धी फलका ज्ञान करना अन्तरिक्षज्ञान है। पृथ्वीके घन, सुषिर, रूक्षतादिके ज्ञानसे अथवा पूर्वादि दिशाओंमें सूत्रनिवास करनेसे वृद्धि, हानि, जय, पराजय आदिका ज्ञान करना तथा भूमिमे छिपे हुए स्वर्ण, चाँदी आदिका परिज्ञान करना भौमज्ञान है। अग-उपांगोंके देखने आदिसे त्रिकालवर्ती सुख-दुःखादिको जान लेना अंगज्ञान है। अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक शुभ-अशुभ शब्दको सुनकर इष्ट-अनिष्ट फलको जान लेना स्वरज्ञान है। मस्तक, ग्रीवा आदिमे तिल, मशक आदि चिह्नोंको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हित-अहितका जानना व्यंजनज्ञान है। श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, भृगार, कलश आदि लक्षणोको देखकर त्रिकालवर्ती स्थान, मान, ऐश्वर्य आदिका विशेष ज्ञान करना लक्षण नामक निमित्तज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन, शयनादिकोमे देव, मानुष, राक्षसादि विभागोसे शस्त्र, कण्टक, चूहा आदिकृत छेदनको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हानि, लाभ, सुख, दुःखादिको सूचित करना छिन्न नामक ज्ञान है।[3] वात, पित्त, कफ दोषोके उदयसे रहित व्यक्तिके रात्रिके पिछले भागमे, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, समुद्र आदिका अपने मुखमें प्रवेश करना सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उपगूहन आदि शुभ स्वप्न तथा घृत या तैललिप्त अपना शरीर देखना, गर्दभ, ऊँटपर चढ़े हुए इधर-उधर भटकते फिरना आदि अशुभ स्वप्नके दर्शनसे आगामी जीवन, मरण, सुख, दुःखादिका ज्ञान करना स्वप्नज्ञान है। इन महानिमित्तोमे जो कुशलता है, वह अष्टागमहानिमित्तता है। (त० रा० पृ० १४३)।

णमो विउव्वणपत्ताणं ॥ १५ ॥

अर्थ—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनोको नमस्कार हो।

विशेषार्थ— विक्रियाको विषय करनेवाली ऋद्धिके अनेक भेद हैं। जैसे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि। शरीरको अत्यन्त छोटा करना 'अणिमा' है। इस ऋद्धिके प्रभावसे कमल-मृणालके छिद्रमें प्रवेश करके वहाँ ठहरने तथा चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है। अपने शरीरको मेरु पर्वतसे भी विशाल करना 'महिमा' ऋद्धि है। शरीरको वायुसे भी हलका करना 'लघिमा' है। शरीरको वज्रसे भी अधिक भारी बनाना 'गरिमा' है। भूमिपर स्थित रहते हुए भी अगुलीके कोनेसे मेरु शिखर, सूर्य आदिको स्पर्शन करनेकी सामर्थ्यको 'प्राप्ति' कहते है। जलमे पृथ्वीके समान चलना, भूमिपर जलके समान तैरना 'प्राकाम्य' ऋद्धि है। तीन लोककी प्रभुता 'ईशित्व' है। सम्पूर्ण जीवोंको वश करनेकी सामर्थ्य 'वशित्व' है। पर्वतके भीतर भी आकाशमे गमनागमनके समान बिना रुकावटके आना-जाना 'अप्रति-

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो अट्ठागमहाणिमित्तकुसलाणं'...''—भ० क० य० १७। २ "अग सरो वंजणलक्खणाणि छिण्ण च भोम सुमिणंतरिक्ख। एदे णिमित्ते हि कराहि णिच्चा जाणसि लोयस्स सुहासुहाइ॥"—ध० टी० प० ६२७। ३ देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यचोके द्वारा छेदे गये शास्त्र एवं वस्त्रादिक तथा भवन नगर और देशादि चिह्नोको देखकर त्रिकालभावी शुभ, अशुभ, मरण, विविध प्रकारके द्रव्य और सुख-दुःखको जानना यह चिह्न निमित्त ज्ञान है। यहाँ 'छिन्न' का नाम 'चिह्न' दिया गया है।—ति० प० पृ० २७६।

घात' है। अदृश्य रूप होनेकी सामर्थ्य 'अन्तर्धान' है। युगपत् अनेक आकार और रूप बनानेकी शक्ति 'कामरूपित्व' है।

यहाँ[1] जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अष्टगुण ऋद्धि होते हुए भी देवोंका ग्रहण नहीं किया गया है कारण देवोंमे संयमका अभाव है अतः वे 'जिन' नहीं है।

णमो विज्जाहराणं ॥१६॥

अर्थ—विद्याधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[3]विद्या तीन प्रकारकी होती हैं। मातृ पक्षसे प्राप्त जातिविद्या है। पितृपक्षसे प्राप्त कुलविद्या है। षष्ठ, अष्टम आदि उपवास करनेसे सिद्ध की गयी तपविद्या है। यहाँ देव तथा विद्याधरोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण वे जिन नहीं है।

णमो चारणाणं[4] ॥ १७ ॥

अर्थ—चारणऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जल, जघा, तन्तु, पुष्प, पत्र, अग्नि-शिखादिके आलम्बनसे गमन करना 'चारण' ऋद्धि है। कुँआ, बावड़ी आदिमे जलकायिक जीवोंकी विराधना नही करते हुए भूमिके समान चरणोंके उठाने-धरनेकी प्रवीणताको 'जलचारण' कहते है। भूमिसे चार अगुल ऊँचे आकाशमे जघाके उठाने-धरनेकी कुशलतासे सैकड़ो योजन गमन करनेकी प्रवीणता 'जंघाचारण' है। इसी प्रकार इस ऋद्धिके अन्य भेद है।

णमो पण्हसमणाणं[5] ॥ १८ ॥

अर्थ—[6]प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—असाधारण प्रज्ञाशक्तिधारी प्रज्ञाश्रमण कहलाते है। अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वार्थचिन्तनके प्रभावसे चौदह पूर्वोंके विषयमे पूछे जानेपर जो द्वादशाग चतुर्दश पूर्वको बिना पढ़े हुए भी उत्कृष्ट श्रुतावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण प्रज्ञा-शक्तिके लाभसे स्पष्ट निरूपण करते है वे प्रज्ञाश्रमणधारी हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २७७) में प्रज्ञाके चार भेद कहे है—औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी तथा कर्मजा। भवान्तरमें कृत श्रुतके विनयसे उत्पन्न होनेवाली औत्पत्तिकी, निज-निज जातिविशेषमे उत्पन्न हुई पारिणामिकी, द्वादशांगश्रुतकी विनयसे उत्पन्न वैनयिकी एवं उपदेशके बिना तपविशेषके लाभसे उत्पन्न कर्मजा कहलाती है।

---

१ "अट्ठगुणढिजुत्ताण देवाण एसो णमोक्कारो किण्ण पावदे ? ण एस दोसो, जिणसद्दाणुवट्टणेण तण्णि-राकरणादो। ण च देवाण जिणत्तमत्थि। तत्थ सजमाभावादो ॥"—ध० टी०। २ "ॐ ह्री अर्हं णमो विज्जाहराण"—भ० क० य० १९। ३ "तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णाम। पिदुपक्खलद्धाओ कुलविज्जाओ। छट्ठट्ठमादिउववासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ। एवमेदाओ तिविहाओ होंति।"—ध० टी०। ४ "ॐ ह्री अर्हं णमो चारणाण"—भ० क० य० २०। ५ "ॐ ह्री अर्हं णमो पण्णसमणाण"—भ० क० य० २१। ६ "औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा। प्रज्ञा एव श्रवण येषा ते प्रज्ञाश्रवणा। असजदाण न पण्णसमणाण गहण जिणसद्दाणुउत्तीदो।" —ध० टी०।

यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेसे असयतोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आगासगामीणं[1] ॥ १९ ॥

अर्थ—आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पल्यंकासन वा कायोत्सर्ग आसनसे ही पैरोंको बिना उठाये-धरे आकाशमें गमन करनेकी विशेषताको आकाश-गमन ऋद्धि कहते हैं। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेके कारण देव विद्याधरोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आसीविसाणं[2] ॥ २० ॥

अर्थ—आशीविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

उग्र विषयुक्त आहार भी जिनके मुखमें जाकर निर्विष हो जाता है वा जिनके मुखसे निकले हुए वचनोंके श्रवणसे महाविषयुक्त व्यक्ति निर्विष हो जाता है, वे 'आस्याविष' ऋद्धिधारी है। महान् तपोबलसे विभूषित यतिजन जिसको कहें 'तू मर जा' वह तत्क्षण ही महाविषयुक्त हो मृत्युको प्राप्त हो जाता है, वह 'आस्यविष' ऋद्धि है। इस प्रकार 'आस्य अविष' तथा 'आस्य विष' दोनो प्रकारके अर्थ कहे गये हैं[3]।

णमो दिट्ठिविसाणं[4] ॥ २१ ॥

अर्थ—दृष्टिविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके देखने मात्रसे अत्यन्त तीव्र विषसे दूषित भी प्राणी विषरहित हो जाता है वे 'दृष्टिविष' ऋद्धिधारी है। उग्र तपस्वी मुनिजन क्रुद्ध हो जिसे देख ले, वह उसी समय उग्र विषयुक्त हो मर जाता है। इसे भी दृष्टिविष ऋद्धि कहते है। यहाँ भी 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति है, अन्यथा दृष्टिविष सर्पोंको भी प्रणामका प्रसंग आता[5]। यद्यपि साधुजन तोष अथवा रोषसे मुक्त है, फिर भी तपस्याके कारण उनमें उपर्युक्त विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसका उपयोग वीतराग ऋषिगण नहीं करते हैं।

णमो उग्गतवाणं[6] ॥ २२ ॥

अर्थ—उग्र तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह दिन वा पक्ष मासादिके अनशन योगोंमे किसी भी रूपके उपवासको प्रारम्भ करके मरणपर्यन्त भी उस योगसे विचलित नहीं होना उग्रतप ऋद्धि है।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं"—भ० क० य० २२। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाण"—भ० क० य० २३। ३. "अविद्यमानस्यार्थस्य आशसमाशी, आशीर्विष येषा ते आशीर्विषाः। तवोबलेण एवंविहसत्तिसंजुतवयणा होदूण जे जीवाण णिग्गहाणुग्गहं ण कुणंति। ते आसीविसा त्ति घेतव्वा। कुदो ? जिणाणुवट्टीदो। ण च णिग्गहाणुग्गहेहि सदरिसिदरोसतोसाणं जिणत्तमत्थि विरोधादो।" —ध० टी०। ४. 'ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाण" —भ० क० य० २४। ५ "दृष्टिरिति चक्षुर्मनसोर्ग्रहण। जिणाणमिदि अणुवट्टदे, अण्णहा दिट्ठिविसाणं सप्पाणं पि णमोक्कारप्पसंगादो।" —ध० टी०। ६ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं" —भ० क० य० २५।

णमो दित्ततवाणं[1] ॥ २३ ॥

अर्थ—दीप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—महान् उपवास करनेपर भी जिनकी मन, वचन, कायकी शक्ति बढ़ती हुई ही पायी जाती है, जो दुर्गन्धरहित मुखवाले, कमल—उत्पलादिकी सुगन्धके समान श्वास-वाले तथा शरीरकी महाकान्तिसे सम्पन्न हैं, वे दीप्ततपस्वी जिन हैं ।

णमो तत्ततवाणं[2] ॥ २४ ॥

अर्थ—तप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—तप्त लोहेकी कढाईमे पतित जलकणके समान शीघ्र ही जिनका अल्प आहार शुष्क हो जाता है उसका मल रुधिरादि रूपमे परिणमन नहीं होता वे तप्ततपस्वी हैं ।

णमो महातवाणं[3] ॥ २५ ॥

अर्थ—महातपधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—सिंहनिष्क्रीडितादि महान् उपवासादिके अनुष्ठानमे परायण महातपस्वी कहलाते है ।

णमो घोरतवाणं[4] ॥ २६ ॥

अर्थ—[5]घोर तपधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वात, पित्त, कफकी विषमतासे उत्पन्न ज्वर, खाँसी, श्वास, नेत्रपीड़ा, कुष्ठ, प्रमेहादि रोगोंसे पीड़ित शरीरयुक्त होते हुए भी जो अनशन, कायक्लेशादि तपोंसे अविचलित रहते है तथा भयकर श्मशान, पर्वत-शिखर, गुहा, दरी, शून्य ग्राम आदिमे, जहाँ अत्यन्त दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच बेताल भयंकर रूपका प्रदर्शन कर रहे हैं एव जहाँ शृगालके कठोर शब्द, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदिके भीषण शब्द हो रहे है ऐसे भयंकर प्रदेशोमे सहर्ष रहते हैं वे घोर तपस्वी है ।

णमो घोरपरकमाणं[6] ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर पराक्रमवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त तपस्वी जब ग्रहण किये गये तपकी साधनामें वृद्धि करते है, तब वे घोर पराक्रमी कहलाते हैं ।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८१) मे कहा है—जिस ऋद्धि के प्रभावसे मुनिजन अपनी अनु-पम सामर्थ्यसे कण्टक, शिला, अग्नि, पर्वत, धूम्र और उल्का आदिके पात करनेमें तथा सागरके समस्त जलका शोषण करनेमें समर्थ होते है, वह घोर पराक्रम ऋद्धि है ।

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो दित्ततवाणं " –भ० क० य० २६ । २. "ॐ ह्री अर्हं णमो तत्ततवाण " –भ० क० य० २७ । ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाण "–भ० क० य० २८ । ४ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरतवाण " –भ० क० य० २९ । ५. "घोरा रउद्दा गुणा जेसि ते घोरगुणा । कथ चोरासीदि-लक्खगुणाण घोरत्त ? घारकज्जकारिसत्तिजणणादो । तेसि घोरगुणाण णमो इदि उत्तं होदि ।" –ध० टी० । ६. "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरपरक्कमाणं " –भ० क० य० ३१ ।

णमो घोरगुणाणं[1] ॥ २८ ॥

अर्थ—घोर गुणवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

णमोऽघोरगुणबह्मचारीणं[2] ॥ २९ ॥

अर्थ—अघोर ब्रह्मचर्यधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वीरसेनाचार्य कहते है—जिनमें तपोमाहात्म्यसे मारी आदि रोग, दुर्भिक्ष, वैर, कलह, वध, बन्धन आदिके प्रशमन करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वे अघोर ब्रह्मचारी हैं[3] । देवांगनाओके द्वारा आलिंगनादि किये जानेपर भी ये निर्विकार परिणाम-युक्त रहते हैं ।

अकलंक स्वामी राजवार्तिक (पृ० १४४) मे अघोरके स्थानमे घोर पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं—जो चिरकालसे अखण्ड ब्रह्मचर्यके धारक हैं और चारित्रमोहके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे जिनके दु:स्वप्नोंका विनाश हो चुका है वे घोर ब्रह्मचारी है ।

तिलोयपण्णत्तिकार (पृ० २८२) कहते हैं—जिस ऋद्धिसे मुनिके क्षेत्रमें चोरादिककी बाधा, दुष्काल तथा महायुद्ध आदि नहीं होते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है, अथवा चारित्र-निरोधक मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेसे जो ऋद्धि दुःस्वप्नोंको दूर करती है वह अघोर ब्रह्मचारित्व है, अथवा जिस ऋद्धिके होनेसे महर्षिजन सब गुणोंके साथ अघोर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, वह अघोरब्रह्मचारित्व है ।

णमो आमोसहिपत्ताणं[4] ॥ ३० ॥

अर्थ—जिनका आम अर्थात् अपक्वाहार औषधिरूपताको प्राप्त हो उन जिनोंको नमस्कार हो ।

तिलोयपण्णत्तिमे इसे आमर्शौषधि कहा है । वहाँ लिखा है, जिस ऋद्धिके प्रभावसे जीव पासमे आनेपर ऋषिके हस्त व पादादिके स्पर्शसे ही नीरोग हो जाते हैं वह आमर्शौषधि है (ति० प० पृ० २८३) ।

णमो खेलोसहिपत्ताणं[5] ॥ ३१ ॥

अर्थ—क्ष्वेलौषधि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनका निष्ठीवन (थूक) औषधिरूप अर्थात् रोगनिवारक होता है, वे मुनिराज क्ष्वेलौषधि प्राप्त है ।

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरगुणाण " –भ० क० य० ३० । २ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोर-गुणबम्भचारीण " –भ० क० य० ३२ । घोरो दुर्धरो गुणो निरतिचारतालक्षणो यस्य तद्घोरगुणम्, दिव्याङ्गनालिङ्गनादिभिरप्यक्षुभितचित्तम् –प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी पृ० ९४ । ३ "ब्रह्म चारित्रं पञ्चव्रतसमितित्रिगुप्त्यात्मक शान्तिपुष्टिहेतुत्वात् । अघोरा अन्ता गुणा यस्मिन् तदघोरगुणम् अघोरगुणं ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणब्रह्मचारिण । जेंसि तवोमाहप्पेण मारिदुब्भिक्खवैरकलहवधबधणरोगादिपसमण-सत्ती समुप्पण्णा ते अघोरगुणब्रह्मचारिणो त्ति उत्त होदि । एत्थ अकारो किण्ण सुणिज्जदे ? सधिणि-द्देसादो ।"–ध० टी० । ४ आमोऽपक्वाहार स एवौषधि ता प्राप्ता आमौषधिप्राप्ता –प्रतिक्र० पृ० ९४ । ५ "ॐ ह्री अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं ।"–भ० क० य० ३४ ।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं[1] ॥ ३२ ॥

अर्थ—जल्लौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पसीनेसे मिले हुए धूलिसमूहरूप मलको जल्ल कहते है। जिन मुनियोंका जल्ल औषधिरूप होता है, वे जल्लौषधि प्राप्त जिन कहलाते हैं।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं[2] ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनका मूत्र पुरीषादि मल रोगनिवारक होता है, वे विष्ठौषधिप्राप्त हैं। महान् तपश्चर्याके प्रभावसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं[3] ॥ ३४ ॥

अर्थ—सर्वौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिन ऋषियोंके अंग, प्रत्यंग, नख, दन्त, केशादि स्पर्श करनेवाले जल, पवनादि जीवोंके लिए औषधिरूप परिणत हो जाते हैं, वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं।

णमो मणबलीणं[4] ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनबलधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके प्रकर्षसे अन्तर्मुहूर्तमें ही सम्पूर्ण श्रुतके अर्थ-चिन्तनमें प्रवीण मनोबली हैं।

णमो वचिबलीणं[5] ॥ ३६ ॥

अर्थ—वचनबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—मन, रसना तथा श्रुतज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके अतिशयसे जो अन्तर्मुहूर्तमे सम्पूर्ण श्रुतके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं तथा निरन्तर उच्चस्वरसे उच्चारण करनेपर भी जो श्रमरहित एव कण्ठके स्वरमें हीनतारहित हैं, वे ऋषि वचनबली है।

णमो कायबलीणं[6] ॥ ३७ ॥

अर्थ—कायबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण शरीरबल होनेसे मासिक, चातुर्मासिक, वार्षिक आदि प्रतिमायोग धारण करते हुए भी जिन्हें खेद नहीं होता वे मुनिवर कायबली है।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८३) में कहा है—जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर मुनिराज मास वा चातुर्मास आदि कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमरहित

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण"—भ० क० य० ३५। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विट्ठोसहिपत्ताण"—भ० क० य० ३६। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताण" —भ० क० य० ३३–३७। ४ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीण"—भ० क० य० ३८। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचबलीण" —भ० क० य० ३९। ६ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीण" —भ० क० य० ४०।

होते हैं तथा शीघ्र ही तीनों लोकोंको कनिष्ठ अंगुलीपर उठाकर अन्यत्र धरनेमे समर्थ होते हैं, वह कायबल नामकी ऋद्धि है।

णमो खीरसवीणं[1] ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्षीरस्रवी ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नीरस भोजन भी जिनके हस्त-पुटमें रखे जानेपर क्षीर-गुणरूप परिणमन करता है वा जिनके वचन क्षीण व्यक्तियोंको दुग्धके समान तृप्ति प्रदान करते हैं, वे क्षीरस्रवी है। तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृ० १४५) मे 'क्षीरास्रवी' पाठ ग्रहण किया है।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३६ ॥

अर्थ—घृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—रूक्ष भोजन भी जिनके कर-पात्रमे पहुँचते ही घृतके समान शक्तिदायक हो जाता है अथवा जिनका सम्भाषण जीवोंको घृत-सेवनके समान तृप्ति पहुँचाता है, वे घृतस्रवी है।

णमो महुसवीणं[2] ॥ ४० ॥

अर्थ—मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमे रखा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसपूर्ण तथा शक्ति-सम्पन्न हो जाता है, अथवा जिनके वचन दुःखी श्रोताओंको मधुके समान सन्तोष देते हैं, वे मधुस्रवी है। यहाँ मधु शब्दका तात्पर्य मधुररसवाले गुड, खाँड़, शर्करा आदिसे है, कारण उन सबमे मधुरता पायी जाती है।[3]

णमो अमइसवीणं[4] ॥ ४१ ॥

अर्थ—अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमे पहुँचकर कोई भी भोज्य वस्तु अमृतरूप हो जाती है, अथवा जिनकी वाणी जीवोंको अमृत तुल्य कल्याण देती है, वे अमृतस्रवी है।

णमो अक्खीणमहाणसाणं[5] ॥ ४२ ॥

अर्थ—अक्षीण महानस ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—लाभान्तरायके क्षयोपशमके उत्कर्षको प्राप्त मुनीश्वरोंको जिस पात्रसे आहार दिया जाता है, उससे यदि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन करे, तो उस दिन अन्नकी कमी न पड़े यह अक्षीण महानस ऋद्धि है। तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८५) मे कहा है—लाभान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त मुनिराजके भोजनानन्तर भोजनशालाके अवशिष्ट अन्नमे-से जिस किसी भी प्रिय वस्तुका उस दिन चक्रवर्तीके कटकको भोजन करानेपर भी लेशमात्र क्षीण न होना अक्षीण महानस ऋद्धि है।

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो खीरसवीण"—भ० क० य० ४२। २ "ॐ ह्री अर्हं णमो महुरसवीण"—भ० क० य० ४३। ३ "महुवयणेण गुडखडसक्करादीणं गहणं महुरसाद पडि एदासिं साहम्मुवलभादो।" ध० टी०। ४. 'ॐ ह्रो अर्हं णमो अमियसवीण" —भ० क० य० ४४। ५. "ॐ ह्रो अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाण' "—भ० क० य० ४५।

णमो सव्वसिद्धायदणाणं[1] ॥ ४३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण सिद्धायतनों अर्थात् निर्वाणक्षेत्रोंको नमस्कार हो ।

णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स[2] ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्धमान बुद्ध ऋषिको नमस्कार हो ।

[प्रकृतिसमुत्कीर्तननिरूपणा]

[इस महाबन्ध अथवा महाधवल शास्त्रका प्रारम्भिक ताडपत्र नं० २७।१ नष्ट हो गया है उसकी उसी रूपमे पूर्ति होना असम्भव है। आगेके वर्णनक्रमके साथ सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा अवधिज्ञानावरणका सक्षेपमे वर्णन करते है, कारण ग्रन्थमे ज्ञानावरणपर आरम्भमे प्रकाश डाला गया है।]

जो त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोंको नाना भेदोंसहित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जानता है, उसे ज्ञान कहते है।[3] उस ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण कर्म है। यह ज्ञान जीवका स्वभाव है। इसके द्वारा जीव स्व तथा अपूर्व वस्तुका व्यवसाय निश्चय करता है। वस्तु सामान्य तथा विशेष धर्मोंसे समन्वित है। साकार उपयोग ज्ञान तथा निराकार उपयोग दर्शन कहलाते है।[4] ज्ञान तथा दर्शन जीवके पृथक्-पृथक् गुण हैं।[5] चित् प्रकाशकी बहिर्मुख वृत्तिको भी ज्ञान कहते है और चित्-प्रकाशकी अन्तर्मुख वृत्तिको दर्शन कहते है। गोम्मटसार जीवकाण्डमे लिखा है—सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंके भेदको ग्रहण न करके जो सामान्यग्रहण-स्वरूपमात्रका अवभासन है, वह दर्शन है (४८२ गाथा)। इस दर्शनका आवरण करनेवाला कर्म दर्शनावरण है। जिसके[6] उदयसे देवादि गतियोमे शारीरिक तथा मानसिक सुखकी प्राप्ति होती है, उसे साता कहते है, उसको जो भोगवावे तथा जिससे साताका वेदन करना, भोगना होता है, वह सातावेदनीय है। जिसके उदयका फल अनेक प्रकारके दुःख है, वह असाता है। जो उसे भोगवावे—अनुभवन करावे, वह असातावेदनीय है। जो जीवको मोहित करे, वह मोहनीय कर्म है। भव धारण करनेमें कारण आयु कर्म है। इस जीवकी नर-नारकादि विविध पर्यायोंमें कारण नाम कर्म है। कुल-परम्परासे प्राप्त जीवके उच्च अथवा नीच आचरणका कारण गोत्रकर्म है। इस जीवके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) मे जो अन्तराय—बाधा डालता है, वह अन्तराय कर्म है। इन आठ कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह तथा अन्तरायको घातिया कर्म कहते हैं, कारण ये जीवके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य नामक गुणोंका

---

१ "सिद्धाना मुक्तात्मनामायतनानि निर्वाणस्थानानि तेषा नम "—प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी पृ० ६५ । २ "ॐ ह्री अर्हं णमो वड्ढमाणाण "—भ० क० य० ४६। "ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वमाहूण महति महावीर-वड्ढमाण बुद्धिरिसीण "—भ० क० य० ४८। "बुद्धश्च स्वहेयोपादेयविवेकसपन्न, ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी' प्र० ग्रन्थत्रयी पृ० ६५ । ३ "जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे। पच्चक्ख च परोक्ख अणेग णाणे त्ति ण वेति ॥"—गो० जी० गा० २९८। ४ 'साकार ज्ञानमनाकार दर्शनम्"—त० रा० पृ० ८६ । ५ "अन्तर्बहिर्मुखयोश्चित्प्रकाशयोर्दर्शनज्ञानव्यपदेशभाजोरेकत्व विरोधात्"—ध० टी० भा० १ पृ० १४५। ६ "यदुदयात् देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्ति तत्सातम्। तद्वेदयति वेद्यते इति सातवेदनीयम्। यदुदयफल दुःखमनेकविध तदसातम, तद्वेदयति वेद्यते, इत्यसातवेदनीयमिति—गो० क० टीका पृ० २७।

घात करते हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जीवके अनुजीवी गुण हैं। सिद्धोंके[1] अव्याबाध सुखका घात आठों ही कर्म करते हैं। प्रत्येक कर्मका कार्य जीवके विशेष गुणके घात करनेका है, किन्तु उन सबका सामान्य धर्म जीवके सुख गुणके भी विनाश करनेका पाया जाता है।

वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र ये प्रतिजीवी गुणोंका नाश करते हैं। अनुजीवी गुणोंका घात न करनेके कारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। ये क्रमशः अव्याबाध, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व तथा अगुरुलघुत्व गुणोंका नाश करते हैं। चार घातियाका नाश करनेवाले अरहन्त भगवान्मे गुणचतुष्टयकी अभिव्यक्ति होती है तथा सिद्धोंमें कर्माष्टकके ध्वंस करनेसे आठ गुण व्यक्त होते है।[2] कर्मोंके ध्वंसका अर्थ पुद्गलका अत्यन्त क्षय नहीं है, कारण सत्का अत्यन्त विनाश नही हो सकता। पुद्गलकी कर्मत्वपर्यायका नष्ट हो जाना अर्थात् आत्माके साथ उसका सम्बन्ध न रहना ही कर्मक्षय है।

ज्ञानावरण कर्मकी पॉच प्रकृतियॉ हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये आवरणपचक आभिनिबोधिकज्ञान—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानरूप ज्ञानकी पॉच अवस्थाओंको आवृत करते है। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानको मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोंको कुज्ञान भी कहते है।

इन्द्रिय[3] तथा मनकी सहायतासे अभिमुख तथा प्रतिनियत पदार्थको जाननेवाला आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहलाता है। [4]मतिज्ञान-द्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते है। [5]द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते है। परकीय मनमे स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यों तथा उनकी समस्त पर्यायोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

[आभिनिबोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा बत्तीस प्रकारका है। अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवायावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते है। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनन्तर भाषा, वेष आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो संशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, वह अवाय है। उसका आवारक अवायावरण कर्म है। अवायज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमे स्मरणका कारण धारणाज्ञान है, उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

---

१ "कर्माष्टक विपक्षि स्यात् सुखस्यैकगुणस्य च। अस्ति किंचिन्न कर्मैक तद्विपक्ष तत पृथक् ॥ –पञ्चाध्यायी २।११५। २ "मणेर्मलादेर्व्यावृत्ति क्षय। सतोऽत्यन्तविनाशानुपपत्तो। तादृगात्मनोऽपि कर्मणो निवृत्तौ परिशुद्धि।"–अष्टसह० पृ० ५३। ३ "तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्"–त० सू० १।१४। ४. "अत्थादो अ.ध्तरमुवलभ त भणति सुदणाण। आभिणिबोहियपुव्व णियमेणिह सद्दजं पमुह ॥"–गो० जी० ३१४। ५ "अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णिय समये। भवगुणपच्चयविहिय जमोहिणाणे त्ति ण वेति ॥"–गो० जी० ३६६।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यंजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्बद्ध अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यंजनावग्रहका आवारक व्यंजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अतएव इसके स्पर्शनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते है।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्राहक होनेके कारण पॉच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नोइन्द्रियावरण कर्म है। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पॉच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह-छह भेदवाला है। इस कारण व्यंजनावग्रहके चार भेदोंमे अर्थावग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलानेसे २८ भेद होते है। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते है। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, नि सृत, अनिःसृत—इन बारह प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते है। इस प्रकार २८ × १२ = ३३६ भेद मतिज्ञानके है। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते है।

[श्रुतज्ञानावरणप्ररूपणा]

मतिज्ञानके द्वारा जाने गये पदार्थसे पदार्थान्तरका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। वह 'नित्य शब्दनिमित्तक है अथवा अन्य-निमित्तक है' ऐसी शका का निराकरणके लिए उस श्रुतज्ञानको मतिपूर्वक कहा है। यद्यपि श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है, फिर भी श्रुतज्ञानके मतिपूर्वकत्वमे बाधा नहीं आती है। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसका तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक श्रुतज्ञानके प्रारम्भमें मतिज्ञान निमित्त हुआ करता है। पश्चात् मतिपूर्वकत्वका कोई नियम नहीं है।

उस श्रुतज्ञानके शब्दजन्य तथा लिगजन्य ये दो भेद कहे गये है। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूपसे भी उसके दो भेद कहे जाते हैं। श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक या शब्दात्मक मानना उपचरित कथन है। [1]श्रुतज्ञानका कारण प्रवचन है, इससे प्रवचनको भी श्रुतज्ञान कह दिया है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात भेद है। अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। पुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका प्रमाण इससे कुछ अधिक है। ३३ व्यंजन, २७ स्वर तथा ४ अयोगवाह मिलकर कुल चौसठ मूलवर्ण होते हे। इन चौसठ वर्णोंके संयोगसे १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इन बीस अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उपर्युक्त अक्षरोंमें १६३४८३०७८८८ इन एकादश अंकप्रमाण अक्षरात्मक मध्यम पदका भाग देनेपर लब्धिरूपमें प्राप्त सख्याप्रमाण अंगप्रविष्ट पद होते हैं, जो द्वादशांग–आचारांगादिके नामसे ख्यात है।

---

१. "श्रुतज्ञानस्य कारण हि प्रवचन श्रुतमित्युपचर्यते। मुख्यस्य श्रुतज्ञानस्य भेदप्रतिपादनं कथमुपपन्नम्? तज्ज्ञानस्य भेदप्रभेदकारत्वोपपत्ते। द्विभेदप्रवचनजनित हि ज्ञान द्विभेदम्। अङ्गबाह्यप्रवचनजनितस्य ज्ञानस्याङ्गबाह्यत्वात् अङ्गप्रविष्टजनितज्ञानस्याङ्गप्रविष्टत्वात्।"–त० श्लो० पृ० २३६। "तत्थ अगबाहिरस्स चोद्दस अत्थाहियारा, अगपविट्ठअत्थाधियारो बारमविहो।" –ध० टी० भाग १ पृ० ९६।

भाग देनेसे शेष बचे हुए अक्षरोंको अंगबाह्य कहते हैं। अगबाह्यके सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक तथा निषिद्धिका ये चौदह प्रकार हैं[1]। बुद्धिके अतिशय तथा ऋद्धिविशिष्ट गणधरदेवके द्वारा अनुस्मृत जो द्वादशांगरूप जिनवाणीकी ग्रन्थरचना है, वह अगप्रवृष्ट है। आचार्य अकलंकदेव उन गणधरदेवके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आरातीय आचार्योंके पाससे श्रुतज्ञानके तत्त्वको ग्रहण करके कालदोषसे अल्पमेधा, अल्पबल तथा अल्प आयुयुक्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिए उपनिबद्ध संक्षिप्तरूपसे अगोंके अर्थरूप वचन-विन्यासको अंगबाह्य कहते है। इस दृष्टिसे आचार्यपरम्परासे प्राप्त तथा जिनवाणीके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले अन्य ग्रन्थान्तर अगबाह्य श्रुतमें समाविष्ट होते है।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका सबसे छोटा रूप पर्यायज्ञान कहलाता है। उससे कम ज्ञान किसी भी जीवके नहीं पाया जा सकता है। उस ज्ञानको नित्य प्रकाशमान तथा निरावरण कहा है।[2] सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने योग्य सम्भवनीय ६०१२ भवोंमें परिभ्रमण कर अन्तके अपर्याप्तक शरीरको तीन मोडाओंसहित जब ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम मोड़ाके समयमें सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

[3]इस पर्यायज्ञानसे आगे पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, सघात, संघात-समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिक-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्व-समास भेद होते हैं।

[4]श्रुतज्ञानका विषयभूत अर्थ मनका विषय होता है। श्रुतज्ञानमे मानसिक व्यापार होता है। ऐसी स्थितिमे जिनके मन नहीं है, उन असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके श्रुतज्ञानका अभाव समझा जाना चाहिए था, किन्तु परमागममें कमसे-कम छद्मस्थोंके मति तथा श्रुत ये दो ज्ञान नियमतः कहे गये है। श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे एकेन्द्रियादिके मन न होते हुए भी श्रुतज्ञानका सद्भाव आगममें वर्णित है। इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीवोंमे जो कुछ ऐसी क्रियाएँ पायी जाती है, जिनसे उनके मनके सद्भावकी कल्पना होने लगती है उनका कारण मन नहीं है, किन्तु श्लोकवार्तिककार विद्यानन्दी स्वामीके शब्दोंमें मति-सामान्यके समान स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य तथा उनके निमित्तरूप अवायसामान्य, ईहासामान्य, अवग्रहसामान्य पाये जाते है, जो कि अनादिभवाभ्यासके कारण उत्पन्न होते है। उनके क्षयोपशमनिमित्त भावमन नहीं है, कारण वह प्रतिनियत संज्ञी प्राणियोंके होता है। इसका भाव यह है कि पिपीलिका आदिमें योग्य आहारका ग्रहण, अनुसन्धान, अयोग्य-

१ "तत्राङ्गप्रविष्टमङ्गबाह्य चेति द्विविधमङ्गप्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदम्, बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतग्रन्थरचनम्। आरातीयाचार्यकृताङ्गार्थ-प्रत्यासन्नरूपमङ्गबाह्यम्। तद्गणधरशिष्यै प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतश्रुतार्थतत्त्वै कालदोषादल्पमेधायुर्बलाना प्राणिनामनुग्रहार्थमुपनिबद्ध संक्षिप्ताङ्गार्थवचनविन्यास तदङ्गबाह्यम्। –त० रा० पृ० ५४। २ "सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्ण णिच्चुग्घाड णिरावरण ॥ ३१९ ॥ सुहुमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसभवेसु भमिऊण। चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥३२०॥"–गो० जी०। ३ "पज्जायक्खरपदसघाद पडियत्तियाणिजोगं च। दुगवारपाहुड च य पाहुडय वत्थु पुव्व च ॥ तेसि च समासेहि य वीसविह वा हु होति सुदणाण। आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवति त्ति ॥"–गो० जी० ३१६,१७। ४ "श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थ. प्रयोजनमिति यावत्।"–स० सि० पृ० १०५।

का परिहार आदि बातें पायी जाती हैं, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य, ईहासामान्य, अवायसामान्य आदि है।[1]

यहाँ श्रुतज्ञानकी प्ररूपणा की गयी है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायेगी? इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य[2] लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किये जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप-परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपण-द्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणकी प्ररूपणा हुई।

[अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादासे रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे[3] पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन-गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है। इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्‌के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है[4]।

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है, भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

---

१ "न चामनस्कानां स्मरणसामान्याभावोऽनादिभवसंभूतविषयानुभवोद्भूताया सामान्यधारणायास्तद्धेतो सद्भावात् आहारसंज्ञासिद्धे प्रवृत्तिविशेषोपलब्धे ततो नाममतिवदाहारादिसंज्ञातद्धेतुश्च स्मृतिसामान्यं धारणासामान्यं च तन्निमित्तमवायसामान्यमीहासामान्यमवग्रहसामान्यं च सर्वप्राणिसाधारणमनादिभवाभ्याससंभूतमभ्युपगन्तव्यम्, न पुन क्षयोपशमनिमित्तं भावमन, तस्य प्रतिनियतप्राणिविषयतयानुभूयमानत्वात् ॥"–त० श्लो० पृ० ३२९,३३०। २. सुदणाणस्स एयट्ठ परूवणा भणिस्समाणा कथं सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा होज्ज? ण एस दोसो, आवरणिज्जसरूवपरूवणाए तदावरणसरूवावगमाविणाभाविताहो।"–ध० टी० प० १२५५। ३ "यथाकाशे सति पक्षिणो गतिर्भवति तथा ज्ञानावरणक्षयोपशमेऽन्तरंगे हेतौ सत्यवधेर्भाव, भवस्तु बाह्यो हेतु। कथं पुनर्भवो हेतु? इति चेत्, व्रतनियमाद्यभावात्। यथा तिरश्चां मनुष्याणां चाहिंसादिव्रतनियमहेतुकाऽवधिर्न तथा देवानां नारकाणां चाहिंसादिव्रतनियमाभिसंधिरस्ति। कुतो भवं प्रतीत्य कर्मोदयस्य तथाभावात्। तस्मात् तत्र भव एव बाह्यसाधनमुच्यते।"–त०रा० पृ० ५४,५५। "यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसंनिधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्य उपलब्धिर्भवति।"–त० रा० पृ० ५६। ४ "देसोहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदम्हि वरं। परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स। पडिवादी देसोहो अप्पडिवादी हवंति सेसाओ। मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे॥ दव्वं खेत्तं कालं भावं पडिह विजाणदे ओही। अवरादुक्कसोत्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही॥" गो० जी० ३७३–७५।

[अत्र सप्तविंशतितमं ताडपत्रं त्रुटितम्]

१. अयणं-संवच्छर-पलिदोपम-सागरोपमादया वि भवंति ।
ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणियोदजीवस्स ।
यद्देहो तद्देही जहंणयं खेत्तदो ओधी ॥ १ ॥

अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद भी हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधिके जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असंयमी मनुष्य, तिर्यंचोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प संयमी मनुष्यके ही पाये जाते हैं। परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदोंसे रहित है।

[1]सम्यक्त्वरहित अवधिज्ञानको विभंगावधि कहते है। अवधिज्ञानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमे नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग (पचवर्ष), पूर्व (सत्तरकोटि छप्पनलक्ष, सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण), पल्योपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महाबन्धके त्रुटित पत्रमे जो प्रथम पक्ति है उसमे लिखा है—'अयन, संवत्सर, पल्योपम, सागरोपम आदि होते है।' धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।

१··· 'अयन संवत्सर पल्योपम सागरोपम आदि होते हैं।

अवधिज्ञानके क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है। जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र उसके शरीरप्रमाण है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवके ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण सर्वजघन्य अवगाहना होती है। उस समय निगोदियाकी शरीराकृति वर्त्तुलाकार होनेसे सबसे कम क्षेत्रफल रहता है। उतना जघन्यावधिका क्षेत्र है।

---

१. "दोण्णं पि ओहिणाणस्स पडि भेदाभावादो। ण च सम्मत्त-मिच्छत्तसहचारेण कदणामभेदादो भेदो अत्थि भइण्पसंगादो।' कालदो ताव समयावलियखण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उदु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पलिदोवम-सागरोवमादओ विधओ णादव्वा भवंति।"–ध० टी० प० १२५८।

[1]अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा।
[2]अंगुलमावलियंतो आवलियं अंगुलपुधत्तं ॥ २ ॥
[3]आवलियपुधत्तं पुण हत्थोवधा (हत्थं तह) गाउदं मुहुत्तंतो।
जोजण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥ ३ ॥
[4]भरदं च अद्धमासं साधियमासं [च] जंबुदीवं हि।
वासं च मणुसलोगे वासपुधत्तं च रुजगंहि ॥ ४ ॥
[5]संखेज्जदिमे कालं दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा।
कालं हि असंखेज्जो दीवसमुद्दा हवंति असंखेज्जा ॥५॥
तेजाकम्म-सरीरं तेजादव्वं च भासदव्वं च (भासमणदव्वं)।
बोद्धव्वं असंखेज्जा दि(दी)वसमुदा(द्दा) य वासा य ॥६॥

अब क्षेत्र तथा कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानसम्बन्धी १९ काण्डकोंका निरूपण करते है।

प्रथम काण्डकमे अगुलका असख्यातवॉ भाग जघन्य क्षेत्र है। आवलीका असंख्यातवॉ भाग जघन्य काल है। अगुलका सख्यातवॉ भाग उत्कृष्ट क्षेत्र है, आवलीका सख्यातवॉ भाग उत्कृष्ट काल है। दूसरे काण्डकमे घनांगुलप्रमाण क्षेत्र है, कुछ कम आवलीप्रमाण काल है।

विशेषार्थ—यहॉ दूसरे तीसरे आदि काण्डकोंमें उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

तीसरे काण्डकमे अंगुलपृथकत्व क्षेत्र है, आवलीपृथकत्वप्रमाण काल है ॥२॥

चतुर्थ काण्डकमे आवलीपृथक्त्व काल है, हस्तप्रमाण क्षेत्र है। पचम काण्डकमें अन्तर्मुहूर्त काल है, एक कोश क्षेत्र है। छठेमे भिन्न मुहूर्त (एक समय कम मुहूर्त) काल है। एक योजन क्षेत्र है। सप्तममे कुछ कम एक दिन काल है, २५ योजन क्षेत्र है ॥३॥

अष्टममे अर्धमास काल है, भरतवर्ष क्षेत्र है। नवममें साधिक मास काल है, जम्बूद्वीप क्षेत्र है। दशममें वर्षप्रमाण काल है, मनुष्य लोकप्रमाण क्षेत्र है। ग्यारहवेमें वर्षपृथकत्व काल है, रुचक द्वीप क्षेत्र है ॥४॥

बारहवेमे संख्यात वर्ष काल है, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र है। तेरहवेमे असंख्यात वर्ष काल है, असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण क्षेत्र है ॥ ५ ॥

विशेष, आगामी पच काण्डकोंका द्रव्यकी अपेक्षा कथन है।

चौदहवेमे देशावधिके मध्यम विकल्परूप विस्रसोपचयसहित तैजस शरीररूप द्रव्य विषय है। पन्द्रहवेमे विस्रसोपचयसहित कार्माण शरीर स्कन्ध विषय है। सोलहवेमें विस्रसोपचयरहित केवल तेजोवर्गणा विषय है। सत्रहवेमे विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणा विषय है। अठारहवेमे विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणा विषय है।

---

१ गो० जी० गा० ४०३। २ "सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य, ऋजुगत्या उत्पन्नस्य, उत्पत्तेस्तृतीयसमये वर्तमानस्य जीवस्य घनाङ्गुलासख्येयभागमात्र सर्वजघन्यमवगाहन भवति" गो०जी० गाथा ९४ संस्कृत टीका पृ० २१५। ३. "आवलियपुधत्त पुण हत्थ तह " –गो० जी० गा० ४०। ४ "भरहम्मि अद्धमास साहियमास च जबुदीवम्मि " –गो० जी० गा० ४०५। ५ "सखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा" ... वासम्मि असखेज्जे " " –गो० जी० गा० ४०६।

[1]कालो (काले) चदुंणं बुड्ढी कालो भजिदव्वे खेत्तवुड्ढीए ।
उड्ढीयं दव्वपज्जयं भजिदव्वं खेत्तकालो य ॥७॥
[2]परमोधिमसंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय-कालो दु ।
रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोवममगणि-जीवेहि ॥८॥
[3]पणुवीसं जोण(य)णाणं ओधी वेंतरकुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोजणाणं जोदिसियाणं जहण्णोधी ॥९॥
[4]असुराणमसंखेज्जा जोजणकोडी सेसजोदिसंताणं ।
संखातीं(दी)दसहस्सा उक्कस्सेणोधिविसे(स)यो दु ॥१०॥
[5]सक्कीसाणे पढमं दो च्चदु (विदियं) सणक्कुमार-माहिंदे ।
तच्चदु (तदियं तु) बम्हलंतय सुक्कसहस्सारया चउत्थी ॥११॥
[6]आणदपाणदवासी तथ आरणआरणच्चुदा देवा ।
पस्संति पंचमखिदि छट्ठी गेवेज्जया देवा ॥ १२ ॥

तेरहवे, चौदहवे आदि काण्डकोमे असख्यातगुणित क्षेत्र तथा असख्यातगुणित काल है। अर्थात् बारहवे काण्डकके काल तथा क्षेत्रसे असख्यातगुणित काल तथा क्षेत्र तेरहवे काण्डकमें है। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए ॥६॥

विशेषार्थ—उन्नीसवे काण्डकमें एक समय कम पल्यप्रमाण काल है, सम्पूर्ण लोकाकाश क्षेत्र है।

[7]कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप चारों वृद्धियॉ होती है। क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि भजनीय है अर्थात् हो भी, न भी हो। द्रव्य और भाव (पर्याय) की वृद्धि होनेपर क्षेत्र, कालकी वृद्धि भजनीय है ॥७॥

परमावधिका काल एक समय अधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है, क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है, जो अग्निकायिक जीवोकी सख्याप्रमाण है। एक प्रदेशाधिक लोकाकाशप्रमाण इसका द्रव्य है[8] ॥८॥

व्यन्तरो तथा भवनवासी देवोमे जघन्य क्षेत्र पचीस योजन प्रमाण है, ज्योतिषी देवोंका जघन्य क्षेत्र सख्यात योजन है। असुरकुमारोका उत्कृष्ट क्षेत्र सख्यात कोटि योजन है। शेष नव भवनवासी तथा व्यन्तरों-ज्योतिषियोंका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार योजन है ॥९-१०॥

सौधर्मद्विकका क्षेत्र प्रथम नरकपर्यन्त है। सनत्कुमार माहेन्द्रका दूसरे नरकपर्यन्त है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठवासियोका तीसरे नरकपर्यन्त, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रारवाले चौथे नरकपर्यन्त जानते है ॥ ११ ॥

आनत, प्रानत, आरण, अच्युत स्वर्गवासी पॉचवे नरक तक, नवग्रैवेयकवासी छठीं पृथ्वीपर्यन्त देखते है ॥ १२ ॥

---

१ "काले चउण्ण उड्ढी "–गो० जी० गा० ४११। २ यह गाथा १६वें नम्बरपर भी पायी जाती है। वर्णनक्रमकी दृष्टिसे यह १६वे नम्बरपर विशेष उपयुक्त प्रतीत होती है। ३. गो० जी० गा० ४२५। ४ गो० जी० गा० ४३६। ५ "सक्कीसाणा पढम विदिय तु सणक्कुमारमाहिंदा। तदिय तु बम्हलांतव' "–गो० जी० गा० ४२९। ६ गो० जी० गा ४३०। ७ त० रा० पृ० ५७। ८. त० रा० पृ० ५७।

सव्वं पि लोगणालि पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
[1]संखेते (सक्खेत्ते) य सकम्मे रूवगदमणंतभागो य ॥ १३ ॥
तेजासरीरलंभो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणीणं ।
गाउद्जहण्णमोधी णिरयेसु य जोजणुक्कस्सं ॥ १४ ॥
उक्कस्समणुसे (स्से) सु य मणुस (स्स) तेरच्छिए जहण्णोधी ।
उक्कस्सं लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमप्पडिवादी ॥ १५ ॥
परमोधि असंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।

नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव सर्व त्रसनालीको देखते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—सौधर्मादिकके देव अपने विमानकी ध्वजाके दण्डके शिखरपर्यन्त ऊपर जानते है। नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमानके शिखरपर्यन्त ऊपर देखते हैं। नीचे बाह्य तनुवात वलयपर्यन्त सम्पूर्ण त्रसनालीको देखते है। अनुदिश विमानवाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण तथा अनुत्तर विमानवाले कुछ कम इक्कीस योजन-रहित चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रको देखते है। गाथाके उत्तरार्धमे अवधिके विषयभूत द्रव्यको जाननेका क्रम कहते हैं—अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेपर अपने क्षेत्रके प्रदेशमे-से एक एक प्रदेश कम करते जाना चाहिए और यह कार्य तबतक करते जाना चाहिए, जबतक कि क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घटते-घटते समाप्त न हो जाये। इस प्रकार करनेके अनन्तर जो अनन्तभाग प्रमाण द्रव्य अवशिष्ट रहेगा वहाँ-वहाँ उतना-उतना ही द्रव्यका प्रमाण समझना चाहिए।

[2]तिर्यंचगतिमे अवधिका उत्कृष्ट द्रव्य तैजस शरीरके द्रव्यप्रमाण है, क्षेत्र भी इतना ही है। अर्थात् तैजस शरीर द्रव्यके परमाणुप्रमाण आकाश प्रदेशोंसे जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त किये जायें, उतना है। वह असख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण होता है ॥ १४ ॥

नरकगतिमे अवधिका जघन्य क्षेत्र एक कोस, उत्कृष्ट क्षेत्र एक योजन है।

उत्कृष्ट देशावधि मनुष्योंमे ही होता है। जघन्य देशावधि मनुष्य, तिर्यंचोंमे होता है। उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकप्रमाण है। यह प्रतिपाती होता है अर्थात् इसके धारकका मिथ्यात्वादिमे पतन सम्भव रहता है। परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं ॥ १५ ॥

[3]परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र लोकालोकप्रमाण असख्यात लोक है। यह अग्निकायिक

---

१ "सक्खेत्ते य सकम्मे "—गो० जी० गा० ४३१। २. "तिरश्चामुत्कृष्टदेशावधिरुच्यते " तेजसशरीरप्रमाण द्रव्यम् । कियच्च तत् ? असख्येयसमुद्राकाशप्रदेशपरिच्छिन्नाभिरसख्येयाभिस्तेज शरीर-द्रव्यवर्गणाभिर्निवर्तित तावदसख्येयस्कन्धाननन्तप्रदेशान् जानातीत्यर्थ ।"—त० रा० पृ० ५७। ३ उत्कृष्ट-परमावधे क्षेत्र मलोकालोकप्रमाणा असख्येया लोका । कियन्तस्ते अग्निजीवतुल्या काल प्रदेशाधिकलोका-काशप्रदेशावच्छिन्नप्रमाणा अविभागिन समयास्ते चासख्याता मवत्सरा ।" "द्रव्यं प्रदेशाधिक लोकाकाश-प्रदेशावच्छिन्नप्रमाणम् ॥" त० रा० पृ० ५७।

रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोपममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एवं ओधिणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

२. यं तं मणपज्जवणाणावरणीयं कम्मं बंधंतो (कम्मं) तं एयविधं । तस्स दुविधा परूवणा–उज्जुमदिणाणं चेव विपुलमदिणाणं चेव । यं तं उज्जुमदिणाणं तं तिविधं–उज्जुगं मणोगदं जाणदि । उज्जुगं वचिगदं जाणदि । उज्जुगं कायगदं जाणदि । मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचितादि विजाणदि, जीविदमरणं लाभालाभं

जीवोंकी संख्याप्रमाण है । परमावधिका काल समयाधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है यह असंख्यात वर्ष रूप है । इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधिज्ञानके जितने भेद कहे गये है, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्मके भेद है । अवधिज्ञानका अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । अतः श्रुतज्ञानके समान यहाँ भी अवधिज्ञानके वर्णन-द्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए ।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई ।

[मनःपर्ययज्ञानावरणप्ररूपणा[1]]

२ यह जो मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है । उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है । एक ऋजुमतिज्ञान है, दूसरा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है । जो ऋजुमतिज्ञान है, वह तीन प्रकारका है । वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है । सरल वचनगत पदार्थको जानता है । सरल कायगत पदार्थको जानता है । यह ऋजुमतिज्ञान मनसे–मतिज्ञानसे अन्य जीवके मनको अथवा मनःस्थित पदार्थको ग्रहण करके मनःपर्ययज्ञानके द्वारा अन्यकी संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) स्मृति, मति, चिन्तादिको जानता है ।

विशेषार्थ—मनसे अर्थात् मतिज्ञानसे मानसिक पदार्थको पर्यय—ग्रहण करना मनःपर्ययज्ञान है । मतिज्ञान मनःपर्ययमे अवलम्बनमात्र है, कारणरूप नहीं है । जैसे आकाशमें स्थित चन्द्रदर्शनके लिए वृक्षकी शाखादिकी सीधका अवलम्बनमात्र लिया जाता है[2], चन्द्र-दर्शनमे कारण नेत्रकी शक्ति है । इसी प्रकार मनोगतादि भावोका परिज्ञान करनेमे मनःपर्यय-ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम कारण है । मन अथवा मतिज्ञान अवलम्बनमात्र हैं । विपुलमति मनःपर्ययज्ञान मनके द्वारा अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तित पदार्थको भी ग्रहण करता है ।

---

१ "परूवणा णाम कि उत्त होदि ? ओघादेसेहि गुणेसु जीवसमासेसु पज्जत्तीसु पाणेसु सण्णासु गदीसु इदिएसु काएसु जोगेसु वेदेसु कसाएसु णाणेसु सजमेसु दसणेसु लेस्सासु भविएसु अभविएसु सम्मत्तेसु सण्णिअसण्णीसु आहारि-अणाहारीसु उवजोगेसु च पज्जत्तापज्जतविससणेहि विसेसिऊण जा जीव-परिक्खा सा परूवणा णाम ।"–ध० टी० भा० २ पृ० ४१२ । २ "यथाऽभ्रे चन्द्रमस पश्येति अभ्रमपेक्षाकारणमात्र भवति, न च चक्षुरादिवन्निर्वर्तक ,चन्द्रज्ञानस्य । तथाऽ यदीयमनोऽप्यपेक्षाकारणमात्र भवति । परकीयमनसि व्यवस्थितमर्थं जानाति मन पर्यय. । ततो नास्य तदायत्त प्रभव इति न मतिज्ञानप्रसग ।"–त० रा० पृ० ५८ ।

सुखदुक्खं [1]णगरविणासं देह(देस)विणासं जणपदविणासं अदिवुट्ठि अणावुट्ठी-सुवुट्ठि-दुवुट्ठी सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भयरोगं उब्भमं विब्भमं संभमं वत्तमाणाणं जीवाणं, णो अवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि[2] । जहण्णेण गाउदपुधत्तं । उक्कस्सेण जोजणपुधत्तस्स अब्भंतरादो, णो बहिद्धा । जहण्णेण दो तिण्णि भवगहणाणि, उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेति ।

यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान 'वत्तमाणाण'–व्यक्तमनवाले (संशय, विपर्यय, अनध्यवसायरहित मनयुक्त) अन्य जीवोंके एवं अपने अथवा 'वत्तमाणाण'[3]–'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमानमें मन.स्थित त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है । अतीत अथवा अनागत मनोगत पदार्थको यह ऋजुमति नही जानता है । यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोग, उद्भ्रम, विभ्रम तथा सम्भ्रमको जानता है । यह ऋजुमति जघन्यसे कोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता है । बाहर नहीं जानता है । कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन [4]भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव ग्रहणसम्बन्धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है ।

---

१ "चतुर्गोपुरान्वित नगरम् । अगवगकलिगमगधादओ देसा णाम । देसस्स एगदेसो जणवओ णाम जहा सूरसेणकासिगाधारआवति आदओ । सस्यसम्पादिका वृष्टि. सुवृष्टि । सालीवीहीजवगोधूमादिधाणाण सुलहत्त सुहिक्ख णाम । अरादीणामभावो खेम णाम । परचक्रागमादओ भय णाम ।"–ध० टी० प० १२९६ । २ उद्धृतमिदम्–"आगमे ह्युक्त मनसा मन परिच्छिद्य परेषा सज्ञादीन् जानातीति ।"–त० राज० पृ० ५८ । "मणेण माणस पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा-सदि-मदि-चिंता-जीविद-मरण लाहालाह सुहदुक्ख णयरविणास देसविणास जणवयविणास खेडविणास, कव्वडविणास, मडबविणास, पट्टणविणास दोणमुहविणासण अइवुट्ठि-अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि सुभिक्ख दुभिक्ख खेमाखेम-भयरोगकालसजुत्ते अत्थे विजाणदि ।"–ध०टी० प० १२५८ । "मणेण मदिणाणेण । कध मदिणाणस्स मणत्ववएसो ? कज्जे कारणोवयारादो । मणम्मि भव लिग माणस । अथवा मणो चेव माणसो, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जवणाणेण जाणदि । मदिणाणेण परेसिं मण घेत्तूण चेव मणपज्जवणाणेण मणम्मि ट्ठिदमत्थ जाणदि त्ति भणिद होदि । एसो णियमो ण विउलमइस्स, अचिंतिदाण पि अट्ठाण विसईकरणादो"–ध० टी० । ३ "व्यक्तमनसा जीवानामथ जानाति, नाव्यक्तमनसाम् । व्यक्त स्फुटीकृतोऽर्थश्चिन्तया सुनिर्वर्तितो यैस्ते जीवा व्यक्तमनसस्तैरर्थ चिन्तित ऋजुमतिर्जानाति नेतरै ।"–त० रा० पृ० ५८ । ४ "वट्टमाणभवग्गहणेण विणा दोण्णि, तेण सह तीण्णि भवग्गहणाणि जाणदि त्ति ।"–ध० टी० । धवला टीकामे वीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनो दृष्टियोका समन्वय करते हुए लिखते है–"व्यक्त निष्पन्न सशयविपर्ययानध्यवसायरहित मन येषा ते व्यक्तमनस , तेषा व्यक्तमनसा जीवाना परेषामात्मनश्च सम्बन्धि वस्त्वन्तर जानाति, नाव्यक्तमनसा जीवाना सम्बन्धि वस्त्वन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात् । अथवा वर्तमानाना जीवाना वर्तमानमनोगत त्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति ।"–ध० टी० प० १२६६ ।

३. यं तं विपुलमदिणाणं तं छव्विधं–उज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगं कायगदं जाणदि, अणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, एवं वचिगदं काय(गदं) च। एवं याव वत्तमाणाणं पि जीवाणं जाणदि। जहंणेण जोजणपुधत्तं, उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो, णो बहिद्धा। जहंणेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेदि। एवं मणपज्जवणाणावर०कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

विशेषार्थ—यदि वर्तमान भवको ग्रहण करते हैं तो तीन भव होते हैं। यदि वर्तमानको छोड़ दिया जाये, तो दो भव होते है। इस कारण दो भव या तीन भवसम्बन्धी कथनमें विरोधका सद्भाव नहीं रहता है। सात-आठ भवकी गति–आगतिके विषयमे भी यही समाधान है। वर्तमान भवको सम्मिलित करनेपर आठ भव, उसको छोडनेपर सात भव होते है।

३ जो विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है, वह छह प्रकारका है। वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है, सरल वचनगत पदार्थको जानता है, सरल कायगत-पदार्थको जानता है, कुटिल मनोगत पदार्थको जानता है, कुटिल वचनगत पदार्थको जानता है, कुटिल कायगत पदार्थको जानता है। यह वर्तमान जीव तथा अवर्तमान जीवोंके अथवा व्यक्तमनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवोके द्वारा चिन्तित अचिन्तित सुख-दुःख लाभालाभादिको जानता है।[1]

इसका क्षेत्र जघन्यसे योजन पृथक्त्व है। यह उत्कृष्टसे मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर जानता है। बाहर नहीं जानता है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका क्षेत्र ४५ लाख योजन वर्तुलाकार न होकर [2]विष्कम्भात्मक है, चौकोर रूप है। अत एव मानुषोत्तर पर्वतके बाहरके कोणमें स्थित विषयोंको भी विपुल-मतिज्ञानवाला जानता है।

कालकी अपेक्षा यह जघन्यसे सात आठ भव, उत्कृष्टसे असंख्यात भवोंकी गति आगतिका प्ररूपण करता है।[3]

विशेष—शंका–इस मनःपर्ययज्ञानावरण प्ररूपणामें मनःपर्ययज्ञानका निरूपण क्यों किया गया? ज्ञानमे कर्मत्वका समन्वय कैसे होगा?

समाधान–मनःपर्ययज्ञानावरणके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है। यहाँ आवरण किये जानेवाले ज्ञानमें आवरण अर्थात् मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका उपचार किया गया है।

इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा की गयी।

---

१ "चिंतियमचिंतियं वा अद्धचिंतियमणेयभेयगयं। ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा।" –गो०जी० गा० ४४८। त०रा० पृ० ५९। २ "णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स। तम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं॥"–गो० जी० गा० ४५५। ३. "दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं। अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं॥"–गो० जी० गा० ४५६।

४. यं तं केवलणाणावरणीयं कम्मं तं एयविधं। तस्स परूवणा कादव्वा भवदि। सयं भगवं उप्पण्णाणाणदरिसी संदेवासुरमणुसस्स[1] लोगस्स अगदि-गदिं चयणोपवादं बंधं मोक्खं इद्धिं जुद्धिं[2] अणुभागं तक्कं कलं मणो-माण(णु)सिक-भुत्तं कदं पडिसेविद आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोगे सव्वजीवाणं सव्वभावे समं सम्मं जाणदि। एवं केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

[केवलज्ञानावरणप्ररूपणा]

४. जो केवलज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी प्ररूपणा की जाती है। जिनेन्द्र भगवान्‌को केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी उपलब्धि हो चुकी है। वे स्वय स्वर्गवासी देव, असुर[3] अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, तिर्यंच तथा मनुष्यलोककी गति, आगति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, युति (जीवादि द्रव्योंका मिलना), अनुभाग, तर्क, पत्रछेदनादि कला, मनजनित ज्ञान, मानसिक विषय, राज्यादि एवं महाव्रतादिका पालन करना, रूप भुक्ति, कृत, प्रतिसेवित (त्रिकालमे पचेन्द्रियोंके द्वारा सेवित), आदि कर्म अरह अर्थात् अनादि कर्मको सर्वलोकमें, सर्वजीवोंके सर्वभावोंको युगपत् सम्यक् प्रकारसे जानते है।

विशेषार्थ—[4]केवली भगवान् त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोकसम्बन्धी सम्पूर्ण गुण पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते हैं।[5]ऐसा कोई ज्ञेय नही हो सकता है, जो केवली भगवान्‌के ज्ञानका विषय न हो। ज्ञानका धर्म ज्ञेयको जानना है और ज्ञेयका धर्म है ज्ञानका विषय होना। इनमे विषयविषयिभाव सम्बन्ध है। जब मति और श्रुतज्ञानके द्वारा भी यह जीव वर्तमानके सिवाय भूत तथा भविष्यत् कालकी बातोंका परिज्ञान करता है, तब केवली भगवान्‌के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पदार्थोंका ग्रहण करना युक्तियुक्त ही है। प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेपर आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे प्रदीपका प्रकाशन करना स्वभाव है, उसी प्रकार ज्ञानका भी स्वभाव स्व तथा परका प्रकाशन करना है। यदि क्रमपूर्वक केवली भगवान् अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार न हो पाता। अनन्तकाल व्यतीत होनेपर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती। आत्माकी असाधारण निर्मलता होनेके कारण एक समयमें ही सकल

---

१ "असुराश्च भवनवासिन, देवासुरवचन देशामर्षकमिति ज्योतिषा व्यन्तराणा तिरश्चा ग्रहण कर्तव्यम्।"–ध० टी०। २ "जीवादिदव्वाण मेलण जुदी। पत्तच्छेद्यादि कला णाम। मणोजणिद णाणं वा मणो वुच्चदे। रज्जमहव्वयादिपरिपालण भुत्ती णाम। पचहि इदिएहि तिसुवि कालेसु ज सेविद त पडिसेविद णाम। आद्यकर्म आदिकम्म णाम, अत्थवजणपज्जायभावेण सव्वेसिं दव्वाणमादि जाणदि त्ति भणिद होदि। रह अन्तरम्। अरह अनन्तरम्। अरह कर्म अरहस्कर्म त जानाति। सुद्धदव्वट्ठियणयविसएण सव्वेसि दव्वाणमणादित्त जाणदि त्ति भणिद होदि।" ध० टी० प० १२७२। ३. असुर व्यन्तरोके भेदविशेषका ज्ञापक होते हुए भी यहाँ सुरोंसे भिन्न असुर इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस कारण तिर्यंच भी असुर शब्दके द्वारा गृहीत हुए हैं।–ध० टी०। ४ "सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।"–त० सू० १।२९। ५ "न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तरप्रतिषेधात्। ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञ स्यादसति प्रतिबन्धने। दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने॥" –अष्टसह० पृ० ४६।५०।

५. दंसणावरणीयस्य कम्मस्स णव पगदीओ। वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसपगदीओ। आयुगस्स कम्मस्स चत्तारि पगदीओ।

पदार्थोंका ग्रहण होता है। 'जब ज्ञान एक समयमें सम्पूर्ण जगत्‌का या विश्वके तत्त्वोंका बोध कर चुकता है, तब आगे वह कार्यहीन हो जायगा' यह आशका भी युक्त नहीं है, कारण काल द्रव्यके निमित्तसे तथा अगुरुलघुगुणके कारण समस्त वस्तुओंमे क्षण क्षणमे परिणमन-परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था, वह आज वर्तमान बनकर आगे अतीतका रूप धारण करता है। इस प्रकार परिवर्तनका चक्र सदा चलनेके कारण ज्ञेयके परिणमनके अनुसार ज्ञानमे भी परिणमन होता है। जगत्‌के जितने पदार्थ हैं, उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोक अनन्तगुणित भी होता, तो केवल-ज्ञानसिन्धुमें वह बिन्दुतुल्य समा जाता। इस केवलज्ञानकी प्राप्ति मुख्यतासे ज्ञानावरणके क्षयसे होती है, किन्तु ज्ञानावरणके साथ दर्शनावरण तथा अन्तरायका भी क्षय होता है। इन तीन घातिया कर्मोंके पूर्व मोहका क्षय होता है। मोहक्षय हुए बिना कैवल्यकी उपलब्धि नहीं होती है। उज्ज्वल तथा उत्कृष्ट ज्ञानोंकी प्राप्तिके लिए मोहका निवारण होना आवश्यक है। अनन्त केवलज्ञानके द्वारा अनन्त जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण होनेपर भी वे पदार्थ सान्त नहीं होते है। अनन्त ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थोंको अनन्त रूपसे बताता है, इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अबाधित रहती है। कोई-कोई व्यक्ति सोचते है, सर्वज्ञका भाव सकल पदार्थोंका अवबोध नहीं है, किन्तु केवल आत्माका ज्ञानप्राप्त व्यक्ति उपचारसे सर्वज्ञ कहलाता है, वास्तवमे सर्वज्ञ कोई नहीं है।

यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। जब ज्ञान क्षायोपशमिक अवस्थामे रहता है, तब वह अनेक पदार्थोंका साक्षात्कार करता है, जब वह ज्ञान क्षायिक अवस्थाको प्राप्त करता है, तब उस ज्ञानको न्यून बताकर आत्माके ज्ञान रूपमे सीमित सोचना असम्यक् है। क्षायिक अवस्थामें आबाधक कारण दूर होनेपर ज्ञानकी वृद्धि स्वीकार न कर, उसे न्यून मानना अयोग्य है। शंकाकार यह सोचे कि किस कारणसे सुविकसित मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्ययरूप ज्ञानचतुष्टय क्षीण होकर कैवल्यकालमे आत्माके ज्ञानरूपमे सीमित हो जाते है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है। प्रतिबन्धक सामग्रीके अभाव होनेपर ऐसी कोई भी सामग्री नहीं है, जो आत्माकी सर्वज्ञताको क्षति पहुँचा सके, अत. जिनशासनमे आत्माकी सर्वज्ञताको काल्पनिक नहीं, किन्तु वास्तविक रूपमे मान्यता प्रदान की गयी है।

इस प्रकार केवलज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

[दर्शनावरणादिकर्मप्ररूपणा]

५. दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृतियाँ हैं–चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि।

वेदनीय कर्मकी साता तथा असाता–ये दो प्रकृतियाँ है।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

नरक, मनुष्य, तिर्यंच, देवायु ये आयु कर्मकी चार प्रकृतियाँ हैं।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं बंध-पगदीओ। य तं गदिणामं कम्मं तं चदुविधं–णिरय-गदि याव देवगदि त्ति। या(य)था पगदिभंगो तथा कादव्वो। गोदस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। अंतराइगस्स कम्मस्स पंच पगदीओ। एवं पगदिसमुक्कित्तणा समत्ता।

६. जो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुवि०–ओघेण आदेसेण य। ओघे णाणंतराइगस्स पंच पग० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? [सव्वबधो।] दंसणाव० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वाओ पगदीओ बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणबंधमाणस्स

नाम कर्मकी बयालीस बन्ध प्रकृतियाँ है–गति, जाति, शरीर, बन्धन, सघात, सस्थान, अंगोपांग, सहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, विहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर।

इस नामकर्ममे जो गति नामका कर्म है, उसके चार भेद है–नरकगति, देवगति मनुष्यगति, तिर्यंचगति। इस प्रकार जिस प्रकृतिके जितने भेद है, उतने भेद समझ लेना चाहिए। अर्थात् षट्खडागम वर्गणाखडान्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमे जिस प्रकार कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है तदनुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—गतिके सिवाय नामकर्मकी ये प्रकृतियाँ भी भेदयुक्त है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय जाति। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण शरीर। औदारिकादि रूप पञ्च बन्धन तथा पच सघात। समचतुरस्र, न्यग्रोधपरि-मण्डल, कुब्ज, स्वाति, वामन, हुण्डक-सस्थान। औदारिक-शरीरांगोपाग, वैक्रियिक-शरीरांगो-पांग, आहारक-शरीरांगोपांग। वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित, असम्प्राप्तासृपाटिका-सहनन। शुक्ल, कृष्ण, नील, पीत, लाल वर्ण। सुगन्ध, दुर्गन्ध। खट्टा, मीठा, चिरपिरा, कटु, कषायला रस। ठडा, गरम, स्निग्ध, रूक्ष, हलका, भारी, नरम, कठोर-रूप-स्पर्श। नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी। प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति। ये ६५ उत्तर प्रकृतियाँ है, जो पिण्डरूपसे १४ कही गयी है। ६५ उत्तर भेदवाली पिण्ड प्रकृतियोंमे २८ भेदरहित अपिण्ड प्रकृतियोंको जोडनेपर नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियाँ होती है।

उच्चगोत्र नीचगोत्रके भेदसे गोत्रकर्म दो प्रकारका है।

दान-लाभ-भोग-उपभोग तथा वीर्यान्तराय ये अन्तरायकी पाँच प्रकृतियाँ है। सब प्रकृतियाँ १४८ होती है।

विशेष—इन कर्म प्रकृतियोंके विशेष भेद किये जायें, तो अनन्त भेद हो जाते है।

इस प्रकार प्रकृति-समुत्कीर्तन समाप्त हुआ

[सर्वबन्धनोसर्वबन्धप्ररूपणा]

६. जो सर्वबन्ध तथा नोसर्वबन्ध है, उसका ओघ अर्थात् सामान्य और आदेश अर्थात् विशेषसे दो प्रकार निर्देश होता है।

ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्व-बन्ध? [इनका सर्वबन्ध होता है।]

विशेषार्थ—ज्ञानावरण अथवा अन्तरायके पंच भेदोंमें-से अन्यतमका बन्ध होनेपर

णोसव्वबंधो। एवं मोहणीय-णामाणं। वेयणी०-आयु-गोदा० किं सव्वबंधो णोसव्व-बंधो? णोसव्वबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति, णवरि अणुदिसा० याव सव्वट्ठत्ति दंसणा०-णोसव्वबंधो। एदेण बीजेण णेदव्वं। एवं उक्कस्सं-बंधो अणुक्कस्सं-बंधोपि णेदव्वं। यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो दु० णिद्देसो। ओघे० आदेसे०। ओघे० णाणंतराइगस्स पंचविहस्स किं जहंणबंधो, अजहंणबंधो? अजहंण-बंधो। दंसणावरणीय-मोहणीय-णामाणं वि कि जहण्णबधो, अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। वेदणी०-आयु-गोदा० कि जह० अजह०? जहणबंधो। एवं याव आण (अणा)हारग त्ति णेदव्वं। यो सो [1]सादिय-बंधो अणादिय बंधो ४, तस्स

शेष चार भेदोंका नियमसे बन्ध होता है। सर्व भेदोका बन्ध होनेके कारण इनका सर्वबन्ध कहा गया है।

प्रश्न—दर्शनावरण कर्मका सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है?

उत्तर—सम्पूर्ण प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध होता है। सर्व प्रकृतियोंमे-से न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध है।

मोहनीय तथा नाम कर्ममे दर्शनावरणके समान जानना चाहिए अर्थात् सर्व प्रकृतियोके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध और कुछ न्यून प्रकृतियोके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध होता है। वेदनीय, गोत्र तथा आयुकर्मसे क्या सर्वबन्ध है, अथवा नोसर्वबन्ध है? नोसर्वबन्ध है।

विशेषार्थ—साता, असाता वेदनीय, उच्च, नीच गोत्र इन युगलोमे-से किसी एकका बन्ध होगा तथा अन्यका अबन्ध होगा। इसी प्रकार आयुचतुष्टयमे-से अन्यतमका बन्ध होगा, शेषका अबन्ध होगा। इसलिए वेदनीय, गोत्र तथा आयुका नोसर्वबन्ध कहा है।

आदेशसे यह क्रम अनाहारक पर्यन्त जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनु-दिशसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोमे दर्शनावरण तथा मोहनीयका नोसर्वबन्ध होता है। इस कथनको आगे भी अन्य मार्गणाओमे सर्व नोसर्वबन्धका बीजभूत समझना चाहिए।

[उत्कृष्टबन्ध-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा]

इसी प्रकार उत्कृष्टबन्ध तथा अनुत्कृष्टबन्धमे भी जानना चाहिए।

विशेष—सर्वबन्ध नोसर्वबन्धमे ओघ तथा आदेशसे जैसा वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

[जघन्यबन्ध-अजघन्यबन्धप्ररूपणा]

जो जघन्यबन्ध तथा अजघन्यबन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते है। ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध है? अजघन्यबन्ध है। दर्शनावरण, मोहनीय तथा नामकर्मका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्य-बन्ध? जघन्यबन्ध है तथा अजघन्यबन्ध है। वेदनीय, आयु तथा गोत्रका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध? जघन्यबन्ध है।

अनाहारक मार्गणापर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

---

१ "सादि अणादी धुव अद्धुवो य बधो दु कम्मछक्कस्स। तदिया सादिय सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ॥"–गो० कर्म० गा० १२२।

इमो दुवि० । ओघे० आदे० ।

७. ओघे० सादिय-बंधो णाम तत्थ इमं अट्ठपदं एक्का वा छा वा पगदीओ वोच्छिण्णाओ संतिओ भूयो बज्झदि त्ति । एसो सादियबंधो णाम ।

[सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा]

जो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारका निर्देश है ।

७ सादि बन्धका यह अर्थपद है कि एक कर्म अर्थात् आयु कमका, छह कर्मोंका अर्थात् वेदनीयको छोडकर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तराय रूप छह कर्मोंका बन्ध व्युच्छिन्न होनेके पश्चात् पुनः बन्ध होना सादिबन्ध है ।

विशेषार्थ—आयुका निरन्तर बन्ध नही होता है । आयुका बन्ध होकर रुक जाता है, पुनः बन्ध होता है अत एव इसका सादिबन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अध्रुव भी है । आयुके विषयमे गोम्मटसार कर्मकाण्डमे लिखा है कि भुज्यमान आयुके उत्कृष्ट छह मास अवशेष रहनेपर देव तथा नारकी मनुष्यायु वा तिर्यंचायुका बन्ध करते है । भोग-भूमिया जीव छह मास अवशेष रहनेपर देवायुका ही बन्ध करते है । मनुष्य तथा तिर्यंच भुज्यमान आयुका तीसरा भाग अवशेष रहनेपर चारों आयुका बध करते है । तेजकायिक तथा वातकायिक जीव एव सप्तम पृथ्वीके नारकी तिर्यंच आयुको ही बाँधते हैं । एकेन्द्रिय वा विकलेन्द्रिय मनुष्यायु वा तिर्यंचायु ही का बन्ध करते है ।

एक जीव एक भवमे एक ही आयुका बन्ध करता है । वह भी योग्यकालमे आठ बार ही बाँधता है । वहाँ सर्वत्र तीसरा-तीसरा भाग शेष रहनेपर बाँधता है ।

आठ अपकर्षके कालोमे पहली बारके बिना द्वितीयादिक बारमे पूर्वमे जो आयु बाँधी थी, उसकी स्थितिकी वृद्धि, हानि व अवस्थिति होती है । पहली बार आयुकी जो स्थिति बाँधी थी उसके पश्चात् यदि दूसरी बार, तीसरी बार इत्यादिक बन्ध योग्य कालमे पहली स्थितिसे यदि अधिक आयुका बन्ध हुआ है तो पीछे जो अधिक स्थिति बँधी उसकी प्रधानता जाननी चाहिए । यदि पूर्वबद्ध स्थितिकी अपेक्षा न्यून स्थिति बँधी तो पहली बँधी अधिक स्थितिकी प्रधानता जाननी चाहिए । आयुके बन्धको करते हुए जीवके परिणामोंके कारण आयुका अपवर्तन अर्थात् घटना भी होता है । इसे अपवर्तन घात कहते है ।

उदय प्राप्त आयुके अपवर्तनको कदलीघात कहते है । यह भी ज्ञातव्य है कि तीसरा भाग तीसरा भाग अवशेष रहनेपर आगामी आयुका बन्ध होगा ही ऐसा एकान्त नियम नहीं है । उस कालमे आयुके बन्ध होनेकी योग्यता है । वहाँ आयुका बन्ध होवे तथा न भी होवे । (गो० क० बडी टीका पृ० ८३६–८३८ गाथा ६३९—६४३) उपशान्त कषाय गुण-स्थानमें जब कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, वहाँ केवल सातावेदनीयका ही बन्ध होता है । जब वह जीव गिरकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे आता है, तब ज्ञानावरणादिका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिका सादिबन्ध कहा गया है ।

१ "सादी अबधबधे सेढि अणारूढगे अणादी हु । अभवसिद्धम्हि धुवो, भवसिद्धे अद्धुवो बधो ।।"

८. एवं मूलपगदि-अट्ठपदभंगो कादव्वो । एदेण अट्ठपदेण दुवि० ओघे० आदेसे० । ओघे० [1]पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त सोलसकसा०-भयं-दुगुं०-तेजा-कम्म०-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पंचंतराइ० किं सादि० ४ ? सादियबंधो वा० ४ । सादासादं सत्तणोकसाय-चदुआयु-चदुग०-पंचजा०-तिण्णिसरी०-छस्संठा०-तिण्णि-अंगो०-छस्संघड० चत्तारि आणुपु०-परघादुस्सास-आदावुज्जोवं दोविहायगदि-तसादि-दसयुगलं तित्थयरं णीचुच्चागोदाणं किं सादि०४ ? सादियअद्धुवबंधो । एवं अचक्खु० । भवसिद्धि० धुवरहिदं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

९. यो सो बंधसामित्तविचयो णाम तस्स इमो णिद्देसो ओघे० आदे० । ओघे० चोद्दस-जीवसमासा णादव्वा भवंति । तं यथा मिच्छादिट्ठि याव अजोगिकेवलि त्ति । एदेमिं चोद्दस-जीवसमासाणं पगदिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि ।

---

८ इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदभग (प्रयोजनभूत पदोके भंग) करना चाहिए। इस अर्थपदसे इस बातको लक्ष्यमे रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आदेश-द्वारा दो प्रकार निर्देश करते है।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आदेशका अर्थ विशेष है। ओघसे ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण आदि ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों बन्ध होते है ? सादि, अनादि ध्रुव अध्रुव बन्ध होते है।

साता, असाता, भय जुगुप्सा बिना ७ नोकषाय, ४ आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ सस्थान, ३ आंगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थंकर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र इनके क्या सादि आदि चार बन्ध होते है ? सादि तथा अध्रुव बन्ध है।

ऐसा अचक्षु दर्शनमे जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमे ध्रुव भग नहीं है। अनाहारकपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए।

[बन्धस्वामित्वविचयप्ररूपणा]

९ जो बन्धस्वामित्वविचय है-उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते है। ओघसे-मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह [2]जीवसमास—गुणस्थान होते है। इन चौदह जीवसमासो-गुणस्थानोमे प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्ति कहनी चाहिए।

---

१. "घादितिमिच्छकसायाभय तेजगुरु-दुग-णिमिण वण्णचओ । सत्तेतालधुवाण चदुधा सेसाणय च दुधा ॥" —गो० क० गा० १२३–१२४ । २ "एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाण मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेवट्ठाणाणि णायव्वाणि भवति । जीवा समस्यन्ते एष्विति जीवसमासा । तेषा चतुर्दशाना जीवसमासाना चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थ ।" —ध० टी० भा० १ पृ० ९१,१३१ ।

१०. पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगित्ति-उच्चागोद-पंच-अंतराइगाणं को बंधको, अबंधो० ? मिच्छादिट्ठिप्पहुदि याव सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदा त्ति बंधा। सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंज०दव्वाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा

गुणस्थान	बन्ध व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियाँ	विवरण
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डसस्थान, नपुसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्मत्रय, विकलेन्द्रिय, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।
सासादन	२५	४ अनन्तानुबन्धी, स्त्यानत्रिक, दुर्भगत्रिक, सस्थान ४, सहनन ४, दुर्गमन, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यचायु।
मिश्र	०	×
अविरत	१०	अप्रत्याख्यानावरण ४, वज्रवृषभसहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-आगोपाग, मनुष्यद्विक तथा मनुष्यायु।
देशविरत	४	प्रत्याख्यानावरण ४।
प्रमत्तसयत	६	अस्थिर, अशुभ, असाता, अयश कीर्ति, अरति, शोक।
अप्रमत्तसयत	१	देवायु।
अपूर्वकरण	३६	निद्रा प्रचला ये प्रथम भागमे। छठेमे तीर्थकर, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पचेन्द्रिय, तैजस, कार्माण, आहारद्विक, समचतुरस्र सस्थान, सुरद्विक, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय। चरममे हास्य रति भय जुगुप्सा।
अनिवृत्तिकरण	५	प्रथम भागमे पुरुषवेद, २रेमे स० क्रोध, ३रेमे स० मान, ४ थेमे स० माया, ५ वेमे स० लोभ।
सूक्ष्मसाम्पराय	१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यश कीर्ति, उच्चगोत्र
उपशान्तकषाय	०	×
क्षीणमोह	०	×
सयोगकेवली	१	सातावेदनीय।
अयोगकेवली	०	×
	१२०	गो० क० गा० ९४-१०२।

१० ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसयतपर्यन्त बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसयत द्रव्यके चरम समय तक पहुँचकर अन्तमें बन्धकी व्युच्छित्ति हो

अबंधा । थीणगिद्धितिगं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु०-तिरिक्खग०-चदुसंठा०-चदुसंघ०-तिरिक्खगदिपा० उज्जो० अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदा० को बंधो, को अबंधो ? मिच्छादि० सासणसम्मादिट्ठिबंधा । एदे बंधा, अवसेसा अबंधा । णिद्दापयलाणं को बंधगो, को अबंधो ? मिच्छादिट्ठिपहुदि याव अपुव्वकरणपविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि । एदे बंधा अवसेसा अबंधा । सादावेद० को बंधो, को अबंधो ? मिच्छादिट्ठिप्पभुदिं (हुडि) याव सयोगकेवली बंधा सजोगकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि एदे बंधा, अवसेसा अबंधा । असादावेद०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसगित्ति को बं० को अबं० ? मिच्छादिट्ठि पभुदि (हुडि) याव अपमत्त (पमत्त) संजदा त्ति बंधा । एदे बंधा अवसेसा अबंधा । मिच्छत्त-णपुसंक०वेद-णिरयायु०-णिरयगदि-चदुजादि हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघ०-णिरयगदिपाओग्गाणुपु०-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साधारण० को बंधो, को अबं० ? मिच्छादिट्ठी बंधा अवसेसा अबं० । अपच्चक्खाणावर० ४-मणुसगदि-ओरालियसरी०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरिसभसंघ० - मणुसगदिपाओ० को बंधको० अबं० ? मिच्छादिट्ठिपभुदि याव असंजद० बंधा । एदे बं० अवसेसा अबं० ।

जाती है । इसलिए आदिके १० गुणस्थानवाले जीव बन्धक है, शेष अबन्धक है ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, ४ संस्थान, ४ संहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रके बन्धक-अबन्धक कौन है ? मिथ्यादृष्टिसे सासादन सम्यक्त्वीपर्यन्त बन्धक है । ये बन्धक है, शेष अबन्धक है ।

निद्रा प्रचलाका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसंयतोमे उपशमकों तथा क्षपकोंपर्यन्त बन्धक है । अपूर्वकरणके कालमें संख्यातवे भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक है, शेष अबन्धक है ।

सातावेदनीयका कौन बन्धक-अबन्धक है, मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यन्त बन्धक है । सयोगकेवलीके कालके अन्तिम समय व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक है, शेष अबन्धक है ।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्तिके कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयतपर्यन्त बन्धक है । ये बन्धक है, शेष अबन्धक हैं ।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, ४ जाति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिक संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त तथा साधारणका कौन बन्धक, कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है । शेष अबन्धक है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यक्त्वपर्यन्त बन्धक हैं । शेष अबन्धक है ।

पच्चक्खाणावर०४ को बंधो, को अबं० ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। पुरिसवे०-कोध० संज० को बं० को अबं० ? मिच्छादिट्ठि याव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए संखेज्जाभागं गंतूण वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा। एवं माणमायसंज०। णवरि सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधा। एदे बं० अवसेसा अबं०। एवं लोभसंज०। णवरि अणियट्टिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो०। एदे बं० अवसेसा अबं०। हस्सरदिभयदुगुं० को बंधो ? मिच्छादिट्ठि याव अपुव्वकरणउवसमा खमा (खवा) बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतू० बंधो वो०। एदे बं० अवसेसा अबं०। मणुसायु० को बंध० को० [अबंधको] ? मिच्छादि०-सासणसम्मादि०-असंजद० बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। देवा० मिच्छादि० सासण० असंजदसं० संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद०। अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं [गंतूण] बंधो० [वोच्छिज्जदि]। एदे बंधा० अवसेसा [अबंधा]। देवगदि०

प्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत-पर्यन्त बन्धक है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक है।

पुरुषवेद, सज्वलन क्रोधका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणमे उपशमक क्षपक पर्यन्त बन्धक है, अनिवृत्तिबादरके कालके सख्यात भाग बीतनेपर व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक है।

मान-माया-संज्वलनमे भी यही बात जाननी चाहिए। विशेष यह है कि शेष शेषके संख्यात भाग बीतनेपर्यन्त बन्ध होता है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक है।

इसी प्रकार सज्वलन लोभमे है। विशेष–अनिवृत्तिकरणके कालके चरम समयपर्यन्त बन्ध होता है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक है।

हास्य, रति, भय, जुगुप्साका कौन बन्धक है ? मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरणके उपशमक तथा क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं। अपूर्वकरणके चरम समयके बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

मनुष्य आयुका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन तथा असंयतसम्यक्त्वी बन्धक है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक हैं।

देवायुका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यक्त्वी, संयतासयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत बन्धक है। अप्रमत्तसंयतके कालके संख्यातवे भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक है।

देवगति, पचेन्द्रिय, वैक्रियिकशरीर, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, [त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक,] स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माणका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशमक क्षपकपर्यन्त बन्धक है। अपूर्वकरणके सख्यातवे भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

पंचिंदि० वेगुव्वि० तेजाकम्म० समचदु० वेउ० अंगो०-वण्ण०४ देवाणुपु० - अगुरु०४ पसत्थवि० थीरा-(थिर -सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं को बंध० को अबं० ? मिच्छादि० याव अपुव्व० उवस० खवा बंधा० । अपुव्वकरण० संखेज्जाभागं गंतू० बन्धो वोच्छे० । एदे बधा अव० [अबंधा] । आहारस०-आहारस०अंगोवं० को बं० को अबं० ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतूण बंधो० [वोच्छिज्जदि] । एदे बंधा अवसेसा [अबंधा] । तित्थयरस्स को बं०, को अबं० ? असंज० याव अपुव्वकर० बंधा० । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतू० । एदे बं० अवसेसा अबंधा० । कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदकम्मं बंधदि ? तत्थ इमेणेहि सोलसकारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि । दंसणविसुज्झदाए, विणयसंपण्णदाए, सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए, आवासएसु अपरिहीणदाए, खणलव-पडिमज्झ(वुज्झ) णदाए, लद्धिसंवेगसंपण्णदाए, यथा छामे(थामे) तथा तवे, साधूणं समाधिसंधारणदाए, साधूणं वेज्जावच्चयोगयुत्तदाए, साधूणं पासुगपरिच्चागदाए, अरहंत-भत्तीए, बहुस्सुदभत्तीए, पवयणभत्तीए, पवयणवच्छल्लदाए, पवयणपभावणदाए अभि-

आहारक शरीर, आहारक आगोपागका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? अप्रमत्त, अपूर्वकरणके सख्यातवे भाग व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है, शेप अबन्धक हैं ।

तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? असयत सम्यग्दृष्टिसे अपूर्वकरणपर्यन्त बन्धक है। अपूर्वकरणके सख्यात भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक है, शेष अबन्धक है ।

शंका—कितने कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ?

समाधान—इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है। दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु निरतिचारता, आवश्यकेषु अपरिहीनता, क्षण-लव-प्रतिबोधनता, लब्धिसवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुसमाधिसन्धारणता, वैयावृत्त्य-योगयुक्तता, साधु-प्रासुकपरित्यागता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचन-

१ धवला टीकामे जो षोडशकारणोके नाम गिनाये है, उनके क्रममे थोडा अन्तर है। यहाँ आठवें नम्बरपर 'साधुसमाधिसधारणता'के स्थानमे 'साधुप्रासुकपरित्यागता' पाठ है। ९वे नम्बरपर 'वैयावृत्त्य-योगयुक्तता'के स्थानमे 'समाधिसधारणता' पाठ है। न० १० मे 'साधु प्रासुकपरित्यागता'के स्थानमे 'वैयावृत्त्य-योगयुक्तता' पाठ है। शेष पाठ समान है। तत्त्वार्थसूत्रमे इस प्रकार पाठभेद है—न० ४ मे अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, न० ५ मे सवेग, ६ मे शक्तित त्याग, न० १० मे अर्हद्भक्ति, न० १४ मे आवश्यकापरिहानि, न० १६ मे प्रवचनवत्सलत्व पाठ है। तत्त्वार्थसूत्र तथा भूतबलिस्वामी-द्वारा कथित भावनाओके नामोमे भी कही-कही अन्तर है। तत्त्वार्थसूत्रमे 'सवेग', 'साधुसमाधि', 'शक्तित त्याग', 'मार्गप्रभावना' पाठ है, उसके स्थानमे क्रमश. 'लब्धिसवेगसम्पन्नता', 'साधु-समाधिसधारणता', 'प्रासुकपरित्यागता', 'प्रवचनप्रभावनता' पाठ है। आचार्यभक्तिका महाबन्धमे पाठ नही है। एक नवीन भावना क्षणलवप्रतिबोधनता सम्मिलित की गयी है।

क्खणं णाणोपयुत्तदाए। इदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवो तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि।

वत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि जब अन्य कर्मोंके बन्धके कारण नहीं बताये गये तब तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके कारणोंका सूत्रकारने क्यों पृथक् रूपसे उल्लेख किया है?

इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य धवला टीकामें लिखते हैं कि तीर्थंकरके बन्धके कारण ज्ञात न होनेसे उनका पृथक् उल्लेख करना उचित है। उसके बन्धका कारण मिथ्यात्व नहीं है, कारण मिथ्यात्वी जीवके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। सम्यग्दृष्टिके ही तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। असयम भी बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि सयमी जीव भी उसके बन्धक होते है। कषाय भी बन्धका कारण नहीं है, कारण कषायके होते हुए भी इसके बन्धका विच्छेद देखा जाता है अथवा बन्धका आरम्भ भी नहीं होता है। कदाचित् मन्द कषायको बन्धका कारण कहें, तो यह भी नहीं बनता है, कारण तीव्र कषाययुक्त नारकियोंमे भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध देखा जाता है। तीव्र कषाय भी उसका कारण नहीं है, क्योंकि मन्द कषायवाले सर्वार्थसिद्धिके देवों और अपूर्वकरणगुणस्थानवालोंमे भी उसका बन्ध होता है। बन्धका कारण कदाचित् सम्यक्त्वको कहें, तो यह भी ठीक नहीं है। सम्यग्दर्शन होते हुए भी बन्धका कहीं-कहीं अभाव देखा जाता है। यदि दर्शनकी निर्मलताको कारण कहें तो दर्शनमोहके क्षय करनेवाले सभी व्यक्तियोंके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा भी नहीं है। अतः दर्शनकी शुद्धता भी कारण नहीं है। कार्यकारणभावका नियम तो तब बनता है, जब कारणके होनेपर नियमसे कार्य बन जाये। सब क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तो तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध नहीं करते है। ऐसी स्थितिमे उत्पन्न होनेवाली शंकाके निराकरणके लिए भूतबली स्वामीने कहा है कि इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्रका बन्ध करते हैं।

शंका—नामकर्मके भेद तीर्थंकरकी गोत्र संज्ञा क्यों की गयी?

समाधान—उच्चगोत्रके बन्धके अविनाभावी होनेसे तीर्थंकरप्रकृतिको भी गोत्र कहा है[1] (?)

तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, इस बातका परिज्ञान करानेके लिए सूत्रमे 'तत्थ' शब्दका ग्रहण किया है।

शंका—[2]तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ अन्य गतियोंमे क्यों नहीं होता है?

समाधान—तीर्थंकरप्रकृतिमे सहकारी कारण केवलज्ञानसे उपलक्षित जीवद्रव्य है। उसके बिना बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। मनुष्यगतिमें केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है। इससे मनुष्यगतिमे ही बन्धका प्रारम्भ कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यगतिमें केवलज्ञान उत्पन्न होकर तीर्थंकरप्रकृति पूर्ण विकसित हो अपना कार्य कर सकती है, अन्य गतिमे यह बात नहीं है। अतः तीर्थंकरप्रकृतिका अकुरारोपण मनुष्यगतिमें ही होता है।

---

१ कथ तित्थयरस्स णामकम्मावयवस्स गोदसण्णा? ण, उच्चगोदबधाविणाभावित्तणेण तित्थयरस्सवि गोदत्तसिद्धीदो—बधसामित्तविचय पृ० २८ ताम्रपत्रीय प्रति। २ "अण्णगदीसु किं ण पारभो होदित्ति वुत्ते ण होदि, केवलणाणोवलक्खियजीवदव्वसहकारिकारणस्स तित्थयर-णामकम्मबधपारभस्स तेण विणा समुप्पत्ति-विरोहादो।"—ध० टी० प० ५३६।

गोम्मटसार कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है कि तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध मनुष्यगतिमे प्रारम्भ किया जाता है, क्योंकि अन्य गतियोंमे विशिष्ट विचार, क्षयोपशम आदि सामग्रीका अभाव है। इसी कारण मनुष्यगतिका सूचक 'णरा' यह पद ९३ गाथामें आया है। टीकाकारके ये शब्द महत्त्वपूर्ण है—"नरा इति विशेषण शेषगतिज्ञानमपाकरोति, विशिष्ट-प्रणिधान-क्षयोपशमादिसामग्रीविशेषाभावात्" (पृ० ७८)।

किन्ही आचार्योंका मत है कि इस तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें नहीं होता है, क्योंकि उसका काल स्तोक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमे षोडशकारण भावनाएँ नहीं भायी जा सकती। महाबन्धकारका यह अभिमत नहीं है। यह बन्ध प्रत्यक्षकेवली, श्रुतकेवलीके चरणोंके समीप ही होता है, कारण अन्यत्र उस प्रकारकी विशिष्ट विशुद्धताका अभाव है।[1]

बन्धसामित्तविचय (मूल पृ० ७५) में लिखा है, "पारद्धतित्थयर-बंधादो तदियभवे तित्थयरसंतकम्मियजीवाण मोक्खगमणणियमादो" तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धारम्भके भवसे तृतीय भवमे तीर्थंकर कर्मके सत्त्वयुक्त जीवोंके मोक्षगमनका नियम है। अतएव तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक तीन भवसे अधिक ससारमें नहीं रहता है।

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इस प्रकृतिके बन्धके कारण सोलह कहे गये है। द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेसे एक कारण भी इसके बन्धका हेतु है, दो भी कारण होते हैं, अतः सोलह ही होते है या नहीं इस सशयके निवारणके लिए सोलह कारणोंकी गणना सूत्रमे की है।

इन भावनाओंके स्वरूपपर वीरसेनाचार्यने बंधसामित्त विचय नामक तृतीय खण्डकी धवलाटीकामे विशद विवेचन किया है। उसका मर्म इस प्रकार है—

दर्शनविशुद्धता—यह भावना सोलह कारण भावनाओंमे प्रथम संगृहीत की गयी है। इसका भाव तीन मूढता तथा अष्टमलरहित निर्मल सम्यग्दर्शनका लाभ होना है।

शंका—यदि इस एक ही भावनासे तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है, तो सभी सम्यक्त्वी जीव उसका बन्ध क्यों नहीं करते ?

समाधान—शुद्ध नयसे मात्र तीन मूढता तथा अष्टमलोंसे व्यतिरिक्तपना ही दर्शनविशुद्धता नहीं है, इसके साथ-ही-साथ साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययुक्तता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता आदिका भी समावेश होना आवश्यक है। इस प्रकार अन्य भावनाओंका भी सग्रह करनेवाली दर्शनविशुद्धता तीर्थंकरका बन्ध करती है।

विनयसम्पन्नता भी तीर्थंकरकर्मको बाँधती है। विनयके ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रकी अपेक्षा तीन भेद है। ज्ञानविनयमे अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, बहुश्रुतिभक्ति और प्रवचनभक्ति सगृहीत है। दर्शनविनयका अर्थ है प्रवचनोपदिष्ट सम्पूर्ण तत्त्वोंका श्रद्धान तथा त्रिमूढता और अष्टमलका त्याग करना। इसमे अरहन्त-सिद्धभक्ति, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसवेगसम्पन्नता तथा प्रवचनप्रभावनताका सद्भाव पाया जाता है। चरित्र विनयमे शीलव्रतेषु निरतिचारिता,

---

१ प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषद्वितीयोपशम क्षायोपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वेषु च असयताप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थंकरबन्ध प्रारभन्ते, तेऽपि प्रत्यक्षकेवलि-श्रुतकेवलिश्रीपादोपान्त एव। अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वे इति भिन्नविभक्तिकरण तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावनासमृद्ध्यभावात् तद्बन्धप्रारम्भो न इति केषाचित् पक्ष ज्ञापयति। केवलिद्वयान्ते एवेति नियम, तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासभवात् पृ० ७८।

आवश्यकेषु अपरिहीनता, यथाशक्ति तप, साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रवचनवत्सलता संगृहीत है। इस प्रकार अनेक भावनाओसे समन्वित एक विनयसम्पन्नता रूप भावना तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध करती है। यह दर्शन तथा ज्ञानकी विनय देव तथा नारकियोंमे कैसे सम्भव हो सकती है? इससे इसे मनुष्योंमें ही कहा है।

शंका—जिस प्रकार यहाँ देव-नारकियोके दर्शन और ज्ञान-विनयका अभाव कहा है उसी प्रकार चारित्र-विनयका अभाव क्यो नही कहा है?

समाधान—ज्ञानदर्शन विनयका विरोधी चारित्र भी नही हो सकता। अर्थात् ज्ञान-दर्शन विनयके अभावमे चारित्र-विनयका भी अभाव होगा। यह बात प्रकट करनेको चारित्र-विनयका पृथक् उल्लेख नही किया है।

शीलव्रतेषु निरतिचारतासे भी तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध होता है।[1] हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रहसे विरति होना व्रत है। व्रतका रक्षण करनेवाला शील कहलाता है। मद्यपान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष-वेद, नपुंसक वेदका अपरित्याग अतिचार कहलाता है। इनका अभाव करना शीलव्रतेषु निर-तिचारता है। इससे तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

शंका—यहाँ शेष पन्द्रह कारण किस प्रकार सम्भव होंगे?

समाधान—सम्यग्दर्शन, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, साधुसमाधि-सन्धारणता, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, साधुप्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनताके बिना शीलव्रतेषु अनतिचारता सम्भव नहीं है। असंख्यात गुणश्रेणियुक्त कर्मनिर्जरामे जो हेतु है, उसे व्रत कहते है। सम्यक्त्वके बिना केवल हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म तथा परिग्रहके त्यागमात्रसे ही वह गुणश्रेणी निर्जरा नहीं हो सकती, कारण दोनोंके द्वारा होनेवाले कार्यका एकके द्वारा सम्पन्न होनेका विरोध है। षट्द्रव्य नवपदार्थके समूह रूप लोकको विषय करनेवाली अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना शीलव्रतोमे कारणभूत सम्यक्त्वकी अनुपपत्ति है। इस प्रकार उसमे सम्यग्दर्शनके समान सम्यग्ज्ञानका भी सद्भाव पाया जाता है। यथाशक्ति तप, आवश्यकापरिहीनता तथा प्रवचनवत्सलत्वरूप चारि-त्रविनयके बिना यह शीलव्रतेषु निरतिचारिता नहीं बन सकती है। इस प्रकार व्यापक अर्थयुक्त यह भावना तीर्थंकरनामकर्मके बन्धका कारण है।

आवश्यकेषु-अपरिहीनता—समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्गके भेदसे आवश्यक छह प्रकार कहा गया है। शत्रु-मित्र, मणि-पाषाण, सुवर्ण-मृत्तिका-मे राग-द्वेषका अभाव समता है। अतीत अनागत तथा वर्तमान कालसम्बन्धी पंचपरमेष्ठियो-का भेद न करके 'णमो अरहंताण, णमो सिद्धाणं' इत्यादि द्रव्यस्तुतिका कारण नमस्कार स्तुति कहलाता है। वृषभादि चौबीस तीर्थंकर, भरतादि क्षेत्रोंके केवली, आचार्य, चैत्यालयादिकका पृथक्-पृथक् रूपसे नमस्कार करना अथवा गुणोका अनुस्मरण करना वन्दना है। पंच महा-व्रतों तथा ८४ लाख उत्तरगुणोमे लगे हुए कलंकोंका प्रक्षालन करना प्रतिक्रमण है। महाव्रतोंके

---

१ "हिंमालियचोज्ज-बंभ-परिग्गहेहिंतो विरदी वद णाम। वदपरिरक्खण सील णाम। सुरावाण—मास-भक्खण कोह माण माया-लोह-हस्स-रइ-सोग-भय-दुगुंछित्थि-पुरिस-णउंसयवेदापरिच्चागो अदिचारो। ऐदेसिं विणासो णिरदिचारो संपुण्णदा, तस्स भावो णिरदिचारदा"—बन्धसामित्तविचय पृ० ३०।

विनाशके कारण अथवा उनमे मलिनता लगानेवाले दोषोंका जिस प्रकार अभाव होगा, उस प्रकार मैं करूँगा। इस प्रकार चित्तसे आलोचना करके ८४ लाख व्रतोंकी शुद्धिका प्रतिग्रह करना प्रत्याख्यान है। शरीर, आहारादिकसे मन वचनकी प्रवृत्तिको अलग करके ध्येयमे रोकनेको व्युत्सर्ग कहते है। इन छह आवश्यकोंको अपरिहीनता—अखण्डताको आवश्यकापरिहीनता कहते है। इसके द्वारा तीर्थंकरधर्मका बन्ध होता है।

यहाँ शेष कारणोंका अभाव नहीं होता है। दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, व्रतशीलनिरतिचारता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधु-समाधिसन्धारण, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावना, प्रवचनवत्सलता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना छह आवश्यकोंकी निरतिचारिता नही बन सकती है। अतः आवश्यकेषु अपरिहीनता तीर्थंकरनामकर्मका चतुर्थ कारण है।

क्षण[1]-लव-प्रतिबोधनता—'क्षणलव' शब्द कालविशेषका द्योतक है। उस कालविशेषमे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत तथा शीलरूप गुणोका उज्ज्वल करना अर्थात् कलकका प्रक्षालन करना अथवा व्रतादिकी प्रदीप्ति अर्थात् वृद्धि करना प्रतिबोध है। उसका भाव प्रतिबोधनता है। क्षणलवोकी प्रतिबोधनताको क्षणलवप्रतिबोधनता कहते है। यह अकेली भावना भी तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध करती है। यहाँ भी पूर्वकी भाँति शेष कारणोका अन्तर्भाव रहता है।

लब्धिसंवेगसम्पन्नता—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमे जीवके समागमका नाम लब्धि है। लब्धिके लिए जो संवेग है—वह लब्धिसंवेग[3] है। उसकी सम्पन्नताको लब्धिसंवेगसम्पन्नता कहते है। शेष कारणोंके अभावमे इसका सद्भाव नहीं बनता है, कारण उनके अभावका और लब्धिसंवेग-सम्पन्नताके सद्भावका विरोध है।

यथाशक्ति तप—बल-वीर्यको प्राकृतमे 'थाम' कहते है। अनशनादि बाह्य, विनयादिअतरग द्वादश प्रकारके तप है। शक्तिके अनुसार तप करनेसे तीर्थंकरकर्मका बन्ध होता है। यह भावना ज्ञान, दर्शनके बलसे सम्पन्न धीर पुरुषके होती है तथा दर्शनविशुद्धतादिके अभावमे यह नहीं पायी जा सकती है। इससे अकेली इस भावनाको तीर्थंकरनामकर्मका कारण कहा है।

साधुप्रासुक-परित्यागता—जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, क्षायिक सम्यक्त्वकी साधना करता है उसे साधु कहते है। प्रासुकका एक अर्थ है 'वह वस्तु, जिससे जीव निकल गये हों', दूसरा अर्थ है निरवद्य-निर्दोष वस्तु। साधुओंको ज्ञान, दर्शन, चारित्रका परित्याग अर्थात् दान प्रासुकपरित्यागता है। ज्ञानदर्शनचरित्रका परित्यागरूप दान गृहस्थोंमे सम्भव नही हो सकता, कारण वहाँ चारित्रका अभाव है। रत्नत्रयका उपदेश भी गृहस्थोंमे नहीं बन सकता है। कारण उनमे दृष्टिवादादि ऊपरके सूत्रोके उपदेशका अधिकार नहीं है। अतः यह साधु-प्रासुकपरित्यागतारूप कारण महर्षियोंके होता है।

यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नही है। अरहन्तादिककी भक्ति, नवपदार्थोंका श्रद्धान, शीलव्रतोमे निरतिचारिताके अभावमे ज्ञान, चारित्रका परित्याग अर्थात् दान असम्भव है,

१ "आवलि असखसमया सखेज्जावलिसमूहमुस्सासो। सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवो लवो भणियो ॥" —गो० जी०। २ "खणलवा णाम कालविसेसा। सम्मद्दसणणाणवदसीलगुणाणमुज्जालण कलकपक्खालण संधुक्खण वा पडिवुज्झणं णाम। तस्स भावो पडिवुज्झणदा। खणलवाण पडिवुज्झणदा खणलवपडिवुज्झणदा ॥" —ध० टी० प० ५५४। ३ "सवेग परमोत्साहो धर्मे धर्मफले चित.।" —पञ्चा०।

यस्स इणं कम्मस्स उदयेण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्जा पूजणिज्जा वंद-णिज्जा णमंसणिज्जा धम्मतित्थयरा जिणा केवली (केवलिणो) भवंति । एवं ओघभंगो पंचिंदियतस०२ भवसि० ।

कारण इसमें विरोध आता है। अतः केवल इस भावनासे भी तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

साधुसमाधिसन्धारणता—ज्ञान, दर्शन, चारित्रमे सम्यक् प्रकारसे अवस्थान होना समाधि है। भले प्रकार धारण करनेको सन्धारण कहते है। साधुओंकी समाधिका भले प्रकार धारण करना साधुसमाधिसन्धारण है। किसी कारणसे प्राप्त होनेवाली समाधिको देखकर सम्यक्त्वी प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतातिचारवर्जित अरहन्तादिकमें भक्तिवश जो धारण करता है, वह समाधिसन्धारण है। यहाँ भी शेष कारणों-का अभाव नही है, क्योंकि इसका सद्भाव उन कारणोके अभावमे नहीं बन सकता है।

वैयावृत्त्ययोगयुक्तता—जिस कारणसे जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचनवत्सलतादिके द्वारा वैयावृत्त्यमें लगता है, उसे वैयावृत्त्ययोगयुक्तता कहते है। इस प्रकार अकेली इस भावनासे भी तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है। यहाँ शेष कारणोका यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए।

अरहन्त-भक्ति—घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले, केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंके देखनेवाले अरहन्त है। उनकी भक्तिसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। यह भावना दर्शन-विशुद्धतादिके अभावमे नहीं पायी जाती है, कारण इसमे विरोध आयेगा।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशांगके पारगामीको बहुश्रुत कहते है। उनमे भक्तिका अर्थ है, उनके द्वारा व्याख्यान किये गये आगमका अनुगमन करना अथवा अनुष्ठानका प्रयत्न करना बहुश्रुत भक्ति है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना यह सम्भव नहीं है।

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त अर्थात् बारह अंगोंको प्रवचन कहते है। 'प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनम्' श्रेष्ठ आत्माके वचनोंको प्रवचन कहा है। उनके प्रति भक्तिको प्रवचनभक्ति कहते है। इसमे भी शेष कारणोंका अन्तर्भाव रहता है।

प्रवचनवत्सलता—महाव्रती, देशसयमी तथा असयत सम्यग्दृष्टिमे प्रेम रखना प्रवचन-वत्सलता है। इससे ही तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध कैसे होता है—यह शका नही करनी चाहिए, कारण महाव्रतादि आगमिक विषयोंमे गाढ़ानुरागका दर्शनविशुद्धतादिसे अविनाभाव है।

प्रवचनप्रभावनता—प्रवचन अर्थात् आगमकी प्रभावना करनेका भाव प्रवचनप्रभा-वनता है। उत्कृष्ट प्रवचनप्रभावनाका दर्शनविशुद्धताके साथ अविनाभाव है।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण अर्थात् 'बहुबार' भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुतमे उपयोगको लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता है। इससे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना इसकी अनुपपत्ति है।

इन सोलह कारणोंसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है। अथवा सम्यग्दर्शनके होनेपर शेष कारणोंमे-से एक-दो आदिके सयोगसे भी बन्ध होता है।

इस कर्मके उदयसे सुर, असुर तथा मनुष्यलोकके द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके कर्ता जिन केवली होते हैं।

इस प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भग जानना चाहिए।

११. आदेसेण णिरएसु पंचणाणा०-छदंसणा०-सादासादं बारसकसा० सत्तणोक० मणुसग०-पंचिदि०-ओरालियतेजाक०-समचदु०-ओरालिय० अंगोवंगवज्जरिस०-वण्ण०४ मणुसगदिपा०-अगुरुगलहु० ४ पसत्थवि० तस०४ थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमिणं उच्चागोदं पचअंत० को बं०? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धिआदि-पणुवीसं ओघं। मिच्छत्त-णपुंसकवे०-हुंडसंठाणं असंपत्तसे० को बं०? मिच्छादि० बंधा। एदे बंधा अवसेसा अब०। मणुसायु ओघं। तित्थयरं को बं०? असंजदस०। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा। एवं पढम-विदिय-तदियासु। चउत्थि-पंचमि-छट्ठीसु एवं चेव, णवरि तित्थगरं णत्थि। सत्तमाए छट्ठिभंगो, णवरि मणुसायु णत्थि। मणुसग०-मणुसग०पा०-उच्चा० को बं०? सम्मामिच्छा०-असंज०। एदे बं०। अवसे० [अबंधा]। तिरिक्खायु० को बं०? मिच्छादिट्ठी बंधा। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा।

---

११ आदेशसे, नारकियोंमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता असाता वेदनीय, अनन्तानुबन्धी ४ को छोडकर शेष १२ कषाय, (स्त्रीवेद, नपुंसकवेद बिना) ७ नोकषाय, मनुष्य गति, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अगोपाग, वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, वज्रवृषभसहनन, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है? सर्व बन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धि आदि २५ प्रकृतियोंका ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त बन्धक हैं। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका सहननका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक हैं। मनुष्यायुके बन्धकका ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् अविरत गुणस्थान पर्यन्त बन्धक हैं। तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है? असंयत सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक है। शेष अबन्धक है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त ऐसा ही जानना चाहिए। चौथी, पॉचवी तथा छठी पृथ्वियोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहॉ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है।

सातवीं पृथ्वीमें–छठी पृथ्वीके समान भग है। विशेष, यहॉ मनुष्यायु नहीं है। मनुष्यगति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका कौन बन्धक है[२]? सम्यग्मिथ्यात्वी तथा असयतसम्यग्दृष्टि जीव बन्धक हैं। ये बन्धक है। शेष अबन्धक है। तिर्यञ्चायुका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक है।

---

१ "विदियगुणे अणथीणति दुभगतिसंठाण सहदिबउक्क। दुग्गमणित्थी-णीच तिरियदुगुज्जोव तिरियाऊ ॥"—गो० क० गा० ९६। २ "मिस्साविरदे उच्च मणुवदुग सत्तमे हवे बधो ॥" —गो० क० १०७।

१२. तिरिक्खेसु-पंचणाणावरणं छदंसणा० सादासादं अट्ठक०सत्तणोक०देवगदि० पंचिंदि० वेउव्विय-तेजा-क० समचदु० वेगुव्वि० अंगो०-वण्ण०४-देवगदिपा०-अगुरुग०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमि० उच्चागो० पचंअंतराइ० को बं० ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा त्ति सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु-मणुसायु-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय०अंगो०-पंचसंघड०-दोआणुपुव्वि० उज्जोवं अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा०को बं० ? मिच्छादिट्ठि-सासण०। एदे बं०, अवसेसा अबं०। मिच्छत्तदंडओ ओघो। अपच्चक्खा०४ को बं० ? मिच्छादि०याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति। एदे बं०, अवसेसा [अबंधा]। देवायु०

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है। इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है[1]। मरण मिथ्यात्वगुणस्थानमे ही होता है। तिर्यञ्चायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमे ही होता है। मनुष्यद्विक तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिश्र तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे ही होता है, नीचे नहीं होता है।

१२. तिर्यञ्चोंमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता, प्रत्याख्यानावरण तथा सज्वलन रूप ८ कषाय, स्त्रीवेद नपुसकवेद बिना सात नोकषाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर देशसंयमी पर्यन्त सर्वबन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ सस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ सहनन, दो आनुपूर्वी (तिर्यञ्च, मनुष्यानुपूर्वी), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय[2] तथा नीचगोत्रका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक है। शेष अबन्धक हैं। मिथ्यात्व दण्डकमे ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष—मिथ्यात्व, हुण्डक सस्थानादि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित हैं। उनके बन्धक मिथ्यादृष्टि होते हैं। वे बन्धक है। शेष अबन्धक है।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक है। देवायुका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि,

---

१ "छट्ठो त्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥"–गो० क० गा० १०६। २. वज्रवृषभ-सहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु इन छह प्रकृतियोकी "उवरिं छण्ह च छिदो सासणसम्मे हवे णियमा"—(गो० क० १०८ गा०) के अनुसार सासादनमें बंधव्युच्छित्ति होती है, अत असप्राप्तासृपाटिकासहननके बिना शेष ५ सहनन कहे गये हैं।

को बंध० ? मिच्छादि० सासणसम्मा० असंजद० संजदासंजदा त्ति बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-पंच णाणा० णव दंस० सादासा० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खमणुसायु-तिरिक्खमणुसगदि पंचिंदि०(पंचजा०)-ओरालि० तेजाकम्म० छस्संठाणं ओरालिय-सरीर-अंगोव० छस्संघड०-वण्ण०४-दोआणुपु०-अगुरुगलहुग०४-आदावुज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुगलं णिमिणं णीचुच्चागो०-पंचतरा० को ब० ? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। एवं सव्व-अपज्जत्ताणं सव्व-एइंदियाणं सव्वविगलिंदि०। ...

[अत्र ताड़पत्रं त्रुटितम्।]

सासादन सम्यक्त्वी, असंयत सम्यक्त्वी तथा देश सयमी बन्धक हैं। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतीमें तिर्यञ्चोंके समान भग जानना चाहिए।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें- ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, साता, असाता, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ९ नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय-(जाति पच जाति) औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, ६ सस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ सहनन, वर्ण ४, मनुष्य-तिर्यञ्चानुपूर्वी, अगुरुलघु४ (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति), निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है ? सर्व बन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तकों, सम्पूर्ण एकेन्द्रियों, सर्व विकलेन्द्रियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—लब्ध्यपर्याप्तक[1] तिर्यंचोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका अभाव रहनेसे इनकी गणना नहीं की गयी है। इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है।

[ताड़पत्र नष्ट हो जानेसे इस प्रकरणका आगामी विषय नष्ट हो गया है। ग्रन्थके प्रकरणसे ज्ञात होता है कि आचार्य महाराजने मनुष्य गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा 'बंध सामित्त-विचय' प्ररूपणाका वर्णन किया होगा। सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे श्री गोम्मटसार कर्मकाण्डके आश्रयसे कुछ प्रकाश डाला जाता है]

मनुष्यगति—यहाँ मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं। बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। यहाँका वर्णन ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारकद्विकका बन्ध न होनेसे शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध १०१ का होता है। मिश्र गुणस्थानमें ६९ का बन्ध होता है। यहाँ सासादन गुणस्थानमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली अनन्तानुबन्धी आदि २५ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा। इसके सिवाय मनुष्यगति-द्विक, मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग इन छह प्रकृतियोंकी भी सासादन गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होती है। साधारणतया इनकी अविरतमें बन्धव्युच्छित्ति होती थी।

---

१ सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥ गो० क० गा० १०९।

मिश्र गुणस्थानमें आयुका बन्ध न होनेसे देवायुका अबन्ध हो गया। इस प्रकार ३२ प्रकृतियोंके घटानेसे मिश्र गुणस्थानमे ६९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। अविरत सम्यक्त्वीके देवायु तथा तीर्थंकरका बन्ध प्रारम्भ हो जानेसे ७१ का बन्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण ४ का देशविरतमे बन्ध न होनेसे वहाँ ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रमत्तगुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध है, कारण, यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध नहीं है। अप्रमत्तसयतके अस्थिर, असाता, अशुभ, अरति, शोक, अयशःकीर्ति इन छहका बन्ध नहीं होगा, किन्तु यहाँ आहारकद्विकका बन्ध होनेसे ५९ का बन्ध होता है। अपूर्वकरणमे ५८ का बन्ध है, कारण, यहाँ देवायुका बन्ध नहीं होता, देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति अप्रमत्त गुणस्थानमें हो जाती है। अनिवृत्तिकरणमें बन्ध योग्य २२ है, कारण, अपूर्वकरण, गुणस्थानमे निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, आहारकद्विक आदि कुल ३६ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे २२ प्रकृति ही बन्धके लिए शेष रहती है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे १७ का बन्ध होता है, कारण, अनिवृत्तिकरणमे पुरुषवेद तथा ४ संज्वलन कषायोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तकषायमें केवल एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। क्षीणकषाय तथा सयोगीजिनके एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। अयोगकेवलीके बन्ध नहीं है, कारण वहाँ बन्धके हेतुओंका अभाव हो चुका है।

सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनीमे मनुष्यगतिके समान भंग है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें – तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है। अतः उसके १०९ प्रकृतिका बन्ध होगा। इसके केवल मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

निर्वृत्त्यपर्याप्तक मनुष्यमें – चार आयु, नरकद्विक तथा आहारकद्विक इन आठ प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है अत उसके १२०–८ = ११२ बन्ध योग्य है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असंयतप्रमत्त तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते है।

देवगति – यहाँ सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, सुरचतुष्क, नरकद्विक, नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, इन सोलह प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य १२०–१६=१०४ कही हैं। देवगतिमे मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं। भवनत्रिक तथा कल्पवासी स्त्रियोंमें तीर्थंकरका अभाव होता है "भवणतिए णत्थि तित्थयर", "कप्पित्थीसु ण तित्थ"। उनके १०३ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य है। सौधर्म ईशान स्वर्गवालोंके तीर्थंकरका बन्ध होता है इससे १०४ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य कही है। सनत्कुमारादि सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय स्थावर तथा आतापका बन्ध न होनेसे १०४–३=१०१ बन्धयोग्य है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत तथा नव ग्रैवेयकोंमें तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत इन शतारचतुष्क प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १०१–४=९७ प्रकृतियोंको बन्धयोग्य कहा है। नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानोंमे सम्यक्त्वी जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः उनके अविरत सम्यक्त्वीके बन्धयोग्य ७२ प्रकृतियाँ कही गयी हैं।

निर्वृत्त्यपर्याप्तक भवनत्रिक तथा कल्पवासिनियोंमें तिर्यंचायु तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०३–२=१०१ बन्ध योग्य हैं। यहाँ मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान होते

१ कप्पित्थीसु तित्थ सदरसहस्सारगो त्ति तिरियदुग।
निरियाऊ ऊज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ॥ गो० क० ११२।

हैं। सम्यक्त्वी जीवकी उत्पत्ति भवनत्रिक तथा देवांगनाओंमें नहीं होती इससे यहाँ पूर्वोक्त दो गुणस्थान होते है। सौधर्मेन्द्रकी इन्द्राणीकी पर्यायमें भी सम्यक्त्वीका उत्पाद नहीं होता। जन्म धारणके पश्चात् पर्याप्त अवस्थामे सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है। सौधर्म ईशान स्वर्गमे निर्वृत्यपर्याप्तावस्थामें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होनेसे वहाँ बन्धयोग्य १०१+१=१०२ कही गयी हैं।

सनत्कुमारादि सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे ९९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनके पर्याप्त अवस्थामे १०१ का बन्ध कहा गया है। उसमे-से उक्त दो प्रकृतियाँ यहाँ घट जाती है।

आनतादि स्वर्गों तथा नव ग्रैवेयकोंमे पर्याप्त अवस्थामे ९७ का बन्ध होता था उसमे-से मनुष्यायुको घटानेसे ९६ का बन्ध निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे कहा गया है।

नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानोंमे पूर्वोक्त ७२ प्रकृतियोंमें-से मनुष्यायुको बन्धके अयोग्य होनेसे घटानेपर निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे ७१ का बन्ध कहा गया है।

सौधर्मादि नव ग्रैवेयक पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे मिथ्यात्व सासादन तथा असंयतमें तीन गुणस्थान होते है, आगे सम्यक्त्वी जीवका ही उत्पाद होनेसे चौथा गुणस्थान कहा है।

नरकगति—यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानमे बन्धव्युच्छित्तिवाली सोलह प्रकृतियोंमे-से मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुसक वेद तथा असम्प्राप्तासृपाटिकासहननको छोडकर शेष बारह प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है। इन बारह प्रकृतियोंके सिवाय देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांग, देवायु तथा आहारकद्विक इन सात प्रकृतियोंका भी बन्ध नही होनेसे १२+७=१९ प्रकृतियोंको १२० में घटानेसे १०१ का बन्ध कहा गया है। यहाँ प्रथमसे चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थान कहे गये हैं।

चौथे, पाँचवे, छठे तथा सातवे नरकोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। चौथी, पाँचवी तथा छठी पृथ्वीमे १०१−१=१०० प्रकृति बन्ध योग्य कही है। सातवीं पृथ्वीमे मनुष्यायुका बन्ध नही होता है। वहाँसे निकलकर जीव पशु पर्यायको ही प्राप्त करता है, अतः सातवीं पृथ्वीमें १००−१=९९ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

पहली पृथ्वीमे निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका अभाव होनेसे १०१−२=९९ को बन्ध योग्य कहा है। यहाँ मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते है।

दूसरे नरकसे छठे नरक पर्यन्त अपर्याप्तावस्थामे केवल मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ तीर्थंकर, मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १०१−३=९८ को बन्ध योग्य कहा है।

सातवे नरकमे अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रका बन्ध न होनेसे ९८−३=९५ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

तिर्यचगति—तिर्यंचोंके सामान्य तिर्यंच, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच तथा योनिमत् तिर्यंच इस प्रकार जो चार भेद कहे गये हैं, उनके पाँच गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचोंमें तीर्थंकर तथा आहारकद्विक इन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव रहनेसे १२०−३=११७ का बन्ध होता है। मनुष्यगतिके समान तिर्यञ्चोंमें भी वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा मनुष्यायुकी बन्धव्युच्छित्ति अविरतके बदलेमें सासादन गुणस्थानमें होती है।

निर्वृत्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमे चार आयु तथा नरकद्विकका बन्धाभाव होनेसे बन्धयोग्य ११७ – ६ = १११ प्रकृतियाँ हैं। इनके मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयत ये तीन गुणस्थान होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमे नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका बन्ध न होनेसे ११७ – ८ = १०९ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानका सद्भाव कहा गया है।

इन्द्रिय मार्गणा—पर्याप्तक एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन एकादश प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १२० – ११ = १०९ प्रकृतियोंका बन्ध कहा गया है। इनके प्रथम और द्वितीयगुणस्थान होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चौदह गुणस्थान कहे गये हैं।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें आहारकद्विक, नरकद्विक तथा आयुचतुष्टय इस प्रकार आठ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे १२० – ८ = ११२ का बन्ध कहा है। इनके १, २, ४, ६ तथा तेरहवे गुणस्थान कहे है। आहारकमिश्रकाययोगावस्थामें जीव निर्वृत्यपर्याप्तक होता है। उस समय प्रमत्तसंयतावस्था पायी जाती है। केवली भगवान्‌के समुद्घातकालमे औदारिक मिश्रकायके समय निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था पायी जाती है।

लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रियोंमे तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको छोड़कर १२० – ११ = १०९ का बन्ध बताया गया है। गुणस्थान प्रथम ही होता है।

कायमार्गणा—पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकायवाले जीवोंमे मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान होते हैं। इनकी १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अग्निकायिकों, वायुकायिकोंमें मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०९ – ४ = १०५ का बन्ध है। गुणस्थान मिथ्यात्व ही होता है। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है—"ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।" ॥११५॥

लब्ध्यपर्याप्तकों, साधारण वनस्पतिकायिकों, सम्पूर्ण सूक्ष्मस्थावर जीवोमें तथा तेजकायिक वायुकायिकोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता है। नारकी जीवोंमें भी अपर्याप्तावस्थामें सासादनका अभाव है।

योगमार्गणा—असत्य मन तथा असत्यवचनयोग, उभय मन तथा वचन योगोंमें मिथ्यात्वसे आदि क्षीण कषाय पर्यन्त द्वादश गुणस्थान पाये जाते हैं।

सत्य मन, सत्य वचन तथा अनुभय मन तथा अनुभय वचनमें सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान कहे गये हैं।

औदारिक काययोगमें त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है। मनुष्यगतिके समान वर्णन जानना चाहिए। औदारिकमिश्र काययोगमे आहारक द्विक, नरकद्विक, नरकायु और देवायु इन छह प्रकृतियोके बिना १२० – ६ = ११४ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असंयत तथा सयोगी जिन ये गुणस्थान पाये जाते हैं।

वैक्रियिक काययोगमें सौधर्म-ईशान स्वर्गके समान १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। वैक्रियिक मिश्र काययोगमें मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे १०४ – २ = १०२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयत गुणस्थान होते हैं।

आहारक काययोगमें छठा गुणस्थान होता है। यहाँ ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक मिश्रयोगमे देवायुका बन्ध नहीं होनेसे ६३ – १ = ६२ का बन्ध होता है।

कार्माण काययोगमें प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तथा त्रयोदशम गुणस्थान पाये जाते है। यहाँ औदारिकमिश्रकाययोग सम्बन्धी ११४ प्रकृतियोंमे-से मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुको घटाने-पर ११२ का बन्ध होता है।

वेदमार्गणा – तीनों वेदोंमें प्रथमसे नवम गुणस्थान पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ तीनों वेदोंमें १२० प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही गयी है।

स्त्रीवेदीके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान कहे गये है। यहाँ चार आयु, तीर्थंकर, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन १३ प्रकृतियोंको छोडकर १२० – १३ = १०७ का बन्ध होता है।

नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयतगुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ चार आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन द्वादश प्रकृतियोंके विना १०८ का बन्ध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक जब नरकमे जाता है, तब उसके अपर्याप्तक दशामें तीर्थंकरका बन्ध होनेसे यहाँ १०८ का बन्ध कहा है। ऐसा स्त्रीवेदीमें नही होता है। सम्यक्त्वी जीव प्रथम नरक तो जाता है और वहाँ नपुंसकवेदी होता है किन्तु वह स्त्रीवेदी नहीं होता है।

पुरुषवेदीके १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे उसके आहारक-द्विक, नरकद्विक, तथा चार आयुको छोड़कर १२० – ८ = ११२ का बन्ध होता है।

कषायमार्गणा—यहाँ १ से १० पर्यन्त गुणस्थान कहे गये है। यहाँ बन्ध १२० प्रकृति-का होता है।

ज्ञानमार्गणा—कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि ज्ञानोंमें तीर्थंकर तथा आहारकद्विकको छोडकर १२० – ३ = ११७ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान कहे गये हैं। सुमति, सुश्रुत तथा सुअवधिज्ञानोंमें चौथेसे बारहवे पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहाँ बन्धयोग्य ७९ प्रकृतियाँ कही गयी है।

मनःपर्यय ज्ञानमें प्रमत्तसंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थान है। यहाँ ६५ प्रकृतियाँ कही गयी है।

मनःपर्यय ज्ञानमें प्रमत्तसंयतसे क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थान है। यहाँ ६५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ आहारकद्विकका भी बन्ध होता है।[1] मनःपर्ययज्ञानीके आहारकद्विकके उदयका विरोध है। केवलज्ञानमें सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थान पाये जाते है। सयोग-केवलीके केवल सातावेदनीयका बन्ध होता है। अयोगी जिनके बन्धका अभाव है।

संयममार्गणा—असंयम मार्गणामें आदिके चार गुणस्थान है। यहाँ संयम अवस्थामें बँधनेवाली आहारकद्विकका बन्ध न होनेसे बन्ध योग्य १२० – २ = ११८ प्रकृति कही गयी है।

देशसंयमीके पाँचवाँ गुणस्थान होता है। सामायिक तथा छेदोपस्थापना सयममें ६, ७, ८, ९ पर्यन्त चार गुणस्थान होते है। यहाँ ६५ प्रकृति बन्ध योग्य है।

परिहार विशुद्धि सयममें छठवे, सातवे गुणस्थान होते है। यहाँ भी ६५ प्रकृतिका बन्ध होता है। इस सयमीके आहारकद्विकका बन्ध तो होता है। किन्तु उनका उदय नहीं होता है।

यथाख्यात संयम – यह ११वे से १४वे पर्यन्त होता है। उपशान्त कषायसे सयोगी जिन पर्यन्त केवल सातावेदनीय का बन्ध होता है। चौदहवे गुणस्थानमे बन्धाभाव है क्योंकि वहाँ योगका अभाव हो जाता है।

दर्शनमार्गणा – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शनमे १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहाँ १२० प्रकृतिका बन्ध होता है।

१. अत्र आहारकद्वयोदय एव विरुध्द्यते, नाप्रमत्तापूर्वकरयोस्तद्बन्ध।

अवधिदर्शनमें ४थे से १२वे पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ अवधिज्ञानवत् ७६ का बन्ध जानना चाहिए।

केवलदर्शन १३ तथा १४ ये दो गुणस्थान होते है। बन्धकी अपेक्षा सयोगी जिनके सातावेदनीयका ही बन्ध होता है।

लेश्यामार्गणा – कृष्ण, नील, तथा कापोत इन तीन लेश्याओंमें आदिके चार गुणस्थान होते हैं। अतः यहाँ आहारकद्विकके बिना १२० – २ = ११८ प्रकृतियोंका बन्ध कहा है।

पीत लेश्यामें १ से लेकर ७वे पर्यन्त गुणस्थान हैं। यहाँ सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण, विकलत्रय, नरकायु तथा नरकद्विक इन ९ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध योग्य १२० – ९ = १११ कही गयी है।

पद्म लेश्यामे पूर्ववत् ७ गुणस्थान होते है। यहाँ एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतापका बन्ध न होनेसे १११ – ३ = १०८ बन्ध योग्य कही है।

शुक्ललेश्या – यहाँ सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान होते है। यहाँ पद्मलेश्या-सम्बन्धी १०८ प्रकृतियोंमे से तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योत इन शतार-चतुष्कका अभाव होनेसे १०८ – ४ = १०४ का बन्ध होता है।

भव्यमार्गणा – भव्योंके चौदह गुणस्थान होते हैं। इनके १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अभव्य जीवोंके तीर्थंकर तथा आहारकद्विकको छोड़ ११७ का बन्ध होता है। इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।

सम्यक्त्वमार्गणा – प्रथमोपशम सम्यक्त्वमे मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी १६ तथा सासादन गुणसम्बन्धी २५ प्रकृतियोंका अभाव होनेके साथ देवायु तथा मनुष्यायुका अभाव होता है अत १६+२५+२ = ४३ प्रकृतियोंको घटानेसे यहाँ १२०–४३ = ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ चौथेसे सातवे पर्यन्त चार गुणस्थान कहे गये है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमे चौथेसे ग्यारहवे पर्यन्त सात गुणस्थान कहे गये है। सातवे गुणस्थानसे ग्यारहवे पर्यन्त चढकर जब वह जीव नीचे उतरकर चौथे गुणस्थानमें आता है, तब उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके समान ७७ प्रकृतियोका बन्ध होता है। यहाँ भी मनुष्यायु तथा देवायुका अभाव कहा है। **"सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण"** (गो० कं० १२०)

गोम्मटसार कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है = **अत्र प्रथमद्वितीयोपशमसम्यक्त्वयोरायुरबन्धात् आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमये 'मरणोन' इति विशेषोऽनर्थकः ? इति न वाच्यम्, प्राग्बद्धदेवायुष्कस्यापि सातिशयप्रमत्तस्य श्रेण्यारोहणसंभवात्** (११६ पृष्ठ) यहाँ यह प्रश्न किया है, प्रथमोपशम तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वोंमें आयुबन्धका अभाव कहा है, तब श्रेणीका आरोहण करनेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम समयमें 'मरणोन' मरणरहित ऐसा विशेषण निरर्थक रहा ? इसका समाधान यह है कि पहले देवायुका बन्ध करनेवाले सातिशय अप्रमत्तके श्रेणीका आरोहण सम्भव है। पूर्वमें आयुबन्ध करनेके अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सम्यक्त्वमें मरण नहीं होता है। इस प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वमे तथा श्रेणी चढते अपूर्वकरणके प्रथम भागके अन्तर्मुहूर्तमे मरण नहीं होता है, अन्यत्र उपशम श्रेणीमें मरण होता है। (गो० क० संस्कृत टी० पृ० १२२)

क्षयोपशम अथवा वेदक सम्यक्त्व चौथेसे सातवे पर्यन्त कहा है। वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी ७७ प्रकृतियोंमें मनुष्यायु तथा देवायुको जोडनेसे ७९ का बन्ध कहा गया है।

[कालपरूवणा]

१३.······जह० एग०, उक० तेत्तीसं साग० दे०। तित्थ०-जह० चदुरासीदि-वाससंहस्साणि, उक० तिण्णि साग० सादिरे०। पढमाए याव छट्ठित्ति पढमदंड-बंधकालो जह० दसवाससहस्साणि सागरोपम-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-सागरोप० सादिरे०। उक० अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वो (दव्वा)। साद[दं] डगे तिरिक्खगदि-तिगं पविट्ठं जह० एयस० उक० अंतो०। थीणगिद्धिदण्डओ णिरयोघो। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भा(भ)णिदव्वा। एवं मिच्छत्त-दंडओ। पुरिसवेददंडओ अप्पप्पणो ट्ठिदी० दे०। दो आयु० ओघं। तित्थयर० पढमाए जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक० सागरो० देसू०। बिदियाए जह० सागरो० सादिरे०। उक० तिण्णि सागरो० देसू०। तदियाए जह० तिण्णि साग० सादिरे०। उक० तिण्णि साग० सादिरे०। सत्तमाए णेरइ ओघो। णवरि दंसणतियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खपगदितियं च जह० अंतो०। मणुस० मणुसाणुपुव्वि० उच्चागो० जह० अंतो०। तित्थयर० णत्थि।

क्षायिक सम्यक्त्वमे चौथेसे चौदहवे पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहाँ भी ७९ का बन्ध होता है।

संज्ञी मार्गणा – सज्ञी जीवके १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ १२० का बन्ध होता है।

असंज्ञीके प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान होते है। यहाँ तीर्थंकर तथा आहारकद्विकके विना १२० – ३ = ११७ का बन्ध कहा गया है।

आहार मार्गणा – यहाँ १ से १३ गुणस्थान होते है। १२० प्रकृतिका बन्ध होता है।

अनाहारकोंके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, तेरहवे गुणस्थान कहे गये है। यहाँ ४ आयु, आहारकयुगल, नरकद्विकके बिना १२० – ८ = ११२ का बन्ध कहा है।

कालप्ररूपणा

[ताड़पत्र नं० २८ नष्ट हो जानेके कारण इस प्ररूपणाका प्रारम्भिक अंश भी विनष्ट हो गया। प्रकरणको देखते हुए ज्ञात होता है कि यहाँ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिका वर्णन चल रहा है और ओघका वर्णन नष्ट हो गया है]

विशेष – यहाँ एक जीवकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

१३ नरकगतिमें जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन तेतीस सागरोपम है। एक जीवकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल ८४ हजार वर्ष, तथा उत्कृष्ट साधिक तीन सागर प्रमाण है। प्रथम नरकसे छठे नरक पर्यन्त प्रथम दण्डकका बन्धकाल जघन्यसे दशहजार वर्ष, एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागरसे कुछ अधिक है तथा उत्कृष्ट अपने-अपने नरककी स्थिति प्रमाण जानना चाहिए। अर्थात् क्रमशः एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर तथा बाईस सागर प्रमाण है। साता दण्डकमें तिर्यंच-गतित्रिकमें प्रविष्ट जीवका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। स्त्यानगृद्धि दण्डकका बन्धकाल नरक गतिकी ओघ रचनाके समान है। विशेष यह है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

१४. तिरिक्खेसु पंचणाणा० छदंसण० मिच्छ० अट्ठक० भयदुगुंछ० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंत० बंध० जह० खुद्दाभव०, उक्क० अणंतकालं असंखे० [पोग्गलपरियट्टं०]। एव थीणगिद्धितिगं अणंताणु० आदि० (१) अट्ठकसाय ओरालिय०, णवरि जह० एगस०। सादासा०-छण्णोकसा०-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठाणं ओरालिय० अंगो० छसंघड०-दोआणुपु०-आदावुज्जोव० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ थिरादि दो यु० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जस० अजस० जह० एगस०, उक्क० अंतो०।

विशेष – ओघ रचनावाला ताडपत्रका अश नष्ट हो गया, अतः ओघ रचना अज्ञात है।

मिथ्यात्व दण्डकमे इसी प्रकार जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकमे अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण किन्तु कुछ कम बन्धकाल है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का बन्धकाल ओघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धकाल प्रथम पृथ्वीमें जघन्यसे चौरासी हजार वर्ष है, उत्कृष्टसे देशोन एक सागर है।

विशेषार्थ – इस कथनसे विदित होता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक नरकमें कमसे कल ८४ हजार वर्षकी आयुको प्राप्त करेगा। उदाहरणार्थ श्रेणिक महाराजके जीवने नरकमें जाकर ८४ हजार वर्षकी आयु प्राप्त की है।

दूसरी पृथ्वीमे जघन्य बन्धकाल साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है। तीसरी पृथ्वीमे जघन्य साधिक तीन सागर, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ – तीसरी पृथ्वीमे सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पायी जाती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ उत्पन्न होनेवाला जीव किंचित् ऊन सात सागर पर्यन्त सम्यक्त्वी रहनेसे उतने काल पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है, किन्तु इस सम्बन्धमें यह आगम बताता है कि उस प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तीन सागर है। इससे अधिक बन्धकालकी कल्पना करना आगम बाधित होगा।

सातवीं पृथ्वीमे – नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि दर्शनावरण ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगतित्रिकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। [चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमें भी तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।]

१४ तिर्यंचोंमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका जघन्यसे बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है[1]। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी आदि आठ कषाय, तथा औदारिक शरीरमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए[2]। विशेष यह है, कि यहाँ जघन्य बन्धकाल एक समय है। साता-असातावेदनीय, ६ नोकषाय, २ गति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश-

१. "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्टं"–षट्खं० का० ४८। २ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।"–षट्खं० का० ५, ७, ८।

पुरिसवे०-देवग०-वेउव्वि० समच० वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तिण्णि पलिदो०। चदुआयु० तिरिक्खगदितिगं ओघं। पंचिंदिय० परघा० उस्सासं तस०४ जह० एग०। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदो० सादिरे०।

१५. पंचिंदि० तिरिक्ख० ३ ओघं। पढमदंडओ जह० खुद्दा०। पज्जत्तजोणिणीसु [जहण्णेण] अंतो०। उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। एवं थीणगिद्धितिगं अट्ठकसा०। णवरि जह० एगस०। सादवंडओ तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्खग-

---

कीर्तिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियिक अगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तीन पल्य है। चार आयु और तिर्यंचगतित्रिकका ओघके समान जानना चाहिए। पचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है।

१५ पचेन्द्रिय-तिर्यंच, पचेन्द्रिय-तिर्यंचपर्याप्तक, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें – ओघके समान जानना चाहिए। प्रथम दण्डकमें जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है। तिर्यंच-पर्याप्तक तथा योनिमतियोंमे (जघन्य) अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट[1] पूवकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण बन्धकाल है।

विशेषार्थ – एक देव,नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य तिर्यंच मरकर विवक्षित पचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ। वहाँ सज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुसक वेदोंमें क्रमसे आठ-आठ पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तथा असज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुसकमे पूर्ववत् आठ-आठ पूर्व कोटि प्रमाण काल क्षेप करके पश्चात् लब्ध्यपर्याप्तक पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर उनमें-के स्त्री, पुरुष, नपुसकवेदी जीवोंमे पुनः आठ-आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल व्यतीत करके पश्चात् संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमे आठ-आठ पूर्व कोटियाँ तथा पुरुष वेदियोंमें सात पूर्वकोटियाँ भ्रमण करके पश्चात् देवकुरु, वा उत्तरकुरुमें तिर्यंचोंमें पूर्वबद्धायुके वश पुरुष या स्त्री तिर्यंच हुआ तथा तीन पल्योपम काल व्यतीत करके मरा और देव हुआ। इस प्रकार पूर्वकोटि पृथक्त्व वर्ष अधिक तीन पल्य कहे है। (ध०टी०का०पृ०३६७,३६७)[2]

इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक तथा आठ कषायका भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय है। साता दण्डकमें तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए।

---

१ "पचिदिय-तिरिक्ख–पचिंदियतिरिक्खपज्जत्त–पचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि।"–षट्खं० का० ५७-५६। २ यहाँ बारह भवोमे-से ११ भवोमे पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्ष अर्थात् आठ-आठ पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमणका काल और अन्तके बारहवे भवमे सात पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण करनेका काल मिलकर ९५ पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है। इस कालको पूर्वकोटिपृथक्त्व शब्दसे ग्रहण किया है।

दितिगं ओरालियं च पविट्ठं। पुरिसवेददंडओ तिरिक्खोघं। णवरि जोणिणीसु देसू०। चदु आयु० ओघं। पंचिंदि० दंडओ तिरिक्खोघं।

१६. पंचिंदिय-तिरि०-अप० पंचणाणा०-णवदं० मिच्छ०-सोलसक०-भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० जह० खुद्दा०। उक्क० अंतो०। दो आयु ओघं। सेसाणं जह० एगस०। उक्क० अंतो०। एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च।

१७. मणुस०३-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंच-(पंचंत०) जह० एग०। [उक्कस्सेण] तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। एवं मिच्छ०। णवरि जह० खुद्दा०। पज्जत्त(०)मणुसिणि अंतो०। सादावे० चदुआयु ओघं। असाद०-छण्णोक०-तिण्णिगदि-चदु जाति(दि)-ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय-अंगो०-छसंघ०-तिण्णिआणु०-आदावुज्जो० अप्पस०-थावरादि०४-

तिर्यंचगतित्रिक तथा औदारिक शरीरमे विशेष जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकका तिर्यञ्चोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यञ्चोमे कुछ कम जानना चाहिए। चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय दण्डकमें तिर्यञ्चोंके ओघवत् है।

१६ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे--५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अन्तरायोका बन्धकाल जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है[1]।

मनुष्य तिर्यंचायुका बन्धकाल ओघवत् है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार सपूर्ण अपर्याप्तक त्रसों तथा स्थावरोंमें जानना चाहिए।

१७ मनुष्य सामान्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियोंमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, (उत्कृष्ट) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है। इसी प्रकार मिथ्यात्वका भी बन्धकाल है। इतना विशेष है कि मनुष्य सामान्यमें जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है।[2] पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनीमे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सातावेदनीय, चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकषाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच सस्थान, औदारिक अगोपांग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४,

१ "पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" – षट्‌ख० का० १५, ६७।

२ "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।"–षट्‌ख० का० ६८-७०।

यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य मिथ्यात्वीके ४७ पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य है, पर्याप्त मिथ्यात्वी मनुष्यके २३ पूर्वकोटियाँ अधिक है। मनुष्यनी मिथ्यादृष्टिके सात पूर्वकोटि अधिक है। यथा–"मणुसमिच्छादिट्ठिस्स चे य सत्तेतालपुव्वकोडीओ अहिया होति, पज्जत्तमिच्छादिट्ठीण तेवीसपुव्वकोडीयो, मणुसिणि मिच्छादिट्ठीसु सत्त पुव्वकोडीओ अहियाओ।"–ध० टी० का० पृ० ३७३।

थिरादिदोयु० दूभग-दुस्स०-अणादे०-जस०-अज्जस०-णीचागो० जहण्णे० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० देवग०४ समच० पसत्थ० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। मणुसिणीसु देसू०[1]। पंचिंदिय० परघादु० तस०४ तिरिक्खोघं। आहार०२ जह० एग०। उक्क० अंतो०। तित्थ० जह० एग०। उक्क० पुव्वकोडिदेसू०।

१८. देवेसु–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक०-वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० जह० दसवस्ससहस्सा०। उक्क० तेतीसं सा०। थीणगिद्धितिग० मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० एग०। [णवरि] मिच्छ० अंतो०। उक्क० एक्कत्तीसं सा०। सादासा० छण्णोक० तिरिक्ख० एइंदि०

स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति ४, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है। विशेष यह है कि मनुष्यनीमें देशोन तीन पल्य है। पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का बन्धकाल तिर्यञ्चोंके ओघवत् है। आहारकद्विकका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थंकरका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

१८ देवोमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा पञ्च अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ – देवोंकी जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा यह वर्णन हुआ है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय है। (इतना विशेष है कि) मिथ्यात्वका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है किन्तु सबका उत्कृष्ट बन्धकाल ३१ सागर प्रमाण है।

विशेष – कोई मिथ्यात्वी द्रव्यलिंगी मरकर ३१ सागरकी आयुवाले ग्रैवेयक वासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने जीवन-भर मिथ्यात्वादिका बन्ध किया। इस अपेक्षा ३१

---

१ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।"–षट्खं० का० ७९–८१।

"मणुस–मणुसपजत्तएसु सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि अण्णत्थ देसूणाणि।"–ध० टी० का० पृ० ३७७।

पूर्वकोटि आयुके त्रिभागमें मनुष्यायुको बाँधनेवाले मनुष्यने अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा सम्यक्त्वसहित भोगभूमिमें तीन पल्य बिताये और मरकर देव हुआ। इस प्रकार साधिक तीन पल्य है। कुछ कम तीन पल्य प्रमाणकाल मनुष्यनियोंमें है। कोई मिथ्यात्वी मनुष्य भोगभूमिमें तीन पल्यकी स्थिति-वाला मनुष्य हुआ। ९ माह गर्भमें बिताये, पश्चात् ४९ दिनमें सम्यक्त्व लाभ किया और सम्यक्त्वयुक्त शेष तीन पल्य पूर्ण कर मरा और देव हुआ। इस प्रकार ९ माह ४९ दिन कम तीन पल्य प्रमाणकाल हुआ। ध० टी० का० पृ० ३७८।

पंचसं० पंचसंघ० तिरिक्खगदिपाओ० आदावुज्जो०-अप्पसत्थवि०[थावर-]थिरादिदो-युग० दूभगदुस्सर०-अणादे०-जस०-अजस० णीचा० जह० एग० । उक्क० अंतो० । पुरिस० मणुस० पंचिदि० समच० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थवि० तस० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तेत्तीसं सा० । दो आयु ओघो (ओघं) । तित्थय० जह० वेसाग० सादि० । उक्क० तेत्तीसं सा० । एव सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदिकालो णेदव्वो याव सव्वट्ठा त्ति । णवरि भवण-वा०-वाण-वेंत०-जोदिसि० तित्थय० णत्थि । सणक्कुमारादि पंचिदियसंयुत्तं कादव्वं । एवं एइंदिय थावरि(रं) णत्थि । आणदादि० तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि०३ णत्थि । मणुसगदि धुवं कादव्वं ।

सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है ।[1]

साता असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, पञ्च सस्थान, पञ्च संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय है, उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ – यह उत्कृष्ट बन्धकालका कथन सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी अपेक्षा है ।

दो आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल साधिक दो सागर है, उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ – देवगतिकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कल्पवासी[2] देवोंमे होता है । सौधर्मद्विकमें आयु साधिक द्विसागरोपम है और सर्वार्थसिद्धिमे ३३ सागरोपम है । इस अपेक्षा यहाँ वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार सब देवोंमें अपनी-अपनी स्थिति-प्रमाण बन्धका काल सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जानना चाहिए । इतना विशेष है कि भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है । सनत्कुमारादि देवोंमें पंचेन्द्रियका सयोग करना चाहिए । वहाँ एकेन्द्रिय तथा स्थावर नहीं है ।

विशेष – सौधर्मद्विकके आगे केवल पचेन्द्रिय जातिका बन्ध होता है, एकेन्द्रिय, स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है ।

आनतादि स्वर्गोंमे – तिर्यंचगतित्रिक अर्थात् तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध नहीं है । यहाँ मनुष्यगतिका ध्रुव रूपसे भग करना चाहिए, । (कारण, यहाँ मनुष्यगतिका ही बन्ध होता है) ।

विशेष – शतारचतुष्टय नामसे ख्यात तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध शतार-सहस्रारसे ऊपर नहीं होता है ।

---

१ "देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णे अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण एक्कत्तीस सायरोपमाणि ।"–षट्खं० का० ८७-८६ ।

२ "कप्पित्थीसु ण तित्थ "–गो० क० गा० ११२ । षट्० टी० भा० १ पृ० ६१, १३१ ।

१६. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा०। उक्क० अणंतकालम०। बादरे० अंगुल० असं०। सुहुमे असखेज्जा लोगा। बादर-एइंदिय-पज्जत्ता० जह० अंतो०। उक्क० संखेज्जवस्ससहस्सा०। सुहुम-एइंदि० पज्जत्त जहण्णु० अंतो०। तिरिक्खगदितियं जह० एय०। उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवं सुहुम बादरे अंगुलस्स असंखे०। पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुम-पज्ज० जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं सादादीणं जह० एय०। उक्क० अंतो०। दो आयु० ओघं। एवं सव्व-एइंदियाणं णेदव्वं। विगलिंदिया०–पंचणा०णवदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं० ओरालियतेजाक०-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दाभ० पज्जत्ते० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। दो आयु ओघ। सेसाणं सा [दा] दीणं जह० एयस०। उक्क० अंतो०।

१६ एकेन्द्रियोमें –५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पॉच अन्तरायका बन्ध काल क्षुद्रभव प्रमाण जघन्यसे है तथा उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन जानना चाहिए। बादर एकेन्द्रियमे उत्कृष्ट बन्धकाल अगुलके असख्यातवे भाग प्रमाण है तथा सूक्ष्ममे असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेष – यहॉ 'अंगुलका असख्यातवॉ भाग' यह क्षेत्रकी मर्यादाका द्योतक शब्द, कालके लिए प्रयुक्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि आकाशके उक्त प्रमाण क्षेत्रमे जितने प्रदेश आवे उतनी सख्या-प्रमाण समय-समूहात्मक रूपकालको ग्रहण करना चाहिए।

[2]बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकमे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बन्धकाल सख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। [3]सूक्ष्म-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकमें जघन्य बन्धकाल तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यंचगतित्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे असख्यात लोक प्रमाण है। इस प्रकार सूक्ष्मोंमे जानना चाहिए। बादर एकेन्द्रियोमें अगुलके असख्यातवे भाग प्रमाणकाल है। किन्तु इनके पर्याप्तकोमे सख्यात हजार वर्ष प्रमाण बन्धकाल है। सूक्ष्म-पर्याप्तकोंमे जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्य तथा तिर्यंचायुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। इस प्रकार सम्पूर्ण एकेन्द्रियोंमें जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है। किन्तु पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण जघन्य बन्धकाल है। उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यात

१ "इंदियाणुवादेण एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्ट।"–षट्खं० का० १०७ १०६। २ "बादरेंदियपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण सखेज्जाणि वाससहस्साणि।" –षट्खं० का० ११३-११५। ३ "सुहुमेइंदियपज्जत्ता एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त,"–षटखं० का० १२२-१२४।

२०. पंचिंदि० तस०२-पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त०-सोलसक०-भयदुगुं० तेजाक०-वण्ण०४-अगु०-उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा० पज्जत्ते० अंतो०। उक्क० सागरोपमसह० पुव्वकोडिपुध०। पज्जत्ते सागरोपम-सद-पुध०। तसेसु-बेसाग० सहस्साणि पुव्वकोडिपुध०, पज्जत्ते बेसागरोपमसहस्साणि। सादावे० चदुआयु ओघं। असादा० छण्णोक० णिरयग०-चदुजा०-आहारदुगं पंचसंठाणं-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदावुज्जो०-अप्पस० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग० दुस्सर० अणादेज्ज० जस० अज्ज० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० ओघं। तिरिक्खगदितिगं ओरालि० ओरालिय० अंगोवं० जह० एय०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। मणुसग० वज्जरि० मणुसाणु० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा०। देवग०४ जह० एय०। उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। पंचिंदि०

हजार वर्ष प्रमाण है[1]। मनुष्य तथा तिर्यंच आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त्त प्रमाण है।

२० पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है। विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमे जघन्य बन्धकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण है।[2] इनका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम है। विशेष यह है कि पर्याप्तकोमे सागरोपम शतपृथक्त्व प्रमाण है। त्रसोंमे दो हजार पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक है। इनके पर्याप्तकोमें दो हजार सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है[3]। सातावेदनीय तथा आयु ४ का बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकषाय, नरकगति, ४ जाति, आहारकद्विक, पच सस्थान, पच सहनन, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश कीर्तिका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। पुरुषवेदका बन्धकाल ओघकी तरह जानना चाहिए। तिर्यंचगतित्रिक, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांगका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगति, वज्रवृषभ सहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है।

१ "बीइंदिया-तीइंदिया-चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।"-षट्खं० का० १२८-१३०।

२ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि, सागरोवमसदपुधत्तं।"-षट्खं० का० १३४-१३६।

३ "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बेसागरोवमसहस्साणि।"-षट्खं० का० १५२-१५७।

परघादुस्सास तस०४ जह० एग० । उक्क० पंचासीदि-सागरोवमसद० । समचदु० पसत्थवि० सुभग सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागो० जह० एग० । उक्क० वेछावट्ठि-साग० सादि० तिण्णि-पलिदो० देसू० । तित्थय० जह० अंतो० उक्क० तेत्तीसं सादि० सादिरेयाणि । पंचकायाण–पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० खुद्दा० । उक्क० असंखेज्जा लोगा अणंतकालं असंखेज्जा पो०, अड्ढादिज्ज पोग्गल० । बादरेसु कम्मट्ठिदि अंगुलस्स असंखे० कम्मट्ठिदि० । बादरे पज्जत्ते जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससह० । सुहुमे [पज्जत्ते] सुहुमएइंदियभगो । सेसाणं सादादीणं जह०

पचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य बन्धकाल एक समय है। उत्कृष्टसे १८५ सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट, बन्धकाल कुछ कम तीन पल्योपम अधिक दो छयासठ सागरोपम जानना चाहिए।[1] तीर्थंकरका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। पच कायोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पॉच अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल[2] क्षुद्रभव है, उत्कृष्ट असख्यात लोक, अनन्तकाल, असंख्यात पुद्गलपरावर्तन, अढाई पुद्गल परावर्तन है।[3] बादरकायमे कर्मस्थिति अगुलके असख्यातवे भाग कर्मस्थिति है। बादर पर्याप्तकोंमे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष प्रमाण है।

विशेषार्थ–यहाँ 'कर्मस्थिति' शब्दसे केवल दर्शनमोहनीयकी सत्तर कोडाकोडी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण हुआ है। दर्शनमोहनीय कर्मकी स्थितिको प्रधानता देनेका कारण यह है कि उसमे सर्व कर्मोंकी स्थिति सगृहीत है। (ध० टी० का० पृ० ४०५)

सूक्ष्म (पर्याप्तकोंमे) सूक्ष्म एकेन्द्रियके समान भंग है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका

१ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।" –षट् ख० का० १३-१५।

२ "पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण उक्कस्सेण असखेज्जा लोगा।"–षट् ख० का० १३६–१४१। ३ "बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।"–षट् खं० काल० १४२–४४। "बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणफ्फदिकाइया-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण सखेज्जाणि वाससहस्साणि।"–षट् खं० काल १४५–४७।

शुद्ध पृथ्वीकायिक पर्याप्तकोकी आयु–स्थिति १२ हजार वर्ष है, खरपृथ्वीकायिक पर्याप्तकोकी २२ हजार है। जलकायिक पर्याप्तकोकी ७ हजार वर्ष है, तेजकायिक पर्याप्तकोकी तीन दिवस, वायुकायिक पर्याप्तकोंकी ३ हजार वर्ष, वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीवोकी स्थितिका प्रमाण दस हजार वर्ष है। इन आयुकी स्थितियोंमे सख्यात हजार बार उत्पन्न होनेपर सख्यात सहस्रवर्ष हो जाते हैं।–ध०टी०का०पृ०४०४

एग० । उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । णवरि तेज० वाउका० मणुसगदि०४ वज्जरि० [वज्जं] तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो ।

२१. पंचमण० पंचवचि०–सव्वपगदीणं बंधे (बंध)कालो जह० एग० । उक्क० अंतो० । एवं वेउव्विका० आहारका० । का [य] जोगि०–पंचणा० णवदंसण०-मिच्छत्त०सोलसक०भयदु०ओरालिय-तेजाकं० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे०पोग्गलपरियट्टं । तिरिक्खगदितिगं ओघं । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियकायजोगीसु–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय - तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतरा० जह० एग० । उक्क० बावीस-वस्स-सहस्साणि देसू० । तिरिक्खगदि-तिगं जह० एग० उक्क० तिण्णि-वस्स-सहस्साणि देसू० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियमिस्स०–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्तं० सोलसक०भयदुगुं० ओरालिय–तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा जह०

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुका ओघवत् जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमे, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्र रूप चतुष्क तथा वज्रर्षभनाराच संहननको (छोड़कर) तिर्यञ्चगतित्रिकका ध्रुवभंग है ।

२१ पॉच मनोयोग, पॉच वचनयोगमे–सर्व प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । ऐसा ही वैक्रियिक काययोग तथा आहारक काययोगमे है । काययोग-में–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यञ्चगतित्रिकका ओघवत् है । शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है । औदारिक काययोगियों-मे– ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम २२ हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ–एक तिर्यञ्च, मनुष्य या देव २२ हजार वर्षकी आयुवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और जघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसने पर्याप्तियोंको पूर्ण किया । इससे अपर्याप्त दशामे औदारिकमिश्रके कालको घटाकर औदारिक काययोगका काल कुछ कम २२ हजार वर्ष रहा । अथवा देवका यहॉ एकेन्द्रियोंमें उत्पाद नहीं कहना चाहिए, कारण, उसके जघन्य अपर्याप्त काल नहीं होगा । (ध० टी० का० पृ० ४११)

तिर्यञ्चगति-त्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे तीन हजार वर्षसे कुछ कम है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है ।

औदारिकमिश्रकाययोगमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तराय-का जघन्य बन्धकाल तीन समय कम क्षुद्रभव प्रमाण है, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

खुद्दा० तिसमऊ० उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । देवगदि०४ तित्थय० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं सादासादादीणं जह० एय० उक्क० अंतो० । वेउव्वियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमि०-तित्थय०पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । आहारमिस्स०—पंचणा०छदंसण०-चदुसंजल०-पुरिस०-भयदु० देवगदि० पंचिं० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्विय-अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्स०-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० (य०) उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अतो० । णवरि तित्थय० जह० एग० उक्क० अंतो० ।

विशेषार्थ-एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमे तीन मोडे करके क्षुद्रभव-प्रमाण आयुवाला सूक्ष्म वायुकायिक जीव हुआ । वहाँ ३ समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक लब्ध्य-पर्याप्तक हो जीवित रहकर मरा । पुनः विग्रह करके कार्माणकाययोगी हुआ । इस प्रकार तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल सिद्ध हुआ । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार जानना चाहिए कि कोई जीव लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्पन्न होकर सख्यात भवग्रहण प्रमाण उनमे परावर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमे उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी बन गया । इन सब संख्यातभवोका काल मिलकर भी अन्तर्मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है । (ध० टी० का० पृ० ४१६)

दो आयुमे ओघवत् जानना चाहिए । देवगति ४ और तीर्थंकरका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा उत्कृष्ट बन्धकाल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । वैक्रियिकमिश्र काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर , पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर तथा पॉच अन्तरायका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ-एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिमग्रैवेयकमें दो विग्रह करके उत्पन्न हो सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमे पर्याप्तक हुआ अथवा एक भावलिंगी मुनि दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमे पर्याप्त हुआ । इस प्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगमे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार है कि कोई मिथ्यात्वी जीव सातवे नरकमे उत्पन्न हुआ और सबसे बडे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालके अनन्तर पर्याप्त हुआ । इसी प्रकार एक नरक-बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्वी हो दर्शनमोहका क्षपण करके मरण कर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त कालमे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको करता है । यहाँ दोनोंमें जघन्य कालसे दोनोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । (ध० टी० का० पृ० ४२८-४२९)

शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

आहारकमिश्र काययोगमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट

सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । कम्मइगका०—देवगदि०४ तित्थय० जह० एग०, उक्क० बेसम० । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० एग० उक्क० तिण्णिसम० ।

२२. इत्थिवेद०—पंचणा०णवदंस०मिच्छत्तं० सोलसक० भयदुगुं० तेनाक० (तेजाक०) वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० पलिदोपमसदपुधत्तं । णवरि मिच्छ० जह० अंतो० । सादासादा० छण्णंक० (छण्णोक०) दोगदि-चदुजादि-आहारदुगं पंचसंठाण-पंचसंघ दो-आणु० आदा-वुज्जो०-अप्पसत्थ० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० जस० अज्जस० णीचागो० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस० मणुसगदि० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु-पसत्थ० तस-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा०

बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय[1], उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेष सातादि प्रकृतियोका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। कार्माणकाययोगमे – देवगति ४, तीर्थंकरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दो समय प्रमाण बन्धकाल है। शेष सर्व प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन समय है।

विशेषार्थ – सासादन या असयतसम्यक्त्वी कार्माणकाययोगियोंका सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न होनेका अभाव है। वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकान्तमे भी इनकी उत्पत्ति नहीं होती। इससे उत्कृष्ट दो समय कहा है।

तीन समय प्रमाण बन्धकाल इस प्रकार है–एक सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव अधस्तन सूक्ष्म वायुकायिकोंमे तीन विग्रहवाले मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमे तीन समय तक कार्माण-काययोगी रहकर तथा चौथे समयमे औदारिकमिश्र काययोगी हो गया। तीन विग्रह करनेकी दशा इस प्रकार है। ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेशपर वाम दिशासम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजू प्रमाण जा, पुनः १०½ राजू नीचेकी ओर इषुगतिसे जाकर, पश्चात् सामनेकी ओर चार राजू प्रमाण जाकर कोणयुक्त दिशामे स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्मवायुकायिकोंमे उत्पन्न होनेवालेके ३ विग्रह होते है। (ध० टी० का० ४३४-४३५)

२२ स्त्रीवेदमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट पल्योपम शतपृथक्त्व है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वका बन्धकाल जघन्यसे अन्तमुहूर्त है। साता असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, दो गति, ४ जाति, आहारकद्विक, पच सस्थान, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग,

---

१ "आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।"–षट् खं० काल० २१३-१६ ।

जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदोवमं देसू० । चदुआयु ओघं । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णिपलिदोप० देसू० । ओरालिय० परघादुस्सास० बादर-पज्जत्त-पत्तेय० जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादिरे० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । पुरिसवे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पचंतरा० जह० अंतो० । उक्क० सागरोपमसदपुध० । पुरिसवेद ओघं । मणुसगदिपंचगं जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदोप० सादिरे० । पंचिंदिय-परघादुस्सा० तस०४ जह० एग० । उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं०(द०) । समचदु०पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० वेच्छावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि

सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन ५५ पल्योपम प्रमाण है ।[1]

विशेषार्थ – एक जीव ५५ पल्य स्थितिवाली देवी रूपसे उत्पन्न हुआ । उसने छह पर्याप्ति पूर्ण की, अन्तर्मुहूर्त विश्राम किया, पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया । पश्चात् जीवन पूर्ण करके मरण किया । अतः उसके तीन अन्तर्मुहूर्त कम ५५ पल्योपम प्रमाणकाल सम्यक्त्वयुक्त स्त्री-वेदका है, उसमे पुरुषवेदादिका बन्ध करनेके कारण उनका बन्धकाल देशोन ५५ पल्योपम कहा है ।

चार आयुका ओघवत् जानना चाहिए । देवगति चतुष्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्योपम बन्धकाल है । औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ५५ पल्योपम बन्धकाल है । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। पुरुषवेदमे – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे सागरोपम शत-पृथक्त्व है । पुरुषवेदका बन्धकाल ओघवत् है ।

विशेष – इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि स्त्री और नपुसकवेदी जीवोंमे बहुत बार भ्रमण करता हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदी हुआ, सागरोपम शत पृथक्त्वकाल पर्यन्त भ्रमण करके अविवक्षित वेदको प्राप्त हो गया । (ध० टी० का० पृ० ४४१)

मनुष्यगतिपंचक अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर प्रमाण है । देवगति ४का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है । पचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट १६३ सागरोपम है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तीन पल्याधिक छयासठ सागरोपम जानना चाहिए ।

१ "इत्थिवेदेसु असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि । सासणसम्मादिट्ठी ओघ । एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।" षट्खं० का० ५,७, २३०, २३४ ।

पलिदो० देसू०। सादादि ज० [एग० उक्क० अंतो०]। आयुगचदुक्ख(क्कं) इत्थिभंगो। तित्थयरं ओघं। णपुंसक०–पंचणा० णवदंसण० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, मिच्छत्तं खुद्दा०। उक्क० अणंतकालं-असंखे०। पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिसभसंघ० मणुसाणु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिरिक्खगदितिगं ओघं०। देवगदि०४ जह० एग० उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। पंचिंदिय० ओरालिय अंगो० परघादुस्सा०-तस०४ जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। सादादीणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। तित्थय० जह० एग०। उक्क० तिण्णि सागरो० सादिरे०। अवगद०–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पु० जस० उच्चागो० पंचंत० जह० एग०। उक्क० अंतो०। सादावे० ओघं। सुहुमसंप०–पंचणा०

सातादिकका जघन्यसे [एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है] आयुचतुष्कका स्त्रीवेदके समान भग है। तीर्थंकरका ओघवत् है। नपुंसक वेदमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पॉच अन्तरायोका बन्धकाल जघन्यसे एक समय[1] है, किन्तु मिथ्यात्वका क्षुद्रभव प्रमाण है। इनका उत्कृष्ट बन्धकाल असख्यात पुद्गल परावर्तन है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसस्थान, वज्रवृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ– मोहनीयकी २८ प्रकृतियोकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर सप्तम पृथ्वीमे उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोको पूर्ण कर तथा विश्राम ले, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको प्राप्त किया, एव आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त कर आगामी भवकी आयुका बन्ध किया। अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके मरण किया। उसके छह अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागरप्रमाण बन्धकाल होगा। (ध० टी० काल० ४४३) तिर्यंचगतित्रिकका ओघके समान भग है। देवगति ४का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम पूर्व कोटि है। पचेन्द्रिय, औदारिक आगोपांग, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। साता आदिक प्रकृतियोका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थ कर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है। अपगत वेदमे–५ ज्ञानावरण, पच निद्राओंका अभाव होनेसे शेष चार दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, यश कीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। साता वेदनीयका ओघवत् है। सूक्ष्मसाम्पराय संयममें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यश कीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है।

विशेषार्थ – उपशम श्रेणीकी अपेक्षा यह बन्धका काल कहा गया है। क्षपककी अपेक्षा

---

१. णवुसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्ट।"–षट्‌खं० का० २४०–४२।

चदुदंस० सादा० जस० उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० । कोधादि०४–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । णवरि माणे तिण्णि संज० । मायाए दोण्णि संज० । लोभे०–पंचणा० चदुदंस० लोभसंज० पंचंतरा० जहण्णु०–अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । अकसाई०–सादावे० ओघं । एवं यथाखादं । एवं चेव केवलणा० केवलदं० । णवरि जह० अंतो० ।

२३. मदि०-सुद०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० तिण्णि भंगो ओघ । तिरिक्खगदि-तिगं ओघं । मणुसग० मणुसाणुपु० जह० एग० । उक्क० एक्कतीसं० सादिरे० । देवगदि-वेउव्वियस० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवगदिपाओ० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-

जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है[1] ।

क्रोधादि चतुष्कमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेपका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । विशेष यह है कि मानकषायमे तीन सज्वलन, माया कषायमे दो सज्वलनका बन्ध है । लोभकषायमे – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सज्वलन लोभ, ५ अन्तरायका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेष प्रकृतियोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । अकषायियोमे––सातावेदनीयका ओघवत् बन्धकाल है । इसी प्रकार यथाख्यात सयममे जानना चाहिए । केवलज्ञान, केवलदर्शनमे भी ऐसा ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

२३ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके तीन भग ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-अभव्यसिद्धिक जीवकी अपेक्षा अनादि अपर्यवसित काल है । भव्यसिद्धिकके मिथ्यात्वका अनादि सपर्यवसित काल है । तीसरा भग सादि सान्तका है । इसी तीसरे भगमे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण बन्धकाल है । (ध० टी० काल० ३२४-३२८)

तिर्यंचगति-त्रिकका ओघके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियिक अगोपांग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग,

१ "चउण्ह उवसमा केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त, चदुण्ह खवगा एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।"–षट् खं० काल० २२-२८ ।

२ "एगजीव पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ट देसूणं ।"–षट् ख० काल० ३१०-३१३ ।

आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । पंचिंदि० ओरालि० अंगो० परघादु० सा०(दुस्सा०) तस०४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ओरालियस्स० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे० । आयु ओघं । सेसं जह० एग० । उ० अंतो० । एवं मिच्छादिट्ठि० अब्भवसिद्धि० एवं चेव । णवरि धुविगाणं अणादियो अपज्जवसिदो । विभंगे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० तिरिक्खगदि० पंचिदि० ओरालिय-तेजाकम्म० ओरालिय० अंगो० वण्ण०४ तिरिक्खगदि-पाओ० अगु०४, तस०४ णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०, मिच्छत्तं० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एक्कत्तीसं देसू० । आयु ओघं । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । आभि० सुद० ओधिणा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदिय० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्स० आदे० णिमि०

सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन तीन पल्य प्रमाण है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक अगोपांग, परघात, उच्छ्वास तथा त्रस ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। औदारिक शरीरका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है। आयुका ओघवत् है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिमे भी जानना चाहिए। अभव्यसिद्धिकोंमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है, कि अभव्योंमे ध्रुव प्रकृतियोंका बन्धकाल अनादि अपर्यवसित अर्थात् अनन्त काल है। विभगावधिमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर,औदारिक अगोपांग, वर्ण ४, तिर्यचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट बन्धकाल देशोन ३३ सागर है।

विशेषार्थ – एक मिथ्यात्वी सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभगज्ञानी हुआ। आयुके ३३ सागर पूर्ण कर मरण करके निकला, तब उसका विभग ज्ञान नष्ट हो गया, कारण अपर्याप्त कालमे विभग ज्ञानका विरोध है। इस प्रकार उत्कृष्ट बन्धकाल देशोन ३३ सागर प्रमाण है। (ध० टी० काल० पृ० ४५०)

मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन इकतीस सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ – एक द्रव्यलिंगी साधु मरण कर ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। ३१ सागरकी आयु प्राप्त की। यहॉ अतर्मुहूर्तमे पर्याप्त हो विभगावधिको प्राप्त करके शेष ३१ सागर प्रमाण काल व्यतीत करके मरा। उसके अतर्मुहूर्त कम ३१ सागर प्रमाण मनुष्यद्विकका बधकाल होगा।

आयुका ओघके समान बधकाल है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बंधकाल है।

आभिनिबोधिक श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५

उच्चा० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि० सागरोप० सादिरे० । सादासा० हस्स-रदि० अरदि० सो० आहारदुगं थिरादितिण्णियु० जह० एग० उक्क० अंतो० । अप्पच्च-क्खाणावर०४ तित्थयरं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अपच्चक्खाणा० (पच्चक्खाणा०) ४ जह० अंतो० । उक्क० बादालीसं सा० सादि० । अथवा तेत्तीसं सा० सादिरे० परिज्ञदि । दो-आयु ओघं । मणुसगदि-पंचगं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णि-पलिदो० सादि० । एवं ओधिदं० । एवं चेव सम्मादिट्ठि० । णवरि सादं ओघं । मणपज्जव०-पंचणा० छदंसण० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि० पचिंदि० वेउ० तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगोवं० वण्ण०४ देवगदि-पाओ० अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमि० तित्थ-यरं उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । सादासा० चदुणो० आहार-दुगं० थिरादि-तिण्णि-युग० जह० एग० । उक्क० अंतो० । देवायु ओघं ।

२४. एवं संजदासामाइ० छेदो० । णवरि संजदे सादं ओघं । परिहार-संजदा-

---

अन्तरायका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर प्रमाण है । साता. असाता वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, आहारकद्विक और स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । अप्रत्याख्यानावरण ४, तीर्थंकरका जघन्य अन्त-र्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। प्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ४२ सागर प्रमाण है । अथवा, कुछ अधिक तेतीस सागर बन्धकाल जानना चाहिए । दो आयुका ओघके समान है । मनुष्यगति-पंचकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य बन्धकाल है । अवधि-दर्शनमें – इसी प्रकार जानना चाहिए। सम्यग् दृष्टियोंमे – इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि साता वेदनीयका ओघके समान भंग जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि बन्ध-काल है ।

विशेषार्थ – एक कोटि पूर्वकी आयुवाले किसी मनुष्यने गर्भकालसे लेकर आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल व्यतीत करके सकल संयमी बन मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न किया। जीवन भर मनःपर्ययसंयुक्त रहा, किन्तु मरणके अन्तर्मुहूर्त रहनेपर नीचेके गुणस्थानमें आकर मरण किया, इस प्रकार देशोनपूर्व कोटि काल है ।

साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । देवायुका ओघके समान है ।

२४ इस प्रकार संयत तथा सामायिक छेदोपस्थापना संयतमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि संयम मार्गणामें साता वेदनीयका ओघवत् जानना चाहिए।

परिहारविशुद्धिसंयतों तथा संयतासंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

संजदाणं एवं चेव । णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, असजदे धुविगाणं मदिभंगो । पुरिस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सादिरे० । तिरिक्खगदि-तिगं मणुसग० वज्जरिस० मणुसाणु० देवगदि०४ आयु० तित्थयरं च ओघं । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो०। चक्खु-दंस० तस-पज्जत्तभंगो । णवरि सादा० जह० एग० । उक्क० अंतो० । अचक्खुद ओघ । णवरि साद० चक्खुद० भंगो० ।

२५. किण्ण० णील० काउ०--पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु०

परिहारविशुद्धि सयमके विषयमे 'खुद्दाबध' में लिखा है संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिर कालादो होंति ? जहण्णेण अन्तोमुहुत्त, उक्कस्सेण पुव्वकोडिदेसूणा (१४७, १४८, १४९ सूत्र) ।

सयम मार्गणाके अनुसार सयत, परिहार शुद्धि सयत तथा सयतासयत कितने काल-तक रहते है ? कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अन्तर है । उत्कृष्टसे कुछ कम पूर्व कोटि है । धवला टीकामे लिखा है, "गर्भसे लेकर आठ वर्षोंसे सयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक सयमका पालन कर व मरकर देवोंमे उत्पन्न हुए मनुष्यके कुछ कम पूर्व-कोटि मात्र संयमकाल पाया जाता है । इसी प्रकार परिहार शुद्धि संयतका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिए । विशेष इतना है कि सर्वसुखी होकर तीस वर्षोंको बिताकर पश्चात् वर्ष पृथक्त्वसे तीर्थंकरके पादमूलमे प्रत्याख्यान नामक पूर्वको पढकर पुनः तत्पश्चात् परिहार-शुद्धि सयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष तक रहकर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उपर्युक्त काल प्रमाण कहना चाहिए । इस प्रकार अडतीस वर्षोंसे कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिहार शुद्धि सयमका काल कहा गया है । कोई आचार्य सोलह वर्षोंसे और कोई बाईस वर्षोंसे कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण कहते हैं । इसी प्रकार संयतासयतका भी उत्कृष्ट काल जानना चाहिए । विशेष यह है कि अन्तर्मुहूर्त पृथक्त्वसे कम पूर्व कोटि वर्ष संयमासयमका काल होता है । (क्षुद्रक बन्ध २, ७ पुस्तक पृ० १६७)

खुद्दाबन्धका कथन – सामान्यतया संयम, परिहारविशुद्धि संयम, संयमासंयम, सामान्यकी अपेक्षा किया गया है । महाबन्धका प्रतिपादन सयम, परिहारविशुद्धि सयम, संयमासयममे बँधनेवाली कर्मप्रकृतियोंकी अपेक्षा किया गया है ।

विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, किन्तु असंयतोंमें ध्रुव प्रकृतियोका बन्धकाल मत्यज्ञानके समान है । पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक अगोपांग, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । तिर्यञ्चगति-त्रिक, मनुष्यगति, वज्रवृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, ४ आयु तथा तीर्थंकरका ओघके समान काल है । शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चक्षुदर्शनमे–त्रस पर्याप्तकोंका भग जानना चाहिए । विशेष यह है कि सातावेदनीयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है । अचक्षुदर्शनमें–ओघवत् है । यहाँ यह विशेष है कि साता वेदनीयका चक्षुदर्शन समान भग है ।

२५. कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस–कार्माण, वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका

तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस-सत्तसा० सादिरे०। सादासा० छण्णोक० दोगदि० चदुजादि० वेउव्वि० पंचसं० वेउव्वि० अंगो० पंचसंघ० दो-आणु० आदाउज्जो० अपसत्थ० थावरादि०४ थिरादि दोण्णियुग० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्स० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सत्तार [स] सत्त-साग० देसू०। चदुआयु० जहण्णु० अंतो०। तिरिक्खगदि–पचिंदि० ओरालि० ओरालि० [अंगो०] तिरिक्खाणुपु० परघादु० तस०४ णीचा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरे०। णवरि

जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बन्धकाल ३३ सागर है, १७ सागर है, सात सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ – नीललेश्याधारी कोई जीव कृष्णलेश्यायुक्त हो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण विश्राम कर मरण करके सातवी पृथ्वीमे ३३ सागरप्रमाण कृष्णलेश्यासहित रहा। मरण कर अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त भावनावश वही लेश्या रही। इस कारण दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक ३३ सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल रहा। मिथ्यात्वादिका बन्धकाल भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँचवीं पृथ्वीमे उत्पत्तिकी अपेक्षा नीललेश्यामे साधिक १७ सागर तथा तीसरे नरककी अपेक्षा कापोत लेश्यामे साधिक सात सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है। (ध० टी० काल० ४५७-४५८)

साता–असाता वेदनीय, ६ नोकपाय, दो गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, वैक्रियिक अगोपांग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन ३३ सागर, १७ सागर तथा ७ सागर है।

विशेषार्थ – कोई २८ मोहनीयकी सत्तायुक्त मिथ्यात्वी जीव तीसरी, पाँचवीं तथा सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्ति पूर्ण करके दूसरे अन्तर्मुहूर्तमे विश्राम लिया। तथा तीसरेमें विशुद्ध होकर चौथे अन्तर्मुहूर्तमे वेदक सम्यक्त्व धारण किया और तीसरी तथा पाँचवीं पृथ्वीमें सात तथा १७ सागर प्रमाण क्रमशः पुरुषवेदादिका बन्ध किया, पश्चात् मरण किया। अतः सात तथा सत्रह सागरमे मिथ्यात्व दशाके तीन अन्तर्मुहूर्त कम होते है। सातवीं पृथ्वीमे ६ अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। कारण वहाँसे मिथ्यात्वके बिना निर्गमन नहीं होता है। मरणके एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ। दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें आयुबन्ध किया, तीसरेमे विश्राम किया, बादमें निर्गमन किया। इस प्रकार पूर्वके तीन और पश्चात्के तीन इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण बन्धकाल है। (ध० टी० काल० ३५९, ३६२)

चार आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यंचगति, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक [अंगोपांग], तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ तथा नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है, १७ सागर तथा ७ सागर

तिरिक्खगदि-तिगं णील० काउ० साद० भंगो। किण्ण० णील० तित्थय० जहण्णु० अंतो०। काउ० जह० अंतो०। उक्क० तिण्णि साग० सादिरे०। तेउ०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० पुरिसवे० भयदुगु० मणुसगदि० पंचिदि० तेजाक० समचदु० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सरादेज्ज० णिमि० तित्थयं० उच्चा० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धितिगं० अणंताणुबं०४ एय०। उक्क० बेसागरोप० सादिरे०। णवरि केसिंच० जह० एगस०। तिण्णि आयु० देवगदि०४ जहण्णु० अंतो०। ओरालिय० जह० दसवस्स-सहस्साणि देसू० अथवा पलिदोपमं सादि०। उक्क० बेसागरोप० सादिरे०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। पम्माए-पंचणा० णवदं० मिच्छत्तं सोलसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसग० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चागो० तित्थय० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धि० अणंताणु०४ एगस०। उक्क० अट्ठारस० सादि०।

बन्धकाल है। विशेष यह है कि तिर्यंचगतित्रिकका नील तथा कापोत लेश्यामे साता वेदनीयकी भाँति बन्धकाल समझना चाहिए। कृष्ण नील लेश्यामे तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। कापोत लेश्यामे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है। तेजोलेश्यामे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि सबका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक दो सागर है। विशेष यह है कि किन्ही आचार्यों-के मतसे उपरोक्त जघन्य रूपसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकालवाली ज्ञानावरणादि प्रकृतियोका जघन्य काल एक समय प्रमाण है।

विशेषार्थ – एक मिथ्यात्वी कापोतलेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यावाला हो गया। उसमे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर मरा। सौधर्म कल्पमें पल्योपमके असख्यातवे भागसे अधिक दो सागर प्रमाण जीवित रहकर च्युत हुआ। उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गयी। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सौधर्म कल्पकी स्थिति प्रमाण कापोतलेश्या रही। इस दृष्टिको लक्ष्यमें रखकर मिथ्यात्वादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा गया है। (ध० टी० काल० पृ० ४६३)

तीन आयु, देवगति४ का जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है। औदारिक शरीरका जघन्य बन्धकाल कुछ कम १० हजार वर्ष अथवा साधिक पल्य है। उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक दो सागर है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। पद्मलेश्यामे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि

णवरि केसिंच एगस० । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० जहण्णे० बेसाग० सादिरे०। उक्क० अट्ठारस० सादिरे० । सेसं तेउभंगो । णवरि एइंदि० आदाव-थावरं णत्थि । सुक्काए – पंचणा०छदंसण०(णा०)बारसक०पुरिसवे०भयदु०तेजाकम्म०समचदु०-वण्ण०४ अगु० पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं तित्थयरं० उच्चा० पंचंतरा० जह० एग० । धुविगाणं अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । थीणगिद्धितिगं अणंताणु०४ जह० एग०, मिच्छ० अंतो० । उक्क० एकत्तीसं सादि० । दो आयु० सादादीणं च ओघं । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० मणुसाणुपु० जह० अट्ठारस० सादिरे० उक्क तेत्तीसं० । वज्जरिसभ० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं० । सेसाणं

सबका उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। विशेष, उपरोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्यकाल किन्हीं आचार्योंके मतमे अन्तर्मुहूर्तकी जगह एक समय प्रमाण है ।

विशेषार्थ – वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक मिथ्यात्वी जीव अपने कालके क्षीण होनेपर पद्मलेश्यावाला हो गया। उसमे अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और शतार-सहस्रारस्वर्गवासी देवोंमे जाकर पल्योपमके असख्यातवे भागसे अधिक १८ सागर जीवित रहकर च्युत हुआ, तब पद्मलेश्या नष्ट हो गयी। उसकी अपेक्षा इस लेश्यामें ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा है।

औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांगका जघन्य साधिक दो सागर, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोका बन्धकाल तेजोलेश्याके समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि पद्मलेश्यामे एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका बन्ध नहीं है।

शुक्ललेश्यामे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजसकार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय है। किन्तु ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन सबका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३३ सागर है।

विशेषार्थ – एक मनुष्य शुक्ललेश्यासहित अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागर पर्यन्त शुक्ललेश्यायुक्त रहा। पश्चात् मरण किया। इस प्रकार शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण रहा। (ध० टी० काल० ३४७, ४७२)

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, मिथ्यात्वका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, तथा इनका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३१ सागर है।

विशेषार्थ – एक द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु मरणके समीपमे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त शुक्ल-लेश्या धारण कर मरा और द्रव्यसयमके प्रभावसे उपरिम ग्रैवेयकमे शुक्ललेश्यायुक्त ३१ सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हुआ और अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर उसी क्षण शुक्ललेश्या-रहित होकर च्युत हुआ। उसके प्रथम अन्तर्मुहूर्त अधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल होगा। (ध० टी० काल० पृ० ४७२)

दो आयु तथा साता आदिक प्रकृतियोका बन्धकाल ओघके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल साधिक १८ सागर तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है।

जह० एग०, उक्क० अंतो० । भवसिद्धिया ओघं । णवरि अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि ।

२६. खइगं–आभिणि०भंगो । णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । मणुसगदि-पंचगं जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सा० । सादावे० दो आयु० देवगदि०४ ओघं । वेदगसं०–धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० । मणुसगदिपंचग जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि-पलिदोप० देसू० । सेसं ओधिभंगो । उवसम०–पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसगदिपंचगं पंचिदिय० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज णिमिणं तित्थयरं उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं पगदी० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

वज्रवृषभसंहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। भव्यसिद्धिकोंमे – ओघके समान है। विशेष, यहाँ अनादि अनन्त रूप भग नही है।

२६ क्षायिकसम्यक्त्वमे – आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है। विशेष ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है[1]। मनुष्यगति ५ का जघन्य बन्धकाल ८४ हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागर है। सातावेदनीय, २ आयु, देवगति ४ का ओघके समान है। वेदकसम्यक्त्वमे ध्रुव प्रकृतियोका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर है।

विशेष – वेदकसम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर प्रमाण है। इससे ध्रुव प्रकृतियोका बन्धकाल भी उतना ही कहा है।

मनुष्यगति ५ का जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ३३ सागर है। देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोका अवधिज्ञानके समान बन्धकाल है। उपशमसम्यक्त्वमे – ५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिकके बिना ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति ५, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्र एव ५ अन्तरायोंका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है[2]। शेष प्रकृतियोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

---

१ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अन्तोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि। खइयसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ।"–षट् खं० काल० १४, १५, ३१७।

२ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठी सजदासजदा केवचिर कालादो होति ? एकजीव पडुच्च जहण्णेण अन्तोमुहुत्त, उक्कस्सेण अन्तोमुहुत्त। पमत्तसजदप्पहुडि जाव उवसतकसायवीदरागछदुमत्थात्ति केवचिर कालादो होति ? एकजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अन्तोमुहुत्त।" –षट् ख० काल० ३१९–२४।

सासणे–पंचणा०णवदंसण०(णा०)सोलसक० भयदु० तिण्णिगदि० पंचिंदि० चदुसरी० समचदु० दो-अंगो० वण्ण०४ तिण्णि-आणुपुव्वि० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं णीचुच्चागो० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। तिण्णि-आयु० ओघं। सेसाण जह० एग०, उक्क० अंतो०। सम्मामि०–सादासादा० चदुणोक० थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जहण्णु० अंतो०।

२७. सण्णि० – धुविगाणं जह० खुद्दाभ०, उक्क० सागरोपमसदपु०। सेसं पंचिंदिय-

विशेषार्थ – असयतसम्यक्त्वी अथवा देशसयमीकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। प्रमत्तसयतसे लेकर उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ पर्यन्त एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। (ध० टी० काल० ४८२-४८४)

सासादनसम्यक्त्वमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति (नरकगतिरहित), पचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अगोपाग, वर्ण ४, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीच उच्च-गोत्र तथा ५ अन्तरायोंका [1]जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट ६ आवली प्रमाण है।

विशेषार्थ–कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, उसकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय प्रमाण है। कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका छह आवली प्रमाणकाल शेष रहनेपर सासादनमे आ गया। वहाँ छह आवली प्रमाण काल व्यतीत कर मिथ्यात्वमें पहुँचा। इस प्रकार जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट छह आवली कहा है।

तीन आयुका ओघके समान काल है। विशेष – यहाँ नरकायुका बन्ध नहीं होता है।

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्मिथ्यादृष्टिमे – साता, असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

विशेषार्थ – कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणामयुक्त हो मिश्र गुणस्थानमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त रहकर चतुर्थ गुणस्थानमे चला गया, अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानी हुआ, वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पुनः संक्लेशवश मिथ्यात्वी हुआ। इसी प्रकार कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणाम-युक्त हो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण मिश्र गुणस्थानी रहा, बादमे मिथ्यात्वी हो गया अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी सक्लेशवश मिश्र गुणस्थानमे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण काल व्यतीत करके पुनः अविरतसम्यक्त्वी हो गया। इनकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानका जघन्य, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

संज्ञीमें –[2] ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट शत-

१ "एकजीव पडुच्च जहण्णण एगसमओ उक्कस्सेण छआवलियाओ।" –षट् ख० काल० ७, ८।

२ "एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्त।" –षट् खं० काल० ३३०-३२।

पज्जत्तभंगो। णवरि सादि ओधिभंगो। असण्णीसु-पंचणा० णवदं० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा०। उक्क० अणंतकालं, असंखे०। चदु-आयु० तिरिक्खगदि-तिगं ओरालि० ओघं। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२८. आहारगे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदु० तिरिक्खगदि-ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तिरिक्खगदिपाओ० अगुरु० उप० णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०। मिच्छत्तस्स खुद्धाभ० तिसमऊ०। उक्क० अंगुलस्स [असंखेज्जदि-भागो] असंखेज्जाओ ओस[प्पिणि-उस्सप्पिणीओ]। तित्थय० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सादि०। सेसा ओघं। अणाहार० कम्मइग-भगो। एवं कालं समत्तं।



पृथक्त्व सागर है। शेष प्रकृतियोका पचेन्द्रिय पर्याप्तकके समान भग है। विशेष यह है कि साता वेदनीयमे अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए। असज्ञीमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसकार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है[1]। चार आयु, तिर्यंचगति-त्रिक, औदारिक शरीरका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

२८ आहारकोंमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र, ५ अन्तरायोका बन्धकाल जघन्य एक समय है। मिथ्यात्वका तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इनका उत्कृष्ट काल अंगुलका [असख्यातवाँ भाग] असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है[2]। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। शेष प्रकृतियोका ओघवत् जानना चाहिए। [3]अनाहारकोंमे – कार्माण काययोगके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार (एक जीवकी अपेक्षा) बन्धकालका वर्णन समाप्त हुआ।



---

१ "एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण उक्कस्सेण अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्ट।" –षट् ख० काल० ३३५-३६।

२ "आहाराणुवादेण – एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणी।" –षट् ख० का० ३३८–३९।

३. "अणाहारेसु कम्मइयकायजोगिभगो।" –षट ख० का० ३४१।

[अंतराणुगमपरूवणा]

२९. अंतराणुग० दुवि० ओघे० आदे० । ओघे–पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-पुरिस० हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिदि०-तेजाकम्म०-समचदु०-

[अन्तरानुगम]

२९. अन्तरानुगममें यहाँ (एक जीवकी अपेक्षा) ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते है।

विशेषार्थ – छक्खंडागम सुत्तके खुद्दाबन्ध (क्षुद्रकबन्ध) नामक दूसरे खण्डमे निम्नलिखित एकादश अनुयोगद्वार कहे है : "**एकजीवेण सामित्त, एकजीवेण कालो, एगजीवेण अतर, णाणाजीवेहि भगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि**" २ (पृष्ठ २५) – एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचय, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नानाजीवोंकी अपेक्षा काल, नानाजीवोकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व।

महाबन्धके पयडिबन्धाहियारमे उक्त अनुयोगद्वारोंके सिवाय सण्णियास परूवणा (सन्निकर्ष प्ररूपणा) तथा भावानुगमका भी निरूपण किया गया है।

शंका – काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणाका कथन क्यो किया गया ?

समाधान – 'कालपरूवणाए विणा अन्तर-परूवणाणुववत्तीदो' – कालकी प्ररूपणाके बिना अन्तर प्ररूपणाकी उपपत्ति नही बैठती। इस काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणा ही कहा जाना चाहिए, कारण एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य अनुयोगद्वार नहीं है। वीरसेन स्वामीने कहा है "**पुणो अंतरमेव वत्तव्वं, एगजीव संबधिणो अण्णस्स अणिओगद्दारस्साभावा**" (धवलाटीका क्षुद्रकबन्ध पृष्ठ २६)।

अन्तर शब्दके अनेक अर्थ है उनमे-से यहाँ छिद्र, मध्य अथवा विरह रूप अर्थ लेना चाहिए। आचार्य अकलकदेवने लिखा है "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्र-मध्य विरहेष्वन्यतमग्रहण" (रा० वा० पृ० ३०)[1]

ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र-

---

१ बहुष्वर्थेषु दृष्टः प्रयोग , क्वचिच्छिद्रे वर्तते, 'सान्तर काष्ठ सच्छिद्रमिति' । क्वचिदन्यत्वे 'द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्त' इति, क्वचिन्मध्ये हिमवत्सागरान्तर इति । क्वचित्सामीप्ये "स्फटिकस्य शुक्लरक्ताद्यन्तरस्थस्य तद्वर्णतेति शुक्लरक्तसमीपस्थस्येति गम्यते । क्वचिद्विशेषे" ।

वारि-वारिज-लोहाना काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारी पुरुष-तोयानामन्तर महदन्तरम् ॥ इति

महान् विशेष इत्यर्थ । क्वचिद्बहिर्योगे "ग्रामस्यान्तरे कूपा , इति, क्वचिदुपसव्याने 'अन्तरे शाटका' इति, क्वचिद्विरहेऽनभिप्रेतश्रोतृजनान्तरे मन्त्र मन्त्रयते, तद्विरहे मन्त्रयते इत्यर्थ । तत्रेह छिद्र-मध्य-विरहेष्वन्यतमो वेदितव्य " त० रा० पृ० ३० । अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामतरगमण णत्थित्तगमण अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो । एदस्स अतरस्स अणुगमो अतराणुगमो ॥ (खुद्दाबन्ध पृ० ३, सूत्र १ टीका)

वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ०-तस०४ थिरादि-दोण्णि-यु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं-तित्थयरं-पंचंतरा० बंधंतरं केवचिरं कालादो होदि? जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला जहण्णु० अंतो०। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु०४ जह० अंतो०। उक्क० बेछावट्ठिसा० देसू०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०।

संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायके बन्धका अन्तर कितने काल पर्यन्त होता है ? जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि निद्रा और प्रचलाका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागर है।

विशेषार्थ – कोई एक तिर्यंच या मनुष्य चौदह सागर स्थितिवाले लान्तव, कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ एक सागरोपम काल बिताकर द्वितीय सागरोपमके आरम्भमे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, तथा तेरह सागर काल सम्यक्त्व सहित व्यतीत कर मरा और मनुष्य हुआ। वहाँ संयम अथवा सयमासंयमका पालन कर इस मनुष्यभव सम्बन्धी आयुसे कम बाईस सागरवाले आरण, अच्युत कल्पमे उत्पन्न हुआ। वहाँसे मरकर पुनः मनुष्य हुआ। संयमको पालन कर उपरिम ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुआ और मनुष्य आयुसे न्यून इकतीस सागरकी आयु प्राप्त की।

वहाँ अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागर कालके चरम समयमें मिश्र गुणस्थानवाला हुआ। अन्तर्मुहूर्त विश्राम कर पुनः सम्यक्त्वी हुआ। विश्राम ले, चयकर मनुष्य हुआ। संयम या सयमासयमको पालन कर इस मनुष्य भवकी आयुसे न्यून बीस सागरकी आयुवाले आनत-प्राणत देवोंमे उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस तथा चौबीस सागरके देवोंमे उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर कालके अन्तिम समयमे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर अर्थात् एक सौ बत्तीस सागर काल प्रमाण अन्तर हुआ। यह[1] क्रम अव्युत्पन्न लोगोंको समझानेको कहा है। परमार्थ-दृष्टिसे किसी भी तरह छयासठ सागरका काल पूर्ण किया जा सकता है। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ६-७)

प्रत्याख्यानावरण तथा अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायका जघन्य बन्धान्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटि पूर्व है।

विशेषार्थ – कोई जीव मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तायुक्त एक कोटि पूर्व प्रमाण-आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। गर्भसे आठ वर्ष पूर्ण होनेपर वेदकसम्यक्त्वी हो उसने सकलसयमको प्राप्त किया। एक कोटि पूर्वके अन्तमें उसने मिथ्यात्वी होकर मरण किया। इस प्रकार सकलसयमकी अपेक्षा देशोन एक कोटि पूर्वकाल कषायाष्टकका अन्तर कहलाया।

---

१ एसो उप्पत्तिकमो अउप्पण्ण-उप्पायणट्ठ उत्तो। परमत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावट्ठी पूरेदव्वा। (ध० टी० अ० पृ० ७)

इत्थिवेदा० जह० एग०, उक्क० बेच्छावट्ठि-साग० सादिरे० । णपुंसक० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागो० जह० एग०, उक्क० बेच्छावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । णिरय-मणुस-देवायु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं-असंखेज्जा० । तिरिक्खायु० जह० अंतो, उक्क० सागरोवमसदपु० । णिरयगदि-देवगदि० वेउव्वि० वेउव्वि० अंगो० दोआणुपु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं-असं० । तिरिक्खगदि० तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोपम-सद० । मनुसगदि-मणुसाणु० उच्चा० जह० एग० उक्क० असंखेज्जा लोगा । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० पचासीदिसागरोपमसदं । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । [आहार०] आहार० अंगो० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० देसू० ।

स्त्रीवेदका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागर है । नपुंसक वेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच-गोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट किंचित् न्यून तीन पल्य अधिक एक सौ बत्तीस सागर प्रमाण है । नरकमनुष्य-देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसागरपृथक्त्व है । नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरक-देवानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल—असख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ त्रेसठ सागरपृथक्त्व है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असख्यात लोक प्रमाण है । ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ पचासी सागर प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, वज्रवृषभ संहननका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक तीन पल्य है । [आहारक शरीर] आहारक अगोपागका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन अन्तर है ।

विशेषार्थ – एक अनादि मिथ्यादृष्टिजीवने अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रूप तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर अनन्त संसारका छेद करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । इस अप्रमत्त गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त रहकर प्रमत्त हुआ और अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरावर्तन काल व्यतीत कर अन्तिम भवमें सम्यक्त्व अथवा देशसयमको प्राप्त कर दर्शन मोहनीय ३ और अनन्तानुबन्धी ४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसयत हो गया । इस प्रकार अप्रमत्तसयतका अनन्तर काल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमे हजारो बार परावर्तन करके अप्रमत्तसयत हुआ । पुनः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीण-कषाय, सयोगकेवली अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है । यही अन्तर आहारक-द्विकके बन्धके विषयमे होगा । कारण, आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयतमें होता है । (ध० टी० अन्तरा० पृ० १७)

३०. आदेसे०–णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय दुगुं०-पंचिं०-ओरालिय-तेजाकम्म०-ओरालिय०-अंगो०-वण्ण०४अगु०४तस०४णिमिण-तित्थय० - पंचंत०-णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० अतो०, उक्क० तेत्तीस० देसू० । सादासा० पुरिस० चदुणो० समचदु० वज्ज०रिसभसं०, पसत्थवि० थिरादि-दोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदे०जह० एग०, उक्क० अंतो० । इत्थिवे०-णपुंसय०-दोगदि० पंचसंठा० पंचसं० दो आयु० (आणुपु०) अप्पसत्थवि० उज्जोवं दूभग-दुस्सर अणादेज्ज०-णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । दो

३० आदेशसे – नारकियोंमे – पॉच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेंद्रिय जाति, औदारिक तैजस-कार्मांण शरीर, औदारिकशरीर अंगोपांग, वर्ण चार, अगुरुलघु चार, त्रस चार, निर्माण, तीर्थंकर और पॉच अन्तरायोंके बन्धका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य अन्तर, अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।

विशेषार्थ – यहॉ नरकगतिके आश्रयसे बध्यमान प्रकृतियोंके अन्तरका कथन किया गया है। क्षुद्रक बन्धमें इस प्रकार विशेष कथनकी विवक्षाके स्थानमें सामान्य रूपसे प्रतिपादन किया गया है। जैसे नरकगतिमे नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है, इस प्रश्नके उत्तरमे आचार्य जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन कहते है। भूतबलि स्वामी रचित सूत्र इस प्रकार है, "**एग जीवेण अन्तराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं अतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥१॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥३॥** इन पूर्वोक्त सूत्रोंपर धवलाटीकामे प्रकाश डालते हुए वीरसेन स्वामी लिखते है, नरकसे निकलकर गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच जीवोंमें अथवा मनुष्योंमे उत्पन्न हो, सबसे कम आयुके भीतर नरकायुको बॉध मरण कर पुनः नरकोंमे उत्पन्न हुए नारकी जीवके नरकगतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट अन्तरके सम्बन्धमे इस प्रकार स्पष्ट किया है, नारकी जीवके नरकसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमे आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन परिभ्रमण करके पश्चात् पुनः नरकोंमे उत्पन्न होनेपर सूत्रोक्त अन्तरका प्रमाण पाया जाता है।

महाबन्धमे नारकियोंमे ज्ञानावरणादिके अन्तरका अभाव कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन तेतीस सागर कहा है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है : मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई मनुष्य या तिर्यंच नीचे सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें पैदा हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अल्प आयुके शेष रहनेपर मिथ्यात्वको पुनः प्राप्त हुआ (४) पुनः तिर्यंच आयुको बॉधकर (५) विश्राम लेकर (६) निकला। इसप्रकार छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाणकाल मिथ्यात्वके अन्तरका है। यही अन्तर स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धी चारका भी होगा।

साता-असाता वेदनीय, पुरुषवेद, चार नोकषाय, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुसकवेद, दो गति, पॉच संस्थान, पॉच संहनन, दो आयु (आनुपूर्वी), अप्रशस्त विहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच, उच्च गोत्रका जघन्य

आयु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणा। एवं पढमादि याव छट्ठित्ति। धुविगाणं तित्थय० णत्थि अंत०। साददंड० ओघं। णवरि मणुस० मणुसग०पाओ०-उच्चागोदं पविट्ठ०। सेसे णिरयोघं। णवरि अप्पप्पणो ट्ठीदी भाणिदव्वा। सत्तमाए पुढवीए णिरओघं। णवरि दोगदि-दो आणुपु०-दोगोदं० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं०देसूणा।

३१. तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंस० अट्ठक०-भय-दु०-तेजा-कम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धि३ मिच्छ०-अणंताणु०४ जह० अंतो०, उक्क०तिण्णि पलिदोव०देसू०। एवं इत्थि०। णवरि जह०एग०।

एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है। विशेष-यहाँ 'दो आयु' के स्थानमें दो आनुपूर्वी पाठ उपयुक्त लगता है, कारण दो आयुका अन्तर आगे कहा गया है। दो आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम छह माह अन्तर है।

विशेषार्थ – नारकियोंमे भुज्यमान आयुके अधिकसे अधिक छह माह और कमसे कम अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर आगामी बध्यमान मनुष्य-तिर्यंच आयुका बन्ध होता है। किसी जीवने छह महीने जीवन शेष रहनेपर प्रथम अन्तर्मुहूर्तमे नरकगतिमे परभवकी आयुका बन्ध किया और पश्चात् मरणसमयमे पुनः बन्ध किया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर होगा।

इस प्रकार प्रथमसे छठी पृथिवी पर्यन्त जानना चाहिए। यहाँ ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकरका अन्तर नही है।

विशेषार्थ – तीर्थंकर प्रकृतिवाला जीव मिथ्यात्वसहित मरण कर मेघा नामकी तीसरी पृथ्वीसे नीचे नही जाता। इससे उसके बन्धका अन्तर तीसरी पृथ्वी तक जानना चाहिए, नीचेकी पृथिवियोंमे नही जानना चाहिए।

सातादण्डकका ओघके समान अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रमे प्रविष्टके विशेष जानना चाहिए।

[1] शेष प्रकृतियोंमे नारकियोंके ओघके समान है। विशेष यह है कि यहाँ प्रत्येक नरकमे अपनी-अपनी स्थिति-समान अन्तर जानना चाहिए। सातवी पृथ्वीमे सामान्य नरकके समान अन्तर है। इतना विशेष है कि दो गति, दो आनुपूर्वी, दो गोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर अन्तर है।

३१ तिर्यंचोमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका बन्धका अन्तर नहीं है। क्योंकि इनका निरन्तर बन्ध होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदका अन्तर समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय (और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य) है।

---

१ "पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसुमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतर केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमं, तिण्णि, सत्त, दस, सत्तारस, बावीस, तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि"—षट्खं० अन्तरा० २८-३०।

सादासाद-पंचणोक० पंचि० समचदु० परघादुस्सा०-पसत्थवि० तस०४ थिरादि-दोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्जा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणाव०४-णपुंस० तिरिक्खगदि-चदुजादि-ओरालिय० पंचसंठा०-ओरालि०-अंगोवं०-छसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदा०-उज्जोव अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-दूभग० दुस्सर-अणादेज्ज०-णीचा० जह० एग० । अपच्चक्खाणा०४ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं दे० । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडि०सादिरे० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं-असंखे० । मणुसग०-मणुसाणु० उच्चा० ओघं ।

३२. पंचिंदिय-तिरिक्ख तिग० धुविगाणं णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ०

विशेषार्थ – एक मनुष्य या तिर्यंच, अट्ठाईस मोहनीयकी प्रकृतियोकी सत्तावाला तीन पल्यकी आयुवाले मुर्गा, बन्दर आदिमे उत्पन्न हुआ। दो माह गर्भमे रहकर बाहर निकला। यहाँ आचार्य-परम्परागत दक्षिण-प्रतिपत्तिके अनुसार ऐसा उपदेश है कि तिर्यंचोंमे उत्पन्न हुआ जीव दो माह और मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। उत्तर-प्रतिपत्तिके अनुसार तिर्यंचोंमे उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष तीन दिन और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। पश्चात् आयुके अन्तमे मिथ्यात्वको प्राप्त कर मरण किया। इस प्रकार आदिके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अन्तमे उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तोसे न्यून तीन पल्योपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ३२)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण ४, नपुसकवेद, तिर्यंचगति, चार जाति, औदारिक शरीर, ५ सस्थान, औदारिक अगोपांग, ६ सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच-गोत्रका अन्तर जघन्य एक समय है किन्तु अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटिपूर्व है।

विशेषार्थ – कोई मिथ्यात्वी जीव सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय सम्मूर्छन पर्याप्तक एक कोटिपूर्वकी आयुवाले तिर्यंचमे उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विश्राम ले विशुद्ध हो वेदक सम्यक्त्व तथा सयमासयमको प्राप्त किया। मरणसमय देशसयमसे च्युत हो गया। इस प्रकार उसके एक कोटि पूर्वमे कुछ कम कालपर्यन्त अप्रत्याख्यानावरण ४ का अन्तर होगा।

तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर एक कोटि पूर्वके तीन भागोंमें-से कुछ कम एक भाग प्रमाण है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक कोटिपूर्व अन्तर है। वैक्रियिकषट्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल, असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका ओघके समान अन्तर जानना चाहिए।

३२ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त, पचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतीमे—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है क्योंकि इनका निरन्तर बन्ध होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व,

अणंताणु०४जह० अंतो०, इत्थिवेद०जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोव०देसू० । सादासादं० पंचणोक० देवगदि०४ पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा०-पसत्थवि०-तसचदुरं थिरादिदोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणा०४ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । णपुंसय०तिगदि-चदुजादि ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय०अंगो०-छस्संघ० तिण्णि आणपु०-अप्पसत्थ० आदाउज्जो०-थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिदे० । आयु-चत्तारि तिरिक्खोघं । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदु० ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उपघा० णिमिणं पचंत० णत्थि अंत० । सादासाद० सत्तणोक० दोगदि-पंचजादि-छस्संठाण०-ओरालिय० अंगो० छसंघ०-दोआणु० परघादुस्सा० आदा-वुज्जो०-दोविहा०-तसादिदस-युगल-णीचुच्चा०गोदाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोआयु० जहण्णु०अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च ।

अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा स्त्रीवेदका जघन्य एक समय तथा इन सबका उत्कृष्ट कुछ कम ३ पल्य अन्तर है ।

विशेषार्थ – मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले पचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक कुक्कुट, मर्कट आदिमे उत्पन्न हुए वा दो माह गर्भमे रहकर निकले । मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमे आगामी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वसहित मरण किया । पुनः इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे न्यून तीन पल्योपम काल तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोका उत्कृष्ट अन्तर होता है । यही अन्तर मिथ्यात्व आदिका भी है ।

साता–असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, देवगति ४, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि अन्तर है ।

नपुंसकवेद, देवगतिके बिना ३ गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह सहनन, ३ आनुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नोचगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ समान है ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । साता–असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, २ गति (मनुष्य–तिर्यंचगति), ५ जाति, ६ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि-दस-युगल, नीच-उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है । दो आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

३३. मणुस० ३–पंचणा०छदंसण०चदुसंज०भयदुगुं०तेजाकम्म०वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिण० तित्थय० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । थीणगिद्धितिग-दंडओ इत्थिदंडओ साददंडओ णपुंसदंडओ आयुदंडओ पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । णवरि मणुसा० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादि० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पुव्व-कोडिपुध० ।

सभी अपर्याप्तक त्रस-स्थावरोंका इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिए ।

विशेषार्थ—सामान्य कथनकी अपेक्षा तिर्यंचोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टसे सागरोपम-शत-पृथक्त्व कहा है । खुद्दाबंधकी टीकामे लिखा है तिरिक्खस्स तिरिक्खेहितो णिग्गयस्स सेसागदीसु सागरोवमसदपुधत्तादो उवरि अवट्ठाणाभावादो (पृ० १८२)—तिर्यंच जीवके तिर्यंचोंमें-से निकलकर शेष गतियोंमें सागरोपमशत पृथक्त्व कालसे ऊपर ठहरनेका अभाव है ।

३३ मनुष्य-सामान्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनीमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अतरायोंका जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर अतर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धित्रिक-दंडक, स्त्रीदडक, सातादडक, नपुसकदडक, आयुदडकमे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-पर्याप्तकके समान अतर है । विशेष मनुष्यायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटि है ।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व है ।[1]

विशेषार्थ—२८ मोहनीयकी प्रकृतियोकी सत्तावाला अन्य गतियोंसे आकर कोई जीव मनुष्य हुआ । गर्भको आदि लेकर ८ वर्षका हुआ । सम्यक्त्व एवं अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ । (१) पुनः प्रमत्तसंयत हो अतरको प्राप्त हुआ और ४८ पूर्वकोटियाँ परिभ्रमण कर अतिम पूर्वकोटिमे देवायुको बाँधता हुआ अप्रमत्तसयत हो गया । (२) इस प्रकार अतर प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् प्रमत्तसयत होकर (३) मरा और देव हुआ । ऐसे तीन अतर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम ४८ पूर्वकोटियाँ उत्कृष्ट अंतर होता है । (ध० टी० अत० पृ० ५२)

आहारकद्विकके बधक अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होते है । इस कारण यह वर्णन क्रम उसमें भी सुघटित है ।

खुद्दाबंधमें मनुष्यों तथा पचेन्द्रिय-तिर्यंचोंका जघन्य अंतर क्षुद्रभवग्रहण काल तथा उत्कृष्ट अतर असंख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनतकाल कहा है, सूत्रोके शब्द इस प्रकार है, "**पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जता मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा**" (सूत्र ८, ९, १० पृष्ठ १८९, १९०) ।

---

१ सजदासजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसजदाणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च णत्थि अतर णिरतर । एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्त । सूत्र ६७, ६८, ६९ अत० पृ० ५२ । उत्कर्षेण पूर्वकोटिपृथक्त्वानि । स० सि० १, ८ ।

३४. देवेसु—पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०-४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०णिमिणं तित्थय०पंचंतरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुंसक० पंचसंठा० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस-सा० सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव०जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणो ट्ठिदिअंतरं कादव्वं। एइंदिएसु पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदुगुं० ओरालियतेजाक० वण्ण०४ जह० एग०, उक्क० अंतो०। *दोआयु० णिरयभंगो०। तिरिक्खगदि--तिरिक्ख० उज्जो० जह० एग०, उक्क० अट्ठारससा०सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव० जह० एग०, उक्क० बे साग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणोट्ठिदि अंतरं कादव्वं।*

---

३४ देवोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबधी४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद तथा पाँच संस्थानका जघन्य अंतर एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका जघन्य एक समय अंतर है, उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवोंमें अपनी अपनी स्थितिका अंतर लगाना चाहिए।

विशेषार्थ—सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावर प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनके बन्धका अन्तर देवगतिकी अपेक्षा साधिक दो सागर उक्त स्वर्गयुगलकी अपेक्षा है।

दो आयुका नरकगतिके समान अन्तर है, जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ६ माह है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेष—शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तथा उद्योतका बन्ध होता है। इन स्वर्ग-युगलमें आयु साधिक १८ सागर प्रमाण कही है। इस दृष्टिसे यहाँ बन्धका अन्तर कहा है।

खुद्दाबन्धमे देवगति सामान्यको लक्ष्य कर यह कथन किया गया है – देवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है "**जहण्णेण अंतोमुहुत्त**" सूत्र १२। इस पर धवला टीकामें यह स्पष्टीकरण किया गया है, 'देवगतिसे आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पर्याप्तियाँ पूर्ण कर देवायु बाँध पुनः देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। (क्षु० २,७ पृ० १९०) इस कथनसे यह स्पष्ट होता है कि कोई-कोई जीव अल्पायु युक्त मनुष्य होनेसे गर्भावस्थामें ही मरण कर मदकषायवश देवगतिको प्राप्त करते हैं।

देवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल असंख्यात, पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, **उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा**, "कारण धवला टीकामें लिखा है, देवगतिसे चयकर शेष तीन गतियोंमे अधिकसे अधिक आवलीके असंख्यातवे भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन

---

* एतच्चिह्नान्तर्गत पाठोऽधिक प्रतिभाति।

परिभ्रमण कर पुनः देवगतिमें आगमन करनेमे कोई विरोध नहीं आता" (पृ० १९१)। भवनत्रिक तथा सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें पूर्वोक्त अन्तर है। सनत्कुमारादिमे इस प्रकार अन्तर कहा है: **'सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं। उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं"**। इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए धवला टीकाकार कहते है, "तिर्यंच या मनुष्यायुको बाँधनेवाले सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंके तिर्यंच व मनुष्य मत सम्बन्धी जघन्य स्थितिका प्रमाण मुहूर्त-पृथक्त्व पाया जाता है। इसी मुहूर्त-पृथक्त्व प्रमाण जघन्य तिर्यंच व मनुष्यायुको बाँधकर तिर्यंचों वा मनुष्योंमें उत्पन्न होकर परिणामोंके निमित्तसे पुनः सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंकी आयु बाँधकर सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोमे उत्पन्न हुए जीवोंका मुहूर्त पृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तर होता है, ऐसा सूत्र-द्वारा बतलाया गया है।

आगेका सूत्र इस प्रकार है: **'बम्ह-बम्हुत्तर-लांतवकाविट्ठ-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण दिवसपुधत्तं।'** सूत्र १८, १९

शंका – दिवस पृथक्त्वकी आयुमे तो तिर्यंच व मनुष्य गर्भसे भी नहीं निकल पाते और इसलिए उनमे अणुव्रत व महाव्रत भी नहीं हो सकते। ऐसी अवस्थामे वे दिवस पृथक्त्वमात्रकी आयुके पश्चात् पुनः देवोंमें कैसे उत्पन्न हो सकते है।

समाधान – परिणामोंके निमित्तसे दिवस पृथक्त्वमात्र जीवित रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवोंके देवोंमें उत्पन्न होनेमे कोई विरोध नही आता।

शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार स्वर्गवासी देवोंका देवगतिसे जघन्य अन्तर **"जहण्णेण पक्खपुधत्तं"**– पक्षपृथक्त्व कहा है। आनतादिका जघन्य अन्तरवाला सूत्र इस प्रकार है, **"आणद-पाणद आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवाणमतर केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण मास-पुधत्तं"** – **सूत्र** २४-२५। इसपर भाष्यकार महत्त्वपूर्ण शंका उत्पन्न कर समाधान भी करते हैं।

शंका – जब आनत आदि चार कल्पवासी देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते है, तब मनुष्य होकर भी वे गर्भसे आठ वर्ष व्यतीत हो जानेपर अणुव्रत व महाव्रतोंको ग्रहण करते हैं। अणुव्रतों व महाव्रतोंको ग्रहण न करनेवाले मनुष्योंकी आनतादि देवोंमे उत्पत्ति ही नहीं होती, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता। अतएव आनत आदि चार देवोंका मास पृथक्त्व अन्तर कहना युक्त नहीं है। उनका अन्तर वर्ष पृथक्त्व होना चाहिये?

समाधान – शंकाका समाधान इस प्रकार है – अणुव्रत व महाव्रतोंसे संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य (तिरिक्ख-मणुस्सा) आनत-प्रानत देवोंमें उत्पन्न हा, ऐसा नियम नहीं है क्योंकि ऐसा माननेपर तो तिर्यंच असयत-सम्यग्दृष्टि जीवोका जो छह राजु स्पर्शन बतलानेवाला सूत्र है, उससे विरोध उत्पन्न हो जायेगा। (देखो, षट्खडागम, जीवट्ठाण, स्पर्शानुगम सूत्र, २८ पुस्तक ४ पृ० २०७)

आनत-प्राणत कल्पवासी असंयतसम्यग्दृष्टिदेव जब मनुष्यायुकी जघन्य स्थिति बाँधते हैं, तब वे वर्ष पृथक्त्वसे कमकी आयु-स्थिति नहीं बाँधते है, क्योंकि महाबन्धमें जघन्य-स्थितिबन्धके कालविभागमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण वर्ष पृथक्त्वमात्र प्ररूपित किया गया है। **सोधम्मीसाणे आयु० जह० ट्ठिदि० अंतो०, अंतोमु० आबा०। सणक्कुमारमाहिंदे मुहुत्त पुधत्तं, बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठ० दिवसपुधत्तं। सुक्क-महासुक्क-सदारसहस्सार-कप्प० पक्खपुधत्तं, आणद-पाणद-आरणच्चुद० मासपुधत्तं, उवरि सव्वाणं वासपुधत्तं। सव्वत्थ अंतो० आबा०॥ आभिणि० सुद ओधि-खवगपगदीणं ओघ। मणुसायु० जह० ट्ठिदि० वास-पुध०, अंतो०, आबा०।** महाबन्ध ताम्रपत्रप्रति स्थिति बन्धाधिकार पृ० ७९, ८०। अतः

३५. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णत्थि अंत०। सादासाद-सत्तणोक० तिरिक्खगदि-पंचजादि० छसंठा० ओरालिय० अंगोवं०-छसंघ० तिरिक्खाणु० परघादुस्सासं आदावुज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगलं णीचा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि सादिरे०। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादि०। मणुसगदि-मणुसाणु०उच्चागो० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। बादरेसु अंगुलस्स असंखे०। बादरपज्जत्ते० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुमे असंखेज्जा लोगा। सुहुम पज्जत्ते जह० एग०,

---

आनत-प्राणत कल्पवासी (आणद-पाणद-मिच्छाइट्ठिस्स) मिथ्यादृष्टि देवके मासपृथक्त्वमात्र मनुष्यायु बाँधकर फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हो मास पृथक्त्व जीवित रहकर पुन. अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुवाले संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचसम्मूर्छन पर्याप्त जीवोमे उत्पन्न होकर सयमासंयम ग्रहण करके आनतादि कल्पोंकी आयु बाँधकर वहाँ उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त मास-पृथक्त्व प्रमाण जघन्य अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

नवग्रैवेयक विमानवासियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं** ॥२६॥" अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन रूप है। अनुदिशादि अपराजित पर्यन्त विमानवासियोका जघन्य अन्तर '**जहण्णेव वासपुधत्तं**' ॥ ३१ ॥ कहा है। "**उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि**" ॥३२॥ उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम है। इस विषयमे धवलाटीकामें इस प्रकार खुलासा किया गया है — अनुदिशादि देवके पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योमें उत्पन्न होकर एक पूर्व कोटि तक जीकर सौधर्म-ईशान स्वर्गको जाकर वहाँ अढाई सागरोपमकाल व्यतीत कर पुन पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर सयमको ग्रहण कर अपने-अपने विमानमे उत्पन्न होनेपर उनका अन्तरकाल साधिक दो सागरोपम प्रमाण प्राप्त होता है। (पृष्ठ १६७)

सर्वार्थसिद्धिसे चयकर एक ही भवमे मुक्ति होती है, अतः वहाँ अन्तरका अभाव सूचक यह सूत्र कहा है—"**सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवाणमंतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अन्तर णिरतर**" ॥३४॥ खु० पृ० १९७॥

३५ एकेन्द्रियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, तिर्यंचगति, पच जाति, ६ सस्थान, औदारिक शरीरागोपांग, ६ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दसयुगल और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष कुछ अधिक अन्तर है। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक ७ हजार वर्ष है। मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट असख्यात लोक है। बादरोंमे अगुलका असख्यातवाँ भाग अन्तर है। बादर पर्याप्तकमे सख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्ममें असख्यात लोक है। सूक्ष्मपर्याप्तकमे जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

उक्क० अंतो० । एवं पुढ० आउ० वणप्फदिका०-बादरवणप्फदि-पत्तेय-णियोदाणं च अप्पप्पणो-योगेहि० । णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि, सत्त वस्ससहस्साणि, दस वस्ससहस्साणि सादि० । णियोदाणं अंतो० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्त वस्ससहस्साणि, बे वस्ससहस्साणि तिण्णि वस्ससहस्साणि सादि० । णियोदाणं जहण्णु० अंतो० । तेउ० वाउ० एइंदियभंगो । णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्जं । तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो कादव्वो । तिरिक्खायुगं जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि रादिंदियाणि, तिण्णि वस्ससह-

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, बादर वनस्पति, प्रत्येक तथा निगोद जीवोंका अपने-अपने योग्य अन्तर जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यगति-त्रिकमें साताके समान भंग जानना चाहिए। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट साधिक बाईस हजार वर्ष, साधिक सात हजारवर्ष, साधिक दस हजार वर्ष तथा निगोदियोंमे अन्तर्मुहूर्त अन्तर है।

विशेष—खर पृथ्वीकायिकोंमे बाईस हजार, अप्कायिकोंमे सात हजार, वनस्पतिकायिकोंमे दस हजार और निगोदिया जीवोंकी अन्तर्मुहूर्त आयुको[1] लक्ष्यमे रखकर तिर्यंचायुका अन्तर कहा गया है।

मनुष्यायुका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो हजार वर्ष और साधिक तीन हजार वर्ष है। निगोदियोंका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तेजकाय, वायुकायमें एकेन्द्रियके समान अन्तर जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ मनुष्यगतिचतुष्कको नहीं ग्रहण करना चाहिए। यहाँ तिर्यंचगतित्रिकका ध्रुव भंग जानना चाहिए। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तीन रात्रि-दिन और साधिक तीन हजार वर्ष अन्तर है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे एकेन्द्रियोंका अन्तर '**जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं**'—जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल प्रमाण है। "**उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि**" (सूत्र ३७, टीका पृ० १९८) उत्कृष्टसे पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर है। इसपर धवला टीकामे इस प्रकार प्रकाश डाला गया है : एकेन्द्रिय जीवोंमे से निकलकर केवल त्रसकायिक जीवोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपममात्र स्थितिसे ऊपर त्रसकायिकोंमे रहनेका अभाव है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस कालके व्यतीत होनेपर जीवको एकेन्द्रिय पर्याय धारण करनी पड़ेगी। एकेन्द्रिय पर्यायसे निकलकर यह जीव पुनः त्रसपर्यायको प्राप्त कर सकता है, किन्तु एकेन्द्रिय पर्यायमें पहुँचनेके पश्चात् त्रसपर्यायको प्राप्त करना शास्त्रकारोंने अत्यन्त कठिन बताया है। यदि जीवका संसार परिभ्रमण निकट आ चुका है, तो वह क्षुद्रभवग्रहण कालके पश्चात् पुनः त्रसपर्यायको प्राप्त कर सकता है। द्वीन्द्रियादिके जघन्य

१ "तत्र पृथ्वीकायिका द्विविधा, शुद्धपृथ्वीकायिका खरपृथ्वीकायिकाश्चेति। तत्र शुद्धपृथ्वीकायिकानामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षसहस्राणि। खरपृथ्वीकायिकानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि। वनस्पतिकायिकानां दशवर्षसहस्राणि। अप्कायिकानां सप्तसहस्राणि, वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि। तेजःकायिकानां त्रीणि रात्रिंदिवानि।" – त० रा० पृ० १४६।

स्साणि सादिरेयाणि। विगलिंदियेसु एइंदियभंगो। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बारसवस्ससहस्साणि (बारसवस्साणि) एगूणवण्णं रादिंदियाणि छम्मासाणि सादिरे०। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० चत्तारि वस्साणि देसू०, सोलस रादिं० सादिरे०, बे मासाणि देसू०।

३६. पंचिंदिय-तस-तेसिं चेव पज्जत्ता० पंचणा० छदंसणा० सादासा० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दापचलाणं जहण्णु० अंतो०। थीणगिद्धि३ मिच्छ० अणंताणु०४

उत्कृष्ट अन्तरको इन सूत्रों-द्वारा कहा गया है—"**बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतर केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं** ॥ ४४, ४५, ४६ ॥" द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक अन्तर होता है, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है। इस सम्बन्धमें वीरसेन स्वामीका कथन है कि विवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमें-से निकलकर अविवक्षित एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गल परिवर्तनरूप भ्रमण करनेसे कोई विरोध नहीं आता (खु० ब० पृ० २०१-२०२)।

विकलत्रयमें एकेन्द्रियके समान अन्तर है। यहाँ इतना विशेष है कि मनुष्यगतित्रिकका साताके समान भंग है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक बारह वर्ष, साधिक उनचास रात्रि-दिन, साधिक छह मास अन्तर है[1]। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन चार वर्ष, कुछ अधिक सोलह रात्रि-दिन तथा कुछ कम दो माह अन्तर है।

३६ पंचेन्द्रिय, त्रसकाय तथा उनके पर्याप्तकोंमें[2]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता वेदनीय, ४ सञ्ज्वलन, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा, प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

१ "द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षा, त्रीन्द्रियाणा एकान्नपञ्चाशद्रात्रिदिवानि, चतुरिन्द्रियाणां षण्मासा।"—त० रा० पृ० १४६।

२ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतर केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं। असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतर केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं।"—षट्खं० अंतरा० सूत्र ११४-१२१।

इत्थिवे० अंतो० । इत्थि० [जह०] एगस० उक्क० बे छावट्ठिसागरो० सादिरे० देसू० । अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क०बे छावट्ठि० सादिरे०, तिण्णि पलिदोव० देसू० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपु० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसहस्साणि० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भदियाणि । पज्जत्ते सागरोपमसदपु० । तसेसु–तिण्णि-आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० बेसागरोवमसह पुव्वकोडिपु० । पज्जत्ते बेसागरोपम० देसू० । णिरयगदि चदुजादि-णिरयाणुपुव्वि-आदाव-थावरादि०४ जह० एग० उक्क० पंचासीदि-सागरोपमसदं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खग०पाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं । मणुस० मणुसाणु० उच्चा० देवगदि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे० । ओरालि० ओरालि० अंगो वज्जरिसभसंघ० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । आहारदुग० जह०अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० ।

बन्धी ४ और स्त्रीवेदका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । विशेष—स्त्रीवेदका [जघन्य] एक समय है तथा इन सबका साधिक दो छ्यासठ सागरमे किंचित् न्यून उत्कृष्ट अन्तर है । आठ कषाय का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छ्यासठ सागर कुछ कम तीन पल्य प्रमाण है । तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है । मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सहस्रसागरोपम पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक है । पर्याप्तकोमे सागर शतपृथक्त्व है । त्रसोंमे—तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शतपृथक्त्व अन्तर है । मनुष्यायुका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टसे दो हजार सागरोपम पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक है । पर्याप्तकोमे दो हजार सागरोपममे कुछ कम अन्तर है ।[1] नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एकसौ पचासी सागरोपम है । तिर्यंच-गति, तिर्यंचानुपूर्वी और उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एकसौ त्रेसठ सागरोपम है । मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, देवगतिचतुष्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य अन्तर है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अपनी स्थिति प्रमाण अन्तर है ।

---

(१) "तसकाइय तसकाइयपज्जत्तएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडि-पुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि, असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे सागरोवम-सहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ।"—षट्खं० अंतरा० सूत्र १३६–१४५ ।

३७. पंचमण० पंचवचि०–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० चदुआयु० तेजाकम्म० आहारदुग० वण्ण०४ अगु० उपघा०-णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगीसु–पंचणा० छदंसणा०

३७ पॉच मनोयोग, पॉच वचनयोगमे – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोका अन्तर नहीं है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मनोयोगी वचनयोगी जीवोके योगोके अन्तरपर खुद्दाबन्धमे यह कथन पाया जाता है, "**जोगाणुवादेण पंचमणजोगि–पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" – सूत्र ५९-६०। योगमार्गणाके अनुसार पॉच मनोयोगी, पॉच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। महाबन्धमे जो ज्ञानावरणादि अन्तराय पर्यन्त प्रकृतियोके सिवाय शेष प्रकृतियोका अन्तर उक्त योगोंमे "**जह० एग०**"–जघन्यसे एक समय कहा है। उसका भाव यह है कि उक्त योगोमे बँधनेवाली प्रकृतियोके बन्धका विरहकाल कमसे कम एक समय जानना चाहिए। क्षुद्रकबन्धमे सामान्य अपेक्षासे योगका अन्तर बताया है। एक योगसे अन्य योगको प्राप्त करनेके पश्चात् पुनः पूर्वयोगको प्राप्त करनेमे मध्यवर्ती काल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त होगा। धवलाटीकामे यह शका-समाधान आया है।

शंका – इन पॉच मनोयोगी और पॉच वचनयोगी जीवोका एक योगसे दूसरेमें जाकर पुनः उसी योगमे लौटनेपर एक समय प्रमाण अन्तर क्यो नही पाया जाता?

समाधान – नही पाया जाता, क्योंकि जब एक मनोयोग या वचनयोगका विघात हो जाता है या विवक्षित योगवाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक समयके अन्तरसे पुन अनन्तर समयमे उसी मनयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नही हो सकती।

उक्त योगोंका उत्कृष्ट अन्तरका काल असख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है। सूत्रकार भूतबलि स्वामी कहते है, "**उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्ज-पोग्गल परियट्टं**" (६१ सूत्र)। इसका स्पष्टीकरण धवला टीकामे इस प्रकार किया गया है – मनयोगसे वचन योगमे जाकर वहॉ अधिक काल तक रहकर पुन काययोगमे जाकर और वहॉ भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होकर आवलीके असख्यातवे भागप्रमाण पुद्गल परिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः मनयोगमे आये हुए जीवके उक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। शेष चार मनयोगी पॉच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिए, क्योकि इस अपेक्षासे उनमे कोई विशेषता नहीं है। (पृ० २०६ खु० बं०)

इस प्रकरणमे खुद्दाबधका यह कथन ध्यान देने योग्य है – "**कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त**" सूत्र ६२, ६३, ६४। काययोगी

१ "जोगाणुवादेण—पचमणजोगि--पचवचिजोगीसु, कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठि--सजदासजद—पमत्त- अप्पमत्तसजद- सजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणेगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर। सासणसम्मादिट्ठि- सम्मामिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि? एगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर। चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि? एगजीव पडुच्च णत्थि अतर णिरतर। चदुण्ह खवगोणमोघ।"—षट्खं० अतरा० सूत्र १०३, १५६–१५६।

साद्दासाद० चदुसंज० णवणोक० तिण्णिग०-पंचजादि-चदुसरी०-छसंठा०-दो अंगो०-छसंघ० वण्ण०४ तिण्णि-आणु० अगु०४ आदावुज्जो०-दोविहा० तसादि-दस-युगल-णिमिणं तित्थय० णीचा० पंचत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० बारसक० दोआयु० आहारदु० णत्थि अंत०। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि सादिरे०। मणुसा० ओघं०। मणुसगदितिगं ओघं। ओरालिय०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० दो आयु० आहारदुगं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। दो आयु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्सा० सादि०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। ओरालिमि०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदुगुं० देवगदि०४ ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ० पंचंत० णत्थि अंत०। दो आयु० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेउव्वियकायजो०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोल० भयदुगुं० ओरालिय० तेजा० वण्ण०४ अगुरु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं

जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। इसपर वीरसेन स्वामीने इस प्रकार प्रकाश डाला है, कााययोगसे मनयोग और वचनयोगमे क्रमशः जाकर और उन दोनों ही योगोमे उनके सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः काययोगमे आये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।" जघन्य अन्तरके विषयमें धवलाटीकामे लिखा है, "काययोगसे मनयोगमे या वचनयोगमे जाकर एक समय रहकर दूसरे समयमें मरण करने या योगके व्याघातित होनेपर पुनः काययोगको प्राप्त हुए जीवके एक समयका जघन्य अन्तर पाया जाता है।

काययोगियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता, ४ संज्वलन, ९ नोकषाय, ३ गति, ५ जाति, ४ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपांग, ६ सहनन, वर्ण ४, ३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि १० युगल, निर्माण, तीर्थंकर, नीचगोत्र और पॉच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, देव – नरकायु और आहारद्विकका अन्तर नही है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक बाईस हजार वर्ष है। मनुष्यायुका ओघके समान है। मनुष्यगतित्रिकका भी ओघके समान है।

औदारिक काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, देव–नरकायु, आहार द्विक, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोका अन्तर नहीं है। दो आयुका जघन्य अन्तमुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है।

औदारिकमिश्र काययोगमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति चार, औदारिक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नही है। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुको जघन्य

चेव वेउव्वियमि०। णवरि दो आयु० णत्थि। आहार० आहारमिस्स०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० तेजाक० देवायु० देवगदि० पचिंदि० वेउव्वि० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिणं तित्थयर० उच्चा० पंचंत० णत्थि अंत०। सादासा०-चदुणोक०-

---

तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

औदारिक तथा औदारिक काययोगी जीवोंका अन्तर खुद्दाबन्धमे "**जहण्णेण एकसमओ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि**" (६५, ६६, ६७ सूत्र) जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण है। धवला टीकामें कहा है–

शंका – औदारिकमिश्र काययोगी तो अपर्याप्त अवस्थामे होता है, जब कि जीवके मनयोग और वचनयोग होता ही नहीं है, अत औदारिक मिश्र काययोगका एक समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है?

समाधान—नहीं, हो सकता है। औदारिक मिश्र काययोगसे एक विग्रह करके कार्माण काययोगमें एक समय रहकर दूसरे समयमे औदारिकमिश्रमे आये हुए जीवके औदारिक-मिश्र काययोगका एक समय अन्तर प्राप्त हो जाता है। औदारिक काययोगका उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार जानना चाहिए, औदारिक काययोगसे चार मनयोगों व चार वचनयोगोंमें परिणमित हो मरण कर तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर वहाँ अपनी स्थितिप्रमाण रहकर, पुनः दो विग्रह कर मनुष्यमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोग-सहित दीर्घकाल रहकर पुनः औदारिक काययोगमे आये हुए जीवके नौ अन्तर्मुहूर्तों व दो समयोंसे अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण औदारिक काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।

औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम होता है, क्योंकि नारकी जीवोंमें-से निकलकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोगको प्रारम्भ कर कमसे कम कालमे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर औदारिक काययोगके द्वारा औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर कर कुछ कम पूर्व कोटिकाल व्यतीत करके तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमे उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्र काययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। (धवला टीका खु० बं० पृ० २०८)

वैक्रियिक काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगका समझना चाहिए। विशेष, यहाँ मनुष्य-तिर्यंचायु नहीं है। आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमे[1] – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि

---

१ आहारककायजोगि-आहारकमिस्सकायजोगीणमंतर केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ट देसूण ७४, ७५, ७६ सूत्र खु० बं० पृ० २१०।

थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अंतो० । कम्मइ० का०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० तिण्णिवे०-भयदु० तिण्णि ग०-पंचजा०-चदुसरी०-छसंठा०-दोअंगो०-छसंघ०-वण्ण०४ तिण्णि आणु०-अगुरु०४ दोविहा०-तसथावरादिचदुयुगल-सुभादि-तिण्णियुग०-णिमि०-तित्थय० णीचुच्चा०-पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा० चदुणोक० आदावुज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ० जस० अज्जस० जहण्णु० एगस० ।

३८. इत्थिवे०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उपघा०-णिमि० तित्थय० पंचंत० णत्थि० अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०, उक्क०पणवण्णं पलिदो० देसू० । सादासा० पंचणोक०

तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। कार्माण काययोगियोंमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ३ वेद, भय, जुगुप्सा, [1] ३ गति (नरकगति छोडकर), ५ जाति, ४ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपांग, ६ सहनन, वर्ण ४, ३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, दो विहायोगति, त्रसस्थावरादि ४ युगल, शुभादि ३ युगल, निर्माण, तीर्थंकर, नीच-उच्च गोत्र और पॉच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, आताप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति, अयश.कीर्तिका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—कार्माणकाययोगका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टसे तीन समय प्रमाण है। तीन समयके बीचमे अन्तरका काल एक समयसे अधिक अथवा न्यून न होगा। एक समय बन्धका होगा, एक समय अबन्धका और एक समय पुनः बन्धका। इस कारण जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण कहा है।

विशेषार्थ—खुद्दा बन्धमे कार्माणकाययोगियोंके विषयमे ये सूत्र हैं —**कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ** (७७, ७८, ७९,) कार्माणकाययोगी जीवोंका कितने काल अन्तर होता है? जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल अन्तर है, उत्कृष्टसे अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल होता है। इस सबन्धमें धवलाटीकाकारने इस प्रकार खुलासा किया है—तीन विग्रह करके क्षुद्रभव धारण करनेवाले जीवोंमे उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके निकलनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र कार्माण काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।

कार्माण काययोगसे औदारिक मिश्र अथवा वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जाकर असख्यातासख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अगुलके असख्यातवे भाग मात्र काल तक रहकर पुनः विग्रहगतिको प्राप्त हुए जीवके कार्माण काययोगका सूत्रोक्त अन्तर काल पाया जाता है। (खु० भा० २ पृ० २१२ २१३)

३८ स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य है।

१ गो० क० गा० ११६, ११९ ।

पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ थिरादितिण्णियु० सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। इत्थि० णवुंस० तिरिक्खग० एइंदिय० पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदाबुज्जो० अप्पसत्थवि० थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। णिरयायुजह० अंतो०। उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। तिरिक्खायु-मणुसायु जह० अंतो०। उक्क० पलिदोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०। उक्क० अट्ठावण्णं पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। दोगदि० तिण्णि जा० वेउव्वि० वेउव्वियअंगो० दोआणुपु० सुहुम-अपज्जत्त० साधार०जह०एग० उक्क०

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी जीव ५५ पल्योपमवाली देवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें आगामी भवकी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया। इस प्रकार कुछ कम ५५ पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अन्तर जानना चाहिए। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ६५)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि अन्तर है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतिकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर भाव-स्त्रीवेदी किन्तु द्रव्य पुरुष हुआ। एक कोटिपूर्वकी आयु प्राप्त की। गर्भसे लेकर आठ वर्ष बीतनेपर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके साथ-साथ सकलसंयमको भी प्राप्त किया। पश्चात् संक्लेशवश गिरकर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरणरूप ८ कषायका बन्ध करके मरण किया। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायोंके बन्धकका अन्तर कुछ कम एक कोटिपूर्व कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंच गति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य प्रमाण है। नरकायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम कोटिपूर्वका त्रिभाग है। तिर्यंचायु, मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशतपृथक्त्व है।

विशेषार्थ—कोई २८ मोहकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्त्रीवेदी था। मरणकर देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वी हुआ (४) पश्चात् मिथ्यात्वी हो गया। तिर्यंच आयु अथवा मनुष्यायुका बन्ध कर मरण किया और पल्यशत पृथक्त्व कालप्रमाण परिभ्रमण कर तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर सम्यक्त्वसहित हो मरण किया। इस प्रकार असंयत सम्यक्दृष्टि स्त्रीवेदी जीवकी अपेक्षा पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर होता है। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ९६)

देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ५८ पल्योपम पूर्वकोटि पृथक्त्व है। दो गति, तीन जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका

पणवण्ण पलिदो० सादिरे० । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ-संघ० मणुसाणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवमसदपु० । पुरिस०-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ अट्ठक० । इत्थिवे० ओघं । णिद्दापयला ओघं । सादासा० सत्तणो० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर० अणादे०णीचा० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि-सादि० तिण्णि पलिदो०देसू० । णिरयायु० इत्थिवेदभंगो । दोआयु० जह० अंतो०, उक्क०सागरोपमसदपु० । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणुपु०-आदावुज्जो०-थावरादि०४ जह० एगस० उक्क० तेवट्ठिसाग० सदं० । एवं तिरिक्खगदिदुगं । मणुसगदिपचगं जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । देवगदि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपु० । णपुंस०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणं-

---

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक ५५ पल्य अन्तर है । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज्र-वृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर है ।

पुरुषवेदमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायोंका अन्तर नही है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, ८ कषाय, स्त्रीवेदका ओघके समान जानना चाहिए । निद्रा, प्रचलाका भी ओघके समान है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कर्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । नपुसकवेद, ५ सस्थान, ५ सहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर प्रमाण अन्तर है। नरकायुका स्त्रीवेदके समान जानना। मनुष्य, तिर्यंचआयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शत-पृथक्त्व अन्तर है । देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६३ सागरोपम अन्तर है । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिपचकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है । देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व अन्तर है ।

नपुसकवेदमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंमें अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक,

ताणु०४ इत्थि णपुंसक० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग० दुस्सरअणादे० णीचा० जह० अंतो०, एगस०। उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सादासादा० पंचणो० पचिंदि० समचदु० परघादु०-पसत्थ० तस०४ थिरादि-दोण्णियु०-सुभ०-सुस्सर-आदे० जह० एग०, उक्क० अंतोमु०। अट्ठक० दोआयु० वेउव्वि० छक्क० मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। चदुजा० आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे०। ओरालिय० ओरालि०अंगो० वज्जरिसभ० जह० एक०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। तित्थय० जहण्णु० अंतो०। अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगि० उच्चा० पंचंत० जहण्णु०

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुसकवेद, तीर्यंचगति, ५ सस्थान, ५ सहनन, तीर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त अथवा एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।[1]

विशेषार्थ–मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वयुक्त हो, सातवे नरकमे उत्पन्न हुआ। छहो पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त किया। आयुके अन्तमे मिथ्यात्वको पुन प्राप्त करके (४) आयुको बाँध (५) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम नपुसकवेदी मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर रहा। (पृ० १०७) यही अन्तर मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोका होगा।

साता असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त हे। ८ कषाय, २ आयु, वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिक, आहारकद्विकका ओघवत् जानना चाहिए। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है। जाति ४, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। तीर्थंकरका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—खुद्दाबंधमे स्त्रीवेदीका जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-ग्रहणकाल "**जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण**" (सूत्र ८१) कहा है। उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं**" (८२) असख्यातपुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल कहा है।

पुरुषवेदीका जघन्य अन्तर एक समय "**जहण्णेण एगसमओ**" (८४) कहा है। इसका खुलासा वीरसेन स्वामीने इस प्रकार किया है पुरुषवेदसहित उपशम श्रेणीको चढकर अपगतवेदी हो एक समय तक पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमे मरणकर पुरुषवेदी जीवोंमे उत्पन्न होनेवाले जीव पुरुषवेदका अन्तर एक समय मात्र पाया जाता है। (खु०

१ "णउसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि।" —षट् ख० अतरा० २०७-९।

अंतो० । सादावे० णत्थि अंत० ।

३९. कोध०-पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० सोलस० चदुआयु० आहारदुग० पंचंत० णत्थि अंत० । णिद्दा-पचला० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क०

ब० टीका पृ० २१४) इनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल है, "**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं**" (सूत्र २३)

नपुंसक वेदीका जघन्य अन्तर "**जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" (८७) अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान—क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुवाले अपर्याप्तक जीवोंमें नपुंसकवेदको छोड़कर स्त्री व पुरुषवेद नहीं पाया जाता और पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तके सिवाय क्षुद्रभवग्रहण काल नहीं पाया जाता ।

नपुंसकवेदीका उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं**" (८८) सागरोपमशत पृथक्त्व है । क्योंकि नपुंसकवेदसे निकलकर स्त्री और पुरुष वेदोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके सागरोपम शत-पृथक्त्वसे ऊपर वहाँ रहना संभव नहीं है । पृ० २१५ ।

[1]अपगत वेदमें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । साता वेदनीयका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—अपगतवेदीके "**उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं**" (९०) उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसका स्पष्टीकरण धवलाटीकामें इस प्रकार है, उपशम श्रेणीसे उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र सवेदी होकर अपगत-वेदित्वका अन्तर कर पुनः उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगत वेदभावको प्राप्त होनेवाले जीवके अपगतवेदित्वका अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है । उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवों-का उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, "**उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं**" (९१) । इसका स्पष्टीकरण वीरसेन आचार्यने इस-प्रकार किया है : किसी अनादि मिथ्या दृष्टि जीवने तीनों करण करके अर्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमें सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर उपशम श्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो गया । वहाँसे फिर नीचे उतरकर सवेदी हो अपगतवेदका अन्तर प्रारम्भ किया और उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण भ्रमण कर पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर उपशमश्रेणी-को चढ़कर अपगतवेदी हो अन्तरको समाप्त किया । पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपकश्रेणीको चढ़कर अबन्धक भावको प्राप्त किया । ऐसे जीवके अपगतवेदित्वका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अन्तर-काल प्राप्त हो जाता है ।

३९ क्रोधमें-५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—निद्रा, प्रचलाका बन्ध अपूर्वकरणके प्रथमभागपर्यन्त होता है । इन प्रकृतियोंका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण करके, उपशान्तकषाय पर्यन्त चढ़कर तथा

---

१ "अवगदवेदेसु अणियट्टि-उवसम-सुहुम उवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।" —षट्खं० अंतरा० २१४-२१७ ।

अंतो० । माणे-तिण्णि संजलणा० णत्थि अंत० । मायाए दोण्णि संज० णत्थि अंत० । सेसाणं कोधभंगो । लोभे-पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० बारसक० चदुआयु० आहारदु० पंचंत० णत्थि अंत० । सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो० । णवरि णिद्दापचला जहण्णु० अंतो० । अकसाई-साद० णत्थि अंत० । केवलणा०-यथाक्खाद० केवलदंस० एवं चेव ।

४०. मदि० सुद०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा० छण्णोक० पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णपुंस० ओरालियस० पंचसंठा० ओरालिय० अंगो० छसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोप० दे० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं असंखे० । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०, उक्क०

उतरते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागमे पुनः बन्ध प्रारम्भ कर देता है। इस कारण इनका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है।

मानमे-३ संज्वलनका अन्तर नही है। मायामे-दो संज्वलनका अन्तर नही है। शेष प्रकृतियोमे क्रोधके समान भग जानना चाहिए। लोभकषायमे-५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नही है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष-निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अकषायीमे-सातावेदनीयका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—सातावेदनीयका अप्रमत्तसे लेकर सयोगीकेवली पर्यन्त निरन्तर बन्ध होता है। इस कारण उपशान्तकषाय या क्षीणकषायमे साताका अन्तर नहीं बताया है।

केवलज्ञान, यथाख्यात सयम, केवलदर्शनका अकषायकी तरह वर्णन जानना चाहिए।

४० मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोका अन्तर नही है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्त कषायादि गुणस्थानमे होगे। इन कुज्ञानयुगलमे आदिके दो गुणस्थान ही पाये जाते है। इससे ज्ञानावरणादिका अन्तर नहीं कहा।

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। नपुसकवेद, औदारिक शरीर, ५ सस्थान, औरादिक अगोपांग, ६ सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। तीन आयु अर्थात् देव, नर, नरक आयुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गल परावर्तन है। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व अन्तर है। वैक्रियिक षट्कका जघन्य एक

अणंतकालं असखे०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० एकतीसं सादि०। मणुसगदितिग ओघं। चदुजादि० आदाव-थावरादि०४ जह० एगस०, उक्क० एकतीसं सादि०। एवं अब्भवसिद्धियमिच्छादिट्ठि०। विभंगे- पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० णिरय० देवायु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उपघा० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत०। दोआयु० देवोओघं। सेसाणं० जह० एग०, उक्क० अंतो। आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० सादासा० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचतु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि०

समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असख्यात पुद्गल परावर्तन है। तिर्यँच गति, तिर्यँचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। मनुष्यगतित्रिकमे ओघकी तरह जानना चाहिए। ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। अभव्यसिद्धिकमिथ्यादृष्टिका भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी जीवोका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसका स्पष्टीकरण धवला टीकामे इस प्रकार किया गया है : "मति अज्ञान तथा श्रुताज्ञानसे सम्यक्त्व ग्रहण कर मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमे आकर कमसे कम कालका अन्तर देकर पुन मति अज्ञान, श्रुताज्ञान भावमे गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

उक्त अज्ञानी जीवोका उत्कृष्ट अन्तर "**उक्कस्सेण बेछावट्ठि सागरोपमाणि**' (९९) दो छयासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपमकाल है। इसपर वीरसेन स्वामीने इस प्रकार प्रकाश डाला है किसी कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवके सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपमकाल प्रमाण सम्यक्ज्ञानोका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व-मिथ्यात्वको जाकर मिश्रज्ञानोका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपम-प्रमाण परिभ्रमण कर मिथ्यात्वको जानेसे दो छयासठ सागरोपम प्रमाण मतिश्रुत अज्ञानोका अन्तरकाल पाया जाता है।

शंका—दो छयासठ सागरोपमोमे जो कुछ कम काल बतलाया है उसका क्या हेतु है?

समाधान—इसका कारण यह है कि उपशम सम्यक्त्व कालसे दो छयासठ सागरोपमोंके भीतर मिथ्यात्वका अधिक काल पाया जाता है (जीवट्ठाण अतराणुगम सूत्र ४ की टीका)। सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानको मतिश्रुत अज्ञान रूप मानकर कितने ही आचार्य उपर्युक्त अन्तर-प्ररूपणामे सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर नहीं दिखाते, पर यह बात घटित नही होती, क्योकि सम्यग्मिथ्यात्वभावके अधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्वके समान एक अन्य जातिका बन जाता है अत उस ज्ञानको कुमति कुश्रुत रूप माननेमे विरोध आता है।

विभगावधिमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरक, देवायु, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। दो आयुका देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसस्थान,

तस०४ थिरादि-दोण्णियुग० सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि०तित्थय०उच्चा०पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। दोआयु० देवग०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। मणुसगदिपंचगं जह० वासपुध०, उक्क० पुव्वकोडि०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसा० सादिरे०। एवं ओधिदं० सम्मादिट्ठित्ति।

मणपज्जवणा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि-पंचिंदि० चदुसरीर० समचदु० दोअंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० जहण्णु० अंतो०। सादासा०-चदुणोक० थिरादितिण्णियु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०।

वर्ण ४, अगुरुलघु४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादि प्रकृतियोका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्तकषाय गुणस्थानमे पहुँचा, तब इन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बन्ध रुक गया। बादमे जैसे ही वह जीव नीचे गिरा कि इनका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। इस दृष्टिसे इन ज्ञानोमे बन्धका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है।

आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है।

विशेषार्थ—एक मनुष्यने अविरत दशामे अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका बन्ध किया। आठ वर्षकी अवस्थाके अनन्तर सम्यक्त्व तथा महाव्रतको एक साथ धारण कर एक पूर्व कोटिसे अवशिष्ट बची आयु प्रमाण महाव्रती रह मरणकालमे असयमी बन पुनः ८ कषायोका बन्ध किया। इस प्रकार देशोन पूर्व कोटि अन्तर होता है।

दो आयु, देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ३३ सागर है। मनुष्य गतिपचकका जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर हे। अवधिदर्शन तथा सम्यक्त्वमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

मनःपर्ययज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो अंगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—कोई मनःपर्ययज्ञानी उपशमश्रेणी चढकर उपशान्तकषाय गुणस्थानमे पहुँचा, तब अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका अबन्ध हो गया। पश्चात् वह सूक्ष्म-साम्परायादि गुणस्थानोंमे उतरा, तो पुनः उन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार यहाँ अन्तर जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है।

साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अन्तर है।

४१. एवं संजद० । एवं चेव सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजदा० । णवरि धुविगाणं णत्थि अंत० । सुहुमसंप० सव्वपगदीणं णत्थि अंत० । असंजदे धुविगाणं णत्थि अंत० । थीण०३ मिच्छ० अणंताणु०४ इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थ० उज्जो० दूभग-दुस्स०-अणादे० णीचागो० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं० देसू० णवरि थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो० । चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च ओघं । एइंदिय-दंडओ तित्थयरं च णपुंसकवेदभंगो । चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं ।

विशेषार्थ—कोई एक कोटिपूर्वकी आयुवाला जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अन्तर्मुहूर्तमे बन्ध किया। इसके अनन्तर मरणकाल आनेपर पुनः आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग देवायुका अन्तर होगा।

विशेषार्थ—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्ययज्ञानवालोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। क्योंकि मति, श्रुत, और अवधिज्ञानी देव या नारकी जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त कर मति-अज्ञान, श्रुताज्ञान, व विभगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमे आनेपर उक्त ज्ञानोका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। यहाँ यह विशेपता है कि मनःपर्ययज्ञानी सयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त काल तक उस ज्ञानके बिना रहकर फिर उसी मनःपर्ययज्ञानमे लाया जाना चाहिए। (धवला-टीका खु० ब० पृ० २२०)

४१ सयममे भी इसी प्रकार है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा सयतासयतोंमे भी इस प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ ध्रुव प्रकृतियोमे अन्तर नही है। सूक्ष्मसाम्परायमे—सर्व प्रकृतियोका अन्तर नही है। असयतमें—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, तिर्यचगति, ५ संस्थान, ५ सहनन, तिर्यचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है।

विशेषार्थ—कोई मनुष्य या तिर्यंच मोहनीयकी २८ प्रकृतियोकी सत्तावाला मरणकर सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो वेदक-सम्यक्त्वी हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बन्ध रुका। इस प्रकारकी अवस्था आयुके अल्पकाल अवशेष रहने तक रही। पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुन तिर्यंच आयुका बन्ध कर (५) विश्राम ले (६) निकला। इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बन्ध नहीं होनेसे उतना अन्तर रहा। (ध० टी० अन्तरा० पृ० १३४)

विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिकका ओघवत् जानना चाहिए। एकेन्द्रिय दण्डक तथा तीर्थंकरका नपुसकवेदके समान भंग जानना चाहिए। चक्षुदर्शनमे—त्रस पर्याप्तकोंका भग जानना चाहिए। अचक्षुदर्शनमे—ओघवत् अन्तर जानना चाहिए।

४२. किण्णाए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ०-पंचंत० दो-आयु० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंसक० दोगदि० पंचसंठा० पंचसंघ० दोआणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्स० अणादे० णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं दे०। दोआयुगस्स णिरयभंगो। वेउव्विय० वेउव्विय०अंगो० जह० एग०, उक्क० बावीसं सा० (?)। सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो०।

४३. एवं णील-काऊणं[१]। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। वेउव्वि० वेउव्वि०-अंगो० जह० एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसागरो०।

खुद्दाबन्धमे चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तर "जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं" (सूत्र ११६) क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इसपर धवलाटीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते है, जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहण मात्र आयु स्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोमे अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल चक्षुदर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोमे चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है, उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहण मात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनीका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (१२० सूत्र) असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

अचक्षुदर्शनी जीवोके विषयमे 'णत्थि अंतरं णिरंतर' (सूत्र १२२) अन्तर नहीं है, वे निरन्तर होते है। अचक्षुदर्शनीका अन्तर केवलदर्शनी होनेपर हो सकता है, किन्तु केवलदर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनकी उत्पत्तिका अभाव है। क्षायिक दर्शनके होनेपर क्षायोपशमिक दर्शनका अभाव हो जाता है।

४२ कृष्णलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तराय तथा २ आयुका अन्तर नहीं है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है [उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर अन्तर है]। स्त्रीवेद, नपुसकवेद, २ गति, ५ सस्थान, ५ सहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है। दो आयुका नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अगोपागका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट २२ सागर जानना चाहिए। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४३ इसी प्रकार नील तथा कापोत लेश्यामे जानना चाहिए। विशेष, मनुष्यगतित्रिकमे सातावेदनीयके समान भग जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सत्रह सागर तथा सात सागर अन्तर है।

---

१ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय–णीललेस्सिय–काउलेस्सियाणमन्तर केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्मेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ तेउलस्सियं-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमतर केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ट ॥ ——खुद्दाबंध सूत्र १२५-१३०।

४१. एवं संजद० । एवं चेव सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजदा० । णवरि धुविगाणं णत्थि अंत० । सुहुमसंप० सव्वपगदीणं णत्थि अंत० । असंजदे धुविगाणं णत्थि अंत० । थीण०३ मिच्छ० अणंताणु०४ इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थ० उज्जो० दूभग-दुस्स०-अणादे० णीचागो० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं० देसू० णवरि थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो० । चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च ओघं । एइंदिय-दंडओ तित्थयरं च णपुंसकवेदभंगो । चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदं० ओघं ।

विशेषार्थ—कोई एक कोटिपूर्वकी आयुवाला जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अन्तर्मुहूर्तमे बन्ध किया। इसके अनन्तर मरणकाल आनेपर पुनः आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग देवायुका अन्तर होगा।

विशेषार्थ—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्ययज्ञानवालोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। क्योंकि मति, श्रुत, और अवधिज्ञानी देव या नारकी जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त कर मति-अज्ञान, श्रुताज्ञान, व विभगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमे आनेपर उक्त ज्ञानोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। यहाँ यह विशपता है कि मनःपर्ययज्ञानी सयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त काल तक उस ज्ञानके बिना रहकर फिर उसी मनःपर्ययज्ञानमे लाया जाना चाहिए। (धवलाटीका खु० ब० पृ० २२०)

४१ सयममे भी इसी प्रकार है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा सयतासंयतोमे भी इस प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ ध्रुव प्रकृतियोमे अन्तर नहीं है। सूक्ष्मसाम्परायमे—सर्व प्रकृतियोंका अन्तर नही है। असयतमें—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुसक वेद, तिर्यंचगति, ५ सस्थान, ५ सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है।

विशेषार्थ—कोई मनुष्य या तिर्यंच मोहनीयकी २८ प्रकृतियोकी सत्तावाला मरणकर सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न हुआ। छहो पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो वेदक-सम्यक्त्वी हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बन्ध रुका। इस प्रकारकी अवस्था आयुके अल्पकाल अवशेष रहने तक रही। पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुन तिर्यंच आयुका बन्ध कर (५) विश्राम ले (६) निकला। इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बन्ध नहीं होनेसे उतना अन्तर रहा। (ध० टी० अन्तरा० पृ० १३४)

विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिकका ओघवत् जानना चाहिए। एकेन्द्रिय दण्डक तथा तीर्थंकरका नपुसकवेदके समान भंग जानना चाहिए। चक्षुदर्शनमे—त्रस पर्याप्तकोका भग जानना चाहिए। अचक्षुदर्शनमे—ओघवत् अन्तर जानना चाहिए।

४२. किण्णाए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ०-पंचंत० दो-आयु० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंसक० दोगदि० पंचसंठा० पंचसंघ० दोआणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्स० अणादे० णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं दे०। दोआयुगस्स णिरयभंगो। वेउव्विय० वेउव्विय०अंगो० जह० एग०, उक्क० बावीसं सा० (?)। सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो०।

४३. एवं णील-काऊणं[1]। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। वेउव्वि० वेउव्वि०-अंगो० जह० एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसागरो०।

खुद्दाबन्धमे चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तर "जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं" (सूत्र ११९) क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इसपर धवलाटीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं, जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहण मात्र आयु स्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोमे अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल चक्षुदर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोंमे चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है, उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहण मात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनीका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (१२० सूत्र) असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

अचक्षुदर्शनी जीवोके विषयमे 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' (सूत्र १२२) अन्तर नहीं है, वे निरन्तर होते है। अचक्षुदर्शनीका अन्तर केवलदर्शनी होनेपर हो सकता है, किन्तु केवलदर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनकी उत्पत्तिका अभाव है। क्षायिक दर्शनके होनेपर क्षायोपशमिक दर्शनका अभाव हो जाता है।

४२ कृष्णलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तराय तथा २ आयुका अन्तर नही है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है [उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर अन्तर है]। स्त्रीवेद, नपुसकवेद, २ गति, ५ संस्थान, ५ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है। दो आयुका नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट २२ सागर जानना चाहिए। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४३ इसी प्रकार नील तथा कापोत लेश्यामे जानना चाहिए। विशेष, मनुष्यगतित्रिकमे सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सत्रह सागर तथा सात सागर अन्तर है।

---

[1] लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय–णीललेस्सिय–काउलेस्सियाणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ––खुद्दाबंध सूत्र १२५-१३०।

४४. तेउ०–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म० आहार०-अंगो० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० पंचसंठाण० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि०। सादासाद-पंचणोक० मणुस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय०-अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थ० तस० थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो। तिरिक्ख-मणुसायु० देवोघं। देवायुगं णत्थि अंतरं। देवगदि०४ जह० दसवस्ससह० अथवा पलिदो०-सादि०। उक्क० बेसागरो० सादि०।

४५. पम्माए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदिय० चदुसरी०-ओरालियअंगो० आहारस० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसं तेउभंगो। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। एइंदिय-आदाव-थावरं

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याके समान नील तथा कापोतलेश्यायुक्त दो जीवोंने वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अगोपांगका बन्ध करके मरण किया और क्रमशः पाँचवे तथा तीसरे नरकमे जन्म धारण किया। वहाँ सत्रह सागर तथा सात सागरपर्यन्त उक्त दोनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं हो सका। पश्चात् मरण कर वे मनुष्य हुए, जहाँ उन प्रकृतियोका पुनः बन्ध हो सका। इस प्रकार सत्रह तथा सात सागर प्रमाण अन्तर सिद्ध हुआ।

४४ तेजोलेश्यामे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, आहारक तैजस कार्माण शरीर, आहारक अगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंका अन्तर नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त [और उत्कृष्ट साधिक दो सागर] है।

विशेषार्थ—तेजोलेश्यावाले किसी मिथ्यात्वी जीवने सौधर्मद्विकमे उत्पन्न हो साधिक दो सागर प्रमाण स्थिति प्राप्त की। वहाँ छहों पर्याप्ति पूर्ण कर विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको ग्रहण कर आयुके अन्तमे मिथ्यात्वी हो मरण किया। उसकी अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व आदिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो सागर है। साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायु-मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवायुका अन्तर नहीं है। देवगति ४ का जघन्य दस हजार वर्ष अथवा साधिक पल्यप्रमाण है। उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है।

४५ पद्मलेश्यामे–५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, चार शरीर, औदारिक अंगोपांग, आहारकशरीर, अगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। शेषका तेजोलेश्या-

णत्थि। देवगदि०४ जह० बेसाग० सादि०, उक्क० अट्ठारस० सादिरे०।

४६. सुक्काए—पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिदि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा०-पंचंत० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला ओघं। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एगस०, उक्क० एक्कात्तीसं देसू०। अट्ठक० देवायु० मणुसग० ओरालिय० ओरालियअंगो० मणुसाणु० णत्थि अंतरं०। मणुसायु० देवोघं। देवगदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। आहारदुगं जहण्णु० अंतो०। भवसिद्धिया[1] ओघं।

के समान भग जानना चाहिए। विशेष यह है कि अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर ग्रहण करना चाहिए। यहाँ एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका बन्ध सौधर्मद्विक पर्यन्त होता है। वहाँ पीतलेश्या पायी जाती है। पद्मलेश्यामे इनका बन्ध नही है, अत अन्तर नही कहा है।

देवगति ४ का जघन्य अन्तर साधिक दो सागर तथा उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेषार्थ—पद्मलेश्यावाले देवोकी जघन्य स्थिति साधिक दो सागर है और उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। इनके देवगतिचतुष्कका बन्ध नही होगा। इस अपेक्षा उपरोक्त अन्तर कहा है।

४६ शुक्ललेश्यामे--५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, ४ सज्वलन, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वज्रवृषभ-सहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पच अन्तरायोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष-निद्रा-प्रचलाका ओघवत् जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। [उत्कृष्ट कुछ कम इकतीस सागर है।]

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाला द्रव्यलिगी जीव ३१ सागरोंकी स्थितिवाले अन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर, विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमे पुन मिथ्यात्वको प्राप्त कर मरण किया। इस प्रकार देशोन ३१ सागर प्रमाण मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर हुआ। इस अपेक्षा मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी आदिका अन्तर उतना ही कहा गया है।

स्त्रीवेद, नपुसकवेद, ५ सस्थान, ५ सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३१ सागर है। आठ कषाय, देवायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका अन्तर नही है। मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। भव्यसिद्धिकोंमे-ओघवत् जानना चाहिए।

१ भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर, णिरतरं ॥ --खुद्दाबध सूत्र १३१-१३२

कुदो ? भवियाणमभवियाण च अण्णोण्णसरूवेण परिणामाभावादो। —खुद्दाबंध टीका पृ० २३०।

४७. खइगसम्मादिट्ठि धुविगाणं अट्ठकसायाणं च ओधिभंगो। मणुसायु देवोघं। देवायु० जह० अंतो०[1], उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंत०। देवगदि०४ आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सादादीणं ओधिभंगो।

४८. वेदगे धुविगाणं तित्थयरस्स च णत्थि अंत०। अट्ठक० दोआयु० मणुसगदिपंचगं ओधिभंगो। देवगदि०४ जह० पलिदोप० सादि०, उक्क० तेत्तीसं सा०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणा, अथवा तेत्तीसं सादिरे०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

४९. उवसम०–पंचणा० चदुदंस० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०

४७ क्षायिकसम्यक्त्वमे–ध्रुव प्रकृति तथा आठ कषायोका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। मनुष्यायुका देवोके ओघ समान है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटिका त्रिभाग है।

विशेषार्थ—कोई क्षायिकसम्यक्त्वी जीव एक कोटिपूर्वकी आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर उसने आगामी देवायुका बन्ध किया और आयुके पूर्ण होनेके पूर्व पुनः उसी आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम एक कोटि पूर्वका त्रिभाग देवायुका अन्तर रहा।

मनुष्यगतिपंचकमे अन्तर नही है। देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। सातादि प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए।

४८ वेदकसम्यक्त्वमे ध्रुव प्रकृतियां तथा तीर्थंकर प्रकृतिका अन्तर नही है। आठ कषाय, (अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, दो आयु, मनुष्यगतिपंचकका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। देवगति ४ का जघन्य साधिक पल्य है तथा उत्कृष्ट १३ सागर है।

विशेषार्थ—किसी वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यने सुरचतुष्कका बन्ध करनेके अनन्तर मरण करके सौधर्मद्विक या सर्वार्थसिद्धिमे जन्म धारण किया। वहाँ सौधर्मद्विककी जघन्य आयु साधिक पल्यप्रमाण वेदकसम्यक्त्वी रहा और सुरचतुष्कका बन्ध नहीं हुआ। मरणके[2] बाद पुनः मनुष्य हो उनका बन्ध प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमे तेतीस सागरप्रमाण वेदकसम्यक्त्वयुक्त रहकर सुरचतुष्कका बन्ध नहीं किया। मरण करके मनुष्य हो सुरचतुष्कका बन्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त बन्धका अन्तर जानना चाहिए।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ कम ६६ सागर है। अथवा साधिक तेतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४९ उपशमसम्यक्त्वमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ संज्वलन, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४,

१ खइयसम्माइट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अन्तर, णिरतर।। –खु० बंध २, सू० २३२।
२ सौधर्मैशानयो सागरोपमेऽधिके अपरा पल्योपममधिकम्। –त० सूत्र, अ० ४

सुभ० सुस्स० आदे० णिमि० तित्थ० उच्चा० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिद्दा-प० अट्ठक० देवगदि०४ आहारदुग० जहण्णु० अंतो०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंतरं।[1]

५०. सासणे–पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तिण्णिआयु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

५१. सम्मामि०–दो वेदणी०-चदुणो० थिरादितिण्णियु० जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं णत्थि अंतरं।

५२. सण्णि–पंचिंदियपज्जत्तभंगो।[2] असण्णि–धुविगाणं णत्थि अंत०।[3]

प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पच अन्तरायोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—किसी उपशमसम्यक्त्वी जीवने उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्त-कषाय गुणस्थान प्राप्त किया, तब ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति हो गयी पुनः नीचे गिरनेपर उन प्रकृतियोका बन्ध प्रारम्भ हो गया। इस दृष्टिसे यहाँ अन्तर कहा है।

निद्रा-प्रचला, आठ कपाय, देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—निद्रादिका बन्धक कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशम श्रेणीमे चढा। वह जब अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तथा आगेके गुणस्थानोंमे चढा, तब निद्रादिका बन्ध होना रुक गया। पश्चात् नीचे उतरनेपर पुनः बन्ध आरम्भ हो गया। इसका अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होगा।

मनुष्यगतिपचकका अन्तर नही है।

५० सासादनसम्यक्त्वमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड तीन आयु, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण ५, अन्तरायोका अन्तर नही है। शेष प्रकृतियोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

५१ सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमे—दो वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोमे अन्तर नही है।

५२ संज्ञीमे—पचेन्द्रियपर्याप्तकका भग जानना चाहिए। असंज्ञीमे-ध्रुव प्रकृतियोका

---

१ सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदकसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? ॥१३३॥ जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ट देसूण ॥१३४-१३५॥ —खुद्दाबध २, पुस्तक ७, पृ० २३१।

२ सण्णियाणुवादेण सण्णीणमतर केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्ट।

३ असण्णीणमतर केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण उक्कस्सेण सागरोवमसदपधत्त ॥ खुद्दाबध सूत्र १४२-१४७।

चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च तिरिक्खोघं। सेसाणं जह० एग० स०, उक्क० अंतो०।

५३. आहारगे–पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचतु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णियुग० सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय०-पंचत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचलाणं जहण्णु० अंतो०। तिण्णि आयु० आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। एवं चेव वेउव्वियछक्क-मणुसगदितिगं च। णवरि जह० एग०। ओरालिय० ओरालि०-अंगो० वज्जरिस० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। सेसाणं ओघं। अणाहार०[1] कम्मइगभंगो।

एवं अंतरं समत्तं।



अन्तर नहीं है। चार आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका तिर्यंचोके ओघ समान जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है।

५३ आहारकमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, सञ्ज्वलन ४, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर तथा पच अन्तरायोका जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा-प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ३ आयु, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अगुलके असख्यातवे भाग है। [2]इसी प्रकार वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका जानना चाहिए। विशेष, इनका जघन्य एक समय प्रमाण है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज्र-वृषभसंहननका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोका ओघवत् है।

अनाहारकोमे—कार्माण काययोगके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ।



१ कम्मइयकायजोगीणमतर केवचिर कालादो होदि? ॥७७॥ जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण तिसमऊण ॥७८॥ उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥७९॥ —खुद्दाबंध खड २, पु० ७, पृ० २१२।

२ "आहाराणुवादेण सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि? एगजीव पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो, अतोमुहुत्त। उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा-सखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसजदाणमतर केवचिर कालादो होदि? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ॥"—षट्खं० अतरा० ३८४-९०।

[सण्णियासपरूवणा]

५४. सण्णियासो दुविधो सत्थाणसण्णियासो चेव परत्थाणसण्णियासो चेव। सत्थाणसण्णियासे पगदं। दुविधो णिद्देसो ओघे० आदेसे०।

५५. ओघे०–आभिणिबोधिय-णाणावरणीयं बंधंतो चदुण्णं णाणावरणीयाणं णियमा बंधगो। एवं एक्कमेक्कस्स बंधगो। णिद्दाणिद्दं बंधंतो अट्ठदंसणा० णियमा बंध०। एवं थीणगिद्धितियस्स। णिद्दं बंधं० थीणगिद्धितियं सिया बंधगो सिया अबंधगो, पंचदंसणा० णियमा बंधगो। एवं पचला०। चक्खुदंसणा० बंध० पंच-

---

[सन्निकर्षप्ररूपणा]

५४. सन्निकर्ष दो प्रकारका है, एक स्वस्थान सन्निकर्ष और दूसरा परस्थान सन्निकर्ष है। यहाँ स्वस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है। उसका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ—स्वस्थान सन्निकर्षमे एक साथ बँधनेवाली एकजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है। परस्थान सन्निकर्षमे एक साथ बँधनेवाली सजातीय एव विजातीय प्रकृतियों-का ग्रहण किया गया है।

५५ ओघसे—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला शेष श्रुतादि ज्ञानावरण-चतुष्टयको नियमसे बाँधता है। इसी प्रकार एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला ज्ञानावरणकी शेष प्रकृतियोंका बन्धक है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणकी मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय, केवलज्ञानावरणरूप किसी भी प्रकृतिका बन्ध होनेपर शेष चार प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध होगा। ऐसा नहीं है कि अवधिज्ञानावरणका तो बन्ध होता रहे और मनःपर्ययज्ञानावरणादिका बन्ध न हो। पाँचों ज्ञानावरणके भेदोका सदा एक साथ बन्ध होता रहता है।

निद्रानिद्राका बन्ध करनेवाला ८ दर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिकमें भी समझना चाहिए। निद्राका बन्धक स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्धक है भी और नहीं भी है। किन्तु वह दर्शनावरणपचक अर्थात् चक्षु-अचक्षु-अवधि केवलदर्शनावरण तथा प्रचलाका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध सासादन गुणस्थान तक होता है और निद्रा प्रकृतिका अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त बन्ध होता है, अतः निद्राका बन्ध होनेपर स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध होना अनिवार्य नहीं है। हो भी सकता है, नहीं भी होवे।

निद्राके समान प्रचलाका भी वर्णन जानना चाहिए। चक्षुदर्शनावरणका बन्धक जीव निद्रादिक पाँच दर्शनावरणका कथंचित् बन्धक है कथंचित् अबन्धक है, किन्तु अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणमें जानना चाहिए।

दंसणा० सिया बंधगो सिया अबंधगो, तिण्णि दंसणा० णियमा बंधगो। एवं तिण्णि दंसणा०। सादं बंधंतो असादस्स अबं०। असादं बंध० साद० अबं०।

५६. मिच्छत्तं बंधंतो सोलसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बंधगो, सिया अबंधगो। पुरिसवेदं सिया अबंधगो [बंधगो], सिया अबंधगो। णपुंस० सिया बंध० सिया अबंध०। तिण्णि वेदाणं एकतरं बंधगो, ण चेव अबंध०। हस्स-रदि सिया बंध० सिया अबंध०। अरदि-सोगा० सिया बंध० सिया अबंध०। दोण्णं युगलाणं एकतरं बंधगो ण चेव अबंध०।

५७. अणंताणुबंधिकोधं बंधतो मिच्छत्तं सिया बंध० सिया अबं०, पण्णारसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बं०, पुरिस० सिया बं०, णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एकतरं बंधओ ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बं०। अरदिसोगं सिया बंध०। दोण्णं युगला० एकतरं बंध०, ण चेव अबं०। एवं तिण्णि कसायाणं।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनावरणका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है और पच निद्राओंका अपूर्वकरणपर्यन्त होता है, इस कारण चक्षुदर्शनावरणके बन्धकके निद्रादिका बन्ध विकल्प रूपसे कहा है।

साताका बन्ध करनेवाला असाताका अबन्धक है। असाताका बन्धक साताका अबन्धक है।

विशेषार्थ—साता और असाता परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ है। अतः एकके बन्ध होते समय दूसरीका अबन्ध होगा।

५६ मिथ्यात्वका बन्ध करनेवाला—सोलह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् (कथचित्) बन्धक है, स्यात अबन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। नपुसकवेदका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीन वेदोंमे-से अन्यतमका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दोनो युगलोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

५७ अनन्तानुबन्धी क्रोधका बन्ध करनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। किन्तु शेष १५ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीका सासादनपर्यन्त बन्ध होता है, किन्तु मिथ्यात्वका प्रथम गुणस्थान पर्यन्त। अतः अनन्तानुबन्धीके बन्धकके साथ मिथ्यात्वका बन्ध हो भी और न भी हो।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है, पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है, नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है, तीनो वेदोंमे-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है, अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमे-से किसी एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया तथा लोभके बन्धकमें जानना चाहिए।

५८. अपच्चक्खाणं कोधं बंधंतो मिच्छत्त० अणंताणु०४ सिया बंधगो। सिया अबंध०। एक्कारसक०-भयदुगु० णियमा बंध०। इत्थिवे० सिया बंध०। पुरिसबं०[वे०] सिया बंध०। णपुंस० सिया बंध०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बंधगो। ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसो० सिया बं०। दोण्णि युग० एक्कतरं बंधगो ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाणं।

५९.' पच्चक्खाणावर० कोधं बंधंतो मिच्छ० अट्ठकसा० सिया बं० सिया अबं०। सत्तक०-भयदु० णियमा बंधगो। इत्थि० सिया बं०। पुरिस० सिया बं०। णपुंस० सिया ब०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बं०, ण चेव बंध० [अबंधगो]। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसोगाणं सिया बंधगो। दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंध०, ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाण।

६०. कोधसंज० बंधं० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० सिया बंध० तिण्णि संज०

---

५८ अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान तक बन्ध होता है, इस कारण अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धके साथ मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकी अनिवार्यता नहीं है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोधको छोड़कर शेष ग्यारह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनो वेदोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—हास्य शोक, रति-अरति ये परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ है। अत जब हास्य-रतिका बन्ध होगा, तब शोक-अरतिका बन्ध नहीं होगा।

अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

५९ प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रत्याख्यानावरण ३ तथा संज्वलन ४ इस प्रकार ७ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीन वेदोंमे-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका भी वर्णन जानना चाहिए।

६० संज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात्

णियमा बंध० । इत्थि० सिया बं० । पुरिस० सिया बं० । णपुंस० सिया बं० । तिण्णि वेदाणं एकदरं बंध० । अथवा तिण्णं पि अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युग० एक्कतरं बं० अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णं संजलणाणं । णवरि माणं बं० मायालो० णियमा बंध० । तेरसक० भयदुगुं० सिया बं० । मायं बंधं० लोभं णियमा बंध० । चोद्दसक० भयदु० सिया बं० । लोभसंज० बंधं० पण्णारसक० भयदु० सिया [बंधगो] ।

६१. इत्थिवेदं बंधंतो मिच्छत्त सिया [बं०] । सोलसक० भयदु० णियमा बं० । हस्सरदि सिया० । अरदिसोग० सिया० । दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंध० णव (?) चेव अबं० ।

६२. पुरिसवेदं बंधंतो मिच्छत्तं बारसक० भयदु० सिया बं० हस्सरदि सिया बं० अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बं० । अथवा दोण्णं पि अबं० । चदुसंज० णियमा ब० ।

बन्धक है, किन्तु शेष मान, माया, लोभरूप सज्वलनका नियमसे बन्धक है । स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है । पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है । नपुसकवेदका स्यात् बन्धक है । तीनों वेदोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अथवा तीनोंका भी अबन्धक है ।

विशेषार्थ—वेदका बन्ध अनिवृत्तिकरणके प्रथम भाग पर्यन्त है, किन्तु सज्वलन क्रोधका बन्ध अनिवृत्तिकरणके अवेदभाग तक होता है । अतः सज्वलन क्रोधके बन्धकको वेदत्रयका अबन्धक भी कहा है ।

हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है । अरति-शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है अथवा दोनों युगलोंका ही अबन्धक है ।

विशेषार्थ—अरति-शोकका प्रमत्त गुणस्थानपर्यन्त तथा हास्य-रतिका अपूर्वकरणपर्यन्त बन्ध है । अत संज्वलन क्रोधके बन्धकमे इनके बन्धका स्यात् सद्भाव है, स्यात् नहीं भी है ।

सज्वलन मान, माया, लोभमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि संज्वलन मानको बाँधनेवाला संज्वलन माया और लोभका नियमसे बन्धक है । तेरह कषाय अर्थात् सज्वलन मान-माया-लोभरहित शेष कषाय, भय तथा जुगुप्साका स्यात् बन्धक है । सज्वलन मायाको बाँधनेवाला सज्वलन लोभको नियमसे बाँधता है । शेष १४ कषाय तथा भय, जुगुप्साका स्यात् बन्धक है । सज्वलन लोभको बाँधनेवाला-१५ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात् बन्धक है ।

६१ स्त्रीवेदको बाँधनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बन्धक है, १६ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है । हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है । अरति-शोकका स्यात् बन्धक है । दोनों युगलोंमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानके अन्तमें होती है, अत स्त्रीवेदके बन्धकके मिथ्यात्वका बन्ध विकल्प रूपसे कहा है ।

६२ पुरुषवेदको बाँधनेवाला-मिथ्यात्व, सज्वलन ४ को छोड़कर शेष १२ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात् बन्धक है ।

६३. णपुंसं बंधं० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगु० णियमा बं०। हस्सरदि सिया० [बं०] अरदिसोग० सिया बं०। दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बं०, ण चेव अबं०।

६४. हस्सं बंधं० मिच्छत्त० बारसक० सिया बं०। चदुसंज० रदि-भय-दुगुं णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एक्क० [बंधगो] ण चेव अबं०। एवं रदि।

६५. अरदिं बंधं० मिच्छ० बारसक० सिया [बं०]। चदुसंज० सोग-भयदुगु० णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया०। तिण्णं वेदाणं एक्कद० बंध०, ण चेव अबंध०। एवं सोगं।

६६. भयं बंधंतो मिच्छत्त-बारसक० सिया० [बंधगो]। चदुसंजल० दुगु० णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया०। तिण्णं वेदाणं एक्कद० [बंधगो]

विशेषार्थ—पुरुषवेदके बन्धकके सञ्ज्वलन ४ का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त नियमसे बन्ध होता है। अतः यहाँ संज्वलनचतुष्टयको छोड़कर बारह कषायोका विकल्प रूपसे बन्ध कहा है।

हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दोनों युगलोमे-से किसी एक युगलका बन्धक है। अथवा दोनोंकाहीअबन्धक है। चार सञ्ज्वलनका नियमसे बन्धक है।

६३ नपुंसकवेदको बाँधनेवाला—मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दोनों युगलोंमे-से अन्य-तरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धकोंके १६ कषायोंका नियमसे बन्ध कहा है, किन्तु पुरुषवेदके बन्धकोंके सञ्ज्वलनको छोड़कर शेष १२ कषायोंका स्यात् बन्ध कहा है। इसका कारण यह है कि नपुसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धक क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन तक होते है, वहाँ १६ कषायोंका बन्ध होता है। पुरुषवेदका बन्ध अनिवृत्तिकरणगुणस्थान पर्यन्त होता है, इस कारण पुरुषवेदके बन्धकोंके १२ कषायोंके कथचित् बन्धका वर्णन किया गया है, किन्तु सञ्ज्वलन ४ का नियमसे बन्ध कहा है।

६४ हास्यका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व तथा १२ कषायका स्यात् बन्धक है।

विशेषार्थ—हास्यका बन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त होता है, किन्तु मिथ्यात्व एवं १२ कषायोका उसके नीचे पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण हास्यके बन्धकके मिथ्यात्वादिका बन्ध विकल्प रूपसे बताया है।

चार सञ्ज्वलन, रति, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसक-वेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार रति प्रकृतिमें जानना चाहिए।

६५ अरतिका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बन्धक है। ४ संज्व-लन, शोक, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमे-से एक वेदका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार शोकमे जानना चाहिए।

६६ भयका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बन्धक है। ४ संज्वलन तथा जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमें-से

ण चेव अबं० । हस्सरदी सिया [बं०], अरदिसोग० सिया [बं०]। दोण्णं युग० एक्कद० ण चेव अबं० । एवं दुगु० ।

६७. णिरयायुगं बंधंतो तिरिक्खायुगं मणुसायुग देवायुगं अबंधगो। एवमण्णमण्णस्स अबंधगो ।

६८. णिरयगतिं [दिं] बंधंतो पंचिंदि०वेउव्विय-तेजाक० हुंडसंठाणं वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणुपु० अगु०४ अपस० तस०४ अथिरादिछ० णिमिण० णियमा बं० । एवं णिरयाणुपुव्वि० ।

६९. तिरिक्खगतिं बंधंतो ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ तिरक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णियमा बंध० । एइंदियजादि सिया० । एवं बेइं० तेइं० चदु० पंचिंदि० सिया [बंधगो]। पंचण्णं जादीणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो। एवं छसंठा० एक्कतरं बंधगो । ण चेव अबंधगो । ओरालि० अंगो० परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं०। छसंघ० सिया० । दो विहाय० सिया० । दो सरं सिया बंधगो,

किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दोनों युगलोंमे से एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नही है। जुगुप्साका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चहिए।

६७ नरकायुका बन्ध करनेवाला-तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायुका अबन्धक है। इसी प्रकार किसी अन्य आयुका बन्ध करनेवाला शेषका अबन्धक है। जैसे तिर्यंचायुका बन्धक शेष तीन आयुओका अबन्धक होगा। कारण एक समयमे बध्यमान एक ही आयु होगी।

६८ नरकगतिका बन्ध करनेवाला-पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक तैजस कार्माण शरीर, हुंडक सस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क, निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—नरकगतिमे संहननका अभाव होनेसे उसका बन्ध नही बताया है। कारण सहनन अस्थिबन्धन विशेषरूप है, वैक्रियिक शरीरमें अस्थिका अभाव है।

नरकानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके-नरकगतिके समान जानना चाहिए।

६९ तिर्यंचगतिका बन्ध करनेवाला-औदारिक-तैजस कार्माण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। एकेन्द्रिय जातिका स्यात् बन्धक है। इसी प्रकार दो, तीन, चार, पंचेन्द्रिय जातिका स्यात् बन्धक है। पचजातियोंमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार छह सस्थानोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नही है। औदारिक अगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। ६ सहननोंका स्यात् बन्धक है।

विशेषार्थ—तिर्यंचगतिके बन्धकके ६ संहननका बन्ध अनिवार्य नहीं है, कारण एकेन्द्रियोंमे संहनन नहीं होता है। अस्थिबन्धनविशेषको संहनन कहते है। एकेन्द्रियोंके अस्थियाँ नही पायी जाती हैं। उनके द्वारा गृहीत आहारका मांस रुधिरादिरूप परिणमन नहीं होता है। इस कारण उनके सहननका अभाव कहा है।

सिया अबंधगो। अथवा छण्ण दोण्णं दोण्णं पि अबं०। तस० सिया०। थावरं सिया०। दोण्णं पगदी० एक्कतरं बं०, ण चेव अबं०। एवं अट्ठयुगलाणं। एवं तिरिक्खाणु०।

७०. मणुसगदिं बं० पंचिंदि० ओरालिय-तेजाक० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संठा० छसंघ० पज्जत्ता० अपज्ज० थीरादि-पंच-युग० सिया बं०, सिया अबं०। एदेसिं एक्कतरं बं०, ण चेव अबं०। परघादुस्सा० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। दो विहा० दो सर० सिया बंध०, सिया अ०। अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबं०। एवं मणुसाणु०।

७१. देवगदिं बंधंतो पंचिदि० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० णियमा बं०। आहारदुग-तित्थय० सिया० [बं० सिया] अबं०। थिरादितिण्णि यु० सिया बं०, सिया अबंध०। तिण्णि युगलाणं एक्कतरं बंध०, ण चेव अबं०। एवं देवाणुपु०।

दो विहायोगतिका स्यात् बन्धक है। दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा दो स्वरोंका भी अबन्धक है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें संहननके समान विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इस कारण ६, २, २ का अबन्धक भी कहा है।

त्रसका स्यात् बन्धक है। स्थावरका स्यात् बन्धक है। दोनोमे-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और स्थिर इनके आठ युगलोका इसी प्रकार वर्णन समझना चाहिए अर्थात् प्रत्येक युगलमे से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नही है। तिर्यंचानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके तिर्यंचगतिके समान भग है।

७० मनुष्यगतिका बन्ध करनेवाला—पचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ सस्थान, ६ संहनन, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पचयुगलका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमे-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नही है। परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा दो विहायोगति, दो स्वरका भी अबन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमे मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए।

७१ देवगतिका बन्ध करनेवाला—पचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक अगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहार-कद्विक, तीर्थंकरका [स्यात् बन्धक] स्यात् अबन्धक है। स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक स्यात् अबन्धक है। तीन युगलोमें-से किसी एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान जानना चाहिए।

७२. एइंदियं बंधंतो तिरक्खग० ओरालिय-तेजाक० हुंड० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०उप० थावर-दूभग-अणा० णिमि० णियमा०। पर० उस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०, सिया अबं०। बादरसुहुम० सिया [बं०]। दोण्णं० एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अज० सिया एक्कतरं बं०, ण चेव अ०। एवं थावरं०।

७३. बीइंदि० बंध० तिरिक्खग० ओरालि० तेजाकम्म० हुंडसं० ओरालि० अंगो० असंपत्त० वण्ण०४ तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तस० बादरपत्ते० दूभग-अणा० णिमि० णियमा० [बंधगो]। परघादुस्सा० उज्जोव० अप्पसत्थ० दुस्स० सिया [बं०] सिया अबं०। पज्जत्ता अपज्ज० सिया [बं०] सिया [अबं०]। दोण्ण युगजो० (?) एक्क० बं०, ण चेव अबं०। एवं थिरादि-तिण्णियुगलाणं एक्कतरं बं०, ण चेव अब० एवं तीइंदि० चतुरिंदि०।

७४. पंचिंदिय-जादिणामं बंधंतो णिरयगदि सिया बं०, सिया अबं०। एवं तिरिक्ख-मणुस-देवगदि०। चदुण्णं गदीण एक्कदरं० बं०, णव चेव अबं०। एव दो सरीरं० छस्संठा० दो-अंगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि पंचयुगलाणं। आहारदुगं परघादुस्सा० उज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अ०। तेजाक० वण्ण०४

७२ एकेन्द्रिय जातिका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, औदारिक-तैजस कार्माण शरीर, हुडक सस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्धक है। परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। बादर, सूक्ष्मका स्यात् बन्धक है। दोमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमे-से एकतरका स्यात् बन्धक है, अबन्धक नही है। स्थावरके विषयमे एकेन्द्रियके समान जानना चाहिए।

७३ दो इन्द्रियका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुडक सस्थान, औदारिक अगोपांग, असम्प्राप्तासृपाटिका सहनन, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति तथा दुस्वरका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। पर्याप्त-अपर्याप्तक स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। दोनोंमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। स्थिरादि तीन युगलमे-से एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चाहिए।

७४. पचेन्द्रिय जाति नामकर्मका बन्ध करनेवाला—नरकगतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है इसी प्रकार तिर्यंच-मनुष्य-देवगतिमे जानना चाहिए अर्थात् स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। चारो गतियोंमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), छह सस्थान, दो अंगोपांग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंच युगलमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत तथा

अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संघ० दोविहा० दोस० सिया बंधगो। छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०, अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं०।

७५. ओरालियसरीरं बंधं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं णियमा बंध०। तिरिक्खमणुसगदि सिया [बं०]। दोण्णं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबं०। एवं भंगो पंचजादि-छस्संठाणं दो आणु० तसथावरादि णव-युगलाणं। ओरालि० अंगो० परघादु० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० दोविहा० दोसरं सिया बंध०, सिया अबं०। अथवा [छण्णं] दोण्णं दोण्णं पि अबंध०।

७६. वेगुव्वियस० बंधंतो पंचिंदि० तेजाक० वेगुव्विय० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं णियमा बं०, णिरयगदि-देवगदी० सिया बंध०। दोण्णं एक्कदरं बं०, ण चेव अबंध०। एवं समचदु० हुंडसंठा० दोण्णं आणुपु० दो विहाय०

तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस-बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ सहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन, ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है, अथवा ६, २, २ का भी अबन्ध है।

७५ औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला – तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे बन्धक है। तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है। दोनोमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—देवगति, नरकगतिका सन्निकर्ष वैक्रियिक शरीरके साथ है औदारिकके साथ नही हे इससे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

पॉच जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे भी तिर्यंच मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए।

औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत और तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—औदारिक शरीरको धारण करनेवाले एकेन्द्रियके औदारिक अगोपांग नहीं पाया जाता है। इस कारण औदारिक अगोपांगका बन्ध यहॉ विकल्प रूपसे कहा गया है।

छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा [६] २, २ का भी अबन्धक है।

७६ वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवाला – पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ और निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका नियमसे बन्ध होता है। इस कारण यहाँ औदारिक शरीर और औदारिक अगोपांगके समान विकल्प नहीं है।

नरकगति, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दोमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। समचतुरस्र सस्थान, तथा हुंडक सस्थानमे इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमें अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरधारी देवोंमें समचतुरस्र सस्थान होता है और नारकियोंमें हुंडक संस्थान पाया जाता है। अन्य संस्थानोंका वैक्रियिक शरीरके साथ सन्निकर्ष नहीं है।

थिरादि-छयुग० सिया एदेसिं एक्कदरं बंध० ण चेव अब०। आहारदुगं सिया [ब०] तित्थयरं सिया [ब] एवं वेगुव्विय अंगो०।

७७. आहारसरीरं बंधंतो देवगदिपंचिदियजादि-तिण्णं सरीरं० समचदु० दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु० पसत्थ० तस०४ थिरादिछ० णिमि० णियमा बं०। तित्थयरं सिया [बं०] एवं आहारंगोव०।

७८. तेजासरी० बं० चदुगदि० सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। पंचजादि-दोसरी० छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगलं गदि-भंगो। आहारदुगं पर० उस्सा० आदावुज्जोव-तित्थय० सिया बं०। दो अंगो० छसंघ० दो विहाय-दोस [र]० सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। एवं कम्मइय०।

७९. वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० समचदु० बंधंतो तिरिक्ख-मणुस-देवगदि

दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें-से अन्यतरका स्यात् बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ संहननका बन्ध नहीं होता है कारण देव-नारकियों-के संहनन नहीं पाया जाता है।

आहारकद्विकका स्यात् बन्धक है। तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। वैक्रियिक अंगोपांगका बन्ध करनेवालेके वैक्रियिक शरीरके बन्धकके समान जानना चाहिए।

७७ आहारक शरीरका बन्ध करनेवाला – देवगति, पचेन्द्रियजाति तथा तैजस कार्माण वैक्रियिक इन शरीरत्रयका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—औदारिक शरीरकी बन्धव्युच्छित्ति चतुर्थगुणस्थानमें हो जाती है, इस कारण सप्तम गुणस्थानमें बँधनेवाले आहारक शरीरके साथ औदारिक शरीरका सन्निकर्ष नहीं कहा है।

समचतुरस्र संस्थान, आहारक-वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि छह तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। आहारक अंगोपांगका बन्धक करनेवालेके भी आहारक शरीरके समान भंग है।

७८ तैजस शरीरका बन्ध करनेवाला–४ गतिका स्यात् बन्धक है। चारों गतियोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ५ जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगलोंका गतिके समान भंग है, अर्थात् अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है अर्थात् कथं-चित् बन्धक, कथंचित् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ में-से अन्यतरका बन्ध करनेवाला है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। कार्माण शरीरका बन्ध करनेवालेके तैजस शरीरके समान जाना चाहिए।

७९ वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणमें इसी प्रकार है। समचतुरस्र संस्थानका

सिया बंध० । तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । दोसरी० दोअंगो० तिण्णि-आणु० दो-विहा०-थिरादि छयुगलं गदिभंगो । पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० णियमा बं० । आहारदुगं तित्थयरं उज्जोवं सिया बं० । छसंघ० सिया बं० सिया अबं० । छण्णं संघ० एक्कदरं बं० । अथवा छण्ण पि अबंधगो । एवं पसत्थवि० सुभग-सुस्स० आदे० ।

८०. णग्गोद-सरीरं (संठाणं) बंधंतो तिरिक्ख-मणुसगदि सिया [बंधगो] सिया अबं० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं बंध० । ण चेव अबं० । एवं गदिभंगो छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिछयुगलं। पंचिं० तिण्णि-स० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं णियमा बं० । उज्जोवं सिया [बं०] । एवं सादि० खुज्ज० वामणसं० ।

८१. हुंडसंठा० बंधंतो तिण्णं गदिणामाणं सिया [बंधगो] । एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं पंचजा० दो-सरीर-तिण्णि-आणु० तसादिणवयुग० तेजाक० वण्ण०४

बन्ध करनेवाला तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगतिका स्यात् बन्धक है। तीन गतियोंमें-से एकका बन्धक है अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—नारकियोमे समचतुरस्र सस्थान नही पाया जाता है, इस कारण यहाँ नरकगतिका उल्लेख नही किया गया है।

दो शरीर, दो अगोपाग, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति तथा स्थिरादि छह युगलका गतिके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् एकतरका बन्धक है, अबधक नही है। पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक तीर्थंकर तथा उद्योतका स्यात् बन्धक है। छह संहननका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। छहमे-से किसी एकका बन्धक है अथवा छहोंका अबन्धक भी है।

विशेषार्थ—सहननका बन्ध तो चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और समचतुरस्र सस्थानका बन्ध अपूर्वकरण तक होता है। अतः यहाँ ६ सहननका अबन्धक भी कहा है।

प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर तथा आदेयका भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

८० न्यग्रोध परिमण्डल संस्थानका बन्ध करनेवाला – तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो गतियोमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवगतिमे समचतुरस्रसस्थान होता है और नरकगतिमे हुडकसंस्थान पाया जाता है। इस कारण यहाँ उक्त दोनों गतियोंका वर्णन नहीं किया गया है।

छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमे गतिके समान पूर्वोक्त भंग है। पचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर, औदारिक अगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। उद्योतका स्यात् बन्धक है। स्वातिसस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थानके बन्ध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

८१ हुंडकसंस्थानका बन्ध करनेवाला – नरक-मनुष्य तिर्यंच गतियोंका स्यात् [बन्धक है।] अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—हुंडकसंस्थान देवगतिमे न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है।

अगु० उप० णिमि० णियमा ब'० । दो-अंगो० छसंघ० दो-विहा० दो-सरं सिया ब'० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं ब'ध० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अ० । परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया ब'० सिया अब'० । एवं हुंडभंगो दूभग-अणादेज्ज० । ओरालिय० अंगोवंगं बंध'तो दो-गदि सिया ब' सिया अब'० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं [ब'धगो] । ण चेव अब ० । एवं चदुजादि० छस्संठा० छस्संघ० दो आणु० पज्जत्ता-पज्जत्त० थिरादिपंचयुगलाणं । ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० तस-बादर-पत्तेय० णिमि० णियमा ब'० । परघादुस्सा० उज्जो० तित्थयरं सिया ब'० । दो विहा० दो सरं सिया ब'० । दोण्णं दोण्णं एक्कद० ब'० । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अब'० ।

८२. वज्जरिसभ ब'ध'तो दो-गदि सिया ब'०, सिया अब'० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं ब'० । ण चेव अब'० । एव छस्सठा० दो आणु० दो-विहा० थिरादिछयुगलाणं । पंचिंदि० तिण्णि-सरी० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४, तस०४ णिमि० णियमा ब'० । उज्जोव तित्थ० सिया [ब'धगो] । एव चदु-सघ० । णवरि तित्थयवज्जं ।

५ जाति, २ शरीर, ३ आनुपूर्वी (देवानुपूर्वी बिना) त्रसादि नव युगलमे इसी प्रकार वर्णन है । तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । दो अगोपांग, छह सहनन, दो विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन २, ६, २, २ में-से किसी एकका बन्धक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है । परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है ।

दुर्भग तथा अनादेयके बन्ध करनेवालेमे हुंडक संस्थानके समान भंग है ।

औदारिक अगोपागका बन्ध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्यंचगति) का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दोमे-से एकका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । चार जाति, ६ सस्थान, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पचयुगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियके अगोपांगका अभाव होनेसे यहाँ एकेन्द्रिय जातिको छोडकर चार जातियोका कथन किया गया है ।

औदारिक तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । दो दोमे-से किसी एकका बन्धक है । अथवा दो दोका भी अबन्धक है ।

८२. वज्रवृषभसहननका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दो गतियोंमे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । इस प्रकार छह सस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है ।

आदि तथा अन्तके संहननको छोड़कर शेष ४ संहननके बन्ध करनेवालेमें यहाँ यही

असंपत्तं बंधंतो दो-गदि सिया बंध० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं ब० । ण चेव अबं०। एवं चदुजादि-छस्संठा० दो-आणु० पज्जत्तापज्ज० थिरादिपंचयुगलाणं। तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण४ अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा बं० । परघा-दुस्सास० उज्जो० सिया [बंधगो०]। दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया [बं०]। दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबं० ।

८३. परघादं बंधंतो चदुगदि सिया बं० सिया अबं० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । एस भंगो पंच-जादि-दो-सरीरं छसंठा० चदु-आणु० तस-थावरादि-णवयुगलाणं पज्जत्तापज्जत्तवज्जं । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० उस्सास-पज्ज० णिमिणं णियमा बंधगो। आहारदुगं आदा-वुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं० अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं० । एवं भंगो उस्सास पज्जत्त० थिर(?)सुभ(?)णामाणं च ।

क्रम है । विशेष यह है कि यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिको छोड देना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका सन्निकर्ष न बतानेसे ज्ञात होता है कि संहनन चतुष्टयके साथ तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता । वज्रवृषभ संहननके साथ तीर्थंकरका बन्ध हो सकता है । तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीमे होता है । अत मिथ्यात्व-सासादनमे बँधनेवाले असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन तथा वज्रवृषभको छोड शेष ४ संहननका अभाव होगा ।

असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननका बन्ध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्यंचगति) का स्यात् बन्धक है । दो गतियोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । ४ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, स्थिरादि पंचयुगलोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास तथा उद्योतका स्यात् बन्धक है । दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है । दो-दोमे-से अन्यतरका बन्धक है । अथवा दो-दोका भी अबन्धक है ।

८३ परघातका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन चारोंमे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अर्याप्तक रहित त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे भी इसी प्रकार है । अर्थात् इनमे-से एकतरका बन्धक है, अन्यका बन्धक नहीं है । तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, पर्याप्त तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है ।

उच्छ्वास, पर्याप्तक, नामकर्ममे इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—स्थिर तथा शुभका वर्णन आगे किया गया है, इससे मूल पाठमे 'थिर-सुभ'-का उल्लेख अधिक पाठ प्रतीत होता है ।

८४ आदावं बंधं० तिरिक्खग० एइंदि० तिण्णि सरी० हुंडसंठा० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-दूभ० अणा० णिमि० णियमा बं०। थिरादि-तिण्णि युग० सिया बं०। तिण्णि युगलाणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०।

८५ उज्जोवं बंधंतो तिरिक्खगदि० तिण्णं सरी० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० णियमा बंधगो। पंच-जादि-छस्संठा० तसथाव० थिराथिर सुभासुभ-सुभगदूभग-आदेज्जअणादेज्ज-जस०-अजस० सिया बं०। एदेसिं एक्कतरं बं०। ण चेव अबं०। ओरालिय० अंगो० सिया बं०। सिया अबं०। छस्संघ० दो विहा० दो सरीर (सरं) सिया बं०। छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं(?)छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंध०।

८६ अप्पसत्थ-विहाय० बंधंतो तिण्णि गदि सिया बं०, तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं भंगो चदुजादि० दो सरी० छस्संठा० दो अंगो० णिरय-

८४ आतापका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, तीन शरीर, हुंडक सस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, स्थावर, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक है। तीन युगलोमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—आताप प्रकृतिका उदय सूर्यके विमानमे स्थित बादर पृथ्वीकायिक जीवोंके पाया जाता है। इससे यहाँ एकेन्द्रियका ही बन्ध कहा है। सहननके बन्धके अभावका कारण भी यही है, क्योकि स्थावरोमे सहनन नहीं होता है।

८५ उद्योतका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, ३ शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश कीर्ति-का स्यात् बन्धक है। इनमे-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—उद्योत प्रकृति एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त पायी जाती है, इस कारण इसके बन्धकके पच जातियाँ कही है।

औदारिक अगोपांगका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। छह सहनन, २ विहायो-गति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इन ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है, अथवा ६, २, २ का भी अबन्धक है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियकी अपेक्षा उद्योतके बन्धकको अंगोपांग, सहनन, विहायोगति तथा स्वरका अबन्धक भी कहा गया है। यहाँ यह विशेष बात ज्ञातव्य है कि शरीरका पूर्वमे कथन हो चुका है, अतः यहाँ 'दो शरीर' के स्थानमे 'दो सर' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

८६ अप्रशस्त विहायोगतिका बन्ध करनेवाला—नरक-तिर्यंच-मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है। तीन गतियोंमे-से एकका बन्धक है अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवोंमे अप्रशस्तविहायोगतिका अभाव है। अतः यहाँ उसका उल्लेख नहीं है।

४ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अगोपांग, नरक-तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी, स्थिर,

१ "मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा। आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोवो॥" —गो० क० गा० ३३।

तिरिक्ख-मणुसाणुपु० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादे० जस० अज्जस० । तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० णियमा बं० । छस्संघ-सिया बं० । छण्णं एक्कदरं बंधगो । अथवा छण्णं पि अबं० । उज्जोव० सिया बं० सिया अबं० । एवं दुस्सर० ।

८७. तसं बंधंतो चदुगदि सिया ब० । चदुण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं भंगो चदुजादि-दोसरी० छस्सठा० दो अंगो० चदु-आणुपु० पज्जत्तापज्ज० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-आदेज्ज-अणादेज्ज-जस०-अज्जस० । आहारदुगं परघादु० उज्जोवं तित्थय० सिया बं०, सिया अबं० । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० बादर-पत्ते०-णिमि० णियमा ब० । छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्ण पि अबं० ।

८८. बादरणामं बंधंतो चदुगदि सिया बं०, सिया अबं० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं गदिभंगो पंचजादि-दो सरी० छस्संठा० चदुआणुपु० तसादिणवयु० । आहारदु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं

अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमे पूर्ववत् है अर्थात् स्यात् बन्धक है, एकतरके बन्धक है, अबन्धक नहीं है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है, ६ सहननका स्यात् बन्धक है, ६ मे से किसी एकका बन्धक है, अथवा ६ का भी अबन्धक है ।

विशेष—यहाँ नरकगति तथा एकेन्द्रियकी अपेक्षा सहननका अबन्धक भी कहा गया है ।

उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दुस्वरमे ऐसा ही वर्णन जानना चाहिए ।

८७ त्रसका बन्ध करनेवाला—चार गतिका स्यात् बन्धक है, ४ मे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । ४ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमे इसी प्रकार भग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है । ६ सहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है । अथवा ६, २, २ का भी अबन्धक है ।

८८ बादर नामकर्मका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । चार गतियोंमे-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । ५ जाति, दो शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि नवयुगलमे गतिके समान भंग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक

दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं० । सेसं णियमा बंधगो । एवं पत्तेयसरी० ।

८९. सुहुमं बंधंतो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-तिण्णि सरी०-हुंडसं० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० थावर-दूभग-अणादेज्ज-अज्जस-णिमिणं णियमा बं० । पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय० साधारण-थिराथिर-सुभासुभ० सिया बं० । एदेसिं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । परघादुस्सा० सिया बं० सिया अबं० । एवं साधारणं० । अपज्जत्तं बं० दो गदि सिया [बं०] । दोण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि सरीर-हुंडसंठा० वण्ण०४ अगु० उप० अथिर-असुभ-दूभग-अणादेज्ज० अजस० णिमिणं णियमा बं० । ओरालि० अंगो असंपत्तसेव० सिया बं० । पंचजादि-दो-आणु० तसथावरादि-तिण्णि युग० सिया बं० । एदेसिं एक्कदरं बं० ण चेव अबं० ।

९०. अथिरं बंधंतो चदुगदि-सिया बं० । [चउण्णं गदीणं] एक्कदरं [बंधगो] । ण चेव अबं० । एवं पंचजादि दो सरीर० छस्संठा० चत्तारि आणुपुव्वि० तस-थावरादिअट्ठयुग० । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं णियमा बं० । दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० ।

है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है । शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्धक है ।

प्रत्येक शरीरके बन्ध करनेवालेमें—इस प्रकार जानना चाहिए ।

८९ सूक्ष्मका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुडक सस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है ।

विशेष—सूक्ष्म नामक कर्मका सन्निकर्ष एकेन्द्रिय जीवके साथ ही पाया जाता है, अतएव यहाँ एकेन्द्रिय जातिका ही ग्रहण किया गया है ।

पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभका स्यात् बन्धक है । इनमें-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । परघात, उच्छ्वासका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है ।

साधारणके बन्ध करनेवालेमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

अपर्याप्तकका बन्ध करनेवाला—दो गति (तिर्यंच तथा मनुष्यगति) का स्यात् बन्धक है । दोमें-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है ।

औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुडकसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । औदारिक अगोपाग, असम्प्राप्तासृपाटिका सहननका स्यात् बन्धक है । ५ जाति, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक है । इनमें-से एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है ।

९० अस्थिरका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है । चार गतियोंमें से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । इसी प्रकार ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ८ युगलोंमें जानना चाहिए । तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे बन्धक है । दो अगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात्

अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। परघादुस्सा० आदावुज्जो० तित्थयरं सिया [बं०], सिया अबंध०। एवं असुभ-अज्जसगित्ति।

९१. थिरं बंधंतो तिण्णि-गदि सिया बं०। तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं पंच-जादि दो सरीरं-छसंठा० तिण्णि-आणु० तसथावरादि-दोण्णि युगलं सुभादि-चदुयुगलं सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बंधगो। ण चेव अबंध०। आहारदुगं आदावुज्जोव० तित्थयरं सिया बं०, सिया अ०। दो-अंगो० छस्संघ० दोवि० दो सरं सिया बं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंध०। तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पज्जत्त णिमि० णियमा बंधगो। एवं सुभ-जसगित्ति। णवरि जसगित्तीए सुहुम-साधारणं वज्जं।

९२. तित्थयरं बंधंतो दो-गदि सिया बंध०। दोण्णं गदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं दो-सरीरं० दो अंगोवं० दो आणु० थिरादि-तिण्णि यु० एक्कदरं बंधगो। ण चेव अबंध०। पंचि तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु० ४-पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्स०-आदे० णिमिणं णियमा बं०। आहारदुगं वज्जरिसभसंघ० सिया [बंधगो]।

बन्धक है। २, ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

अशुभ तथा अयश.कीर्तिके बन्ध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

९१ स्थिरका बन्ध करनेवाला—३ गति (नरकको छोडकर) का स्यात् बन्धक है। ३ गतिमे से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ सस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि दो युगल, शुभादिक चार युगलका स्यात् बन्धक है। इनमे से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। आहारकद्विक, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो अगोपांग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन २, ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। तैजस-कार्माण, वर्ण४, अगुरुलघु ४, पर्याप्तक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है।

शुभ तथा यशःकीर्तिके बन्ध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यशःकीर्तिके बन्धकके सूक्ष्म तथा साधारण प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। अर्थात् इनका बन्ध इसके नहीं होगा।

९२. तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला—मनुष्य, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दो गतियोमे-से किसी एकका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीके ही होता है। अत' मिथ्यात्वमें बँधनेवाली नरकगति तथा सासादनमें बँधनेवाली तिर्यंचगतिका बन्ध इसके नहीं होगा।

दो शरीर, २ अगोपांग, २ आनुपूर्वी, स्थिरादि तीन युगलमे-से एकतरका बन्धक है। अबन्धक नही है। पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, वज्रवृषभसहननका स्यात् बन्धक है।

९३. उच्चागोदं बंधंतो णीचागोदस्स अबंधगो। णीचा-गोदं बंधंतो उच्चागोदस्स अबंधगो।

९४. दाणंतराइगं बंधंतो चदुण्णं अंतराइगाणं णियमा बंधगो। एवमण्णमण्णस्स बंधगो।

९५. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदि० तस तेसिं चेव पज्जत्ता पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालिय० इत्थि-पुरिस-णपुंस० कोधादि०४ चक्खुदं० अचक्खुदं० भवसिद्धि० सण्णि-आहारगित्ति, णवरि मणुस०३ ओरालिका० इत्थि० तित्थयरं बंधंतो देवगदि०४ णियमा बंधगो।

९६. आदेसेण णेरइ० एइंदिय-विगलिंदिय-संजुत्त-आहारदुगं वेगुव्वियछक्कं णिरय-देवायुगं च अपज्जत्तगं च वज्जं सेसं णेदव्वं। एवं सव्व-णेरइएसु। णवरि चउत्थी याव सत्तमा त्ति तित्थयरं वज्जं। सत्तमाए मणुसायुगं णत्थि।

९७. तिरिक्खेसु-आहारदुगं तित्थयरं वज्ज, सेसं ओघं। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु वेगुव्वियछक्कं च णिरयदेवायुगं वज्ज-

---

९३ उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—नीच गोत्रका अबन्धक है। नीच गोत्रका बन्ध करनेवाला उच्चगोत्रका अबन्धक है।

विशेष—दोनों गोत्र परस्पर प्रतिपक्षी हैं। अतः एक जीवके एक साथ दोनोंका बन्ध नहीं होता है। इस कारण नीचके बन्धकके उच्च अबन्ध होगा अथवा उच्चके बन्धकके नीचका अबन्ध होगा।

९४ दानान्तरायका बन्ध करनेवाला—लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यान्तरायका नियमसे बन्धक है। एकका बन्ध करते समय अन्य चतुष्कका नियमसे बन्ध होता है। अर्थात् दानान्तरायके बन्ध होनेपर अन्य लाभान्तरायादिका नियमसे बन्ध होता है।

९५ मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, त्रस तथा पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रसपर्याप्त, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुसंक वेद, क्रोधादि ४ कषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, भव्यसिद्धिक, सञ्ज्ञी, आहारक पर्यन्त इसी प्रकार अर्थात् ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष यह है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोग तथा स्त्रीवेदमें तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अगोपागका नियमसे बन्धक है।

९६ आदेशसे—नारकियोंमे एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय संयुक्त प्रकृति, आहारकद्विक, वैक्रियिकपट्क, नरकायु-देवायु तथा अपर्याप्तकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंको जानना चाहिए। इसी प्रकार सम्पूर्ण नारकियोंमे जानना चाहिए। विशेष, चौथीसे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त तीर्थंकरका बन्ध छोड देना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बन्ध नहीं है।[1]

९७ तिर्यंचगतिमें—आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता है। शेषका ओघवत् वर्णन है। पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमे इसी

---

१ "घम्मे तित्थ बधदि वसा मेघाण पुण्णगो चेव। छट्टोत्तिय मणुवाऊ ।"–गो० क० गा० १०६।

सेसं तं चेव। एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्तसव्वपंचकायाणं। णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि।

९८. देवेसु णिरयभंगो। णवरि एइंदिय-तिगं जाणिदव्वं। एवं भवणवासिय याव सोधम्मीसाण त्ति। णवरि भवणादि याव जोइसिया त्ति तित्थयरं णत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोघं। आणद याव णवगेवेज्जा त्ति एवं चेव। णवरि तिरिक्खायुगं तिरिक्खग० तिरिक्खाणु० उज्जोवं णत्थि। अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्तपगदीओ णत्थि। सेसं भाणिदव्वं।

९९. ओरालि०मिस्से-णिरयगदितिगं देवायुगं आहारदुगं णत्थि। सेसं ओघभंगो। वेगुव्वियका० देवगदिभंगो। एवं वेगुव्वियमि०। णवरि आयुगं णत्थि। आहार० आहारमि० असंजद-पगदीओ आहारदुगं णत्थि। कम्मइगका०

प्रकार जानना चाहिए।[1]

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायुको छोडकर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक तथा सम्पूर्ण पच कायोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगतिचतुष्क नहीं है।

९८ देवगतिमे नरकगतिका भग है। विशेष, देवोमे एकेन्द्रिय स्थावर आतापका बन्ध होता है। यह बात भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म, ईशान स्वर्गपर्यन्त है। विशेष भवनत्रिकमे तीर्थंकर नहीं है।

विशेषार्थ—देवोंका एकेन्द्रियोंमे भी जन्म होता है, किन्तु नारकी जीव मरण कर नियमसे सज्ञी, पर्याप्तक कर्मभूमिज मनुष्य वा तिर्यंच होते है। इससे देवगतिमे विशेषता कही है। सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त नरकगतिके ओघ समान भग है। आनतसे ग्रैवेयकपर्यन्त इसी प्रकार है।] विशेष–तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है।

विशेष—आनतादि स्वर्गवासी देवोंका तिर्यंच रूपसे उत्पाद नहीं होनेके कारण तिर्यंचायु आदि शतार चतुष्कका बन्ध नहीं कहा गया है।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं है, [कारण वहाँ सभी सम्यक्त्वी ही होते है।] अतः शेष प्रकृतियोंको कहना चाहिए।

९९ औदारिकमिश्रकाययोगमें—नरकगतित्रिक, देवायु, आहारकद्विक नहीं है। शेष ११४ बन्ध योग्य प्रकृतियोंका ओघवत् वर्णन जानना चाहिए।[2]

वैक्रियिक काययोगमें—देवगतिके समान जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आयुके बन्धका अभाव है।

आहारक-आहारकमिश्रयोगमें—असंयतसम्बन्धी प्रकृतियाँ तथा आहारकद्विकके बन्धका अभाव है। आहारककाययोगमें ६३ और आहारकमिश्र काययोगमे ६२ बन्धयोग्य प्रकृतियाँ है।

१ "ओराले वा मिस्से। णहि सुरणिरयायुहारणिरयदुगं।"–गो० क० गा० ११६।

आयुचदुक्कणिरयगादेदुगं आहारदुगं च णत्थि। सेसं ओघभंगो।

१००. अवगदवेदे याओ पगदी [ओ] बज्झंति ताओ पगदीओ जाणिदूण भाणिदव्वाओ। मदि० सुद० विभंग० अब्भव० मिच्छादि० असण्णि० तिरिक्खोघो। आभिणि० सुद० ओधि० ओघभंगो। णवरि मिच्छत्त-सासण-पगदीओ णत्थि। एवं ओधिदं० सम्मा० खइय०। एवं चेव मणपज्जव-संजद० सामाइ० छेदो० परिहार०। णवरि असंजदपगदीओ णत्थि। अकसा० केवलणा० यथाखाद० केवलदंस० सण्णियासो णत्थि। सुहुमसंप० पंचणा० चदुदंस० पंचंतराइगाणमण्णमण्णस्स बंधदि।

१०१. संजदासंजदा संजदभंगो। णवरि आहारदुगं णत्थि। पच्चक्खाणा०-४ अत्थि। असंजदेसु ओघभंगो। णवरि आहारदुगं णत्थि।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्त दशामे होता है और यह योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमे होता है। अत: आहारकद्विकके बन्धका यहाँ अभाव कहा गया है।

कार्माणकाययोगमे-आयु ४ तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वीका अभाव है। शेषका ओघवत् भग जानना चाहिए।

१००. अपगत वेदमे—जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनको जानकर वर्णन करना चाहिए।

विशेष—४ संज्वलन, ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र तथा सातावेदनीय इन २१ प्रकृतियोंका यहाँ बन्ध होता है।

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असज्ञीका तिर्यंचोंके ओघवत् है। आभिनिबोधिक, श्रुत तथा अवधिज्ञानमे ओघवत् भंग है। विशेष – यहाँ मिथ्यात्वसम्बन्धी १६ और सासादनसम्बन्धी २५ प्रकृतियोंका अभाव है।

इसी प्रकार अवधिदर्शन, सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्वमे जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञान, सयत, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असयमगुणस्थानवाली प्रकृतियाँ नहीं है।

अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवल दर्शनमें सन्निकर्ष नहीं है।

विशेष—इन मार्गणाओंमे एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। इस कारण यहाँ सन्निकर्षका वर्णन नहीं किया गया है। एक प्रकृतिमें सन्निकर्ष नहीं हो सकता है। किसका किसके साथ सन्निकर्ष कहा जायेगा ? अतः सन्निकर्ष नहीं बताया है।

सूक्ष्मसाम्परायमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण (निद्रापंचकरहित) तथा ५ अन्तरायोंका एकके रहते हुए शेष अन्यका बन्ध होता है।

विशेष—यद्यपि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें सातावेदनीय, उच्चगोत्र तथा यशःकीर्तिका भी बन्ध होता है, किन्तु ये वेदनीय, गोत्र तथा नामकर्मकी अकेली ही प्रकृतियाँ है, इस कारण स्वस्थानसन्निकर्षकी दृष्टिसे इनका ग्रहण नहीं किया गया है।

१०२. एवं तिण्णि लेस्सा० । णवरि किण्ण-णील० तित्थयरं बंधं० देवगदि०४ णियमा बंधगो । काऊए सिया देवगदि सिया मणुसगदि । तेऊए सोधम्मभंगो । णवरि देवायु देवगदि०४ आहारदुगं अत्थि । एवं पम्माए । णवरि एइंदियतिगं णत्थि । सुक्काए णिरयगदितिगं तिरिक्खगदिसंयुतं च णत्थि । सेसं ओघभंगो ।

१०३. वेदगे० आभिणि०भंगो । एवं उवसम० । णवरि आयु णत्थि । सासणे मिच्छत्तसंयुतं तित्थयरं आहारदुगं च णत्थि । सेसं ओघभंगो । सम्मामि० उवसम-सम्मा० भंगो । णवरि आहारदुगं तित्थयरं च णत्थि ।

१०४. अणाहारा० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाणसण्णियासो समत्तो ।

---

१०१ सयतासयतोमे—संयतोंका भग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आहारकद्विक नही है। इनमे प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध पाया जाता है। असयतोमे-ओघवत् भग है।[1] विशेष आहारकद्विक नहीं है।

१०२ कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्यामें—इसी प्रकार जानना चाहिए।[2] विशेष-कृष्ण-नील लेश्यामे-तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला नियमसे देवगति ४ का बन्धक है। कापोत लेश्यामे-स्यात् देवगति, स्यात् मनुष्यगतिका बन्ध होता है। तेजोलेश्यामे-सौधर्म स्वर्गके समान भंग है। विशेष, देवायु, देवगति ४ तथा आहारद्विकका बन्ध है।[3] पद्मलेश्यामे-इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ एकेन्द्रिय, स्थावर, आतापका बन्ध नही है। शुक्ललेश्यामे-नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, नरकायु तथा तिर्यंचगति सयुक्तका बन्ध नही है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भग है।

१०३. वेदक सम्यक्त्वमे-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है।[4]

उपशमसम्यक्त्वमे-इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ आयुका बन्ध नही होता है।

सासादन सम्यक्त्वमे—मिथ्यात्वसम्बन्धी प्रकृतियाँ तीर्थंकर, तथा आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे उपशमसम्यक्त्वीका भग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नही है।

१०४ अनाहारकमें-[5] कार्माण काययोगीके समान भग है।

इस प्रकार स्वस्थानसन्निकर्ष पूर्ण हुआ।

---

१ "सम्मेव तित्थबधो आहारदुग पमादरहिदेसु ।" –गो० क० गा० ९२। २ "अयदोत्ति छलेस्साओ सुह-तियलेस्सा हु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाण अलेस्सं तु ॥" –गो० जी० गा० ५३१। ३ "मिच्छस्सतिमणवय बार णहि तेउ पम्मेसु" –गो० क० गा० १२०। "सुक्के सदरचउक्क वामतिमबारस च णव अत्थि।" –गो० क० गा० १२। ४ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।" –गो० क० गा० १२०। ५ 'कम्मेव अणाहारे।"–गो०क०गा० १२१।

[परत्थाणसण्णियास-परूवणा]

१०५. परत्थाणसण्णियासे पगदं दुविधो ओघे० आदे०। ओघे० आभिणिबोधियणा० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंसणा० पंचंत० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदुगुं० चदुआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थयरं सिया बं०, सिया अबं०। सादं सिया बं०, सिया अबं०। असादं सिया बं०, सिया अबं०। दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बंधगो। ण चेव अबं०। इत्थि० सिया बं०, पुरिस० सिया [बं०], णपुंस० सिया०। तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं०। अथवा तिण्णंपि अबंधगो। वेदभंगो हस्सरदि-अरदि-सोग-दोयुगला० चदुगदि० पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो विहा० तस-थावरादि-णवयुगलाणं। जस० अजस० दोगोदं सादभंगो। यथा आभिणिबोधियणा० तथा

[परस्थान सन्निकर्ष]

१०५ यहाँ परस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है। उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते है। यहाँ सजातीय तथा विजातीय एक साथमे बधनेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणा की गयी है।

ओघसे–आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला–श्रुतादि ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४ तथा अन्तराय ५ का नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—यशःकीर्ति उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध न होनेके कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

निद्रादि पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक हे, स्यात् अबन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—दोनोंका अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती होगा, वहाँ मतिज्ञानावरण ही नहीं है। अतः दोनोंके अबन्धकका अभाव कहा है।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसक वेदका स्यात् बन्धक है। तीनोंमे-से एकतरका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है।

विशेषार्थ—वेदका बन्ध नवमे गुणस्थान पर्यन्त होता है और मतिज्ञानावरणका सूक्ष्मसाम्पराय तक बन्ध होता है। अतः मतिज्ञानावरणके बन्धकके वेदका बन्ध हो तथा न भी हो। इससे यहाँ तीनोंका अबन्धक भी कहा है।

हास्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपांग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ९ युगलका वेदके समान भग है। अर्थात् इनमे-से एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक हैं। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रका सातावेदनीयके समान भग है अर्थात् अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

चदुणाणा० चदुदंस० पंचंतरा० ।

१०६. णिद्दाणिद्दं बंधतो पंचणा० अट्ठदंसणा० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया [बं०], असादं सिया [बं०] । दोण्णं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । एवं वेदणीयभंगो तिण्णि वें० हस्सरदि-अरदिसो० चदुगदि० पंच [जादि] दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं । मिच्छत्त-चदुआयुग परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया [बं०], सिया अबं० । दो-अंगो० छस्संघ० दो विहा० दोसरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्ण दोण्णं पि अबं० । एवं पचलापचला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि०४ ।

१०७. णिद्दं बंधंतो पंचणा० पंचदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारस० चदु-आयु० आहारदुगं पर०उस्सा० आदावुज्जो० तित्थ० सिया० [बं०] सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया [बंधगो] । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं तिण्णि वे० हस्सरदिदोयु० चदुग० पंचजा० दोसरी० छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च । दोअंगो० छसंघ दोविहा० दोसरं सिया [बं०]

श्रुतादि ४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान भग जानना चाहिए ।

१०६ निद्रा-निद्राका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोमे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस स्थावरादि ६ युगल तथा दो गोत्रमे वेदनीयके समान भग है अर्थात् एकतरके बन्धक है । अबन्धक नही है । मिथ्यात्व, ४ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । २ अगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका बन्धक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है । प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकका निद्रानिद्राके समान भग है ।

१०७ निद्राका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय (४ संज्वलनको छोडकर), ४ आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । साता-वेदनीयका स्यात् बन्धक है । असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है । दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नही है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए । २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक

दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो । एवं पचला० ।

१०८. सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगु० तिण्णि-आयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णि वे० हस्सादि-दोयुग० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिदसयुग० दोगो० सिया बं० सिया अबं० । एदेसिं एक्कदरं बं०, अथवा एदेसिं अबंधगो । असादं बंधंतो-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगु०-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०४ (३) मिच्छ० बारसक० तिण्णिआयु परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एक्कदरं बंधगो । ण चेव अबं० । एवं चदुगदि-पंचजादि-दोसरी०-

---

है । इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका बन्धक है अथवा २, [६,] २, २ का भी अबन्धक है । प्रचलाका बन्ध करनेवालेके निद्राके समान भग है ।

१०८ साताका बन्ध करनेवाला —५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायुको छोडकर ३ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है ।

विशेष—साताका बन्धक सयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है, किन्तु ज्ञानावरणादिका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त होता है अतः साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिका बन्ध हो, तथा न भी हो ।

तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अगोपाग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल तथा दो गोत्रका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । इनमे से किसी एकका बन्धक है अथवा इनका भी अबन्धक है ।

असाताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक बिना), ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्त-रायोंका नियमसे बन्धक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । तीन वेदोका स्यात् बन्धक है तथा इनमे-से किसी एकका बन्धक है अबन्धक नही है ।

विशेष—असाता प्रमत्तसयत पर्यन्त बँधता है, तथा वेदका अनिवृत्तिकरणपर्यन्त बन्ध होता है । अत. असाताके बन्धकको वेदोंका अबन्धक नहीं कहा है, कारण यहाँ वेदका बन्ध सदा होगा ।

हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से अन्यतर युगलका बन्धक है अबन्धक नहीं है । ४ गति, ५ जाति, २ शरीर,

छस्संठा० चदुआणु० तसादिणवयुग० दोगोदं च। दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा एदेसिं चेव अबं०। एवं अरदिसोग-अथिर-असुभ-अज्जसगित्तीणं।

१०९. मिच्छत्तं बंधंतो—पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं० असादं सिया बं०। दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णं वेदाणं हस्सरदि० अरदिसो० दोयुग० चदुग० पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगल-दो-गोदाणं च। चदुआयु० परघा०-उस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर०सिया बं०, सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०, अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो।

११०. अपच्चक्खाण० कोधं बं०—पंचणा० छदंसणा० एक्कारसक०-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि०पंचंत० णियमा बं०। सेसं मिच्छत्तभंगो।

---

६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका भी इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए। दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है, अथवा इनका भी अबन्धक है।

अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्तिका इसी प्रकार जानना चाहिए।[1]

विशेष—असाताके समान अरति शोकादिकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमे होती है। इस कारण असाताके बन्ध करनेवालेके समान इनका भी वर्णन कहा है।

१०९ मिथ्यात्वका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण-शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है अबन्धक नहीं है।

३ वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनु-पूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए, अर्थात् इनमे-से एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। चार आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। दो अगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ में-से एकतरका बन्धक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है।

विशेष—एकेन्द्रियके अगोपांग, सहनन, विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा इन प्रकृतियोंका अबन्धक कहा है।

११० अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्त-रायोंका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बन्धकके समान भग जानना

---

१ "छट्ठे अथिर असुह असादमजस च अरदि सोगं च।"—गो क० गा० ९८।

णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणुबं०४ चदुआयु० पर०-उस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । एवं तिण्णं कसाया० । पच्चक्खाणावरणी० कोध बं०–पंचणा० छदंस० सत्तक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं अट्ठकसा० पर० उस्सा० चदु आयु० आदावुज्जो० तित्थय०सिया बं०, सिया अबं० । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं तिण्णं कसायाणं । कोधसंज० बंधंतो–पंचणा० चदुदंस० तिण्णं संज० पंचंतरा० णियमा [बंधगो] । पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदु० चदुआयु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दोवेदणी० सिया बं० । दोण्णं एक्कद० [बंधगो] । ण चेव अबं० । एवं जस० अज्जस० दोगोदाणं । इत्थिवे० सिया०, पुरिस० सिया० णपुंस० सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं [बंधगो] । अथवा तिण्णंपि अबं० । एव हस्सरदि-अरदिसोग-दोयुगला० चदुग०-

---

चाहिए। विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, आयु ४, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभका अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४), परघात, उच्छ्वास, ४ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रकृतियोंके विषयमे मिथ्यात्वके बन्धकके समान वर्णन जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका बन्ध करनेवालेके प्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

सज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ सज्वलन, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण (निद्रापचक), मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो वेदनीयका स्यात् बन्धक है। दोमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् इनमे-से अन्यतरके बन्धक है। अबन्धक नही है।

विशेष—संज्वलन क्रोधका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध पाया जाता है तथा यशःकीर्ति, उच्चगोत्रका सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण यहाँ इनका अबन्धक नहीं कहा गया है।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनमे-से एकतरका बन्धक है। तीनका भी अबन्धक है।

विशेष—वेदका बन्ध ९वे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा संज्वलन क्रोधका बन्ध ९वे गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है। इस कारण यहाँ वेदोंका अबन्धक भी कहा है।

पंचजादि-दो-सरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो विहा० तसादिणव-युगलाणं। एवं माणसंज०। णवरि दोसंज० णियमा ब०। एवं चेव मायासंज०। णवरि लोभसंज० णियमा बंध०। लोभसंजलणं बंधंतो-पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं०। मिच्छत्तं पण्णारसकसा० सिया बं०। सेसं कोधसंजलण० भंगो।

१११. इत्थिवेदं बंधंतो पंचणा० णवदंसणा० सोलसक० भयदुगुं० पंचिं० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णियमा बध०। सादासादं सिया बं०। दोण्णं वेदणीयाणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोयुग० तिण्णि-गदि-दो-सरीर-छस्संठाणं दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। मिच्छत्तं तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० सिया बं०। छण्णं एक्कदरं बं०। अथवा छण्णंपि अब०।

११२. पुरिसवेदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदुगु० तिण्णि आयु० पंचिदिं-आहारदु० तेजाक०

हास्य रति, अरति-शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका बन्धक है तथा अबन्धक भी है।

संज्वलन मानका बन्ध करनेवालेके सज्वलन क्रोधके समान भग है। विशेष, संज्वलन माया तथा लोभका नियमसे बन्धक है। सज्वलन मायाका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है। विशेष, संज्वलन लोभका नियमसे बन्धक है। सज्वलन लोभका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। मिथ्यात्व, १५ कषायोंका स्यात् बन्धक है। शेष प्रकृतियोका सज्वलन क्रोधके समान भग है।

१११ स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। साता, असाताका स्यात् बन्धक है। दोमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोडकर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमे एकतरका बन्धक है, अबन्धक नही है। मिथ्यात्व, मनुष्य-तिर्यंच-देवायु, उद्योतका स्यात् बन्धक है स्यात् अबन्धक है। ६ संहननका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा ६ का भी अबन्धक है।

११२ पुरुषवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अन्तरायोका नियमसे बन्धक है।

विशेष—पुरुषवेदका बन्ध नवमे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है और ज्ञानावरणादिका इसके आगे तक बन्ध होता है अतः पुरुषवेदके बन्धकको ज्ञानावरणादिका नियमसे बन्धक कहा है।

५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायु बिना ३ आयु, पंचेन्द्रिय,

वण्ण०४ अगु०४ उज्जोव-तस०४ णिमि० तित्थय० सिया बं० । सिया अबं० । सादं सिया बं० । असादं सिया बंध० । दोण्णं वेदणी० एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं जस० अज्जस० दोगोदाणं । हस्सरदि सिया० । अरदिसो० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एकद० । अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णिगदि-दोसरीर छस्संठाणं दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दोविहा० थिरादिपंचयु० ।

११३. णपुंस० बंधंतो पंचणाणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलस० भयदुगु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । साद सिया० ब । असादं सिया० । दोण्णं एकदरं बं० । ण चेव० [अबंधगो] । एवं हस्सरदि० अरदिसोगाणं दोयु० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरी०-छसंठाण० तिण्णि आणु० तसथावरादि-णवयुगलाणं दोगोदाणं । तिण्णिआणु०[आयु०]परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं० । दोअंगो० छस्सघ० दोविहा० दोसर० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं० । अथवा एदेसिं अबं० ।

आहारकद्विक, तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उद्योत, त्रस ४, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भग है । हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमे से अन्यतरका बन्धक है, अथवा दोनों युगलोंका भी अबन्धक है । नरकगतिको छोड़ शेष ३ गति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अंगोपाग, ६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पच युगलका इसी प्रकार है अर्थात् इनमे-से एकतरका बन्धक है अथवा सबका भी अबन्धक है ।

११३ नपुंसकवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है ।

विशेष—नपुसकवेदका बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमे होता है इस कारण यहाँ मिथ्यात्वका भी नियमसे बन्ध कहा है ।

साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक ये दो युगल, देवगतिको छोडकर ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रोका इसी प्रकार भंग है । देवायुको छोडकर शेष ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । २, ६, २, २ में से अन्यतर बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का अबन्धक है ।

विशेष—यहाँ तीन आनुपूर्वीका पहले कथन आ चुका है, अतः पुनः आगत 'तिण्णि आणु०' के स्थानमे तीन आयुका द्योतक 'तिण्णि आयु' पाठ उपयुक्त जँचता है ।

११४. हस्सं बंधं० पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० रदिभयदु० पंचंत० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० तिण्णिआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० ४ आदावुज्जो० [णिमि०] तित्थय० सिया बं०, सिया अबंधगो। सादं सिया बं०, असादं सिया बं०। दोण्णं एक्कदरं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णि वेद० जस० अजस० दोगोदाणं। तिण्णिगदि सिया०, सिया अबं०। तिण्णं एक्कदरं बं० अथवा अबं०। एवं गदिभंगो पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिणवयुग०। एवं रदीए०।

११५ भयं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० दुगुं० पंचंत० णियमा बं०। पंचदं० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० आहारदुगं तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। सादं सिया०। असादं सिया०। दोण्णं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबं०। एवं तिण्णिवे०-जस-अज्ज०-दोगोदं०। चदुगदि सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्क०। अथवा चदुण्णंपि अबंध०। एवं गदिभंगो

---

११४ हास्यका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, रति, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, नरकायुको छोडकर तीन आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, आताप, उद्योत [निर्माण] तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, दो मे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और दो गोत्रोंमें वेदनीयके समान भग है। ३ गति (नरक बिना) का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है।

विशेष—अपूर्वकरणके अन्तिम भ ग तक हास्यका बन्ध होता है किन्तु गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठवे भाग पर्यन्त होता है। इस कारण हास्यके बन्धकको गतित्रयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भग है अर्थात् एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक है।

रतिका बन्ध करनेवालेके हास्यके समान भंग है।

११५ भयका बन्ध करनेवालेके—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारक-द्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान जानना चाहिए। चार गतिका स्यात् बन्धक है। चारमें से एकतरका बन्धक है। अथवा चारोंका भी अबन्धक है।

पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो-छस्सघ० चदुआणु० दोविहा० तसादिणवयुगलं। एवं दुगुंच्छाए।

११६. णिरयायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० असादावे० मिच्छ० सोलसक० णपुंसक० अरदिसोगभयदु० णिरयगदि-पचिं० वेगुव्विय० तेजाकम्म० हुंडसंठा० वेगुव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणु० अगुरु०४ अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्कं णिमिणं णीचागोदं पंचंत० णियमा बं०।

११७. तिरिक्खायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगु० तिरिक्खगदि-तिण्णिसरी०-वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णीचागो० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं०, असादं सिया बंध०। दोण्णं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एस भंगो तिण्णिवेद-हस्सादिदोयुग० पंचजा० छस्संठा० तस-थावरादिणवयुगलाणं०। मिच्छत्तं ओरालि० अंगो० परघाउस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। छस्सघ० दोविहा० दोसरं सिया बंध०। एदेसिं एक्कदर० बं० अथवा अबं०।

११८. मणुसायुगं बंधंतो पंचणा० छदंसणा० बारसक० भय-दुगुंछा०-मणुसग०

विशेष—गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त होता है तथा भयका अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तक बन्ध होता है। इस कारण भयके बन्धकको गतिचतुष्टयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भग जानना चाहिए। जुगुप्साका बन्ध करनेवालेके भयके समान भग जानना चाहिए।

११६ नरकायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्माण शरीर, हुडकसस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क, निर्माण, नीचगोत्र, तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है।

११७ तिर्यंचायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, ३ शरीर (औदारिक तैजस-कार्माण), वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे वेदनीयके समान जानना चाहिए। अर्थात् एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इनमे से एकतरका बन्धक है, अथवा किसीका भी बन्धक नहींहै।

११८ मनुष्यायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय,

पंचिंदि० तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उपघा० तस-बादर-पत्तेय०-णिमिण-पंचंत० णियमा बंध०। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ परघाउस्सा० तित्थय० सिया बंध०, सिया अबं०। साद सिया०। असादं सिया०। दोण्णं एक्कद० बं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दो युग० छस्संठा० छस्संघ० पज्जत्तापज्ज० थिरादि-पंचयुग० दोगोदाणं०। दोविहाय० दोसरं सिया०। दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध०। अथवा दोण्णं दोण्णंपि अबं०।

११९. देवायुगं बंधंतो० पंचणा० छदंसणा० सादावे० चदुसंज० हस्सरदि-भयदुगु० देवगदि० पंचिंदि० तिण्णिसरीर०-समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिछक्कं णिमि० उच्चागो० पंचंत० णियमा बं०। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदु० तित्थय० सिया०। इत्थि० सिया०। पुरिस० सिया०। दोण्णं वेदाण एक्कदरं०। ण चेव अबं०।

१२०. णिरयगदि बंधंतो णिरयायुभंगो। णवरि णिरयायुं सिया बंधदि। एवं

जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पाँच युगल तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन है। अर्थात् एकतरके बन्धक है। अबन्धक नहीं है। दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। दो, दोमे-से अन्यतरका बन्धक है। अथवा २, २ का भी अबन्धक है।

११९ देवायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, ४ सञ्ज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर (वैक्रियिक-तैजस-कार्माण), समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यान-गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, आहारकद्विक, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। दो वेदोंमे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

१२० नरकगतिका बन्ध करनेवालेके नरकायुके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, नरकायुका स्यात् बन्ध करता है।

विशेष—नरकायुके बन्धकके नियमसे नरकगतिका बन्ध होता है, किन्तु नरकगतिके बन्धकके नरकायुके बन्धका ऐसा कोई नियम नहीं है। नरकायुका बन्ध हो अथवा बन्ध न भी हो। गति बन्ध तो सदा होता रहता है, किन्तु आयुका बन्ध तो सदा नहीं होता है।

णिरयाणुपुं० । तिरिक्खगदि तिरिक्खायुभंगो । णवरि तिरिक्खायुं सिया० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि मणुसायुभंगो । णवरि मणुसायुं सिया बं० । एवं मणुसाणुपु० । देवगदिं बंधंतो पंचणाणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया० । असादं सिया० । दोण्णं वेदणी० एक्कदरं० । ण चेव अबं० । एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोण्णं युगलाणं । देवायु सिया०, सिया अबं० । हेट्ठा उवरि देवायुभंगो० । णामं सत्थाण०भंगो । एवं देवाणु० ।

१२१. एइंदियं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० णपुंस० भय-दुगुं० णीचा० पचंत० णियमा बं० । सादासादं चदुणोकसाय० तिरिक्खगदिभंगो० । तिरिक्खायुं० सिया० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आदाव-थावराणं । विगलिंदिय-सुहुम-अपज्ज० साधारणा हेट्ठा उवरि एइंदियभंगो । णामं (णामाणं) अप्पप्पणो

नरकानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके नरकगतिके समान भग जानना चाहिए।

तिर्यंचगतिका बन्ध करनेवालेके तिर्यंचायुके समान भग जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। तिर्यंचानुपूर्वीमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—तिर्यचायुके बन्धकके नियमसे तिर्यचगतिका बन्ध होता है, किन्तु तिर्यचगतिके बन्धकके तिर्यंचायुके बँधनेका कोई निश्चित नियम नहीं है। ऐसा ही मनुष्यगतिमे भी है।

मनुष्यगतिका बन्ध करनेवालेके मनुष्यायुके समान भग है। विशेष, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमे भी इसी प्रकार है।

देवगतिका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोका नियमसे बन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक हे। दो वेदनीयमे-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नही है। हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंमे-से अन्यतर युगलका बन्धक है। अबन्धक नही है। देवायुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। अधस्तन उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोमे देवायुका भग जानना चाहिए। नाम कर्मकी प्रकृतियोंमें स्वस्थान सन्निकर्षके समान भग है।

विशेषार्थ—देवायुके बन्धकके तो देवगतिके बन्ध सन्निकर्षका नियम है, किन्तु देवगतिके बन्धकके साथ देवायुके बन्धका ऐसा नियम नहीं है। दूसरी बात यह है कि देवायुका बन्ध अप्रमत्त सयत पर्यन्त है, जब कि देवगतिका अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण देवगतिके बन्धकके देवायुका अबन्ध भी कहा है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान भंग जानना चाहिए।

१२१ एकेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुमकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता, असाता, ४ नोकषायमे तिर्यंचगतिके समान भग है। तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। नाम कर्मकी प्रकृतिके बन्धके विपयमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग जानना चाहिए। आताप तथा स्थावरके बन्धकके इसी प्रकार भग है। विकलेन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणमे—अधस्तन,

सत्थाणभंगो कादव्वो । पंचिंदियं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० सिया बं० । सिया अबं० । दोवेद० सत्तणोक० दोगोदा० सिया बं०, सिया अबं० । एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२२. ओरालियं बं० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० पंचतरा० णियमा बं० । दोवेदणी०-तिण्णि वे० हस्सरदि-दोयुग० दोगोदाणं सिया बं० सिया अबं० । एदेसिं एक्कदरं० । ण चेव० । थीणगिद्धिति० मिच्छ० अणंताणुबं०४ दो आयु० सिया० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२३. वेगुव्विय बंधंतो हेट्ठा उवरि देवगदिभंगो । णवरि तिण्णि वेदं दोगोदं सिया०, सिया अबं० । एदेसि०एक्कदर० । ण चेव अबं० । णिरय-देवायु० सिया० ।

उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है । विशेष, नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

पचेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयुका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है ।

विशेष—पचेन्द्रिय जातिका बन्ध आठवे गुणस्थान तक होता है तथा निद्रादि दर्शनावरण ५ आदिका उसके नीचे तक होता है । इस कारण यहाँ स्यात् अबन्धक कहा है ।

दो वेदनीय, सात नोकषाय, तथा २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इनमें-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान जानना चाहिए ।

१२२ औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक रहित) १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है ।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध असयत गुणस्थान पर्यन्त है । इससे उसके बन्धकके ६ दर्शनावरण, १२ कषायादिका नियमसे बन्ध कहा गया है ।

दो वेदनीय, ३ वेद, हास्य-रति, अरति-शोक दो युगल, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इनमे एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का स्यात् बन्धक है । नाम कर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए ।

१२३ वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवालेके उपरितन तथा अधस्तन बँधनेवाली प्रकृतियोंमे देवगतिके समान भंग है । विशेष, ३ वेद, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इनमे-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नही है ।

विशेषार्थ—देवगतिमें पुरुषवेद, स्त्रीवेद, एवं उच्चगोत्रका ही सद्भाव है, किन्तु यहाँ वैक्रियिकशरीरके बन्धकोंके वेदत्रय, तथा गोत्रद्वयका वर्णन किया है, कारण वैक्रियिकशरीरके साथ देवगति या नरकगतिका बन्ध होता है । इसी दृष्टिसे नपुंसकवेद, और नीचगोत्रका भी बन्ध कहा है ।

णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एवं वेगुव्विय० अंगो०।

१२४. आहारसरीरं बंधंतो पंचणा० छदंस० सादावे० चदुसंज० पुरिसवे० हस्सरदिअरदि (?) भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं०। देवायु० सिया बं०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं आहारस० अंगो०। पंचिंदिय० जादिभंगो तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ थिरादि पंचण्णं गदीणं। हेट्ठा उवरि०। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो। णवरि समचदु० पसत्थवि० थिरादिपंचण्णं पगदीणं णिरयायुगं णत्थि।

१२५ णग्गोदं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० पंचंतरा० णियमा बं०। दोवेदणीय० सत्तणोक० दोगोदं सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। मिच्छत्त-तिरिक्खमणुसायुगं सिया बं०। णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एसभंगो सादियसंठा० कुज्जसं० वामणसं० चदुसंघडणाणं।

नरकायु देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थानसन्निकर्षवत् भंग है।

वैक्रियिक अंगोपांगमें वैक्रियिक शरीरवत् भग जानना चाहिए।

१२४ आहारकशरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता वेदनीय, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्षमे वर्णित भग है।

विशेष—आहारकशरीरका बन्ध अप्रमत्त दशामें होता है। अरति प्रकृतिकी बन्ध-व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है, अतः आहारक शरीरके बन्धके साथ अरतिका सन्निकर्ष नहीं होगा। इस कारण मूल पाठमे 'अरदि' अयुक्त प्रतीत होती है।

आहारकशरीर-अगोपांगके बन्ध करनेवालेके आहारक शरीरवत् भंग है।

तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोंका उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंके विषयमे पचेन्द्रिय जातिके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए। विशेष, समचतुरस्र-सस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोके नरकायुका बन्ध नहीं है।

१२५ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। २ वेदनीय, ७ नोकषाय, दो गोत्रका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, तिर्यंचायु, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग है।

स्वातिसस्थान, कुब्जक संस्थान, वामनसंस्थान, वज्रवृषभनाराच तथा असम्प्राप्ता-सृपाटिका सहननको छोड़कर शेष ४ संहननके बन्धकके इसी प्रकार भग जानना चाहिए।

विशेष—संस्थान ४ और संहनन ४ सासादन गुणस्थान पर्यन्त बँधते हैं। अतः इनका समान रूपसे वर्णन किया है।

हुंडसठाणं बं० पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० पंचंत० णियमा० । दोवेद० सत्तणोक० दोगोद० सिया० । सिया अबं० । एदेसिं एक्कदरं० ण चेव अबं० । तिण्णि आयु सिया० । णामाणं सत्थाणं०भंगो । एवं [असंपत्त०] दूभग० अणादे० । ओरालि० अंगो० वज्जरिसह० ओरालियसरीरभंगो । णामाणं सत्थाण०भगो ।

१२६. उज्जोवं बंधंतो हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो । अप्पसत्थविहाय० बंधंतो हेट्ठा उवरि णग्गोधभंगो । णवरि णिरयायु० सिया बं० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं दुस्सरं । जसगित्तिं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंसणा० मिच्छत्तं० सोलसक० भय-दुगुंछा०-तिण्णिआयु० सिया बं० । सिया अबं० । सादं सिया बं०, सिया अबं० । असादं सिया बं० [सिया अबं०]

हुण्डक संस्थानका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। दो वेदनीय, ७ नोकषाय, दो गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इनमे-से एकतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । नरक-मनुष्य तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षके समान भग है ।

[असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन] दुर्भग, अनादेयके बन्ध करनेवालोंके हुडक सस्थानवत् भंग जानना चाहिए । औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच सहननके बन्ध करनेवाले औदारिक शरीरके समान भग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

१२६ उद्योतका बन्ध करनेवालेके—उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंका तिर्यंचगतिके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्ध करनेवालेके उपरितन अधस्तन बँधनेवाली प्रकृतियोंका न्यग्रोधपरिमण्डलसस्थानके समान भग जानना चाहिए। विशेष, नरकायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंमे स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अप्रशस्तविहायोगति तथा न्यग्रोधपरिमण्डलसस्थानका बन्ध सासादन गुणस्थान पर्यन्त होता है। इस कारण न्यग्रोधसस्थानके समान अप्रशस्तविहायोगतिका वर्णन बताया है। इतना विशेष है कि नारकियोंमें न्यग्रोधसंस्थान नही है, किन्तु वहाँ दुर्गमनका सद्भाव पाया जाता है। इस कारण दुर्गमनके बन्धकके नरकायुका भी बन्ध कहा है।

दुस्वर प्रकृतिका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार भग है। यशःकीर्तिका बन्ध करनेवाला ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—यद्यपि कषायोंका उदय सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु उनका बन्ध अनिवृत्तिकरण पर्यन्त होता है। अतः सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बँधनेवाले यश-कीर्तिके बन्धकके कषायोंके बन्धका नियम नहीं है। इससे यहाँ ज्ञानावरणादिके साथ कषायोंका वर्णन नहीं हुआ है।

दर्शनावरण ५ (निद्रापंचक), मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयुका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है।

दोण्णं एकदरं० । ण चेव अबं० । एवं दोगोद० । तिण्णि वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । अथवा अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो । तित्थयरं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । णिद्दा-पचला-अट्ठक० दो आयु सिया बं० सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया बं० । दोण्णं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२७. उच्चागोदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० दोआयु० पंचिंदि० तिण्णिसरी०-आहार० अंगो० वण्ण० ४ [अगु०४] तस०४ णिमिणं तित्थयरं सिया बं० सिया अबं० । दो वेदणी० जस० अजस० सिया बं० । एदेसिं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि वेदं सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । अथवा अबं० । एस भंगो चदुणोक० दोगदि० दोसरीरं छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिपंच-युगलाणं । णीचागोदं बंधंतो थीणगिद्धिभंगो । देवायु-देवगदिदुगं उच्चागोदं वज्जं० ।

असाताका स्यात् बन्धक है [स्यात् अबन्धक है] दोमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । दो गोत्रका वेदनीयके समान भंग है । तीन वेदका स्यात् बन्धक है । इनमें-से अन्यतमका बन्धक है । अथवा तीनोंका भी अबन्धक है । हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है ।

तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है । निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण रूप कषायाष्टक, देव-मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोमें-से अन्यतरका बन्धक है । अबन्धक नहीं है । हास्यादि ४ नोकषायोंका वेदनीयके समान भंग है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है ।

१२७ उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु (मनुष्य-देवायु), पचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, [अगुरुलघु ४], त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है । दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका स्यात् बन्धक है । इनमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है । तीन वेदका स्यात् बन्धक है । स्यात् अबन्धक है । तीन वेदोंमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका अबन्धक है । हास्यादि ४ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पांच युगलोंका इसी प्रकार भंग है ।

नीचगोत्रका बन्ध करनेवालेके स्त्यानगृद्धिवत् भंग है । विशेष, यहाँ देवायु, देवगतित्रिक तथा उच्चगोत्रको छोड़ देना चाहिए ।

१२८. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदिय तस०२ पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालियकाजो० लोभ० चक्खु० अचक्खु० सुक्क० भवसि० सण्णि-आहारगत्ति। ओरालियमिस्स० सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देवगदि-चदुसरीर० दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु०४ आदाबुज्जोव० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं०, सिया अबं०। सेसाणं वेदादीणं सव्वाणं सिया बं०। एदाणं एक्कदरं बं०। अथवा अबं०। एवं कम्म०-अणाहारगेसु। णवरि आयुवज्ज० इत्थिवेद०। आभिणिबोधि० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। सेसाणं ओघभंगो। एवं पुरि० णपुंस० कोध-माणमाया०। णवरि माणे तिण्णि संजल०। मायाए दो संज०। सेसाणं ओघो। अवगदवेदे ओघं।

१२८ आदेशसे—मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, संज्ञी, आहारक तक ओघवत् जानना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, साताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य-तिर्यंचायु[1], देवगति, औदारिक-वैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, २ अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है।

विशेष—साताका सयोगीजिन पर्यन्त बन्ध है। ज्ञानावरणादिका सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बन्ध है। इस कारण साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिके बन्धका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है।

वेदादि शेष सर्व प्रकृतियोंका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है। अथवा सबका अबन्धक है।

[2]कार्माण काययोग तथा अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आयुओंको छोड़ देना चाहिए। स्त्री वेदमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका ओघके समान भग जानना चाहिए।

पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोध, मान, माया कषायोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। विशेष, मानमे, तीन संज्वलन और मायामें दो संज्वलन है। शेषका ओघवत् भग जानना चाहिए।

अपगत वेदमें—ओघके समान भग जानना चाहिए।

१ "ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयायुहारणिरयदुगं ॥"–गो० क० गा० ११६।

२ "कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगपि णव छिदी अयदे।"–गो० क० गा० ११९।

१२९. आभिणि० सुद० ओधिणा० मणपज्ज० संजद० समाइ० छेदो० परिहार० सुहुम० संजदासंजद० ओधिदं० सम्मादि० खइग० वेदग० उवसम० ओघभंगो। णवरि मिच्छत्त-असंजदपगदीओ वज्जं। ओरालिय० ओरालियमिस्स० इत्थिवे० किण्णणीलासु तित्थयरं देवगदिसंयुतं कादव्वं। पम्मसुक्क-लेस्सा० इत्थिवेदं बंधंतो ओरालियसरीरं धुवं बंधदि। सेसं णिरयादि याव असण्णित्ति ओघेण अप्पप्पणो सामित्तेण च साधूण भाणिदव्वं।

एवं परत्थाणसण्णियासो समत्तो।



---

१२९ आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मन पर्ययज्ञान, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, सयतासयत, अवधिदर्शन, सम्यक्त्वी, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, उपशम सम्यक्त्वमे ओघवत् भग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ मिथ्यात्व तथा असयत सम्बन्धी प्रकृतियोंको छोड़ देना चाहिए। औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद, कृष्ण और नील लेश्याओंमे—तीर्थंकरका बन्ध देवगति सयुक्त करना चाहिए।

पद्म, शुक्ल लेश्यामे—स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाला औदारिक शरीरका नियमसे बन्ध करता है। नरक गतिसे लेकर असंज्ञी पर्यन्त ओघसे अपने-अपने स्वामित्वको जानकर शेष प्रकृतियोंका कथन करना चाहिए।

इस प्रकार परस्थानसन्निकर्ष समाप्त हुआ।



[भंगविचयाणुगम-परूवणा]

१३०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविधो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघे० पचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० आहारदुगं वण्ण०४ अगुरु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थयरं पंचंत० अत्थि बंधगा अबंधगा च। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं पगदीणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० चदुग० पंचजादि-दोसरीर-छसंठाणं दोअंगो० छसंघ० चदुआणु० दोविहाय० तसादिदसयुगलं दोगोदाणं। दो अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० अत्थि बंधगा य अबंध०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अत्थि बंधगा य अबंधगा य। णिरय-मणुस-देवायूणं सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगे (गो) य, सिया अबंधगा य बंधगा य। तिरिक्खायु अत्थि बंधगा य अबंधगा य। चदुण्णं आयुगाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१३१. एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-भवसिद्धि० आहारगत्ति०।

[भंगविचयानुगम]

१३० नाना जीवोकी अपेक्षा भगविचयानुगमका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है।

विशेषार्थ—भगविचयका अर्थ है अस्ति नास्ति रूप भंगोंका विचार। यहाँ कर्म-प्रकृतियोके सद्भाव, असद्भावका विचार किया गया है।[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्त-रायके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है।

साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अबन्धक है। दोनो प्रकृतियोंके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। ७ नोकषाय (भय जुगुप्साको छोड़कर), ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि १० युगल, २ गोत्रमें वेदनीयके समान भग है। २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। अथवा २, ६, २, २ के अनेक बन्धक है, अनेक अबन्धक है। नरक, मनुष्य, देवायुके किसी अपेक्षा सब अबन्धक है, स्यात् अनेक अबन्धक, एक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक तथा अनेक बन्धक है। तिर्यंचायुके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। चारों आयुके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं।

१३१ काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारकमार्गणामें इसी प्रकार

---

१ विचयो विचारणा। केसिं ? अत्थि णत्थि त्ति भगाणं। — खुद्दाबंध पृ० २३७, सूत्र १ की टीका।

णवरि भवसिद्धिय-सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणी० सिया सव्वे सिं० बंधगा य। सिया बंधगा य। अबंधगा य। सिया बंधगा य अबंधगा य। सेसाणं सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि (?)

१३२. आदेसेण णेर० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० पंचिदि० ओरालिय० तेजाकम्म० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबंधि०४ उज्जोवं तित्थय० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सादस्स अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादस्स अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० दोगदि-छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। दो-आयुगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगो य। एवं सव्व-णिरयाणं सणक्कुमारादि उवरिमदेवाणं।

ओघके समान भग समझना चाहिए। विशेष, भव्यसिद्धिकमे—साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनो वेदनीयोंके कदाचित् सर्व बन्धक है। कदाचित् अनेक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। शेपमे साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोके सब बन्धक है। अबन्धक नहीं हैं। (?)

विशेषार्थ—अयोगी जिनके बन्धके कारण योगका अभाव हो जानेसे बन्धका अभाव है। अतः यहाँ साता असाताके अबन्धक नही है यह कथन विचारणीय है।

१३२ आदेशकी अपेक्षा-नारकियोमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके सब बन्धक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी, उद्योत और तीर्थंकरके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोके सब बन्धक है। अबन्धक नही है।

विशेष—नरकगतिमे आदिके ४ गुणस्थान होनेसे दोनों वेदनीयके अबन्धक नहीं पाये जाते हैं।

७ नोकषाय, २ गति, ६ संस्थान, ६ संहनन २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रोमें वेदनीयका भंग जानना चाहिए। २ आयु (मनुष्य तिर्यंचायु) के स्यात् (कदाचित्) सब अबन्धक है। कदाचित् अनेक अबन्धक और एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक और अनेक बन्धक हैं। इसी तरह सम्पूर्ण नरकोंमे जानना चाहिए। सनत्कुमारादि ऊपरके देवोंमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

१३३. तिरिक्खेसु णिरयभंगो। णवरि चदुआयु-दोअंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० ओघं। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि चदुण्हं आउगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य।

१३४. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सव्वे बंधगा, अबंधगा णत्थि। ओरालिय० अंगो० परघादुस्सा० आदाउज्जो० अत्थि बंधगा य, अबंधगा य। छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो। सेसं णिरयभंगो।

१३५. एवं सव्व-अपज्जत्ताणं, सव्व-एइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च। णवरि एइंदिय-पंचकायाणं आयूण दूण (साधेदूण) भाणिदव्व।

१३६. मणुस०३ ओघं। णवरि सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य, अबंधगो य। सिया बंधगो य अबंधगा य। चदुण्णं आयुगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। एवं पंचिंदि० तस०२-

१३३ तिर्यंचोमे–नरकके भग समान समझना चाहिए। विशेष ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघके समान समझना चाहिए।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय-पर्याप्तक-तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि ४ आयुके स्यात् सब अबन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है।

१३४ पचेन्द्रिय तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे—ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके सब बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतके अनेक बन्धक हैं और अनेक अबन्धक है। ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघके समान भग समझना चाहिए। शेषका नरकवत् भग समझना चाहिए।

१३५ इस तरह सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तक, सम्पूर्ण एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचकायोंके भंग समझना चाहिए। विशेष, एकेन्द्रिय और पचकायोंमें आयुको जानकर कहना चाहिए, अर्थात् इनमे मनुष्य और तिर्यंच आयुका ही बन्ध होता है।

१३६ मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनीमें–ओघके समान है। विशेष, साताके अनेक बन्धक है, अनेक अबन्धक है। असाताके अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक है। दोनों वेदनीयोंके स्यात् सर्व बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और एक अबन्धक है। स्यात् एक जीव बन्धक और अनेक जीव अबन्धक है। चारों आयुके स्यात् सर्व अबन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है तथा एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक और अनेक बन्धक है।

तिण्णिमण० तिण्णिवचि० संजद-सुक्कलेस्सियाणं । णवरि योगलेस्सासु दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा । अबंधगा णत्थि ।

१३७. मणुस-अपज्जत्ते-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया बंधगो य, सिया बंधगा य । अबंधगा णत्थि । सादं सिया अबंधगो । सिया बंधगो । सिया अबंधगा । सिया बंधगा । सिया अबंधगो य, बंधगो य । सिया अबंधगो य बंधगा य । सिया अबंधगा य, बंधगो य । सिया अबंधगा य बंधगा य । असादं सिया बंधगो । सिया अबंधगो । सिया बंधगा । सिया अबंधगा । सिया बंधगो य अबंधगो य । सिया बंधगो य अबंधगा य । सिया बंधगा य, अबंधगो य । सिया बंधगो (गा) य अबंधगा य । दोण्णं वेदणीयाणं सिया बंधगो । सिया बंधगा य । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-दोआयु० मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्क-

विशेष[1]—शका-भंगविचयमे नानाजीवोंकी प्रधानतासे कथन करनेपर एक जीवकी अपेक्षा भंग कैसे बन सकते हैं ?

समाधान—एक जीवके बिना नानाजीव नहीं बन सकते है । इससे भंगविचयमें नाना जीवोंकी प्रधानता रहनेपर भी एक जीवकी अपेक्षा भी भंग बन जाते हैं ।

इसी तरह पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस पर्याप्तक, ३ मनोयोग, ३ वचनयोग, सयत और शुक्ल लेश्यावालोंके भी जानना चाहिए । विशेषता यह है कि योग और लेश्यामें-दोनों वेदनीयके सर्व बन्धक है, अबन्धक नहीं है ।

१३७ मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माणशरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायका स्यात् एक बन्धक है स्यात् अनेक बन्धक है । अबन्धक नहीं है। साताका स्यात् एक अबन्धक है । स्यात् एक जीव बन्धक है । स्यात् अनेक अबन्धक है । स्यात् अनेक बन्धक है । स्यात् एक अबन्धक, एक बन्धक है । स्यात् एक अबन्धक, अनेक बन्धक है । स्यात् अनेक अबन्धक, एक बन्धक है । स्यात् अनेक अबन्धक अनेक बन्धक है । असाताके-स्यात् एक बन्धक है । स्यात् एक अबन्धक है । स्यात् अनेक बन्धक है । स्यात् अनेक अबन्धक है । स्यात् एक बन्धक, तथा एक अबन्धक है । स्यात् एक बन्धक, अनेक अबन्धक है । स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है स्यात् अनेक बन्धक अनेक अबन्धक है । दोनों वेदनीयों-का स्यात् एक बन्धक है । स्यात् अनेक बन्धक हैं । अबन्धक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, ४ त्रस, स्थिरादिषट्क,

१ "णाणाजीवप्पणाए कधमेकभंगुप्पत्ती ? ण एगजीवेण विणा णाणाजीवाणुप्पत्तीदो ।" –जयध० पृ० ३९१ ।

दुस्सर उच्चागोदाणि। असादभंगो णवुंसकवे० अरदिसो० तिरिक्खगदि० एइंदिय० हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं। तिण्णिवेद-हस्सादि-दोयुग० दोगदि० पंचजादि-छस्संठा० दोआणुपुव्वि-तसथावरादिणवयुगला० दोगोदाणं सिया बंधगो। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि। दोआयु-छस्संघ० दोविहा० दोसर० सादभंगो कादव्वो पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं मणुस-अपज्जत्तभंगो वेउव्वियमिस्स० आहारकाय० आहारमिस्स० सासण० सम्मामिच्छ०। णवरि अप्पप्पणो धुविगाओ णादव्वाओ भवंति। वेउव्वियमिस्स मिच्छत्त असादभंगो। तित्थयरं सादभंगो। आहार० आहारमिस्स तित्थयरं सादभंगो। सासणे तिरिक्खगदि-संयुता असादभंगो। सेसाणं सादभंगो। सम्मामि० मणुसगदि-संयुताओ असादभंगो। सेसाणं सादभंगो।

१३८. देवेसु-भवणवासिय याव ईसाणत्ति णिरयभंगो। णवरि ओरालि० अंगो० आदावुज्जोवं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। छस्संघड० दो विहाय० दोसर० ओघ-भंगो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य, अबंधगा य। थीणगिद्धितिय मिच्छत्त० बारसक० आहारदु० परघाउस्सा-

दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, ४ स्थावरादि, अस्थिरादि पचक, नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, २ गति, ५ जाति, ६ सस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नवयुगल और २ गोत्रके स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। २ आयु, ६ सहनन, २ विहायोगति और २ स्वरके प्रत्येकसे और सामान्यसे साताके समान भग करना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्र, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सासादनसम्यक्त्व, तथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वगुणस्थानमे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यकी तरह भग है। विशेष, यहाँ अपनी-अपनी मार्गणामे सम्भवनीय ध्रुव प्रकृतियोंको जानना चाहिए। वैक्रियिक मिश्रमे—मिथ्यात्वका असाताके समान भग होता है। तीर्थंकरका साताके समान भग होता है। आहारक, आहारकमिश्रमे-तीर्थंकरका साताके समान भंग है। सासादनमे-तिर्यंचगति मिलाकर असाताके समान भग है। शेषमें साताके समान भंग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमें-मनुष्यगति मिलाकर असाताके समान भंग जानना चाहिए। शेषमें साताके समान भंग है।

१३८. देवोंमे—भवनवासियोंसे ईशान स्वर्ग पर्यन्त नरकगतिके समान भंग है। विशेष यह है कि औदारिक अगोपाग, आतप, उद्योतके अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके ओघके समान भंग हैं।

दो मन-दो वचनयोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सब बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है। स्यात अनेक बन्धक हैं. अनेक अबन्धक है। स्त्यान-

सआदावुज्जोव-तित्थयरं अत्थि बंधगा अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णपुंस० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। तिण्णं वेदाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। एवं तिण्णं-वेदाणं भंगो णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदि-पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० चदु-आणुपु० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं। सेसाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० चक्खुदं० अचक्खुदं० ओधिदं० त्ति।

१३९. ओरालियमिस्स–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरी०-वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णपुंस० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। तिण्णि-वेदाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। एवं वेदाणं भंगो [हस्सादि] दोयुगल-तिण्गिगदि-पंचजादि छस्संठा०। दोआयु ओघं। देवगदि०४

गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। साताके अनेक बन्धक, अनेक अबन्धक हैं। असाताके अनेक बन्धक अनेक अबन्धक हैं। दोनों वेदनीयके सर्व बन्धक है, अबन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेदके अनेक बन्धक, अनेक अबन्धक है। तीनों वेदोंके स्यात् सर्व बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और अनेक अबन्धक है। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, २ गोत्रोंके तीनों वेदोके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंके अनेक बन्धक, अनेक अबन्धक है।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, और अवधिदर्शन, तथा सञ्ज्ञी मार्गणामें इसी प्रकार जानना चाहिए।

१३९ औदारिक मिश्रकाययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सब बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक और एक अबन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। असाताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं। दोनों वेदनीयके सब बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक-वेदके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। तीनों वेदोंके स्यात् सब बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक और एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं और अनेक अबन्धक हैं। हास्य-रति, अरति–शोक ये दो युगल, ३ गति, ५ जाति, ६ संस्थानमें वेदके समान भग है। दो आयु

तित्थय० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो।

१४०. एवं कम्मइगे। णवरि आयुगं णत्थि।

१४१. इत्थि० पुरिस० णवुंस० कोधादि०४ सामाइ० छेदो० धुवपगदीओ मोत्तूण सेसाणं दोण्णं मणभंगो।

१४२. अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगित्ति उच्चा० पंचंत० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगो (गा) य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१४३ अकसा०-सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं केवलिणा० केवलिदं०।

१४४. मदि-सुद० विभंग० असंज० किण्ण णील-काउ०-अब्भव० मिच्छादि० असण्णित्ति तिरिक्खभंगो। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वाओ। परिहार-संजदासंजदेसु अप्पप्पणो पगदीओ णिरयभंगो।

(मनुष्य तिर्यंचायु) का ओघके समान भंग है। देवगतिचतुष्क और तीर्थंकरके स्यात् सर्व अबन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक तथा एक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है और अनेक बन्धक है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरमें ओघवत् भग जानना चाहिए।

१४० इसी प्रकार कार्माणकाययोगमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका बन्ध नही है।

१४१ स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोधादि ४, सामायिक, छेदोपस्थापनासंयममे ध्रुव-प्रकृतियोंको छोडकर शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगके समान भंग जानना चाहिए।

१४२ अपगतवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके स्यात् सर्व अबन्धक है। स्यत् अनेक अबन्धक और एकजीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक है, और एक जीव बन्धक हैं (?) विशेषार्थ—यहाँ अनेक अबन्धक तथा एक जीव बन्धक है यह कथन हो चुका है अतः पुनः आगत इस पाठमे यह संशोधन सम्यक् प्रतीत होता है कि अनेक बन्धक है और अनेक अबन्धक है।

साताके नाना जीव बन्धक हैं और अनेक अबन्धक हैं।

१४३ अकषायियोमे—साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। केवलज्ञान और केवलदर्शनमे—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१४४ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, असंयत, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, अभव्य-सिद्धिक मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञी जीवोंमें तिर्यंचोंके समान भंग जानना चाहिए। और इनकी जो कुछ विशेषता है वह भी जाननी चाहिए। परिहारविशुद्धि संयम और संयतासंयतोंमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंका नरकवत् भंग जानना चाहिए।

१४५. सुहुमसं० पंचणा० चदुदंस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० सिया बंधगो। सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। यथाक्खादे-सादं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। तेउ० सोधम्मभंगो। पम्म० सणक्कुमारभंगो। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो। सम्मादि० खइगसं० अप्पप्पणो पगदीओ ओघेण सावे(धे)दव्वा। वेदगस० परिहारभंगो। णवरि असंजद-संजदासंजद-पगदीओ णादव्वो। उवसमस्स-पंचणा० छदंसणा० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थय० उच्चा०-पंचंत०-अट्ठभंगो। सादासादादीणं परियत्तीणं सव्वाणं पत्तेगेण साधारणेण वि अट्ठभंगो। णवरि वेदणीयाणं साधारणेण सिया बंधगो य। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि।

---

१४५ सूक्ष्मसाम्परायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका स्यात् एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक जीव बन्धक है। अबन्धक नहीं है। यथाख्यातमे—सातावेदनीयके स्यात् सर्व बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक तथा एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और स्यात् अनेक अबन्धक है। तेजोलेश्यामे—सौधर्म स्वर्गके समान भग जानना चाहिए। पद्मलेश्यामे—सनत्कुमारवत् भग जानना चाहिए। इनका किंचित् विशेष भी जान लेना चाहिए।

विशेष—इस लेश्यामें एकेन्द्रिय, आताप, तथा स्थावरका बन्ध नहीं होता।

सम्यक्दृष्टि, क्षायिकसम्यक्दृष्टिमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंको ओघके समान जानना चाहिए।

वेदकसम्यक्त्वमें—परिहारविशुद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ असयत और सयतासयतकी प्रकृतियोंको भी जानना चाहिए।

उपशम सम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तरायोंके आठ भग जानना चाहिए। साता असातादिक सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोके अलग-अलग और सम्मिलित रूपमे[1] आठ भंग होते है। विशेष यह है कि वेदनीययुगलके सामान्यसे स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। अबन्धक नही है।

१ "णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण, आदेसेण य। तत्थ ओघण पेज्ज दोसो च णियमा अत्थि। सुगममेद। एव जाव अणाहारए त्ति वत्तव्व। णवरि मणुसअपज्जत्तएसु णाणेगजीव पेज्ज-दोसे अस्सिऊण अट्ठभगा। त जहा—सिया पेज्ज। सिया णोपेज्ज। सिया पेज्जाणि। सिया णोपेज्जाणि। सिया पेज्ज च णोपेज्ज च। सिया पेज्ज च णोपेज्जाणि च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्ज च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्जाणि च।" —जयध० पृ० ३६०-३६१।

यहाँ आठ भग इस प्रकार होगे—१ एक बन्धक, २ एक अबन्धक, ३ अनेक बन्धक, ४ अनेक अबन्धक, ५ एक बन्धक एक अबन्धक, ६ अनेक बन्धक अनेक अबन्धक, ७ एक बन्धक अनेक अबन्धक, ८ अनेक बन्धक एक अबन्धक।

१४६. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० पंचंत० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं सेसाणं पगदीणं एदेण बीजेण साधेदूण भाणिदव्वं।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं



विशेषार्थ—वेदनीयके अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानमे पाये जाते हे और उपशम सम्यक्त्व ११वे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है इस कारण उपशमसम्यक्त्वमे साता असाता युगलके अबन्धकोका अभाव कहा है।

१४६ अनाहारकोमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर ५ अन्तरायोंके अनेक बन्धक है और अनेक अबन्धक हैं।

विशेष—सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानोमे भी अनाहारक जीव होते हैं उन गुणस्थानोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अबन्धक कहे गये है।

सातावेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। असातावेदनीयके भी अनेक बन्धक है तथा अनेक अबन्धक है। दोनो वेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। इसी वीजसे अर्थात् इस दृष्टिसे शेष प्रकृतियोंके भी भग जानना चाहिए।

इस प्रकार नानाजीवोकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।



[भागाभागाणुगम परूवणा]

१४७. भागाभागाणुग० दु०, ओ० आ० । त ओघे० पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा । अबंधगा सव्वजीवाणं केव०? अणंतभा० । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्ज० भागो० । अबंध० सव्व० संखेज्जा भागा। असाद० [बंधगा] सव्वजी० केव० ? सखेज्जा० भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्ज० [भा] गो० (?) दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदु-जाति-पंचसंठा० तस०४ थिरादिपंचगं उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-एइंदि०-हुंडसंठा० थावरादिचदु०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदाणं च। सत्तणोक०

[भागाभागानुगम प्ररूपणा]

१४७ भागाभागानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते है।

विशेषार्थ—भागाभागानुगमके शब्दार्थपर धवलाटीकामे इस प्रकार प्रकाश डाला गया है – "अनन्तवॉ भाग, असख्यातवॉ भाग और सख्यातवॉ भाग इनकी भाग सज्ञा है। अनन्त बहुभाग, असख्यात बहुभाग, सख्यात बहुभाग इनकी अभाग संज्ञा है। 'भाग और अभाग' इस प्रकार द्वन्द्व समास होकर भागाभाग पद निष्पन्न हुआ। उन भागाभागोंका जो ज्ञान है, वह भागाभागानुगम है।"[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। साता वेदनीयके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके सख्यात बहुभाग है। असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। दोनो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ?

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ सस्थान, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्र-का साताके समान भग है। नपुसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुडक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। सात नोकषाय, ५ जाति,

१ अणतभाग-असखेज्जदिभाग-सखेज्जदिभागाण भागसण्णा, अणताभागा, असखेज्जाभागा, सखेज्जा-भागा एदेसिमभागसण्णा। भागो च अभागो च भागाभागा, तेसिमणुगमो भागाभागाणुगमो ॥ —खु० ब० टीका पृ० ४९५ ॥

सव्वजादि छस्संठा० तसथावरादि-णवयुग० दोगोदाणं एदेसिं साधारणेण बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणतभागो। णिरयमणुसदेवायुगाणं बंधगा सव्व० केव० भागो ? अणं० भागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो (?)। तिरिक्खायुबंध० सव्वजीवाणं केव० ? संखेज्जभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। चदु-आयु-बंधगा० सव्वजीवाणं केवडियो केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। णिरयगदिदेवगदिबंध० सव्वजीवाण० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा। तिरिक्खगदिबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। मणुसगदिबंध० सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। चदुण्णं गदीणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। एवं चदुण्णं आणुपुव्वीणं। ओरालिय० बंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतो भागो। वेउव्विय-आहारसरी० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। तिण्णिसरीराणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। ओरालिय०-अं० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्ज०। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्ज०।

६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, तथा दो गोत्र इनके सामान्यसे बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। नरकायु, मनुष्यायु तथा देवायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहु भाग हैं। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। चार आयुके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग हैं। संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। नरकगति-देवगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। मनुष्यगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। चारों गतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। इसी प्रकार चारों आनुपूर्वीका जानना चाहिए। औदारिक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। वैक्रियिक आहारक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। तीन शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। औदारिक अंगोपांगके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

वेउव्विय-आहारसरी० अंगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंता भागा। तिण्णि अंगो० बंध० सव्वजीवा० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। छस्संघ० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० दोसर० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। तित्थयरं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा।

१४८. आदेसेण णेरइगेसु० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि०-तिण्णिसरी०-ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा (?) सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। असाद० सव्व० केव० ? अणं० भागो। सव्व-

---

विशेषार्थ—शंका – जब औदारिक शरीरके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके अनन्त बहुभाग है, तब औदारिक अगोपांगके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके सख्यातवे भाग क्यों है ? समाधान – औदारिक शरीरके बन्धक अधिक है, तथा औदारिक अगोपांगके बन्धक कम है। अगोपागका बन्ध केवल त्रसोंके साथ पाया जाता है तथा औदारिक शरीरका बन्ध त्रस-स्थावर दोनोंके साथ पाया जाता है।

वैक्रियिक-आहारक शरीरांगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। तीनों अगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग हैं। छह सहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति तथा २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। सामान्यसे छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? तथा अबन्धक कितने भाग है ? इनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धक संख्यातवे भाग है और अबन्धक संख्यात बहुभाग है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं।

१४८ आदेशसे–नरकगतिमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। अबन्धक नहीं हैं।

साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं (?) सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

विशेष—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग कहे गये हैं, तब साताके अबन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग होना चाहिए अतः साताके अबन्धकोंमें अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

णेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० मणुसाणु० उज्जोव० पसत्थ० थिरादिछक्कं उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदि-सोग० तिरिक्खग० हुंडसं० असंपत्तसेव० तिरिक्खाणु० अप्पस० अथिरादिछक्कं णीचा-गोदं च। सत्तणोक० दोगदि० छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछक्क-युगलं दोगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ बंधगा सव्व० केव० ? अणतभागो। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगा० केवडि० ? असंखेज्जदिभा०। तिरिक्खायुबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभा०। सव्वणेरइ० केव० ? संखेज्जदिभा०। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केवडिओ० ? संखेज्जा भागा। मणुसायु-तित्थय० बंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्व-

असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा अबन्धक भी अनन्तवे भाग है। इसका कारण नारकी जीवोंकी सख्या है, वह इतनी है कि बन्धक भी बृहत् जीवराशिके अनन्तवे भाग होते है तथा अबन्धक भी इतने ही होते है।

दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, ५ सस्थान, ५ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि षट्क तथा उच्चगोत्रमे साताके समान भग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, हुण्डकसस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिरादि षट्क, तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग जानना चाहिए। सात नोकषाय, दो गति, ६ संस्थान, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं अबन्धक नहीं है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व नार-कियोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। मनुष्यायु, तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं।

णेरइआणं केव० ? असंखेजा भागा। दोण्णं आयुगाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। एवं पढमाए पुढवीए। विदियादि याव छट्टित्ति णिरयोघो। णवरि आयु मणुसायुभंगो। एवं सत्तमाए। णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचागोदं थीणगिद्धितिगभंगो। मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चागोदं मणुसायुभंगो। दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदा० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि।

१४६. तिरिक्खेसु—पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजीवाणं केवडिया ? अणंताभागा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त० अट्ठक० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागो। सादबंध० सव्व० केवडि० ? संखेज्जदिभागो।

सर्व नारकियोके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोके कितने भाग हैं ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है।

इस प्रकार पहली पृथ्वीमे जानना चाहिए। दूसरी पृथ्वीसे छठी पृथ्वी पर्यन्त नारकियोके सामान्यवत् जानना चाहिए। विशेष, आयुके विषयमे मनुष्यायुके समान भग है। अर्थात् बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके असख्यातवे भाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोके असख्यात बहुभाग है। सातवीं पृथ्वीमे इसी प्रकार है। विशेष, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, नीच गोत्रके विषयमें स्त्यानगृद्धित्रिकवत् भग है।

विशेषार्थ—बन्धक सर्व जीवोके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा सर्व नारकियोंके असख्यातवे भाग है।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है। मनुष्य-तिर्यंचगति, २ आनुपूर्वी तथा दो गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है।

१४९ तिर्यंचगतिमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, (स्त्यानगृद्धित्रिक बिना) प्रत्याख्यानावरण ४ तथा सज्वलन चार रूप कषायाष्टक, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। अनन्त बहुभाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण) के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहु भाग हैं। सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ? सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवे

सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । असादबं० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जा भागा । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदि-भागो । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभा० । दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचस्संठा० छस्संघ० पर०उस्सा० आदावुज्जो० तस०४ थिरादिपंच-उच्चागोदं च । असादभंगो णपुंस० अरदिसो० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च । सत्तणोक० पंचजादि छस्संठा० तसथावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । चदुआयु-चदुगदि-दोसरी० दोअंगो० छसंघ० चदुआणु० दोविहा० दोसर० ओघं । णवरि गदि-सरी० आणुपु० सव्वे बंधा । अबंधगा णत्थि । पंचिंदिय-तिरिक्खेसु–पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जाभा० । अबंध० सव्व० केव० ? अणतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । सादावेद० बंध० सव्व० केव० ?

भाग है ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । असाता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है । दोनो वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक नही है ।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है । नपुंसक-वेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाता वेदनीयके समान भंग है । ७ नोकषाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक नहीं है ।

चार आयु, ४ गति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, दो अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, दो स्वरका ओघवत् भंग है । विशेष, गति, शरीर तथा आनुपूर्वीके सब बन्धक है । अबन्धक नहीं है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । अबन्धक नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है ।

अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागो (गा)। असादं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडिया भागा ? संखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। दोवेदणीयं बं० सव्व० केवडि० ? अणंता (त) भागो। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छस्संघ० पर० उस्सा०-आदावुज्जो० तस०४, थिरादिपंच-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंचणीचागोदं च। सत्तणोक० पंचजादि-छस्संठा० तसथावरादिणवयुगल० दोगोदाण बंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खा० केव० ? असंखेज्जदिभा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खायुबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागा।

अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। सातावेदनीयके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग हे ? सख्यात बहुभाग है।

असाताके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। दो वेदनीयके बन्धक सवे जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य रति, ४ जाति, ५ सस्थान, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भग है। नपुसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग है। ७ नोकषाय, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है।

मनुष्य-देव-नरकायुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सवे जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं।

चदुण्णं आयुगा० बं० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव०? संखेज्जा भागा। णिरयगदिदेवगदिबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खगदि० असादभंगो। मणुसगदि० सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केवडि० ? अणंत-भागो। अबंधगा णत्थि। ओरालियस० बंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो। वेगुव्वियस० देवगदिभंगो। दोण्णं सरीराणं बंधगा सव्व० के० ? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। ओरालियअंगो० सादभंगो। वेगुव्वियअंगो० देवगदिभंगो। दोण्णं अंगो० सादभंगो। छस्संघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण सादभंगो।

१५०. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पजत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु। णवरि णिरय-

चार आयुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। नरकगति, देवगतिके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। तिर्यंचगतिका असाताके समान भग है। मनुष्य गतिका साताके समान भग है। चार गतियोंके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है। औदारिक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके किनने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। वैक्रियिक शरीरका देवगतिके समान भग है। औदारिक-वैक्रियिक शरीरोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है (?)। अबन्धक नही है।

विशेष—यहाँ बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग होना उचित जँचता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच राशि ही जब सम्पूर्ण जीव राशिके अनन्त बहुभाग प्रमाण नहीं है, तब शरीरद्वयके बन्धक अनन्त बहुभाग कैसे होंगे ? अत अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

औदारिक-शरीर-अगोपागके विषयमे साताके समान भग है। वैक्रियिक अगोपागका देवगतिके समान भग है। औदारिक-वैक्रियिक अंगोपांगोंका साताके समान भग है। छह संहनन, २ विहायोगति तथा स्वरयुगलका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है।

१५० पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमें, इसी प्रकार है। विशेष,

मणुसायुबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तजोणिणीणं केव० ? असंखेज्जदि० (?) । तिरिक्खदेवायूणं सादभंगो । चदुण्णंपि आयुगाणं सादभंगो । णिरयगदि असादभंगो । तिण्णं दिण्णं सादभंगो । चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा० । अबंधगा णत्थि । एवं आणुपुव्वी० । चदुजादि सादभंगो । पंचिंदियजादीणं असादभंगो । पंचण्णं जादीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा णत्थि । वेगुव्विय० वेगुव्वियअंगो० सादभंगो । दोण्णंपि असादभंगो । छस्संघ० आदावुज्जो० सादभंगो । परघादुस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क-णीचागोदं च असादभंगो । तप्पडिपक्खाणं सादभंगो । दोविहा० दोसर० असादभंगो । तसादिणवयुगलं दोगोदं च वेदणीयभंगो । पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तेसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरी० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा० । अबंधगा णत्थि । सेसाणं णिरयोघं । णवरि चदुजादि–ओरालि० अंगो० छस्संघ० परघादुस्सा०

यहाँ नरकायु-मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । सम्पूर्ण पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक-योनिमतियोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । सर्व पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिमतियोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है ।

विशेष—यहाँ असख्यात बहुभाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है ।

तिर्यंच देवायुका साताके समान भग जानना चाहिए । चारो आयुका साताके समान भग जानना चाहिए। नरकगतिका असाताके समान भगहै। शेष तीन गतियोका साताके समान भग है । चारो गतियोंके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं । अबन्धक नही है । आनुपूर्वीका इसी प्रकार भग जानना चाहिए । ४ जातियोंका साताके समान भंग है । पचेन्द्रिय जातिका असाताके समान भंग है । पाँच जातियोके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । अबन्धक नही है । वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपागका साताके समान भग है । दोनोंका सामान्यसे असाताके समान भंग है । ६ सहनन, आतप, उद्योतका सातावत् भग है । परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६ तथा नीच-गोत्रका असाताके समान भग है । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे प्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६, उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । दो विहायो-गति, दो स्वरका असाताके समान भग है । त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भग है ।

पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्त-रायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हे । अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, ४ जाति, औदारिक-अगोपांग,

आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादि-छक्क-दुस्सर-उच्चागोदं० सादभंगो। एइंदियजादि-हुंडसंठा० थावरादि०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदं च असादभंगो। पंचजादि-बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। एवं तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-सव्वपुढवि-आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय०। णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि।

१५१. मणुसेसु-पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। णवरि धुविगाण अबंध० अत्थि। दोवेदणीयाणं बंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव ? अणंतभागो। सव्वमणुयाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जोव० दोविहा० तस०४ थिरादिछ०-दुस्सर उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० तिरिक्खगदि-एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच णीचागोदं च। तिण्णिवेद-हस्सरदिदोयुग० पंचजादिछस्संठा० तसथावरा-

---

६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक सस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है। ५ जातिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। त्रस, स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रोमे इसी प्रकार भग जानना चाहिए। छह सहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, सम्पूर्ण पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, बादर वनस्पति, प्रत्येकमे-इसी प्रकार अर्थात् पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान जानना चाहिए। विशेष, तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु तथा उच्चगोत्र नही है।

१५१ मनुष्योंमें—पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भग है। विशेष, यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक भी पाये जाते है। दो वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण मनुष्योंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ सस्थान, औदारिक अगोपांग, ६ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि-षट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भग है। नपुसकवेद, अरति-शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भग है। तीन वेद, हास्यरति, अरतिशोक, पंच जाति,

दिणवयुग०-दोगोदाणं च वेदणीयभंगो। तिण्णिआयु-आहारदु० वेउव्वियछक्कं तित्थय० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। मणुसाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। ओरालिस० पत्तेयेण धुविगाणं भंगो। चदुगदि-दोसरी० चदुआणु० वेदणीयभंगो। दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणाणं सादभंगो।

१५२. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु - एसेव भंगो। णवरि ये असंखेज्जा भागा ते संखेज्जा कादव्वा। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि तिण्णिगदि-चदुजादि-दोसरीर-पंचसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० आदावुज्जो० पसत्थ० थावरादि०४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि० पंचिंदि० वेगुव्वि० हुंडसं० वेगुव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क० णीचागोदं च। सत्तणोक० चदुगदि-पंचजादि तिण्णिसरीर छस्संठा० तिण्णि अंगो० चदुआणु० दोविहा० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदाणं वेदणीयभंगो। चदुआयु० छस्संघ० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो।

१५३. देवेसु णिरयोघं। णवरि विसेसो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-

---

६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। ३ आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है।

औदारिक शरीरका प्रत्येकसे ध्रुवप्रकृतिसदृश भग है। चार गति, २ शरीर, ४ आनुपूर्वीका वेदनीयके समान भग है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे साताके समान भग है।

१५२ मनुष्य-पर्याप्तक मनुष्यनियोंमे मनुष्यके समान भंग है। विशेष, पूर्वमें जो असख्यात बहुभाग कहे गये है, उनके स्थानमे 'सख्यात बहुभाग' कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्य-तिर्यंच-देवगति, ४ जाति, दो शरीर, ५ सस्थान, दो अगोपांग, नरकानुपूर्वीके बिना शेष तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ तथा उच्चगोत्रका साताके समान भग है। नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, हुण्डकसंस्थान, वैक्रियिक अगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है। ७ नोकषाय, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संस्थान, ३ अगोपाग, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस स्थावरादि १० युगल और दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। चार आयु, ६ सहननका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भग है।

१५३. देवगतिमें – नरकगतिके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष – स्त्रीवेद, पुरुषवेद,

तिरक्खायु-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-पंचसंठा० ओरालि०-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० आदावुज्जो० दोविहा० तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोगो तिरक्खग०-एइंदि०-हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदं च। वेदणीय भंगो सत्तणोक० दोगदि-दोजादि०-छस्संठा० दोआणु० तसथाव०-थिरादिपंच-युगला०दोगोदाणं च। छस्संघ० दोविहा० दोसरं० साधारणेण वि सादभंगो। एवं भवण-वा०-वें०-जोदिसि०। णवरि तित्थय० णत्थि। जोदिसिय-तिरिक्खायु-मणुसायुभंगो। सोधम्मीसाण जोदिसियभंगो, णवरि तित्थयरं अत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति बिदियपुढविभंगो। आणद याव णवके(गे)वज्जात्ति धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ तित्थयरं बंधा० सव्व० केव०? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव०? संखेज्जदिभागो। अबंधा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव०? संखेज्जा भागो (गा)। सादभंगो इत्थि० णपुंस० हस्सरदि-पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थवि० थिर-सुभग-(सुभ) दूभगदुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति णीचागोदं च। असाद-

---

हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान जानना चाहिए। ७ नोकषाय, २ गति, २ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावर, स्थिरादि ५ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भंग है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे भी साताके समान भंग है। भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नही है। ज्योतिषी देवोंमे तिर्यंचायुका मनुष्यायुके समान भंग है। सौधर्म और ईशानमे–ज्योतिषियोंके समान भंग है। विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त—दूसरे नरकके समान भंग है। आनत-प्राणतसे नव ग्रैवेयक पर्यन्त—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग है? अनन्त बहुभाग है (?)। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे देवोंकी संख्या सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग कही है—**देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडियो भागो? अणंतभागो** (भागाभा० ८, ६)। अतः यहाँ अनन्त बहुभागके स्थानमे अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोंके कितने भाग है? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोंके कितने भाग हैं? संख्यातवे भाग है (?)।

विशेष—यहाँ 'संख्यात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर,

भंगो पुरिस० अरदिसोग० चमचदु [समचदु०] वज्जरिसभ० पसत्थ० अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० अज्जस० उच्चागोदाणं च। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव०? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सेसं (साणं) परियत्तमाणयाणं। आयु जोदिसियभंगो। अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति अणाद (आणद) भंगो। णवरि सव्वट्ठे आयु माणुसिभंगो।

१५४. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागो (भागा)। अबंधगा णत्थि। सेसं तिरिक्खोघं। बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्तेसु–दुविगाणं बं० सव्व० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? असंखेज्ज-दिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भाग। एवं असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व०

सुभग[1], (शुभ)दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, नीच गोत्रका साताके समान भंग है। पुरुषवेद, अरति, शोक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है। दोनों वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार परिवर्तमान शेष प्रकृतियोंमें जानना चाहिए। आयुओंमें ज्योतिषी देवोंका भंग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आनतके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयुका भंग मनुष्यनीके समान है।

१५४ एकेन्द्रियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं (?)। अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—यहाँ 'अनन्तवें भाग' के स्थानमें 'अनन्त बहुभाग' पाठ जँचता है क्योंकि एकेन्द्रिय सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं।[2]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् वर्णन जानना चाहिए।

बादर, एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्तोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके [बन्धक] सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। असाताके विषयमें इसी प्रकार प्रतिलोमक्रमसे जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व

---

१ यहाँ 'शुभ' पाठ उचित प्रतीत होता है। सुभगकी पुनः गणना आगे की गयी है।

२ इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा। –खु० बं० भागाभा० ११, १२।

केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरि० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्कं दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-तिरिक्खग०-एइंदियजा०-हुंडसं०-तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च। मणुमायु-बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदि-भागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जात्ताणं केव० ? अणंतभागा। दोआयु० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण सादभंगो। सेसाणं परियत्ताणं युगलाणं वेदणीयभंगो।

१५५. सुहुमे०—धुविगाणं बंधगाण-सव्व० केव० ? असंखेज्जा भागा०। अबंधगा णत्थि। सादाबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमे-इंदियाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। सव्वसुहुमाणं केव० ? संखेज्जा भा०। असादं पडिलोमे० भाणिदव्वं। दोवेदणीयाणं बंध० सव्व० केव ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ परियत्तीओ वेदणीयभंगो। छण्णं

जीवोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक नही है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भग जानना चाहिए। नपुसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग है। मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। दो आयु, छह सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके सामान्यसे साताके समान भग है ? शेप परिवर्तमान युगलरूप प्रकृतियोका वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

१५५ सूक्ष्म-एकेन्द्रियमे—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। असख्यात बहुभाग है। अबन्धक नही है। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है। असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोके सख्यात बहुभाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोके संख्यातवे भाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके सख्यातवे भाग है।

दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोमे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

दोण्णं दोण्णं पि पत्तगेण साधारणेण वि सादभंगो। तिरिक्खायु-सादभंगो। मणुसायु-बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुहुमएइंदिया० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भा०। सव्वसुहुमेइंदि० केव० ? अणंता भागा। दोआयु० तिरिक्खायुभंगो। सुहुमएइंदिय-पज्जत्तेसु–धुविगाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा-भा०। अबंधा णत्थि। सादासादं पत्तगेण सुहुमोघं। साधारणेण दोवेदणीया० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। एदेण कमेण णेदव्वं।

१५६. सुहुमअपज्जत्ता० धुविगाणं बंध० सव्व० केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमएइंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमए-इंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जभा०। असादं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदि-भागो। सव्वसुहुमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? संखे-ज्जदिभा०। सव्वसुहुमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभा०। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ णादव्वाओ। णवरि तिरिक्खायु-

छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग है। तिर्यंचायुका साताके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। (?)

मनुष्य तिर्यंचायुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान अर्थात् साताके समान भंग है।

सूक्ष्म-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातबहु भाग हैं।[1] अबन्धक नहीं हैं। साता असाता वेदनीयके पृथक् पृथक् रूपसे सूक्ष्म जीवोंके ओघवत् भंग है। सामान्यसे दो वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए।

१५६ सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं।[2] सातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ? सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

असाताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्व सूक्ष्मअपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार सब

१ सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा ॥ –खु० बं० सू० १७,१८।
२ सुहुमेइंदिय–अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो। १९,२०।

सादभंगो। मणुसायुबंध० सव्व० केव० ? अणंता(त)भागो। सव्वसुहुमअपज्जत्ता० केव०? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुम-अपज्जत्ता० केव० ? अणंता भागा। दोआयु-तिरिक्खायुभंगो। एवं वणप्फति(दि)णियोदाणं।

१५७. पंचिंदिया मणुसोघं। पंचिंदियपज्जत्तेसु-पंचिदिय-तिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि धुविगाणं मणुसोघं। साधारणेण दोवेदणीयबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियपज्जत्त० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-पज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-देवायु-तिण्गिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ तिण्णिआणु० पसत्थवि० थावरादि४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि-पंचजा०-वेउव्वि० हुंडसंठा०-वेउव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थवि० तस०४ अथिरादिछक्कं णीचागोदं। णिरयमणुसायुआहारदुग० तित्थयरं बंधा सव्व० केव० ? अणंता भागा। सव्वपंचिंदि-

प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका साताके समान भंग है। मनुष्यायुके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? ? अनंतवे भाग है। सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है। सर्वसूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। मनुष्य-तिर्यंचायुका तिर्यंचायुके समान भंग है।[1] वनस्पति कायिकों तथा निगोदोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१५७ पंचेन्द्रियोंका–मनुष्योंके ओघवत् भंग है। पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें–पंचेन्द्रिय तिर्यंच-पर्याप्तकोंके समान भंग है। विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्यसे दो वेदनीयके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, देवायु, तिर्यंच-मनुष्य-देवगति, ४ जाति, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ और उच्चगोत्रमें साताके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पंचजाति, वैक्रियिक शरीर, हुंडक संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६, नीचगोत्रमें असाताके समान भंग है। नरक-मनुष्यायु, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है। अनन्त बहुभाग है (?)।

१ वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणता भागा ॥–खु० ब० २५,२६।
२ पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा, मणुस-पज्जत्ता मणसिणी मणुस-अपज्जत्ता सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणतभागो ॥ –खु० ब० ६, ७।

यपज्जत्त० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्व-पंचिंदियपज्जत्ता० केव ? असंखेज्जा भागा। साधारणेण सव्व-परियत्तीणं वेदणीयभंगो। णवरि चदुआयु-छस्संघ० सादभंगो। अंगो० विहाय० सरणामाणं सादभंगो। आदावुज्जो० सादभंगो।

१५८. तस० पंचिंदियभंगो। तसपज्जत्तेसु-धुविगाणं थीणगिद्धि-दण्डओ दोवेदणी० सत्तणोक० चदुआ० पंचिदिय-पज्जत्तभंगो। सादभंगो तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्वियस०-पंचसंठा० दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि०-आणु० पर० उस्सा० आदावुज्जोव-दोविहाय० तस४ थिरादिछक्क० दुस्सर-उच्चागोदाणं च। असादभंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजा० ओरालि० हुंडसं० तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च। साधारणेण दोवेदणीयभंगो। णवरि अंगो० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो। आहारदुगं तित्थयरं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वतस०-पज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणतभागो। सव्वतसपज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जभा०।

१५९. पंचमण० तिण्णि-वचि०–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु०

विशेष—यहाँ तीर्थंकर आदिके बन्धक सर्व जीवोंके 'अनन्तवे भाग' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

सम्पूर्ण पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग हैं। सर्वपचेन्द्रिय पर्याप्तकोके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। सामान्यसे सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोका वेदनीयके समान भग है। विशेष—४ आयु, ६ सहननका साताके समान भग है। अगोपाग, बिहायोगति तथा स्वरनामकी प्रकृतियोंका साताके समान भग है। आतप, उद्योतका साताके समान भग है।

१५८ त्रसोमे–पचेन्द्रियके समान भग है। त्रस-पर्याप्तकोंमे–ध्रुव प्रकृतिका स्त्यानगृद्धि, दण्डक, दो वेदनीय, ७ नोकषाय, ४ आयुका पचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंके समान भंग है। तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका सातावेदनीयके समान भग है। तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, हुडकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भग जानना चाहिए। सामान्यसे दोनो वेदनीयके समान भग है। विशेष, अगोपांग, सहनन, विहायोगति तथा स्वर नामकी प्रकृतियोंका साताके समान भग है। आहारकद्विक, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सम्पूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है।

१५९ पाँच मनोयोग, ३ वचनयोगमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६

---

१ जोगाणुवादेण पचमणजोगि-पचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहारकाय-जोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणतो भागो ॥–खु० बं ३५,३६।

तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभा० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदि० । दोवेदणीय-सत्तणोक० मणुसोघं। णवरि वेदणीयअबंधगा णत्थि। तिण्णिआयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० । असंखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खायु सादभंगो। चदुआयु० साधारणेण सादभंगो। णिरयगदिबंधगा सव्व० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्ज०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खगदि असादभंगो। मणुसदेवगदि सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो। णिरयगदिभंगो तिण्णिजादि-आहारदुगं णिरयाणुपु० सुहुमअप० साधारण० तित्थयरं च। तिरिक्खगदिभंगो एइंदि० ओरालि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च। देवगदिभंगो पंचिंदिय० वेगुव्विय० पंचसंठाणं ओरालियअंगो०

कषाय, भय जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। पॉच मनोयोगियों और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। पॉच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग हैं। दो वेदनीय, ७ नोकषाय (भय-जुगुप्साको छोडकर) का मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, यहॉ वेदनीयके अबन्धक नही है। नरक-मनुष्य-देवायुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सम्पूर्ण पॉच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है ? सर्व पच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग हैं। तिर्यंचायु-का साताके समान भंग जानना चाहिए। चार आयुका सामान्यसे साताके समान भंग है। नरकगतिके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व पच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। तिर्यंचगतिका असाताके समान भंग है। मनुष्यगति, देवगतिका साताके समान भंग है। चारों गतिके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वपच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व पचमनोयोगी और ३ वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग हैं। तीन जाति, आहारकद्विक, नरकानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, तीर्थंकरका नरकगतिके समान भग हैं। एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर, हुण्डकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका तिर्यंचगतिके समान भंग है। पंचेन्द्रिय

वेगुव्वि० अंगो० छसंघ० दोआणु० आदाउज्जो० दोविहाय-तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च। बादरपज्जत्तपत्तेयसरीरं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो। साधारणेण पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं च गदीणं भंगो। दोअंगो० छसंघ-दोविहाय० दोसर० साधारणेण सादभंगो।

१६०. वचिजोगि—असच्चमोसवचिजोगीणं तसपज्जत्तभंगो। णवरि साधारणेण वि वेदणीयभंगो। अबंधगा णत्थि। कायजोगि ओघं। किंचि विसेसो। वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो (गा)। अबंधगा णत्थि। ओरालियकायजोगि-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। सव्वजी० ओरालि० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वजी० ओरालि० केव० ? अणंतभागो। वेदणीयं एइंदियभंगो। इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदि(ज्जा)भागा। सव्वजी० ओरालि

जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक अगोपाग, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थिरादिषट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका देवगतिके समान भग है। बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीरके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पच मनोयोगी और ३ वचनयोगियोके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्व पचमनोयोगी, तीन वचनयोगियोके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। सामान्यसे ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल, और दो गोत्रोंका गतिके समान भग है। दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका सामान्यसे साताके समान भग है।

१६० वचनयोगियोंमे – असत्यमृषावचनयोगियोंमे – त्रस पर्याप्तकोके समान भग है। विशेष, साधारणसे भी वेदनीयके समान भंग है। अबन्धक नही है। काययोगियोमें – ओघवत् जानना चाहिए। कुछ विशेषता है। वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—'अनन्त बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है क्योकि कामयोगी सर्वजीवोंके अनन्त बहुभाग कहे गये है।[1]

औदारिक काययोगियोंमे[2] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। सख्यात बहुभाग है। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग है। अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। वेदनीयका एकेन्द्रियके समान भग जानना चाहिए। प्रत्येकसे स्त्रीवेद, पुरुषवेदका साताके समान भंग है। नपुसकवेदका असाताके समान भग है। तीनों वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व

१ कायजोगी सव्वजीवाण केवडिओभागो ? अणंता भागा ॥ –खु० ब० भागाभा ३७,३८।
२ ओरालियकायजोगी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? सखेज्जा भागा। ३९,४०।

सरीरं० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व० ओरालि० केव० ? अणंतभागो। एवं सव्वाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं भाणिदूण साधारणेण वेद्भंगो कादव्वो।

१६१. ओरालियमिस्सं–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वओरालियमिस्स केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वओरालिमिस्स केव० ? अणंतभागा (अणंतभागो)। वेदणीयं पत्तेगेण साधारणेण वि सुहुम-अपज्जत्तभंगो। इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। देवगदि०४ तित्थयरं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व ओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो। अबंधा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो (गा)। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। दोआयु-छसंघ०-दोविहा० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। णवरि मणुसायु सुहुम-अपज्जत्तभंगो। वेउव्वि० वेउव्वियमि० देवोघं। आहार०

औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं। अनन्तवें भाग हैं। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृतियोंका प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् कहकर वेदके समान सामान्यसे भंग करना चाहिए।

१६१ औदारिकमिश्र काययोगियोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग है (?) सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग (?) है।

विशेष–यहाँ 'अनन्तवें भाग' पाठ प्रतीत होता है।

प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयका सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके समान भंग है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदका प्रत्येकसे साताके समान भंग है। नपुसकवेदका असाताके समान भंग है। सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। देवगति ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग हैं। सम्पूर्ण औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है (?)।

विशेष–यहाँ 'अनन्तबहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। कारण देवगति ४, तीर्थंकरके अबन्धक जीव बन्धकोंकी अपेक्षा अधिक होंगे। इनके बन्धक जीव जब कि औदारिकमिश्र काययोगियोंके अनन्तवें भाग है, तब अबन्धकोंकी गणना इनसे अधिक अवश्य होनी चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदोंके समान भंग जानना चाहिए। दो आयु, ६ संहनन, दो विहायोगतिका प्रत्येक तथा साधारणसे भी सातावेदनीयके समान भंग है। विशेष, मनुष्यायुका सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

१ ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? सखेज्जदिभागो ॥ –४१, ४२ खु० बं०।

आहारमि० सव्वट्ठभंगो। णवरि असंजदपगदीओ णत्थि।

१६२. कम्मइ०–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्व-कम्मइ० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो। सादबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो (संखेज्जा भागा)। असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागो (असंखेज्जदिभागो)। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० सादभंगो पत्तेगेण। णवुंस० असादभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो। देवगदि०४ तित्थय० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागा। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। ओरालिय-

वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे-देवोंके ओघवत् है। आहारक, आहारकमिश्र-काययोगमें-सर्वार्थसिद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असयत अवस्थावाली प्रकृतियाँ नहीं हैं।

१६२ कार्माणकाययोगियोंमे–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है।[1] सम्पूर्ण कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? सख्यातवें भाग है (?)

विशेष—यहाँ अबन्धक सर्व कार्माण काययोगियोंकी सख्या 'संख्यात बहुभाग' उचित प्रतीत होती है।

असाता वेदनीयका सातासे विपरीत क्रम जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग हैं ? असख्यातवें भाग हैं। अबन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ कार्माण काययोगमें दोनों वेदनीयके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके 'असख्यातवे भाग' उपयुक्त प्रतीत होते है। क्योंकि इस योगवालोकी सख्या सर्वजीव राशिकी असंख्यातवे भाग कही गयी है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेदमे प्रत्येकसे साताके समान भंग है। नपुसकवेदमे असाताका भग है। सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग जानना चाहिए। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व कार्माण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। सर्वकार्माण काययोगियोके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंके

१. कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाण केवडियो भागो ? असखेज्जदिभागो। –खु० बं० भा० ४३,४४।

अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। सेसाणं परियत्तियाणं वेदभंगो।

१६३ इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदि (ज्जा) भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस-अजस० दोगोदाण पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदिय-तिरिक्खिणीभंगो। आयुगाणं जोणिणीभंगो। हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्विय० पंचसंठा० दोअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-थिरादि-पंच-दुस्सर-उच्चागोदं च पत्तेगेण साद-भंगो। अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-एइंदिय-ओरालिय-हुंडसंठा०-तिरिक्खाणु० परघादुस्सा० थावर बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-अथिरादि०४ णीचागोदं च असादभंगो। एवं पत्तेगेण साधारणेण पंचिंदियभंगो। आहारदुगं तित्थयरं च पंचिंदियभंगो। तिण्णिअंगो० छसंघ० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभंगो। एवं पुरिसवेदस्स वि।

भग है। औदारिक अंगोपांग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे साता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भंग है।

१६३ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अतरायके बन्धक सर्व-जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं[1], अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। दो वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे पचेन्द्रिय तिर्यंचिनीके समान भग है। आयुओमे योनिमतीके समान भग है। हास्य, रति, तीन गति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपाग, ६ सहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पॉच, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका प्रत्येकसे साताके समान भग है। अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुडक सस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात उच्छ्वास, स्थावर, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, शरीर, अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बन्धकके असाता वेदनीयके समान भग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे पचेन्द्रियके समान भंग है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका पंचेन्द्रियके समान भंग है। तीन अंगोपांग, ६ सहनन, दो विहायोगति, सुस्वर, दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भग है।

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भग है।

---

१ वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणतो भागो–॥–खु० बं० भा० सू० ४५,४६।

१६४. णवुंसगवेदस्स–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा। सव्वणवुंसगवेदाणं केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणवुंसग० केव० ? अणंतभागो। दो-वेयणी० तिण्णिवेद० जस० अजस० दोगोदं च पत्तेगेण साधारणेण च तिरिक्खोघं। हस्सरदि-अरदिसोगाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। आयुचत्तारि वि तिरिक्खोघं। एवं णाम-पगडीणं परियत्तमाणीणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। णवरि अंगोवं० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो।

१६५. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० सादावे० चदुसंज० जसगि० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअवगदवे० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-अवगदवे० केव० ? अणंतभागा।

१६६. कोधे–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० तेजाक०

१६४ नपुसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक नही है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। सम्पूर्ण नपुसकवेदियोंके कितने भाग है। अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व नपुसकवेदियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हे। दो वेदनीय, तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, २ गोत्रका प्रत्येक तथा सामान्यसे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। हास्य-रति, अरति शोकमे प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् भग है। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भग है। चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ-समान भग है। परिवर्तमान नामकर्मकी प्रकृतियोका प्रत्येकसे तिर्यंचोके ओघवत् भग है। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भग है। विशेष, अंगोपाग, सहनन, विहायोगति तथा स्वरका सातावेदनीयके समान भंग है।

१६५ अपगतवेदमे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, ४ सज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हे ? अनन्तवे भाग है। सर्व अपगतवेदियोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है।

१६६ क्रोधकषायमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है। अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण,

१ णवुसयवेदा सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणता भागा। ४७,४८ खु० बं०। २ कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाण केवडियो भागो ? चदुब्भागो देसूणा। –सू० ४९-५०।

वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जा भागा । असादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? सखेज्जा भागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । अबंधगा णत्थि । एवं जस० अजस० दोगोदं च । इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो । णवुंस० असादभंगो । साधारणेण तिण्णिवेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागा देसूणा । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । एवं हस्सरदि-दोयुगलं पंचजादि-छसंठा०-तसथावरादि-अट्ठयुगल० । तिण्णिआयु-बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सव्वकोधेसु केव० ? अणतभागो (गा) । एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-दोआणु० । तित्थय०-तिरिक्खाउ० सादभंगो । चदुण्णं

मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है ? सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । सातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? सख्यातवे भाग है । सर्व क्रोधियोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है । सर्वक्रोधियोके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है । असातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है । सर्व क्रोधियोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग है । अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है । सर्वक्रोधियोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है । दोनो वेदनीयोके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । अबन्धक नही है । यशःकीर्ति, अयश कीर्ति, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके प्रत्येकको अपेक्षा साताके समान भग जानना चाहिए । नपुसकवेदका असाताके समान भग है । सामान्यसे तीन वेदोके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । सर्वक्रोधियोके कितने भाग है । ? अनन्त बहुभाग है । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । हास्य-रति, अरति-शोकमे ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि आठ युगलमे वेदोंके समान भग है । तीन आयुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं । सर्वक्रोधियोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग है । सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । विशेष—यहाँ अनन्त बहुभाग पाठ उचित प्रतीत होता है । दो गति, २ शरीर, दो अगोपांग, दो आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । तीर्थंकर तथा तिर्यंचायुका साताके समान भंग है । चारों

आयुगाणं तिरिक्खायुभंगो। तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० असादभंगो। मणुसगदि-ओरालि० अंगो छसंघड० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण वि साधारणेण वि सादभंगो। चदुगदि-चदुआणु० साधारणेण वेदभंगो। ओरालिय० बंधगा सव्वजी० केव०? चदुभागो देसूणो। सव्वकोधेसु केव०? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वकोधेसु केव०? अणंतभागो। तिण्णिसरीराणं साधारणेण वेदभंगो। एवं माणमायावि। लोभेसु-पचणा० चदुदंसणा० पंचंतरा० बंधगा० सव्वजी० केव०? चदुभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव०? चदुभागो सादिरेयो। सव्वलोभाणं केव०? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वलोभाणं केव०? अणतभागो। सादासादं पत्तेगेण कोधभंगो। साधारणेण दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव०? चदुभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। अथवा सादबंधगा सव्वजी० केव०? संखेज्जदिभागो। सव्वलोभे केवडिओ भागो? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव०? चदुभागो सादिरेयो। सव्वलोभे केव०? संखेज्जदिभागो

आयुओंका तिर्यँचायुके समान भग है। तिर्यँचगति, तिर्यँचानुपूर्वीका असाताके समान भग है। मनुष्यगति, औदारिक अगोपांग, ६ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है। चार गति, चार आनुपूर्वीका सामान्यसे वेदके समान भग है। औदारिक शरीरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? कुछ कम चार भाग है। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग है? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। तीनों शरीरका साधारणसे वेदके समान भंग है? मान तथा मायाकपायमे - क्रोधके समान भग है। लोभकषायमे - ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? साधिक चार[1] भाग हैं। अबन्धक नहीं है। पॉच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? साधिक चार भाग है। सम्पूर्ण लोभियोंके कितने भाग है? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सर्वलोभियोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। साता-असाताका प्रत्येकसे क्रोधके समान भग है। सामान्यसे दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? साधिक चार भाग है। अबन्धक नही है। अथवा साताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? संख्यातवे भाग है। सर्वलोभियोंके कितने भाग है? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? साधिक चार भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं? संख्यातवे भाग हैं (?)।

विशेष - यहाँ अबन्धक सर्वलोभियोकी सख्यामें 'संख्यात बहुभाग' उपयुक्त प्रतीत होती है।

१ लोभकसाई सव्वजीवाण केवडिओ भागो? चतुब्भागो सादिरेगो। -खु० बं० भा० ५१,५२।

(ज्ञाभागा)। असादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोमे केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोमे केव० ? संखेज्जदिभागो। एवं जस० अजस० दोगोदं च। तिण्णिवे० [हस्सादि], दोयुगल० चदुआयु० चदुगदि-पंचजादि-सव्वसरीर-छसंठा० तिण्णिअंगो० छसंघ० चदुआणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० तसथावरादिणवयुगलाणं कोधभंगो। णवरि यं हि चदुभागे देसूणे तं हि चदुभागो सादिरेयो कादव्वो। एवं णाणत्तं कोधादू०। अकसाई–केवलि(ल)णा० केवलदंसणा० सादावे० अवगदवेदभंगो।

१६७. मदि० सुद०–धुविगाणं मिच्छत्तं वज्ज एइंदियभंगो। मिच्छत्तं सेसाणं च तिरिक्खोघं।

१६८. विभंगे–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्त-परघादुस्साम-बादरपज्जत्त-पत्तेयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वविभंगा केव०? असंखेज्जा भागा। अबन्धगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वविभंगे केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणीय-तिण्णिवेदणीय (वेद) सव्वयुगलाणं

असाताके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। सर्वलोभियोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। सर्वलोभियोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। यश कीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोमे इसी प्रकार भग है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, चार आयु, चार गति, ५ जाति, सर्व शरीर, ६ सस्थान, तीन अंगोपांग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ६ युगलका क्रोधके समान भग जानना चाहिए। विशेष, जहाँ पर देशोन चार भाग हो, वहाँ इसमे साधिक चार भाग कर लेना चाहिए। यही क्रोधसे यहाँ विशेषता है। अकषायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनीमे[1] साता वेदनीयका अपगतवेदके समान भग है।

१६७ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे–मिथ्यात्वको छोडकर शेषध्रुव प्रकृतियोका एकेन्द्रियके समान भंग है। मिथ्यात्व तथा शेष प्रकृतियोंका[2] तिर्यंचोंके ओघवत् भग है।

१६८ विभगज्ञानमें[3] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। मिथ्यात्व, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वविभग ज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व विभगज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग हैं। दो वेदनीय, तीन वेदनीय (वेद) तथा सम्पूर्ण युगल प्रकृतियोंके प्रत्येक तथा सामान्यसे देवगतिके ओघवत् जानना चाहिए।

---

१ अकसाई सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणतो भागो ॥ ५३,५४ – खु० बं०। २ णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणी सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणता भागा ॥ ५५ ५६ खु० ब०। ३ विभग-णाणी-आभिणिबोहियणाणी-सुदणाणी-ओहिणाणी-मणपज्जवणाणी-केवलणाणी सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणतभागो ॥ सू० ५७,५८ खु० ब०।

पत्तेगेण साधारणेण वि देवोघं। तिण्णिआयु-दोगदि-तिण्णिजादि-वेगुव्वियअंगोवंगदो-आणुपुव्वि० सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० मणजोगीणं णिरयगदिभंगो। तिरिक्खगदि-एइंदिय-हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपुव्वि थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च असादभंगो। पंचिंदियजादि ओरालिय० अंगो० छसंघ० मणुसगदि० मणुसगदि पाओग्गाणुपु० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। ओरालियसरीरस्स बादरभंगो। केण कारणेण देवगदि-बंधगाणं असंखेज्जदिभागो? असंखेज्जवासायुगेसु विभंगणाणिवा(रा)सिस्स असंखेज्जदिभागो विभंगे वट्टदि। तदो असंखेज्जवासायुगादो देवा असंखेज्जगुणा त्ति।

१६६. आभि० सुद० ओधिणा०–पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वबंधगा आभि० सुद०-ओधि० केव०? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वआभिणि०-सुद०-ओधिणा० केव०? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणीयं हस्सरदि-दोयुगलं थिरादि तिण्णियुगलं मणजोगिभंगो। दोआयु गदिचदुक्कं?

विशेष – यहाँ तीन वेदनीयके स्थानमे 'तीन वेद' पाठ सगत प्रतीत होता है।

३ आयु, २ गति, तीन जाति, वैक्रियिक अगोपाग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका मनोयोगियोंके नरकगतिके समान भग है। तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुडक-संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि पचक तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक अगोपांग, ६ सहनन, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति तथा दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भी साताके समान भंग है। औदारिक शरीरका बादरभंग है।

शंका – औदारिक शरीरका बादर भग किस कारणसे देवगतिके बन्धकोंके असंख्यातवे भाग है?

समाधान – असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमे विभगज्ञानियोकी राशिका असंख्यातवाँ भाग विभग ज्ञानमे रहता है, इस कारण असख्यात वर्षकी आयुवालोंसे देव असंख्यात-गुणे है।

१६९ आभिनिबोधिक – श्रुत – अवधिज्ञानमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? अनन्तवे भाग हैं। सम्पूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग है? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग है? असख्यातवे भाग है। दो वेदनीय हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलोंका मनोयोगियोंके समान भग है। दो आयु, ४ गति,

आहारदुगं तित्थयरं विभंगणाणं च देवगदिभंगो। मणुसगदि-पंचगं धुविगाणं भंगो। पत्तेगेण साधारणेण त्ति गदिधुविगाणं भंगो। एवं दोसरीर दोअंगो० दोआणु०। एवं ओधिदं०। मणपज्जव०-मणुसिभंगो। णवरि वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। एवं संजदेवि। वेदणीयस्स अबंधगा अत्थि। सामाइ० छेदो०-पंचणा० चदुदंस० लोभसंजलण उच्चागोद-पंचंतराइगाणं केवडिओ भागो? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसं मणपज्जवभंगो। परिहार०-आहारकाजोगिभंगो। सुहुमसंप०-पंचणा० चदुदं० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। यथाक्खाद०-सादबधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव० ?

आहारकद्विक, तीर्थंकरके विभंगज्ञानियोंमे देवगतिके समान भंग है। मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग है। प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग है। दो शरीर, दो अंगोपाग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अवधिदर्शनमें उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है।

मनःपर्ययज्ञानमे – मनुष्यनियोंके समान भग है। विशेष, यहाँ वेदनीयके अबन्धक नही है। सयतोंमे इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अबन्धक भी है।

सामायिक छेदोपस्थापना संयममे – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-सज्वलन, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके[2] कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक नही है। शेष प्रकृतियोंका मनःपर्ययज्ञानके समान भग है।

परिहारविशुद्धिसयममे – आहारककाययोगीके समान भग है।

सूक्ष्म साम्पराय-संयममें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है।

यथाख्यात संयममें – साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग है ? सख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग है? सख्यात बहुभाग है (?)

विशेष – यहाँ सर्व यथाख्यात संयमियोंमे अबन्धकोंकी गणना संख्यातवे भाग सम्यक् प्रतीत होती है।

---

१ दसणाणुवादेण चक्खुदसणी – ओहिदसणी केवलदसणी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणत-भागो। अचक्खुदसणी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणता भागा॥ —६३-६६ खु० बं० सू०।

२ सजमाणुवादेण सजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसजदा परिहारसुद्धिसजदा सुहुमसापरायसुद्धि-सजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसजदासजदासजदा सव्वजीवाण केवडियो भागो ? अणतभागो। असजदा सव्व-जीवाण केवडिओ भागो ? अणंता भागा॥ —५९-६२ खु० बं० सू०।

संखेज्जा भागा (संखेज्जदिभागो)। संजदासंजदस्स अणुत्तरभंगो। णवरि देवायुतित्थयरं च ओधिभंगो। असंजदा तिरिक्खोघं। तित्थयरं मूलोघं। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० काजोगिभंगो।

१७० किण्णाए-पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागा सादिरेया। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंतभागो। एवं लोभभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि। णवरि दुपगदीणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। एवं परियत्तमाणीणं सव्वाणं। आयुगाणं अंगोवंग-संघडण-विहायगदिसरवज्जाणं पि। एदासिं पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। एवं णीलकाऊणं। णवरि तिभागो देसूणो। तेऊए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादरपज्जत्त (?) णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा

संयमासंयममें – अनुत्तरवासी देवोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, देवायु और तीर्थंकरप्रकृतिका अवधिज्ञानके समान भंग है। असंयतोंमें – तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। तीर्थंकरका मूलके ओघवत् भंग जानना चाहिए।

चक्षुदर्शनमें—त्रस-पर्याप्तकका भंग है। अचक्षुदर्शनमें काययोगियोंके समान भंग है।

१७० कृष्णलेश्यामें[1]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक तीन भाग प्रमाण है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? साधिक त्रिभाग है। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। साता-असाताका प्रत्येक तथा सामान्यसे लोभकषायके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, साता-असातारूप दो प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? साधिक त्रिभाग है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार परिवर्तमान सर्व प्रकृतियोंमें जानना चाहिए, किन्तु आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगति तथा स्वरको छोड़ देना चाहिए। इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे सातावेदनीयके समान भंग है।[2] नील तथा कापोतलेश्यामें – ऐसा ही जानना चाहिए। विशेष, यहाँ देशोन त्रिभाग जानना चाहिए।

२३६ तेजोलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, [3]अगुरुलघु ४, बादर पर्याप्त (प्रत्येक) निर्माण, ५ अन्तरायके

१ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? तिभागो सादिरेगो। २ णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? तिभागो देसूणो ॥ ३ तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणतभागो। —खु० बं० सू० ६७-७२।

णत्थि। दोआयु आहारदुगं० तित्थयरं च ओधिभंगो। बारसकसायाणं थीणगिद्धिभंगो। देवगदिचदुक्कं सादभंगो। सेसाणं देवोघं। पम्माए–पंचणाणावरणीय-छदंसणा० चदुसंजलण० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितय मिच्छत्तं बारसक० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलाणं थिरादितिण्णियुगलाणं तेउभंगो। इत्थि० णवुंस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। पुरिस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। तिण्णिवेदाणं सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। एवं णवुंसगभंगो तिण्णि आयु-दोगदि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो० छसंघ०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो०। पुरिस० वेदभंगो देवगदि० वेगुव्वियस० समचदु०

बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। दो आयु, आहारकद्विक, तीर्थंकरका अवधिज्ञानके समान भग है। बारह कषायोका स्त्यानगृद्धिके समान भग जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका साता वेदनीयके समान भग है। शेष प्रकृतियोका देवोके ओघवत् है।

पद्मलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषायके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलोका तेजोलेश्याके समान भग है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है। पुरुषवेदके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। तीन वेदोके बन्धक सर्वजीवों-के कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही हैं। तीन आयु, २ गति, औदारक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका नपुसक वेदके समान भग है। देवगति, वैक्रियिक शरीर,

वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। आहारदुगं तित्थयरं देवायुभंगो। साधारणेण वि तिण्णिवेदाणं भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० थिरादिछयुगलं दोगोदं च। तिण्णिआयु-छसंघ० साधारणेण वि इत्थिभंगो। सुक्काए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ तित्थयरं बंधगा केव० ? अणंताभागो (अणंतभागो)। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जदि-भागा (गो)। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जा भागा। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलं-थिरादितिण्णियुगलं च मणजोगिभंगो। इत्थि० णवुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर अणादेज्ज णीचागोदं च थीणगिद्धि-भंगो। पुरिस० पसत्थवि० सुभग सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं असादभंगो। दोआयु-दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो। मणुसगदि०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि तिण्णिवेद-दोगदि-

---

समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भंग है। आहारकद्विक, तीर्थंकरका देवायुके समान भंग है। तीन गति, दो शरीर, ६ संस्थान, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल, दो गोत्रका सामान्यसे वेदत्रयके समान भंग जानना चाहिए। तीन आयु, छह संहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भंग है।

शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ललेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्या-वालोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अन-न्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलका मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका स्त्यानगृद्धिके समान भंग है। पुरुष वेद, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है। दो आयु, दो गति, आहारकद्विकका अवधिज्ञान-के समान भंग है। मनुष्य गति ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं।

तिण्णिसरीर-छसंठाण दोअंगो० छसंघ० दोआणुपु० दोविहाय० सुभगादि-तिण्णि-युगल-दोगोदं आभिणि० भंगो। अट्ठपदं तेउ-लेस्सिग-तिरिक्ख-मणुसा० णवुंसगवेदं ण बंधंति। पम्माए० सुक्कले० इत्थि-णवुंसकवेदं ण बंधंति। भवसिद्धिया ओघभंगो।

१७१. अब्भवसि०-तिण्णिआयु० वेउव्वियछक्क० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-अब्भवसिद्धिया केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअब्भवसिद्धिया केव० ? अणतभागो (गा)। तिरिक्खायु सादभंगो। आयुचत्तारि तिरिक्खायुभंगो। धुवबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पगदीण पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

१७२. सम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठीसु-पंचणा० छदंसणा० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसह० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव०?

तीन वेद, २ गति, ३ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभगादि तीन युगल, दो गोत्रका सामान्य तथा पृथक्से आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है। अर्थ पद यह है कि तेजोलेश्यावाले तिर्यंच तथा मनुष्य नपुसकवेदका बन्ध नही करते है। पद्म तथा शुक्ल लेश्यामे स्त्रीवेद तथा नपुसकवेदका बन्ध नही करते है।[1]

भव्यसिद्धिकोंमे ओघवत् भग है।

१७१ अभव्यसिद्धिकोंमे—३ आयु, वैक्रियिकषट्कके बन्धक सर्व जीवोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व [2]अभव्यसिद्धिकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व अभव्यसिद्धिकोके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है (?)।

विशेष—यहॉ अबन्धक अभव्योके 'अनन्त बहुभाग' होना उचित प्रतीत होता है।

तिर्यंचायुका साता वेदनीयके समान भग है। ४ आयुका तिर्यंचायुके समान भंग जानना चाहिए। ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। शेष प्रकृतियोका प्रत्येक तथा सामान्यसे पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान भग है।

विशेषार्थ—भूतबलि स्वामीने भव्यजीवोंको सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तबहुभाग प्रमाण बताया है तथा अभव्य जीवोके सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तवे भाग कहा है। इससे अभव्य जीवोकी न्यूनता स्पष्ट प्रमाणित होती है।

१७२ सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसस्थान, वज्रवृषभसहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर,

१ भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणताभागा। २ अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणतभागो॥ —खु० बं० ७३-७६।

अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो(गा)। एवं सव्वपगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि एस भंगो कादव्वो। वेदगसम्मादिट्ठि–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पत्तेगेण-ओधिभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। उवसम०–ओधिभंगो। णवरि विसेसो जाणिदव्वो। सासणसम्मा०–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयु० देवगदि०४ पत्तेगेण सुक्काए भंगो। सेसाणं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणेण देवोघं। सम्मामिच्छा०–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। दोवेदणीयं हस्सादिदोयुगल थिरादितिण्णियुगलं देवभंगो। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ सुक्काए भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वेदणीयभंगो। मिच्छादिट्ठि मदिभंगो।

उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वसम्यग्दृष्टि-क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है (?)।

विशेष—अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है।

सामान्य तथा प्रत्येकसे सर्व प्रकृतियोंका इसी प्रकार भग है।

वेदकसम्यक्त्वीमे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। शेप प्रकृतियोका प्रत्येकसे अवधिज्ञानके समान भग है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोका भग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सब सम्यक्त्वियोकी सख्या समस्त जीवोके अनन्तवे भाग कही गयी है।

उपशमसम्यक्त्वीमे—अवधिज्ञानके समान भग है। इसमे जो विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए।

विशेष—जैसे मनुष्यायु तथा देवायुका बन्ध उपशमसम्यक्त्वमे नही होता है। तिर्यंचायु तथा नरकायुका बन्ध तो सम्यक्त्वी मात्रके नहीं होगा, कारण नरकायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वमे और तिर्यचायुकी सासादनमे हो जाती है।

सासादनसम्यक्त्वीमे-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। नरकायुको छोडकर शेप ३ आयु, देवगति ४ का पृथक् रूपसे शुक्ललेश्याके समान भग है। शेप प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानवत् भंग है। सामान्यसे देवोंके ओघवत् है।

सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमे—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नही है। दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलका देवके समान भग है। मनुष्यगतिपचक, देवगति ४ का शुक्ललेश्याके समान भंग है।

---

१ सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणतो भागो। —७७, ७८।

णवरि मिच्छत्त-अबंधगा णत्थि। सण्णिमणजोगिभंगो। असण्णिधुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव०? अणंता भागा। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पगदीणं तिरिक्खोघं।

१७३. आहारगे-पंचणा० णवदस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव०? असंखेज्जा भागा। सव्वआहारगेसु केव०? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वआहारगेसु केव० ? अणंतभागो। साद-बंधगा सव्वजी० केव०? संखेज्जदिभागो। सव्व-आहारगेसु केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। सव्वआहारगेसु केव०? संखेज्जा भागा। एवं असादं पडिलोमं भाणिदव्वं। दोवेदणीय-बंधगा सव्वजी० केव०? असंखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। उवरि

प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान भग है। मिथ्यादृष्टिमे[1]–मत्यज्ञानके समान भग है। विशेष, यहाँ मिथ्यात्वके अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वी जीवोंकी सख्या सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त बहुभाग कही गयी है।

सज्ञीमे-मनोयोगीके समान भग है। असज्ञोमे[2]–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक नही है। शेष प्रकृतियोका तिर्यंचोके ओघवत् भग है।

विशेषार्थ—सभी जीवराशि सम्पूर्ण जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा असंज्ञी जीव सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तबहुभाग है।

१७३ आहारकमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं? असख्यात बहुभाग है।[3] सर्व आहारकोके कितने भाग है? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? अनन्तवे भाग है? सर्व आहारकोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है। साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? सख्यातवे भाग है। सर्व आहारकोंके कितने भाग है? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? संख्यात बहुभाग है। सर्व आहारकोंके कितने भाग है? सख्यात बहुभाग है। असाताके विषयमे प्रतिलोम क्रम है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है? सख्यात बहुभाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग है? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? सख्यातवे भाग है। सर्व आहारकोके कितने भाग हैं? सख्यातवे भाग हैं।

दो वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग हैं? असख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक नही है। स्त्री, पुरुषवेदमे साता वेदनीयके समान भंग है। नपुसकवेदमे असाता वेदनीयके समान भग है। तीन वेदोंके बन्धक सर्वजीवोके कितने भाग है? असंख्यात बहुभाग है।

१ मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाण केवडिओ भागो? अणतो भागो॥ —७९, ८०, खु० बं० भा०। २. सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाण केवडिओ भागो? अणतभागो॥ —८१, ८२। असण्णी सव्वजीवाण केवडियो भागो? अणता भागा १ —८३, ८४ खु० ब०। ३ आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाण केवडिओ भागो? असखेज्जा भागा। —८५–८६।

णाणावरणीयभंगो। तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्कं आहारदुगं तित्थयरं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-आहार० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव०? असंखेज्जा भागा। सव्व० आहार० केव० ? अणंतभागो (गा)। एवं हस्सादीणं पत्तेगेण साधारणेण वेदभंगो कादव्वो। सव्व आयु० अंगोवंगं संघडणं आहार-गदि-सरं मोत्तूण। एदाणं पि सादभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि। अणाहारगेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्व-अणाहारका० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअणाहार० केव० ? अणंतभागो। साद-बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वअणाहारगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वअणाहारगेसु केव० ? संखेज्जा

आगे ज्ञानावरणके समान भंग है। तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व आहारकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। सर्व आहारकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है (?)

विशेष—यहाँ अबन्धकोंका सर्व आहारकोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

हास्यादि प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे वेदके समान भंग है। सर्व आयु, अंगोपांग, सहनन, आहारकद्विक, विहायोगति तथा स्वरके विषयमें वेदका पूर्वोक्त वर्णन नहीं लगाना चाहिए। इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है।

अनाहारकोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं।[१] सर्व अनाहारकोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग है ? सख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। असाताका प्रतिलोम क्रम जानना चाहिए।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है।

---

१ अणाहारा सव्वजीवाण केवडिओ, भागो ? असखेज्जदिभागो। —८७, ८८–खु० बं० भागाभा०।

भागा। असाद-पडिलोमं भाणिदव्वं। दोण्णं बंधगाणं णाणावरणीयभंगो। देवगदि०४ तित्थयराणं आहारभंगो। सेसाणि कम्माणि पत्तेगेण साधारणेण य कम्मइगभंगो।

एवं भागाभागं समत्तं।



असाता-साताके बंधकोका ज्ञानावरणके समान भग है। देवगति ४, तीर्थंकरका आहारके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे कार्माण काययोगीके समान भग है।

इस प्रकार भागाभाग-प्ररूपणा समाप्त हुई।



[परिमाणाणुगम-परूवणा]

१७४. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण–पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगंच्छा-तेजाकम्मइग-वण्ण०४ अगु०४ आदा-उज्जोव-णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवडिया? अणंता। सादबंधगाबंधगा केव० ? अणंता। असादबंधा(धगा) अबंधगा केव० ? अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं बंधा(धगा) अबंधगा अणंता। एवं सत्तणोक० पंचजादि-छसंठाणं छसंघ० दोविहाय० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदं च। तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क-तित्थयरं बंधगा केव० ? असंखेज्जा। अबंधगा केत्तिया? अणंता। तिरिक्खायु-दोगदि-

[परिमाणानुगम]

१७४ परिमाणानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते है।

विविध मार्गणाओमे स्थित जीवोके किस प्रकृतिके बन्धकोकी कितनी सख्या है, इस बातका ज्ञान परिमाणानुगम प्ररूपणा-द्वारा होता है। खुद्दाबन्धकी धवलाटीकामे वीरसेनाचार्यने लिखा है "**एदाओ मग्गणाओ सव्वकालमत्थि, एदाओ च सव्वकालं णत्थित्ति णाणा जीवभंगविचयाणुगमेण जाणाविय संपहि मग्गणासु ट्ठिदवाणं पमाणपरुवट्ठ दव्वाणिओगद्दारमागद** (पृ० २४४)" ये मार्गणाएँ सर्वकाल है, ये मार्गणाएँ सर्वकाल नही है। इस प्रकार नाना जीवोकी अपेक्षा भगविचयाणुगमसे कहकर अब उन मार्गणाओंमे स्थित जीवोके प्रमाणके निरूपणार्थ द्रव्यानुयोग-द्वार प्राप्त होता है।

शंका—क्षेत्रानुगम-प्ररूपणाके पूर्व परिमाणानुगम-प्ररूपणाका कथन क्यो किया गया?

समाधान—"**दव्वपमाणे अणवगदे खेत्तादिअणियोगद्दाराणमधिगमोवाओ णत्थित्ति दव्वाणिओगद्दारस्स पुव्वणिद्देसो कदो।**" (खु० ब० टीका पृ० २७) द्रव्य प्रमाणके जाने बिना क्षेत्रादि अनुयोग द्वारोके जाननेका उपाय नहीं है, इससे द्रव्यानुयोगद्वारका पहले कथन किया है क्षेत्रादिका कथन बादमे किया गया है।

ओघसे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोके बन्धक और अबन्धक कितने है? अनन्त है[1]। साता वेदनीयके बन्धक और अबन्धक कितने है? अनन्त है। असाताके बन्धक-अबन्धक कितने है? अनन्त है। दोनों वेदनीयोके बन्धक अबन्धक अनन्त है। ७ नोकषाय (भय-जुगुप्साको छोडकर), ५ जाति, ६ सस्थान, ६ सहनन दो विहायोगति, त्रस स्थावरादिदस युगल और दो गोत्रके बन्धकों-अबन्धकोंका भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

नरक-देव-मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक कितने है? अस

---

१ "ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? अणता॥"–षट्खं० द० सू० २।

ओरालिय० ओरालि० अंगो० दोआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। चदुआयु-चदुगदि-दोसरीर-दोअंगो० चदुआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। आहारदुगस्स बंधगा केत्तिया ? संखेज्जा। अबंधगा केत्तिया ? अणंता।

१७५. आदेसेण-णिरयेसु-धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खायु-उज्जोव-तित्थयराणं (?) बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। सादासादबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। मणुसायुबंधगा केत्तिया ? संखेज्जा। अबंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। सेसाणं परियत्तमाणियाणं वेदणीयभंगो कादव्वो। एवं सव्वणेरइगाण।

१७६. तिरिक्खेसु-धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा असंखेज्जा। सादासादबंधगा-अबंधगा केत्तिया ? अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं

ख्यात है। अबन्धक कितने है ? अनन्त है। तिर्यंचायु, दो गति (तिर्यंच-मनुष्यगति), औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, २ आनुपूर्वी (तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी) के बन्धक-अबन्धक कितने है ? अनन्त है। चार आयु, ४ गति, दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), दो अगोपांग (औदारिक वैक्रियिक अगोपांग), ४ आनुपूर्वीके बन्धक-अवन्धक कितने है ? अनन्त है। आहारकद्विकके बन्धक कितने है ? सख्यात है। अबन्धक कितने है ? अनन्त है।

विशेष—[1]आहारकद्विकके बन्धक अप्रमत्त सयत होते है। उनकी संख्या संख्यात है।

१७५ आदेशसे—नरकगतिमे, ध्रुव[2] प्रकृतियोंके बन्धक कितने है ? असख्यात है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक कितने है ? असख्यात है[3]। साता-असाताके बन्धक असख्यात है। दोनो वेदनीयके बन्धक कितने है ? असख्यात है। अबन्धक नहीं है। मनुष्यायुके बन्धक कितने है ? सख्यात है। अबन्धक कितने है ? असस्यात है।[4] शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंमे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए। सम्पूर्ण नारकियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

१७६ तिर्यंचगतिमें—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक कितने है ? अनन्त है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी४, अप्रत्याख्यानावरण ४, तथा औदारिक शरीरके बन्धक कितने है ? अनन्त है। अबन्धक असख्यात है।[5]साता-असाताके बन्धक-

१ "अप्पमत्त-सजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा॥" —षट्खं० द० सू० ८। २ "घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ। सत्तेतालधुवाण चदुधा सेसाणय च दुधा॥" –गो० क० गा० १२४। ३ "णिरयगईए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा।"–षट्खं० द० सू० १५। ४ दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा —खु० बं० टीका पृ० २४४, सूत्र १, २। ५ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता —खु० बं० सू० १४, १५।

बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णि-आयु० वेउव्वियछक्कं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा अणंता। एवं वेदणीय-भंगो सव्वाणं परियत्तमाणियाणं। णवरि चदुआयु-दो अंगो० छसंघ० परघादुस्सा० दोविहा० दोसर० बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि असंखेज्जं कादव्वं।

१७७. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु–धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। एवं सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय। एइंदिय-वणप्फदि-णियोदाणं एवं चेव। णवरि अणंतं कादव्वं। णवरि मणुसायुबंधगा अबंधगा असंखेज्जा।

१७८. मणुसेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक०

अबन्धक कितने हैं ? अनन्त है। दोनो वेदनीयके बन्धक कितने है ? अनन्त है। अबन्धक नहीं हैं। तीन आयु (तिर्यंचायुको छोडकर), वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांग) के बन्धक कितने है ? असख्यात है। अबन्धक अनन्त हैं।

विशेष—आयुत्रिकमे यदि तिर्यंचायु सम्मिलित की जाती, तो बन्धक असख्यात न होकर अनन्त हो जाते, अत आयुत्रिकको तिर्यंचायु विरहित समझना चाहिए।

इस प्रकार सर्व परिवर्तमान प्रकृतियोमे वेदनीयके समान भंग समझना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयु, दो अगोपाग, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक-अबन्धक कितने है ? अनन्त है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमे इसी प्रकार समझना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तके स्थानमे 'असख्यात' को ग्रहण करना चाहिए।[1]

१७७ पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक असंख्यात है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमे पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोके समान भंग समझना चाहिए। सम्पूर्ण विकलेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकमे ऐसा ही जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, वनस्पति निगोदमे भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि असंख्यातके स्थानमे यहाँ 'अनन्त' कहना चाहिए। विशेष, मनुष्यायुके बन्धक, अबन्धक असख्यात है।

विशेष—यह कथन सामान्यकी अपेक्षा है। तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यायुके बन्धाभावका विशेष नियम यहाँ भी लागू रहेगा।

१७८ मनुष्योंमे[2]–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय-

---

१ पंचिंदियतिरिक्ख – पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त – पंचिंदियतिरिक्खजोणणी – पंचिंदियतिरिक्ख – अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा – खु० ब० सू० १८, १९। २ "मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा।" – षट्‌ख० द० सू० ४०। "मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण

वण्ण०४अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा सादासाद-बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं पगदीणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं। णवरि दोआयु वेउव्वियछक्क०। आहारदुग-तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा। अबंधगा असंखेज्जा। साधारणेण वेदणीयभंगो। छसंघ० दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा पत्तेगेण साधारणेण वि असंखेज्जा। परघादुस्सास-आदाउज्जोवाणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वे भंगा संखेज्जा।

१७९. देवेसु णिरयोघं। णवरि भवणवासि याव सोधम्मीसाणा त्ति। एइंदि०

जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक असख्यात, अबन्धक सख्यात है। साता-असाताके बन्धक अबन्धक असख्यात है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धक असख्यात है। अबन्धक सख्यात है। सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोमे इसी प्रकार है। दो आयु तथा वैक्रियिकषट्कके विषयमे विशेष है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सख्यात है। अबन्धक असख्यात है। सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है। ६ सहनन, दो विहायोगति, २ स्वरोंके बन्धक अबन्धक प्रत्येक तथा सामान्यसे असख्यात है। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धक, अबन्धक असख्यात हे।

मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोंमे—सम्पूर्ण भग सख्यात है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनीके प्रमाणपर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—**मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडा-कोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो**" (सूत्र २८, २९)—मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियाँ द्रव्यप्रमाणसे कितनी है? कोडा-कोडाकोडीसे ऊपर और कोडाकोडा-कोडाकोडीके नीचे छह वर्गोके ऊपर व सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवे वर्गके बीचकी सख्या प्रमाण मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियाँ है।

धवलाटीकामे लिखा है यद्यपि इस प्रकार सूत्रमे सामान्य रूपसे ही कहा हे, तथापि आचार्य परम्परागत अविरुद्ध गुरूपदेशसे पचम वर्गके घन प्रमाण मनुष्य-पर्याप्त राशि है। इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए। उसका प्रमाण इस प्रकार है ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६। यह उनतीस अक प्रमाण मनुष्य पर्याप्तकोंकी सख्या कही गयी है। (खु० टी० पृ० २५८)।

विशेष—यहाँ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योका वर्णन नहीं हुआ है, अतः प्रतीत होता है कि उस विषयमे पचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंके समान भग होंगे।

१७९ देवगतिमें—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। [2]भवनवासियोसे लेकर

केवडिया? कोडाकोडीए हेट्ठदो छण्ह वग्गाणमुवरि सत्तण्ह वग्गाण हेट्ठदो। मणुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिपहुडि याव अजोगिकेवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया? सखेज्जा।" – षट्ख० द० सू० ४८-४९। १ मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। खु० ब० सूत्र २२, २३। २. "भवणवासिय-देवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेग केवडिया? असखेज्जा।" – षट्ख० द० सू० ५७।

पंचिंदि० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदा-उज्जोव-दोविहाय० तसथावर-दोसराणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। सेसाणं णिरयभंगो। सव्वट्ठे सव्वभंगा संखेज्जा।

१८०. पंचिंदि०-तस०२-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसाय० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा केत्तिया? संखेज्जा। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। एवं परघादुस्सास-आदाउज्जोव-तित्थयराणं। सादासाद-बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं सेसाण पगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो। णवरि चदुआयु दो अंगो० छसंघ० दोविहाय० दोसराणं पत्तेगेण साधारणेण वि बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। आहारदुगं मणुसोघं।

सौधर्म ईशान स्वर्ग तक विशेष जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर तथा दो स्वरके बन्धक अबन्धक असख्यात है। शेष प्रकृतियोमे नारकियोके समान भग है। [1]सर्वार्थसिद्धिमे सम्पूर्ण भग सख्यात है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे मनुष्यनियोंसे तिगुनी संख्या सर्वार्थसिद्धिके देवोकी कही गयी है। जीवट्ठाण सूत्रमे यह संख्या सख्यात कही है। खुद्दाबन्धकी मुद्रित प्रतिके हिन्दी अनुवाद (पृ० २६७) मे यह सख्या 'असखेज्जा' कही है। प्रतीत होता है कि 'सखेज्जा' पाठ सम्यक् होगा। महाबन्धमे सख्या 'सख्यात' कही है।

१८० पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तकोमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण तथा सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोके बन्धक कितने है? असंख्यात[3] है। अबन्धक कितने है? सख्यात है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषायके बन्धक-अबन्धक कितने है? असख्यात है। इसी प्रकार परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकरमे भी है। साता-असाताके बन्धक अबन्धक कितने है? असंख्यात है। दोनो वेदनीयके बन्धक कितने

१. "सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? सखेज्जा।"-षट्ख० द० सू० ७३। २ देवगदीए देवादव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। वाणवेतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। जोदिसिया देवा देवगदिभगो। सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभगो। आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो। सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा। -खुद्दाबन्ध। सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? सखेज्जा। मणुसिणिरासीदो तिउणमेत्ता हवंति॥ - जीवट्ठाण ताम्रपत्रप्रति पृ० २८६। ३ "पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा।"-षट्ख० द० सू० ८०। "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा।" -षट्ख० द० सू० ९८।

१८१. एवं पंचमण० पंचवचि० चक्खुदंस० सण्णित्ति। णवरि दोवेदणीएसु अबंधगा णत्थि। काजोगीसु[1]—पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अणंता, अबंधगा संखेज्जा। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा अणंता, अबंधगा असखेज्जा। सादासाद-बंधगा अबंधगा अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णिआयु-वेगुव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थयरं च ओघं। सेसाणं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा अणंता। साधारणेण बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। चदुआयु-दोअंगोवंग-छस्संघ० परघा-

है? [2]असख्यात है। अबन्धक सख्यात है।

विशेष—अयोगकेवली गुणस्थानमे वेदनीययुगलके अबन्धककी अपेक्षा 'सख्यात' प्रमाण कहा है।

शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान पूर्ववत् भंग जानना चाहिए।

विशेष, ४ आयु, दो अगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके प्रत्येक तथा साधारणसे बन्धक अबन्धक कितने है? असख्यात है। आहारकद्विकके मनुष्योंके ओघवत् है अर्थात् बन्धक सख्यात, अबन्धक असंख्यात है।

१८१ पॉच मन, ५ वचनयोग, चक्षुदर्शन और सज्ञीमे इसी प्रकार है। विशेष, यहॉ दो वेदनीयोमे अबन्धक नही होते है।

विशेष—वेदनीय युगलके अबन्धक अयोगकेवली होते है, वहाँ इन मार्गणाओका अभाव है।

काययोगियोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय (प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन) भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अनन्त है। अबन्धक सख्यात है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण) तथा औदारिक शरीरके बन्धक अनन्त है। अबन्धक असंख्यात है। साता असाताके बन्धक और अबन्धक अनन्त है। दोनो वेदनायोंके बन्धक अनन्त है। अबन्धक नही है।

विशेष—साता और असाता प्रतिपक्षी प्रकृतियॉ है। अतः एकके बन्धमे दूसरीका अबन्ध होगा इससे पृथक्-पृथक्के अबन्धक भी अनन्त बताये गये है। उभयके यहॉ अबन्धक नही होते हैं।

तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक ओघवत् जानने चाहिए। अर्थात् बन्धक असंख्यात है, आहारकद्विकके बन्धक सख्यात है, किन्तु अबन्धक अनन्त है। शेष प्रकृतियोके प्रत्येकसे बन्धक अबन्धक अनन्त है। सामान्यसे बन्धक

१. कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि कम्मइकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया? अणता॥ – खु० सू० ६०, ६१। २ इदियाणुवादेण एइदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? अणता। बीइदिय-तीइदिय-चउरिंदिय-पचिंदिय। तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असखेज्जा॥ – खुद्दाबन्ध दव्वपमाणाणुगम।

दुस्सास-आदाउज्जोव-दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा अणंता । एवं ओरालियकाय-जोगि-अचक्खुदंसणी-आहारगत्ति । ओरालियमिस्सका०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तित्थयराणं (?) [पंचंतराइगाणं] बंधगा अणंता । अबंधगा संखेज्जा । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा असंखेज्जा । देवगदि०४ तित्थय० बंधगा संखेज्जा । अबंधगा अणंता । सेसं ओरालिय-काजोगिभंगो । एवं कम्मइगे । णवरि थीणगिद्धि३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ अबंधगा असंखेज्जा । वेउव्विय-काजोगि-वेउव्वियमिस्स० देवोघं । णवरि वेउव्वियमिस्स० तित्थय० बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा । आहार० आहारमिस्स० मणुसभंगो । एवं मणपज्जव० संजद-

अनन्त है, अबन्धक सख्यात है । चार आयु, दो अगोपांग, छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक अबन्धक अनन्त है ।

औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त इसी प्रकार है ।

औदारिकमिश्र काययोगियोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक तैजस-कार्माणशरीर, वर्ण ४ [तथा पच अन्तराय] के बन्धक अनन्त, अबन्धक संख्यात है[1] ।

विशेष—यहाँ मूलमे आगत 'तित्थयराण' पाठके स्थानमे '५ अन्तराय' का पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। कारण इसके बाद ही देवगति ४ के साथ तीर्थंकर प्रकृतिका पृथक् रूपसे वर्णन किया गया है । वहाँ तीर्थंकरके बन्धक सख्यात कहे है ।

इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अबन्धक असख्यात है । देवगति ४ (देवगति, देवानु-पूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांग) तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सख्यात है । अब-न्धक 'अनन्त है । शेष प्रकृतियोका औदारिक काययोगीके समान भग है ।

कार्माण काययोगियोंमे इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक असख्यात है ।

वैक्रियिक काययोगी तथा वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें—देवोंके ओघवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगियोमे तीर्थंकरके बन्धक संख्यात, अबन्धक असख्यात है ।

[2]आहारक, [3]आहारकमिश्र काययोगमे–मनुष्यके समान भग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आहारक काययोगी ५४ कहे गये है । आहारक मिश्रकाययोगी सख्यात कहे गये है । धवलाटीकामे लिखा है : "**आइरिय-परंपरागद-उवदेसेण पुण सत्तावीसा जीवा होंति**"–आचार्य परम्परासे प्राप्त उपदेश सत्ताईस जीव होते है ।। (खु० ब० पृ० २८१)

---

१ "ओरालियमिस्सकायजोगीसु असजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।" –षट्खं० द० सू०-११२-१४। २ "आहारकायजोगीसु पमत्तसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्ण। आहा-रमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।"–षट्खं० द० सू० ११९–२० । ३ "आहारकायजोगीसु पमत्तसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्ण । आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।"षट्खं० द० सू० ११९-२० ।

सामाइय० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० यथाक्खाद०[1]।

१८२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। सेसं पंचिंदियभंगो। णवरि दोवेदणीय-जस० अजस० दोगोदाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। तित्थयरकम्मस्स बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। एवं पुरिसवेदे। णवरि तित्थयरस्स बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। णवुंस०-पंचणा० चदुदंस० [चदुसंज०] पंचंतराइगाणं० अणंता। अबंधगा णत्थि। सेसं काजोगिभंगो। णवरि जस-अजस० दोगोदाणं अबंधगा णत्थि। एवं कोधादि०४। णवरि अप्पप्पणो धुविगाणं णादव्वाओ।

१८३ मदि० सुद०-धुविगाणं बंधगा अणंता। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता। अबंधगा असंखेज्जा। सेसं तिरिक्खोघं। एवं अब्भ० सिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति। णवरि मिच्छत्तस्स अबंधगा णत्थि। अवगदवेदेसु-पंचणा०

[1]मनःपर्ययज्ञान, सयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यातसयतमे[2] इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सयत सामायिक छेदोपस्थापन-शुद्धिसयत कोटि पृथक्त्व प्रमाण है। परिहारविशुद्धिसयत सहस्रपृथक्त्व है। सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसयत शतपृथक्त्व है। यथाख्यात-विहारशुद्धिसयत शत सहस्र पृथक्त्व प्रमाण है

१८२ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन और ५ अन्तरायके बन्धक असख्यात है, अबन्धक नही है। शेष प्रकृतियोंका पचेन्द्रियके समान वर्णन है। विशेष, दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रोके बन्धक असख्यात है, अबन्धक नहीं है। तीर्थंकर कर्मके बन्धक सख्यात है, अबन्धक असख्यात है। पुरुषवेदमें इसी प्रकार है। विशेष, तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक असख्यात है। नपुसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण [४ संज्वलन] ५ अन्तरायके बन्धक अनन्त है, अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमे काययोगीके समान भंग है। विशेष यह है कि यश कीर्ति, अयश.कीर्ति तथा दो गोत्रोंके अबन्धक नही है। क्रोधादि ४ मे इसी प्रकार है। विशेष, अपनी ध्रुव प्रकृतियोकी विशेषताको यहाँ जान लेना चाहिए।

१८३ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—ध्रुवप्रकृतियोके बन्धक अनन्त है, अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धक अनन्त है। अबन्धक असख्यात है।

विशेष—अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा यह गणना की गयी है।

शेष प्रकृतियोका तिर्यंचोंके ओघवत् भग जानना चाहिए।

अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असज्ञीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ

१ मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया? सखेज्जा। केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया? अणता॥ -खु० ब०। २ सजमाणुवादेण सजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धि-सजदा दव्वपमाणेण केवडिया? कोडिपुधत्त। परिहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया? सहस्सपुधत्त। सुहुमसापराइयसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया? सदपुधत्त। जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया? सदसहस्सपुधत्त। सजदासजदा दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो॥ -खु० ब० सू० १२८-१३७।

चदुदंस० चदुसंज० साद० जस० उच्चागोद० पंचंतराइगाणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। अकसाइ-सादबंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता [एवं] केवलणा० केवलदंस० विभंग० पंचिंदिय-तिरिक्ख भंगो। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वो। आभिणि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० अट्ठकसाय-पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग० सुस्सर-आदेज्ज० णिमि० उच्चा० पंचत० बंधगा० केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। सादासादबंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा णत्थि। चदुणोकसायाणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं युगलाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगोवंग-दोआणुपुव्वि० थिरादितिण्णियुगलाणं। मणुसायु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। अपच्चक्खाणावरण०४ देवायु० वज्जरिसभ० तित्थयराणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। एवं ओधिदं० उवसम०। णवरि उवसम० तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा।

मिथ्यात्वके अबन्धक नही है। अपगतवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंके बन्धक सख्यात है। अबन्धक अनन्त है। अकषाय जीवोमे – साताके बन्धक सख्यात है, अबन्धक अनन्त है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार है। विभगावधिमे – पचेन्द्रिय तिर्यचोका भग है। इसमे जो किंचित विशेपता है, उसे जान लेना चाहिए।

आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस–कार्माण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक कितने है? असख्यात है। अबन्धक सख्यात है। सात। तथा असाताके बन्धक अबन्धक असख्यात है। दोनो वेदनीयोके बन्धक असख्यात है। अबन्धक नही है। चार नोकपायों (हास्य-रति, अरति शोक) के बन्धक अबन्धक असख्यात है। इन दोनो युगलोंके बन्धक असख्यात है। अबन्धक सख्यात है। इस प्रकार दो गति, २ शरीर, २ अगोपांग, २ आनुपूर्वी तथा स्थिरादि तीन युगलोमे जानना चाहिए। मनुष्यायु तथा आहारकद्विकके बन्धक सख्यात, अबन्धक असख्यात है। अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, वज्रवृषभ संहनन तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक अबन्धक असख्यात है। अवधिदर्शन और उपशम सम्यक्त्वमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, उपशम सम्यक्त्वमें तीर्थंकरके बन्धक सख्यात, अबन्धक असख्यात है।

विशेषार्थ—कुछ आचार्योंका मत है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल अल्प होनेसे उसमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, किन्तु द्वितीयोपशममे तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके विपयमे मतभेद नही है।[1]

---

१ "पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि। तित्थयरबधपारभया णरा केवलिदुगते॥" –गो० क० गा० ९३। –प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेष-द्वितीयोपशम क्षायोपशमिक-क्षायिक सम्यक्त्वेषु च असयताद्यप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थंकरबधं प्रारम्भन्ते तेऽपि प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपान्त एव। अत्र प्रथमोपशम-

१८४. सजदासंजद-तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। सेसं बंधा० आयु दो प० असंखेज्जा (?)। असंजदेसु-धुविगाणं बंधगा अणंता, अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबं०४ ओरालियसरीरं बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। तित्थयरं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा अणंता। सेसं तिरिक्खोघं। एवं किण्ण-णील-काऊणं। णवरि किण्ण० णील० तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। तेऊए-मणुसायु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। पच्चक्खाणावरणीय०४ अबंधगा संखेज्जा। सेसाणं असंखेज्जा। एवं पम्माए। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वो। सुक्काए-मणजोगिभंगो। णवरि दोआयु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा।

१८५. भवसिद्धिया०-कायजोगिभंगो। णवरि वेदणीयस्स अबंधगा संखेज्जा।

बन्धसामित्तविचयखण्डमे लिखा है कि तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके भवको मिलाकर तीसरे भवमे तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जीव मोक्ष जाता है, ऐसा नियम है। अर्थात् इससे अधिक वह ससारमे भवधारण नही करता है।

१८४ सयतासयतोमे—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सख्यात है, अबन्धक असख्यात है।

विशेष—'सेस बधा० आयु दो० प० असखेज्जा'—इस पक्तिका स्पष्ट भाव समझमे नही आया, अतः नही लिखा।

असयतोमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक अनन्त है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, औदारिक शरीरके बन्धक अनन्त है, अबन्धक संख्यात है। तीर्थंकरके बन्धक असख्यात है, अबन्धक अनन्त है। शेप प्रकृतियोंमे तिर्यंचोके ओघवत् जानना चाहिए। कृष्ण, नील, कापोत लेश्यामे इसी प्रकार है। विशेष, कृष्ण, नील लेश्यामे तीर्थंकरके बन्धक सख्यात तथा अबन्धक अनन्त है। तेजोलेश्यामे – [1]मनुष्यायु, आहारकद्विकके बन्धक सख्यात, अबन्धक असख्यात है। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक सख्यात हैं। शेप प्रकृतियोके बन्धक अबन्धक असख्यात है। पद्मलेश्यामे – इसी प्रकार है। इसमे जो कुछ विशेपता है उसे जान लेना चाहिए।

विशेष—इस लेश्यामे तेजोलेश्याकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका बन्ध नहीं होता है।

शुक्ललेश्यामे – मनोयोगीके समान भग है। विशेष, दो आयु, आहारकद्विकके बन्धक सख्यात, अबन्धक असख्यात है।

१८५ भव्यसिद्धिकोमे – काययोगाके समान भग है। विशेष, यहाँ वेदनीयके अबन्धक सख्यात है।

विशेष—भव्यजीवोमे अयोगकेवली गुणस्थान भी पाया जाता है, इस अपेक्षा वेदनीयके अबन्धक यहाँ कहे गये है।

सम्यक्त्वे इति भिन्नविभक्तिकरण तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात्' षोडशभावना समृद्ध्यभावात् तद्बन्ध प्रारम्भो न इति केषाचित् पक्ष ज्ञापयति ॥ –संस्कृतटीका पृ० ७८। पारद्धतित्थयबधभवादो तदियभवे। तित्थयर सतकम्मियजीवाण मोक्खगमणनियमादो ॥ –बधसामित्तविचय ताम्रपत्र प्रति पृ० ७५।

१ मिच्छस्सतिमणवय बार णहि तेउपम्मेसु।" –गो० क० गा० १२०।

सम्मादिट्ठि धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा अणंता। सेसाणं धुविगाणं भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वि मणुसायुआहारदुगं बंधगा संखेज्जा। एवं खइगसम्मादिट्ठीणं। णवरि देवायुबंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। वेदग०–धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा।

विशेषार्थ—भव्यसिद्धिक जीव द्रव्य प्रमाणसे कितने है ? इसके उत्तरमे खुद्दाबन्ध सूत्रमे आचार्य कहते हे "अणता" (१५६)। अभव्यसिद्धिक जीव भी 'अणता' अनन्त कहे गये है। धवलाटीकामे यह शका-समाधान दिया गया है.—

शंका–व्ययके न होनेसे व्युच्छित्तिको प्राप्त न होनेवाली अभव्यराशिके 'अनन्त' यह संज्ञा कैसे सम्भव ह ?

समाधान—नही, क्योकि अनन्तरूपके केवलज्ञानके ही विषयमें अवस्थित संख्याके उपचारसे अनन्तपना माननेमे कोई विरोध नही आता।

यद्यपि अभव्य जीवराशि भव्य राशिके समान अनन्त कही गयी है, किन्तु उनमें बहुत अन्तर है। गोम्मटसार जीवकाण्डमे लिखा है :

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अभव्यराशिका परिमाण जघन्य युक्तानन्त है। उससे रहित ससारी जीवोकी सख्या प्रमाण भव्य जीवराशि कही है।

अभव्यराशिको अनन्तगुणा किया जाये, तो सिद्ध राशिके अनन्तवे भाग प्रमाण सख्या आती है। उतना समय प्रवद्धका प्रमाण कहा गया है। कहा भी है :

[२]**सिद्धाणतिमभाग अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।**
समयपबद्धं बंधदि जोगविसादो दु विसरित्थं ॥ गो० क० ४ ॥

धवला टीकामे लिखा है, "**सिद्धि पुरक्कदा भविया णाम**' सिद्धि पुरस्कृत जीवोको भव्य कहते हे। '**तव्विदीया अभविया णाम**'-इसके विपरीत जीवोको अभव्य कहते है। "**सिद्धा पुण न भविया, ण च अभविया तव्विवरीद-सरूवत्तादो**" (खु० ब० पृ० २४२) सिद्ध जीव न तो भव्य है और न अभव्य है, क्योकि उनका स्वरूप भव्य तथा अभव्यसे विपरीत है। भव्योंकी राशि अक्षय अनन्त कही गयी है। भूतबलि स्वामी कहते हे : "**अणंताणता हि ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण**" (खु० ब० सू० १५७) भव्यसिद्धिक जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाणकालसे अपहृत नही होते।

सम्यग्दृष्टियोमे – ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धक असख्यात है। अबन्धक अनन्त है। शेष प्रकृतियोका ध्रुव प्रकृतिवत् भग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे मनुष्यायु तथा आहारकद्विकके बन्धक सख्यात है।

क्षायिक सम्यक्त्वियोमे – इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, देवायुके बन्धक संख्यात, अबन्धक अनन्त है। वेदकसम्यक्त्वमे – ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक असंख्यात है,

---

२ सिद्धराश्यनन्तैकभाग, अभव्यसिद्धेभ्योऽनन्तगुण तु पुन योगवशाद् विसदृश समयप्रबद्ध बध्नाति। समये समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्ध ।

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणतससारा।
ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥ –गो० जी० ५५६॥

अबंधगा णत्थि। सेसं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणे अबंधगा णत्थि। आयुवज्ज-रिसहाणं ओधिभंगो। सासणे–मणुसायुबंधगा संखेज्जा। सेसभंगा असंखेज्जा। सम्मा-मिच्छे–सव्वभंगा असंखेज्जा। अणाहारगेसु[1]–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा अणंता। सादासादबंधगा अबंधगा अणंता। एवं सेसाणं पि। णवरि देवगदिपंचगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता।

एवं परिमाणं समत्तं



अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भग है। सामान्यसे अबन्धक नहीं है। आयु तथा वज्रवृषभसंहननका अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए। सासादनमे – मनुष्यायुके बन्धक सख्यात है। शेष प्रकृतियोंके भग असख्यात है। सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोमे – सर्व भग असख्यात जानना चाहिए। अनाहारकोमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक अनन्त है। साता-असाताके बन्धक-अबन्धक अनन्त है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोमे भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवगति ५ के बन्धक सख्यात है, अबन्धक अनन्त है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।



१ आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ? अणता। अणताणताहि ओसप्पिणि उस्सप्पिणीहि न अवहिरति कालेण।

[खेत्ताणुगम-परूवणा]

१८६. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतराइगाणं बंधा (बधगा) केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स

[क्षेत्रानुगम]

क्षेत्रानुगम ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते है।

विशेषार्थ—जीवादि द्रव्योंका वर्तमान आवासस्थल क्षेत्र है। यह नामक्षेत्र, स्थापना-क्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र तथा भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है। यहाँ द्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है। इसके भेद तद्व्यतिरिक्त नोआगमका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्य है, वह औपचारिक तथा पारमार्थिक भेदयुक्त है। धान्यादिक्षेत्र औपचारिक क्षेत्र है, आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य-क्षेत्र है। वीरसेन स्वामीने धवलाटीका (जीवट्ठाण भाग ३ पृ० ७) मे कहा है, "**तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्ध सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेवमादि। पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं पदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयद णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं।**"

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित है, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है। क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते है, '**जधा दव्वाणि ट्ठिदाणि तधावबोधो अणुगमो। खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो।**' निर्देशका अर्थ है प्रतिपादन करना अथवा कथन करना, "**णिद्देसो पदुप्पायण कहणमिदि पयट्ठो**" (पृ०६)। जीवादि द्रव्य आकाशके जितने भागमे पाये जाते है, उसे लोक कहते है। उसके सिवाय अवशिष्ट आकाशको अलोकाकाश कहते है। इस क्षेत्रानुगमका लोकाकाशसे सम्बन्ध है। अलोकाकाशमे आकाशके सिवाय अन्य द्रव्योंका अभाव होनेसे प्रस्तुत प्ररूपणामे उससे प्रयोजन नही है। पचास्तिकायमे कुन्दकुन्द स्वामीने इस अलोकाकाशको "**अतवदिरित्तं**" अन्तरहित (अनन्त) कहा है। लोकाकाश तीन सौ तैतालीस घन राजू प्रमाण कहा गया है।

ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोके बन्धक जीव कितने क्षेत्रमे है ? सर्वलोकमे।

विशेषार्थ—लोक शब्दका अर्थ है "**लोक्यंते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि द्रव्याणि स लोकः तद्विपरीतो लोकः।**" देशके भेदसे क्षेत्रके तीन भेद कहे हैं। वीरसेन स्वामीने लिखा है, "**मंदरचूलियादो उवरिमुड्ढलोगो, मदरमूलादो हेट्ठा अधोलोगो मदर परिच्छिण्णो मज्झलोगो त्ति**" (**जी० खे० पृ० ६**) – मदराचल अर्थात् सुमेरु पर्वतकी चूलिकासे ऊपर ऊर्ध्वलोक है। मन्दरगिरिके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है। मन्दराचलसे परिच्छिन्न मध्य-लोक है। इस लोक-विभाजनमे सुमेरु गिरिकी प्रधानताको लक्ष्यमे रखकर आचार्य अकलक-देव उसे लोकका मानदण्ड कहते हैं, "**मेरुरय त्रयाणा लोकानां मानदण्ड (त० रा०) खुद्दा-**

बन्ध सूत्रकी टीकामे लोकको पचविध कहा है, **"एत्थ लोगो पचविहो उड्ढलोगो अधोलोगो तिरियलोगो मणुसलोगो सामण्णलोगो चेदि। एदेसिं पचण्ह पि लोगाणं लोगग्गहणेण गहणं कादव्वं"** (पृ० ३०१) - यहाँ लोक ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक, सामान्य लोक इस प्रकार पंचभेदरहित है। लोकके ग्रहण करनेसे पॉचों लोकोका ग्रहण करना चाहिए। मनुष्य लोकका तिर्यग्लोकमे अन्तर्भाव होनेसे लोकत्रयकी मान्यताका सर्वत्र प्रचार है। धवला-टीकाकारने पचविध लोकोको लक्ष्यमे रखकर तत्त्व प्रतिपादन किया है। तीनसौ तेतालीस घनराजु प्रमाण सामान्य लोक है। एकसौ छ्यानबे घनराजु प्रमाण अधोलोक है, एकसौ सैतालीस घनराजु प्रमाण ऊर्ध्वलोक है। एक लाख योजन ऊंचा, पूर्व पश्चिममे एक राजू चौडा तथा उत्तर दक्षिणमे सात राजू लम्बा तिर्यग्लोक है। पैतालीस लाख योजन लम्बे तथा चौडे और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहा गया है।

इस पचविधलोकमे जीवका संचार होता है। खुद्दाबन्ध क्षेत्रानुगम प्ररूपणामे स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपादकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन किया है। धवलाटीकामे यह महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी कथन किया गया है। स्वस्थान पद स्वस्थान-स्वस्थान तथा विहारवत्स्वस्थानके भेदसे दो प्रकार है। अपने-अपने उत्पन्न होनेके ग्रामादिकोकी सीमाके भीतर परिभ्रमण करनेको स्वस्थान-स्वस्थान कहते है। इससे बाह्य प्रदेशमे घूमनेको विहारवत्स्वस्थान कहते है।

नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोके प्रदेशोका उत्कृष्टत. शरीरसे तिगुने प्रमाण विसर्पणको वेदना समुद्घात कहते है। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुने प्रमाण (शरीर-तिगुण) प्रसर्पणको कषाय समुद्घात कहा है। वैक्रियिक शरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोका अपने स्वाभाविक आकारको छोडकर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिक समुद्घात है। अपने वर्तमान शरीरको नहीं छोडकर ऋजुगति-द्वारा या विग्रहगति द्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीरसे तिगुने विस्तार-से अथवा अन्य प्रकारसे (शरीरतिगुण-बाहल्लेण अण्णहा वा) अन्तर्मुहूर्त तक रहनेको मारणान्तिक समुद्घात कहा है। मारणान्तिक समुद्घात निश्चयसे आगामी जहाँ उत्पन्न होना है, ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। अन्य समुद्घातोंमे दशो दिशाओमे गमन पाया जाता है। जिसने आगामी भवकी आयु बाँध ली है, ऐसे बद्धायुष्क जीवके ही मारणान्तिक समुद्घात होता है। इस समुद्घातका आयाम अर्थात्, विस्तार उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, इतर समुद्घातोंमे यह नियम नहीं है।

तैजस शरीरके विपसणको तैजस समुद्घात कहते है। यह निस्सरणात्मक तथा अनि-स्सरणात्मक भेदसे दो प्रकारका है। निस्सरणात्मक तैजसके प्रशस्त तैजस, अप्रशस्त तैजस ये दो भेद है। अप्रशस्त-निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात बारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला सूच्यंगुल सख्यातवे भाग मोटाईवाला, जपापुष्पके समान लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके दहन करनेमे समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बाये कन्धेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्र प्रमाण विसर्पण करनेवाला होता है। जो प्रशस्त निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात है, वह भी विस्तार आदिमे अप्रशस्त तैजसके हा समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हसके समान धवलवर्णवाला है। सीधे कन्धेसे उत्पन्न होता है। प्राणियों-पर अनुकम्पाके निमित्तसे उत्पन्न होता है। मारी रोग आदिके प्रशमन करनेमे समर्थ होता है। अप्रशस्त तैजसके विषयोंमें राजवार्तिकमें लिखा है कि वह उग्र चारित्रवाले तथा अत्यन्त क्रुद्ध मुनिके निकलता है (यतेरुग्रचारित्रस्यातिक्रुद्धस्य)।

हस्तप्रमाण, सर्वांग सुन्दर, समचतुरस्र संस्थानयुक्त, हसके समान धवल, रुधिर मांसादि सप्त धातुओंसे रहित, विष, अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओंसे मुक्त, वज्र, शिला, स्तम्भ, जल, व पर्वतमें-से गमन करनेमें दक्ष तथा मस्तकसे उत्पन्न हुए शरीरसे तीर्थंकरके बाद मूलमें जानेका नाम आहारक समुद्घात है। गोम्मटसार जीवकाण्डमें आहारक शरीरको असहणण' – सहननरहित कहा है, क्योंकि इस देहमें अस्थिबन्धन विशेषका असद्भाव है। जीवकाण्डमें यह भी कहा है कि निजक्षेत्रमें केवली श्रुतकेवलीका अभाव हो और सुदूर क्षेत्रमें केवलिद्वय विद्यमान हो तथा तीर्थंकर भगवान्‌के तपादि कल्याणकत्रय हो तब असंयम परिहार हेतु, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी मन्दता होनेपर धर्मध्यानका विरोधी श्रुत (शास्त्र) के अर्थमें सन्देह उत्पन्न हो, उस सन्देह निवारणार्थ तथा 'जिण जिणधर वंदणट्ठ' जिन तथा जिन मन्दिरकी वन्दनार्थ आहारक शरीर उत्पन्न होता है।[1] यह शरीर अव्याघाती होता है। कदाचित् पर्याप्ति पूर्ण होनेपर आयु क्षय होनेसे इस शरीरधारी मुनिका मरण भी होना सम्भव है। आहारक तथा तैजस समुद्घात मनुष्यनीके नहीं होते (मणुसिणीसु तेजाहार णत्थि- खु० ब०)

वेदनीय कर्मके निषेकोंकी बहुलता हो तथा आयुकी स्थिति अल्प हो तब आयु कर्मके समान शेप कर्मोंकी स्थिति करनेके लिए दण्ड, कपाट, प्रतर तथा लोकपूरणरूप केवलि समुद्घात होता है।

जिसकी अपने विष्कम्भसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्व शरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्व शरीरसे तिगुने बाहल्य रूप दण्डाकारसे केवलीके जीव प्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजु फैलनेका नाम दण्डसमुद्घात है। दण्डसमुद्घातमें कथित बाहल्य और आयामके द्वारा वात-वलयसे रहित सम्पूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्घात है। केवली भगवान्‌के जीव प्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रको छोड़कर सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम प्रतर-समुद्घात है। घनलोक प्रमाण केवली भगवान्‌के जीव प्रदेशोंका सर्वलोकमें व्याप्त करनेको केवलिसमुद्घात कहते हैं।

उपपाद एक प्रकारका है। वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है। उपपादमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसमें जीवके समस्त प्रदेशोंका संकोच होता है (संकोचिदासे सजीवपदेसादो)।

इस प्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्घातके सात भेद तथा एक उपपाद इन दश विशेषणोंसे यथासम्भव विशेषताको प्राप्त क्षेत्रका निरूपण किया गया है।

अबन्धक कितने क्षेत्रमें है ? लोकके असंख्यातवें भागमें अथवा असंख्यात भागोंमें वा सर्वलोकमें रहते हैं।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्तकषायादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है। सयोगी जिनके प्रतर-समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभाग है। क्योंकि यहाँ वातवलयोंमें जीव प्रदेश नहीं पाये जाते। लोकपूरण समुद्घातकी

---

१ आहारस्सुदएण य पमत्तविरदस्स होदि आहारं।
असजमपरिहरणट्ठं सदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥
णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे।
परखेत्ते सवित्ते जिण-जिणधर वंदणट्ठं च ॥२३६॥ –गो० जी०

असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु वा सव्वलोगे वा। सादासाद-बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। अबंधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सेसाणं पत्तेगेण वेदणीय-भंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो। णवरि तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क-आहारदुगं तित्थयरं बंधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। चदु-आयु-दो-अंगोवंग-छसंघडण दोविहायगदि-दोसराणं बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। एवं परघादुस्साणं। एवं काजोगि-कम्मइग०भवसिद्धिया-अणाहारगाणं। णवरि कम्मइगस्स यं हि केवलिभंगो तं हि लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। एवं

अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र कहा है।[1]

साता-असाताके बन्धक अबन्धक जीव कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्व लोकमे रहते है। दोनो वेदनीयके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्वलोकमे। अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? लोकके असख्यातवे भागमे रहते है।

विशेष—दोनोके अबन्धक अयोगी जिन है। उनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।

इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका पृथक्-पृथक् रूपसे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए। सामान्य रूपसे शेप प्रकृतियोका ध्रुव प्रकृतिवत् भग जानना चाहिए। विशेष, ३ आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते हैं? लोकके असख्यातवे भागमे रहते हे। अबन्धक सर्वलोकमे रहते है।

४ आयु, २ अगापाग, ६ सहनन, २ विहायोगति और २ स्वरोंके बन्धक अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्वलोकमे रहते है। इसी प्रकार परघात तथा उच्छ्वास प्रकृतिमे भी लगा लेना चाहिए।

इसी प्रकार काययोगी, कार्माण[2] काययोगी, भव्यसिद्धिको तथा अनाहारकोंमे जानना चाहिए। विशेष यह है कि कार्माण काययोगीमे जो केवलीका भग है, उसमे लोकका असख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोकप्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए।

विशेषार्थ—कार्माण काययोग चारों गतिसम्बन्धी विग्रहगतिमे, प्रतर-लोक-समुद्घात युक्त केवलीके होता है, "**कार्माणकाययोगः स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोकपूरणकाले च भवति**" [**गो० जी० टी० पृ० ११२५, गा० ६८४**] प्रतर समुद्घातमे लोकका असख्यात बहुभाग, लोकपूरण समुद्घातमे नामानुसार लोकपूर्णता होनेसे सर्वलोक क्षेत्र कहा है।

---

१ पदरसमुग्घादे लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु अवट्ठाण होदि। वादवलयेसु जीवपदेमाणामभावादो। लोगपूरणसमुग्घादे सव्वलोगे अवट्ठाण होदि।—खु० ३११। २ "कम्मइयकायजोगिसु सजोगिकेवली केवडिखेत्ते लोगस्स असखेज्जेसु भागेसु, सव्वलोगे वा।"— षट्ख० खे० सू० ४०, ४२। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। अणाहाराकेवडिखेत्ते? सव्वलोए॥ १०७, १०८, १२३, १२४।

ओरालियसरीर-ओरालियमिस्स-अचक्खुदंसण-आहारग त्ति। णवरि केवलिभंगो णत्थि।

१८७. आदेसेण णेरइएसु–सव्वे भंगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सव्वणेरइएसु, सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-अपज्जत्त-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-तस-अपज्जत्त-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० बादरवणप्फदि-पत्तेय० पज्जत्ता-पंचमण० पंचवचि० [वेउव्विय] वेउव्वियमिस्स० आहार० आहारमिस्स० इत्थि० पुरिस० विभंग० आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० सामाइय० छेदोव० परिहार० सुहुमसंप० संजदासंज० चक्खुदं० ओधिदंसण-तेउलेस्सा-पम्मलेस्सा-वेदगसम्मा० उवसमसम्मा० सासण० सम्मामिच्छाइट्ठि सण्णि त्ति। तिरिक्खेसु–धुविगाणं बंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा

इसी प्रकार औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारकमे जानना चाहिए। विशेष यह है कि इसमे केवलीका भग नही है।[1]

विशेषार्थ—औदारिककाययोगी स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोकमे रहते है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोके असख्यातवे भागमे, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भागमे और मनुष्यलोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिक समुद्घात, तैजससमुद्घात और दण्डसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोके असख्यातवे भागमे और अढाई द्वीपसे असख्यात गुणे क्षेत्रमे रहते है। इतना विशेष है कि तैजस-समुद्घातको प्राप्त उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवे भागमे रहते है। यहाँ कपाटप्रतर तथा लोकपूरण और आहारक समुद्घात पद नही हैं। औदारिककाययोगीके उपपाद नही है।

१८७ आदेशसे – नारकियोमे सर्व भग लोकके असख्यातवे भाग प्रमाण है।[2] इसी प्रकार सर्व नारकी जीवोंमे जानना चाहिए। सर्व पचेन्द्रिय-तिर्यच-मनुष्यके अपर्याप्तक, सपूर्ण देव, सर्व विकलेन्द्रिय, त्रस, इनके अपर्याप्त, बादर-पृथ्वी-जल-अग्नि, बादर वनस्पति प्रत्येक, इनके पर्याप्तक, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, [वैक्रियिक] वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र योगी, स्त्री-पुरुषवेद, विभंगज्ञान सुमति, सुश्रुत, अवधि-मन पर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, सयतासयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज-पद्मलेश्या, वेदक-सम्यक्त्वी, उपशमसम्यक्त्वी, सासादन सम्यक्त्वी, मिश्रसम्यक्त्वी तथा सज्ञीपर्यन्त इसी प्रकार है। अर्थात् यहाँ क्षेत्र लोकका असख्यातवाँ भाग है।[3]

१ कायजोगी–ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। उववाद णत्थि। अचक्खुदसणी असजदभगो। असजदा णवुसयभगो। णवुसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते सव्वलोगे॥ —खुद्दाबंध खेत्ताणुगम। २ "आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्माइट्ठित्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। एव सत्तसु पुढवीसु णेरइया।" –ध० टी० खे० सू० ५, ६,। ३ पचिदियतिरिक्ख-पचिदियतिरिक्ख-पज्जत्ता-पचिदियतिरिक्ख-जोणिणी पचिदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? (६) लोगस्स असखेज्जदिभागे (७)। मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। असखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा। मणुस-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स

णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। दोण्णं वेदणीयाणं

विशेषार्थ—धवलाटीकामे लिखा है **"णेरइया सव्वपदेहि चदुण्ण लोगाणमसंखेज्जदि-भागे होंति माणुसलोगादो असखेज्जगुणे"** [खु० बं० पृ० ३०१] नारकी जीव सवपदोसे ऊर्ध्व-लोक, मध्यलोक, अधोलोक, सामान्यलोक रूप चार लोकोंके असख्यातवे भागमे तथा मनुष्य-लोकसे असख्यातगुणे क्षेत्रमे रहते है। इनमे वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घात होते है। तैजस, आहारक तथा केवलसमुद्घात नही होते, क्योकि उनका असयमियोंमे असद्भाव है।

तिर्यंचामे[1]—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है ? सर्वलोकमे। अबन्धक नही है। साता और असाताके बन्धक अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है ? सर्वलोकमे।

असखेज्जदिभागे। (८-१४)। देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (१५,१६) बेइदिय-तेइदिय-चउरिदिय तस्सेव पज्जत्ता-अपज्जत्त सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (२४,२५)। तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पचिदिय पज्जत्त-अपज्जत्ताण भगो (५१)। पचिदिय-पचिदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा। पचिदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण, समुग्घादेण, उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (२६-३१)। बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा, तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे (३४-३७)। जोगाणुवादेण पचमणजोगि पचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (५२,५३) उववाद णत्थि, मणजोग-वचिजोगाण विवक्खादो — खु० ब० ध० टी० पृ० ३४१। वेउव्विमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घात-उववादा णत्थि (६२, ६३, ६४)। आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभगो। वेउव्वियकायजोगीसत्थाणेण केवडिखेत्त ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। उववादो णत्थि (६५, ५९—६१) आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभगो (६६)। वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (७०,७१) विभगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। उपवाद णत्थि (८२,८३) एदेसि दोण्ह णाणाणमपज्जत्तकाले सभवाभावादो। आभिणिबोहियसुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्तो ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (८४, ८५) सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुद्धिसजदा परिहार-सुद्धिसजदा सुहुमसापराइय सुद्धिसजदा सजदासजदा मणपज्जवणाणिभगो (९२)। दसणाणुवादेण चक्खु-दसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (९४,९५) उववाद सिया अत्थि, सिया णत्थि। लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिपडुच्च णत्थि। जदि लद्धि पडुच्च णत्थि केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (९६,९७)। ओधिदसणी ओधिणाणिभगो ॥९९॥ तेउ-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (१०२, १०३)। वेदगसम्माइट्ठि उवसमसम्माइट्ठि-सासण-सम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्तो ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (११२-११५) सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स, असखेज्जदिभागे। (११७, ११८) — खुद्दाबन्धसूत्राणि।

१ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए।

बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं पगदीणं। णवरि तिण्णि आयु वेउव्वियछक्कस्स बधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। चदुआयु० दोअंगो० छसंघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। थीणगिद्धितिय मिच्छत्तं अट्ठकसा० ओरालि० बंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं मदि० सुद० असंज० तिण्णिलेस्सा-अब्भवसिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति।

१८८ मणुस०३–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक०

दोनो वेदनीयोके बन्धक सर्वलोकमे रहते है। अबन्धक नही है। इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोमे जानना चाहिए। विशेष यह है कि ३ आयु, वैक्रियिकषट्कके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? लोकके असख्यातवे भागमे रहते है। अबन्धक सर्वलोकमे रहते है। ४ आयु, २ अगोपाग, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्वलोकमे। स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कषाय तथा औदारिक शरीरके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्वलोकमे रहते है। अबन्धक लोकके असख्यातवे भागमे रहते है।

विशेष—इनके अबन्धक देशसयमी होगे उनका क्षेत्र यहाँ कहा है।[1]

विशेषार्थ—तिर्यंचोमे स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद ये पद होते है, शेष नही होते है। तिर्यंचोका क्षेत्र सर्वलोक कहा है, इसपर धवलाटीकाकार कहते है, सर्वलोकमे तिर्यंच रहते है, क्योकि वे अनन्त है। अनन्त होनेसे वे लोकमे नही सभाले, ऐसी आशका नही करनी चाहिए, क्योकि लोकाकाशमे अनन्त अवगाहन शक्ति सभव है। विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र तीन लोकोके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग और अढाई द्वीपसे असख्यातगुणा है, क्योकि त्रस पर्याप्त तिर्यंचोका लोकके सख्यातवे भागमे विहार पाया जाता है।

वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र चार लोकोके असख्यातवे भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा है, क्योकि तिर्यंचोमे विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवे भाग मात्र घनागुलोसे गुणित जगश्रेणी प्रमाण है, 'गुरूवदेसादो' क्योकि ऐसा गुरुका उपदेश है। (खु० ध० पृ० ३०५)

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असयम, कृष्णादि तीन लेश्या, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि तथा असज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।[2]

१८८ मनुष्यत्रिक (मनुष्यसामान्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियों) मे – ५ ज्ञानावरण,

---

१ षट्ख० खे० सू० ८। २ णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुसयवेदभगो (सूत्र ८०) णवुमयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोए (७१, ७२)। असजदा णवुसयभगो (९३)। लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असजदभगो (१०१)। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया–अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे (१०६, १०७)। मिच्छाइट्ठी असजदभगो (११६)। असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। —सू० ११६, १२० खु० ब०।

आहारदुग० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिणतित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा केवलिभंगो कादव्वो। सादबंधगा केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। असादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागे। अबंधगा केवलिभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो (गे)। इत्थि० पुरिस० णवुंसग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा केवलिभंगो। एवं सव्वपगदीणं वेदभंगो कादव्वो। एवं पंचिंदिय-तस० तेसि

९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भयद्विक, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरु-लघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अन्तरायोके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है ? लोकके असख्यातवे भागमे रहते है। अबन्धकोंमे केवलीके समान भग जानना चाहिए अर्थात् लोकका असख्यातवाँ भाग, असख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक है।

विशेष—केवलीभगमे लोकका असख्यातवाँ भाग क्षेत्र दड तथा कपाटसमुद्धातकी अपेक्षा है। असख्यात बहुभाग क्षेत्र प्रतरसमुद्धातकी तथा सर्वलोक लोकपूरणसमुद्धातकी अपेक्षा है।

साता वेदनीयके बन्धकोमे केवलीके समान भग है। अबन्धकलोकके असख्यातवे भागमे रहते है।

असाताके बन्धक लोकके असख्यातवे भागमे रहते है। अबन्धकोमे केवलीके समान भग है। दोनो प्रकृतियोके बन्धकोमे केवलीके समान भग है। अबन्धकोमे लोकका असख्या-तवाँ भाग भग है। स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदके बधक लोकके असख्यातवे भागमे पाये जाते है। अबधकोमे केवलीके समान भग जानना चाहिए। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोमे वेदके समान भग है।

विशेषार्थ—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, तैजस, और आहारक समुद्धातको प्राप्त मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनी चार लोकोके असख्यातवे भागमे रहते है। इतना विशेष है कि मनुष्यनियोंमे तैजस तथा आहारक समुद्धात नहीं होते। मारणान्तिक समुद्धातको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकाके असख्यातवे भागमे तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकके असख्यातगुणे क्षेत्रमे रहते है क्योंकि यहाँ मनुष्य-अपर्याप्तकोंका क्षेत्र प्रधान है। इतना विशेष है कि मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनियोंका मारणातिक क्षेत्र चार लोकोंके असख्यातवे भाग तथा मानुष क्षेत्रसे असख्यातगुणा है। इसी प्रकार दण्ड और कपाट क्षेत्रोंका भी प्रमाण कहना चाहिए। इतना विशेष है कि कपाट क्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण है। प्रतरसमु-द्धातकी अपेक्षा लोकके असख्यात बहुभागोमे अवस्थान होता है, क्योंकि "**वादवलएसु जीव-पदेसाणमभावादो**" वातवलयोमे जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है। लोकपूरण समुद्धातकी अपेक्षा सर्वलोकमे अवस्थान होता है क्योंकि इस अवस्थामे जीवप्रदेशोसे रहित लोकाकाशके प्रदेशोंका अभाव है (जीवपदेस विरहिद-लोगागास-पदेसा भावादो)। (खुद्दाबध टीका पृ० ३१०)।

---

१ मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदि-भागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। असखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा —सू० ८-१२ खु० बं०। २. ध० टी० क्षे० पृ० ४८।

चेव पज्जत्ता। एवं चेव अवगदवेद-अकसाइ० केवलणा० संजदा-यथाक्खाद० केवल-दंसण० सुक्कलेस्सा-सम्मादिट्ठि-खइगसम्माइट्ठि त्ति।

१८६. एइंदिय-सव्वसुहुम० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदिणिगोद-तेसिं च सव्वसुहुम० मणुसा० बंधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वलोगे। बादर-एइंदिय-पज्जत्ता-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वलोगे। अबंधा (धगा) णत्थि। सादासाद-बंधगा अबधगा केव० खेत्ते? सव्वलोगे। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि।

पचेन्द्रिय त्रस तथा उन दोनोके पर्याप्तकोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, सयम, यथाख्यात, केवलदर्शन, शुक्ललेश्या, सम्यक्त्दृष्टि, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि पर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिए[1]।

१८६ एकेन्द्रिय, सर्वसूक्ष्म, पृथ्वी, जल, तेज[2], वायु (?) वनस्पति-निगोद तथा उनके सर्वसूक्ष्म जीवोमे मनुष्यायुके बधक कितने क्षेत्रमे रहते है? लोकके असख्यातवे भागमे रहते है। अबधक कितने क्षेत्रमे रहते है? सर्वलोकमे रहते है[3]। शेष प्रकृतियोके सपूर्ण भगोमे सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए। बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तक तथा बादर-एकेन्द्रिय अपर्याप्त-कोमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, [4]मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोके बधकोका सर्वलोक क्षेत्र है। अबधक नही है। साता-असाताके बधक-अबधक कितने क्षेत्रमे पाये जाते है? सर्वलोकमे। दोनोके बधक सर्व-

---

१ पचिदिय पचिदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडि-खेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा (सू० २६–२९) तसकाइय-तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ता पचिदिय पज्जत्त-अपज्जत्ताण भगो (सू० ५१)। अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा। उववाद णत्थि (सू० ७३–७७)। अकसाई अवगदवेदभगो (७९)। केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। उव-वाद णत्थि (सू० ८६–९०)। सजमाणुवादेण सजदा जहाक्खादविहार सुद्धिसजदा अकसाईभगो। (९१) केवलदसणी केवलणाणिभगो। (सू० १००)। सुक्कलेस्सिणा सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स अस-खेज्जदिभागे समुग्घादेण लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। (सू० १०४–१०६) सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समु-ग्घादेण लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा (सू० १०९–१११)। २ "तेजकाय वायुकायमे मनुष्यायुका बध नही होता।"—गो० क० गा० ११४। ३ इदियाणुवादेण एइदिया सुहुमेइदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। —खु० बं० सू० १८, १६। ४ बादरेइदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स सखेज्जदिभागे समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोए। —सू० २२, २३।

इत्थि-पुरिस० बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। णवुंस० बंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागे। तिण्णि-वेदाणं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। एवं इत्थिभंगो चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदाउज्जो० दोविहा० तस-बादर-दोसर-सुभग-आदेज्ज-जसगित्ति। णवुंसगभंगो एइंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादेज्ज-अजसगित्ति। हस्सादि४ बंधगा अबंधगा सव्वलोगे। हस्सादिदोयुगलं बंधगा सव्वलोगे, अबंधगा णत्थि। एवं परघा-दुस्सास-पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिरसुभासुभा त्ति। तिरिक्खायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। मणुसायु-बंधगा केवडि-खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। दोआयु तिरिक्खायु-भंगो। तिरिक्खगदितियं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। मणुसगदितियं मणुसायुभंगो। दोगदि-दोआणु-पुव्वि-दोगोदं बंधगा के० खेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। सुहुमबंधगा सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो। एवं बादरवाउ० बादरवाउ० अपज्जत्ताणं। एवं चेव बादर-

---

लोकमे पाये जाते है। अबधक नही है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बधक कितने क्षेत्रमे है। लोकके सख्यातवे भागमे। अबधक सर्वलोकमे है। नपुसकवेदके बधक कितने क्षेत्रमे है ? सर्वलोकमे। अबधक लोकके सख्यातवे भागमे पाये जाते है। तीनो वेदोके बधक सर्वलोकमे पाये जाते है। अबंधक नही है। ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, दो स्वर, सुभग, आदेय, यश कीर्ति पर्यन्त स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति, हुडक सस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्तिमे नपुसकवेदका भग जानना चाहिए। हास्यादि चारके बधक-अबधक सर्वलोकमे पाये जाते है। हास्यादि दो युगलोके बधक सर्वलोकमे पाये जाते है। अबधक नहीं है। इस प्रकार परघात, उच्छ्वास, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ पर्यन्त जानना चाहिए। तिर्यंच आयुके बधक कितने क्षेत्रमे रहते है ? लोकके सख्यातवे भागमे। अबंधक सर्वलोकमे पाये जाते है। मनुष्य आयुके बंधक कितने क्षेत्रमे पाये जाते है ? लोकके अस-ख्यातवे भागमे। अबधक सर्वलोकमे पाये जाते है। दो आयुमे तिर्यंच आयुका भग जानना चाहिए। तिर्यंचगतित्रिकके बधक सर्वलोकमे और अबधक लोकके असंख्यातवे भागमे पाये जाते है। मनुष्यगतित्रिकमे मनुष्य आयुके समान भग जानना चाहिए। २ गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रके बधक कितने क्षेत्रमे है ? सर्वलोकमे है। अबधक नहीं है। सूक्ष्मके बधक सर्वलोकमे और अबधक लोकके असख्यातवे भागमे पाये जाते है। इस प्रकार प्रत्येक और साधारणसे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र लोकका संख्यात भाग कहा है उसका स्पष्टीकरण धवला टीकामे इस प्रकार किया गया है :

मन्दर पर्वतके मूल भागसे ऊपर शतार-सहस्रार कल्प पर्यन्त पॉच राजु ऊँची सम चतुष्कोण लोकवाली वायुसे परिपूर्ण है। उसमें उनचास प्रतर राजुओका यदि एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पॉच प्रतर राजुओंका कितना जगत् प्रतर प्राप्त होगा, इस प्रकार फलराशिसे

पुढवि० आउ० तेउ० बादरवणप्फदि पत्तेयाणं तेसिं चेव अपज्जत्ता, बादरवणप्फदिणिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता। णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कादव्वो। बादरवाउकाइय-पज्जत्ते सव्वे भगा लोगस्स संखेज्जदिभागे।

एवं खेत्तं समत्तं।

गुजित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर दो बटे पॉच भाग कम उनहत्तर रूपोंसे धनलोकके भाजित करनेपर लब्ध एक भाग प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उसमे सख्यात योजन बाहल्य रूप जग प्रतर प्रमाण लोक पर्यन्त स्थित वात क्षेत्रको, सख्यात योजन बाहल्यरूप जग-प्रतर प्रमाण ऐसे बादर जीवोके आधारभूत आठ-पृथिवी क्षेत्रको और आठ पृथिवियोंके नीचे स्थिति संख्यात योजन बाहल्य रूप जग प्रतर प्रमाण वातक्षेत्रको लाकर मिला देनेपर लोकके सख्यातवे भाग मात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय-पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय-अपर्याप्त जीवोसे परिपूर्ण क्षेत्र होता है। इस कारण ये तीनो ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थानसे तीन लोकोंके सख्यात भागमे एव मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असख्यात गुणे क्षेत्रमे रहते है, ऐसा कहा है। —खु० ब० पृ० ३२२, ३२३।

[1]बादर वायुकायिक (पर्याप्तकों) और बादर वायुकायिक अपर्याप्तकोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। [2]बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक तथा इनके अपर्याप्तकोंमे एव [3]बादर वनस्पतिकायिक निगोदके पर्याप्त अपर्याप्त भेदोंमे इसी प्रकार जानना जाहिए। इतना विशेष है कि जहॉ लोकका सख्यातवॉ भाग कहा है, वहॉ लोकका असख्यातवॉ भाग करना चाहिये। [4]बादर वायुकायिक पर्याप्तकोमे सम्पूर्ण भग लोकसे संख्यातवे भाग जानना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्र प्ररूपणा समाप्त हुई।

१ बादरपुढविकाइय बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। २ बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ३ वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। बादर-वणप्फदिकाइया बादर-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए।—३४-४६ सूत्र खु० ब०।
४ बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स सखेज्जदिभागे।

[फोसणाणुगमपरूवणा]

१६०. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण–

[स्पर्शनानुगम]

१६० ओघ तथा आदेशसे स्पर्शानुगमका दो प्रकार निर्देश करते है।

विशेषार्थ—स्पर्शनके छह भेद कहे है। **णामफोसणं, ठवणफोसण, दव्वफोसणं, खेत्तफोसणं, कालफोसण, भावफोसणं चेदि छव्विहं फोसणं**'– नाम स्पर्शन, स्थापना स्पर्शन, क्षेत्र स्पर्शन, काल स्पर्शन, भाव स्पर्शन ये स्पर्शनके छह प्रकार है। इन छह स्पर्शनोंमें-से यहाँ किस स्पर्शनसे प्रयोजन है ?

समाधान—"**एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणं पयदं**"—इन स्पर्शनोंमे से यहाँ जीव द्रव्य सम्बन्धी क्षेत्र स्पर्शन प्रकृत है। शेष द्रव्योंका आकाशके साथ जो सयोग है वह क्षेत्र स्पर्शन है।

शंका—अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

समाधान—वह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवगाह्य-अवगाहक भावको ही उपचारसे स्पर्श संज्ञा प्राप्त है। अथवा सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है। (जी० फो० टी०)

पूज्यपाद स्वामीने स्पर्शनको त्रिकाल गोचर कहा है किन्तु धवला टीकाकारने लिखा है 'जो भूतकालमे स्पर्श किया गया और वर्तमानमे स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है। (अस्पर्शि, स्पृश्यत इति स्पर्शनम्)

सब द्रव्योको निवासभूमि प्रदान करनेकी क्षमता आकाश द्रव्यमे है। यद्यपि एवंभूतनयकी अपेक्षा सर्व द्रव्य स्वप्रतिष्ठ है, किन्तु धर्मादिका अधिकरण आकाश है यह कथन व्यवहार नयसे किया गया है। जैसे कहा जाता है "**क्व भवानास्ते** ?" आप कहाँ रहते है ? '**आत्मनि**' – मै अपनी आत्मामे रहता हूँ, क्योंकि एक वस्तुकी अन्य वस्तुमे वृत्ति नहीं पायी जाती है। यदि एक वस्तुकी अन्य पदार्थमें वृत्ति हो, तो आकाशमे ज्ञानादिक तथा रूपादिककी वृत्ति हो जाये (स० सि० ५८)[1]

जो व्यक्ति एकान्त नयका पक्ष पकड़ता है, वह तत्त्वको नहीं समझ पाता है। पूज्यपाद स्वामी इन सप्त नयोंपर विवेचन करते हुए कहते हैं "**एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः**" (स० सि० पृ० ५९) ये नय मुख्य तथा गौणरूपता धारण करते हुए सम्यग्दर्शनके हेतु हैं। स्वतन्त्रता धारण करनेपर ये असमर्थ हो जाते हैं। इसीसे सर्व द्रव्योंको अवकाश देनेवाले आकाश द्रव्यके विषयमे कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं :

१ धर्मादीना पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात्। एवभूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव तथा चोक्त क्व भवानास्ते ? आत्मनीति धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहि सन्तीत्येतावदत्राधाराधेयकल्पना साध्य फलम्। –स० सि० पृ० १२९, अध्याय ५, सूत्र १२। यथा क्व भवानास्ते ? आत्मनीति कुतः ? वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्। यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकाशे वृत्ति स्यात्–(पृ० ५८ स० सि० अ० १, सू० ३३)।

पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइ-गाणं बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जा वा भागा वा, सव्वलोगो वा। सादबंधगा अबंधगा केवडि[यं]खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। असादबंधगा अबंधगा केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च।

जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥ पचास्तिकाय।

जो सर्व जीवोंको, पुद्गल आदि शेष द्रव्योंको स्थान देता है, वह समस्त आकाश इस लोकमे होता है।

इस स्पर्शनानुयोगद्वारको लक्ष्य कर धवलाकार यह शंका-समाधान करते है :

शंका—यहाँ स्पर्शनानुयोग द्वारमें वर्तमानकाल सम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्रनिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीत काल विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है ? किन्तु वर्तमान और अतीनकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है।

समाधान—यहाँ स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है। किन्तु पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमे प्ररूपित उस उस वर्तमान क्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है। अतएव स्पर्शनानुयोग द्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है यह सिद्ध हुआ। (जी० फो० टीका पृ० १४६)[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मांण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक स्पर्शन किया है। अबन्धकोंने लोकका असख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—[2]ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय तथा अयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है। सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है। प्रतरसमुद्घातगत सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है।

साताके बन्धकों-अबन्धकोने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक। असाताके

---

१ त्रिकालविषयार्थोपश्लेषण स्पर्शन मतम्। क्षेत्रादन्यत्वभाग्वर्तमानार्थश्लेषलक्षणात् ॥४१॥" – त० श्लो० पृ० १६०। 'एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयद। अस्पर्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम्। फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण। णिद्देसो कहण वक्खाणमिदि एयट्ठो। सो दुविहो जहा पयई। ओघेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो। आदेसेण भेदेण विसेसेणेत्ति समाणट्ठो।"– ध० टी० फो० पृ० १४४, १४५। क्षेत्र निवासो वर्तमानकालविषय। तदेव स्पर्शन त्रिकालगोचरम् स० सि० ५-१०। निर्ज्ञातसख्यस्य निवासविप्रतिपत्ते क्षेत्राभिधानम्। अवस्थाविशेषस्य वैचित्र्यात् त्रिकालविषयोपश्लेष निश्चयार्थं स्पर्शनम्। अवस्थाविशेषो विचित्रस्त्रयस्त्र – चतुरस्त्रादिस्तस्य त्रिकालविषयमुपश्लेषण स्पर्शनम्। कस्यचित् क्षेत्रमेव स्पर्शन कस्यचित् द्रव्यमेव, कस्यचिद्रज्जवः षडष्टौ वेति। एक-सर्वजीवसन्निधौ तन्निश्चयार्थं तदुच्यते—त० रा० पृ० ३०। २ "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।"–षट्खं० फो० सू० १७०, १७२। "पदरगदो केवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जेसु भागेसु। लोगपूरणगदो केवली केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे।"–ध० टी० फो० पृ० ५०, ५४।

दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा अट्ठचोद्दसभागा वा केवलिभंगो । मिच्छत्त-बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा अट्ठबारस-चोद्दसभागा वा केवलिभंगो वा । अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा छचोद्दसभागा वा केवलिभंगं च । इत्थि० पुरिस०

बन्धकों अबन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक । दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । अबन्धकोंने लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है ।

विशेष—दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलियोंकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग है ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोके सर्वलोक, अबन्धकोंके अष्ट चतुर्दश भाग अर्थात् ८/१४ अथवा केवली भग है । अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, असंख्यात बहु-भाग अथवा सर्वलोक है ।

विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा ८/१४ भाग कहा है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवोंने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा असयतसम्य-ग्दृष्टियोंने ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो, इस प्रकार देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है । मिश्रगुण-स्थानमे मरणका अभाव होनेसे मारणान्तिक समुद्घातका वर्णन नही किया गया है । (ध० टी० पृ० १६६, १६७) ।

मिथ्यात्वके बन्धकोने सर्वलोक स्पर्शन किया है । अबन्धकोमे ८/१४, १२/१४ अथवा केवली-भंग अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्व लोक है ।[1]

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है । मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा १२/१४ भाग स्पर्श किया है । यह इस प्रकार है कि सुमेरु पर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथ्वी तक सात राजू होते है और नीचे छठी पृथ्वी तक ५ राजू होते है । इस प्रकार १२/१४ भाग है । सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व गुणस्थानमे ही मरण होनेसे छठवी पृथ्वी तकका ही उल्लेख किया गया है । (ध० टी० पृ० १६२)

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोने सर्वलोक, अबन्धकोने ६/१४ भाग वा केवलीभग प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसयमी जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्घातकी दृष्टिसे देशोन ६/१४ भाग स्पर्श किया । यहॉ सुमेरुसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए (पृ० १७०)

पूर्वमें वर्तमानकाल विशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है इसलिए यह सूत्र (८) अतीत काल सम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है किन्तु यह अनागत अर्थात् भविष्यकाल सम्बन्धी नहीं है क्योकि उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा पीछेके सभी सूत्र अतीत

---

१ ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो । सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा । सम्मामिच्छाइट्ठि-असजदसम्माइट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा –**जी० फो० सू० २-६ ।**

णवुंसग० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा केवलिभंगो। वेदाणं भंगो हस्सादिदोयुगलं पंचजादि छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च। वेदणीयायु [1] आहारदुग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुआयुबंधगा अबंधगा केव० खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। णिरयदेवगदिबंधगा के० खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छचोद्दसभागा वा। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खमणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुगदिबंधगा सव्वलोगो। अबंधगे केवलिभंगो।

और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले है ऐसा निश्चय करना चाहिए क्योंकि भूतकाल और भविष्यकालमे स्पर्शनकी अपेक्षा कोई भेद नही है। धवलाटीकाके ये शब्द महत्त्वपूर्ण है **"अधवा अदीदाणागद काल विसिट्ठखेत्ताणं परूवणाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि त्ति णिच्छओ कायव्वो उभयत्थ विसेसाभावादो"** ध० टी० पृ० १६८। इस कथनने सर्वार्थसिद्धि आदिके आर्ष वाक्योका समर्थन कर दिया है, जिनमे **"स्पर्शन त्रिकालगोचरम्"** स्पर्शनको त्रिकालगोचर कहा गया है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बन्धकों अबन्धकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है। तीनो वेदोंके बन्धकोने सर्वलोक स्पर्श किया है। इनके अबन्धकोंमे केवलीके समान भंग है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके अबन्धकोंका प्रत्येक वेदकी अपेक्षा अबन्धकोंके सर्वलोक स्पर्शन कहा है, कारण यहाँ एक वेदका अबन्ध होते हुए अन्य वेदका बन्ध हो जाता है। वेदत्रयके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे अयोगकेवली पर्यन्त है। उनकी अपेक्षा केवली भग अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पर्श कहा है।

हास्य, रति, अरति, शोक, एकेन्द्रियादि पच जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि नवयुगल तथा २ गोत्रमें वेदके समान भंग है। वेदनीय, आयु, आहारकद्विकके बन्धकोके लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोके सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों-अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोके लोकका असंख्यातवाँ भाग, ८/१४ वा[1] सर्वलोक है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ ऊपरके ६ राजू तथा नीचेके २ राजू इस प्रकार ८/१४ राजू स्पर्शन है।

चार आयुके बन्धकों अबन्धकोने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है? सर्वलोक। नरकगति, देवगतिके बन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है? लोकका असख्यातवाँ भाग वा ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा नरकगतिका स्पर्शन ६/१४ है तथा सोलहवे स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा देवगतिका स्पर्शन ६/१४ कहा है।

तिर्यंचगति-मनुष्यगतिके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों गतियोके बन्धकोंका

१ 'असजदसम्माइट्ठीहि विहारवदिसत्थाण वेदणकसाय-वेउव्विय मारणतियसमुग्घादगदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा उवरि छ रज्जू, हेट्ठा दो रज्जू त्ति।"—ध० टी० फो० पृ० १६७।

एवं चदुआणुपुव्वि०। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दसभागो वा, केवलिभंगं च। वेउव्वियस० बंधगा बारह०। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालिय० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय० अंगो० बंधगा बारहभागा वा। अबंधगा सव्वलोगो। दोअंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। छसंघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसरबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तित्थय० बंधगा अट्ठचोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो।

१६१. आदेसेण-णेरइएसु धुविगाणं बंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि।

सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली भग है। चार आनुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोके १२/१४ भाग, वा केवली भंग है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ भाग, अबन्धकोका सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका केवली भंग है।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त, वैक्रियिक शरीरका अपूर्वकरण छठे भाग पर्यन्त बन्ध होता है। दोनोके अबन्धकोंके अयोगिकेवली पर्यन्त लोकका असंख्यातवॉ भाग है, सयोगी जिनकी अपेक्षा लोकका असख्यात बहुभाग तथा सर्वलोक भी भंग है।

औदारिक अगोपागके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकोंका १२/१४ है, अबन्धकोंके सर्वलोक है। दोनों अगोपांगोके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धको तथा औदारिक शरीरके अबन्धकोंका स्पर्शन १२/१४ कहा है, किन्तु उसी प्रकार वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकों तथा औदारिक अगोपांगके अबन्धकोंका १२/१४ नहीं कहा है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार औदारिक शरीरका अबन्धक वैक्रियिक शरीरका बन्धक होता है अथवा वैक्रियिक शरीरका अबन्धक औदारिकका बन्धक होता है वैसा नियम औदारिक अगोपाग और वैक्रियिक अगोपांगका नहीं है। एकेन्द्रियमे अगोपागका अभाव होनेसे शरीरके समान यहाँ व्याप्ति नही है।

छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोका सर्वलोक है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक अविरतसम्यक्त्वीकी अपेक्षा ८/१४ कहा है। विहार[1]वत् स्वस्थान, वेदना-कषाय वैक्रियिक-मारणान्तिक समुद्घात गत असयतसम्यक्त्वी जीवोमे मेरुके मूलसे ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू प्रमाण स्पर्शन किया है (ध टी. पृ १६७)।

१६१ आदेशसे–नारकियोंमे-ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोके ६/१४ है, अबन्धक नही है।

विशेष—मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदवाले मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीत कालमें ६/१४ स्पर्श किया है। (पृ० १७५) सातवीं पृथ्वीके नारकीकी मारणान्तिक समुद्घात अथवा उपपादकी अपेक्षा कर्मभूमिया सञ्ज्ञी मनुष्य या तिर्यंचपर्याप्तपर्याय प्राप्तिकी दृष्टिसे छ राजू

---

१ असजदसम्माइट्ठीहि विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियमारणतिय समुग्घादगदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। उवरि छ रज्जू हेट्ठा दोरज्जु त्ति -ध० टी० पृ० १६९।

थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा छच्चोद्दसभागो, अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा-अबंधगा छच्चोद्दसभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा छच्चोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि। एवं सत्तणोक० छसंठा० छसंघ० दोविहा० थिरादिछयुगलं। मिच्छत्तबंधगा छच्चोद्दस-भागो, अबंधगा पंचचोद्दसभागो। दोआयु० खेत्तभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागा। एवं तित्थयरं। तिरिक्खगदिबंधगा छच्चोद्दस०, अबंधगा खेत्तभंगो। मणुसगदिबंधगा खेत्त-भंगो। अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदिबंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। एवं दोआणुपुव्वि दोगोदं च। उज्जोव० बंधगा अबंधगा छच्चोद्दस०। एवं सव्वणेरइयाणं।

स्पर्शन है। ध्रुव प्रकृतियोका सभी नारकी बन्ध करते है अतः ६/१४ ध्रुव प्रकृतिके बन्धकोका स्पर्श कहा है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके ६/१४ भाग है, अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भग है। अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है[2]। साता, असाताके बन्धको अबन्धकोंके ६/१४ है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोके ६/१४ है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—नरकगतिमे साता अथवा असाताके पृथक्-पृथक् रूपसे अबन्धककी अपेक्षा ६/१४ भाग कहा है। इसका अर्थ यह है कि साताके अबन्धक किन्तु असाताके बन्धक अथवा असाताके अबन्धक किन्तु साताके बन्धक जीवोंका सप्तम पृथ्वीकी अपेक्षा ६/१४ भाग है।

भयद्विक बिना सात नोकषाय, छह सस्थान, छह सहनन, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमे इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके ५/१४ भाग है।[3]

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोकी अपेक्षा छठी पृथ्वीकी दृष्टिसे मारणान्तिक समुद्घातमे ५/१४ भाग है। सातवी पृथ्वीमे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है, अतः उसकी यहॉ अपेक्षा नही की गयी है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धकोंके क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है।[4] अबन्धकोके ६/१४ भाग है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोके लोकका असंख्यातवॉ भाग, अबन्धकोंके ६/१४ भाग है।

तिर्यंचगतिके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके क्षेत्रवत् भंग है। मनुष्यगतिके बन्धकोंके क्षेत्रसमान भग है। अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। दोनोंके बन्धकोके ६/१४ भाग है। अबन्धक नही है। दो आनुपूर्वी (मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी) तथा २ गोत्रोमे भी इसी प्रकार भग है। उद्योतके बन्धकों अबन्धकोंका ६/१४ भाग है।

इस प्रकार सत्र नारकियोमे जानना चाहिए। विशेष, अपना-अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए।

---

१ 'णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्‌ख० फो० सू० ११,१२। २ "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि भागो।"–षटख० फो० सू० १३, १४, १५। ३ "विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। एग वे तिण्णि चत्तारि पच चोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्‌खं० फो० सू० १७, १८। ४ णेरइएसु सव्वेभगा लोगस्स असखेज्जदिभागे।—खेत्ताणुगम० पृ० १८७।

णवरि अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं। सत्तमीए मिच्छत्तं अबंधगा खेत्तभंगो।

१६२. तिरिक्खाणं धुविगाणं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। [थीणगिद्धितिय] अट्ठकसा० बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा छच्चोद्दस०। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं तिण्णिवे० दोयुग० पंचजादिछसंठाणं तसथावरादिणवयुगल-दोगोदं। मिच्छत्त-बंधगा

विशेष—छठी पृथ्वीमे देशोन $\frac{5}{14}$, पॉचवी पृथ्वीमे देशोन $\frac{4}{14}$, चौथीमे देशोन $\frac{3}{14}$, तीसरीमे देशोन $\frac{2}{14}$, दूसरीमें देशोन $\frac{1}{14}$ तथा पहली पृथ्वीमे लोकका असख्यातवाँ भाग मिथ्यात्व सासादन गुणस्थानमे स्पर्शन कहा है। मिश्र तथा अविरत सम्यग्दृष्टियोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग बताया है। इस स्पर्शनको ध्यानमे रखकर भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोंके विषयमें यथायोग्य योजना करनी चाहिए।

सातवी पृथ्वीमे[1]—मिथ्यात्वके अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके बन्धकोंका स्पर्शन सातों पृथ्वियोंमे लोकका असख्यातवाँ भाग भी कहा है। सातवीं पृथ्वीमे $\frac{5}{14}$ भाग देशोन भी स्पर्श है।

१६२ तिर्यंचोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वलोकमें हैं। अबन्धक नहीं है। [स्त्यानगृद्धित्रिक] अनन्तानुबन्धी ४ तथा अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका $\frac{6}{14}$ भाग है।

विशेषार्थ—कषायाष्टकके अबन्धक देशसंयत तिर्यंचोंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{6}{14}$ भाग कहा है।[3]

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदोंसे अतीत कालमें तियच जीवों-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। क्योकि वर्तमान कालके समान अतीत कालमे भी तिर्यंच जीवोका सर्वलोकमे अवस्थान पाया जाता है। विहारकी अपेक्षा अतीत कालमे तीन लोकोंका असख्यातवॉ भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवॉ भाग और मनुष्य क्षेत्रसे असख्यात गुणा क्षेत्र स्पष्ट है।

शंका—असख्यात समुद्रोंके त्रसजीवोसे रहित होनेपर वहॉ विहार करनेवाले त्रसजीवोंकी सम्भावना कैसे हो सकती है?

समाधान—नही, क्योंकि वहॉ पूर्व वैरी देवोंके प्रयोगसे बिहार होनेमे कोई विरोध नहीं है। **तत्थ पुव्व-वइरिय देवाण पओएण विहारे विरोहाभावादो** (खु० ब० टी० पृ० ३७५)

साता, असाताके बन्धकोंके सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्य-रति, अरति शोक, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल

१ "सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्ख० फो० सू० २२। २ फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घाद-उववादेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो छच्चोद्दसभागा वा देसूणा। पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणसमुग्घाद--उववादपदेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घाद-उववादेहि य केवडि खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। एग वे तिण्णि चत्तारि पच छ चोद्दसभागा वा देसूणा। –खु० बं० सू० १–११। ३ "असजदसम्मादिट्ठि-सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, छच्चोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्ख० फो० सू० २७, २८।

सव्वलोगो। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा। तिण्णि आयुखेत्तभंगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। णिरयगदिदेवगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्ख-मणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दस०। वेउव्वि० बंधगा बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारहचोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो।

तथा दो गोत्रोंमे इसी प्रकार है।[1] मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{७}{१४}$ भाग है।[2]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंके $\frac{७}{१४}$ भाग स्पर्शन है।

नरक-तिर्यंच देवायुका क्षेत्रके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग, वा सर्वलोक भग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धको-अबन्धकोंका सर्वलोक है। नरकगति, देवगतिके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचगति मनुष्यगतिके बन्धकों अबन्धकोका सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ भाग है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है, अबन्धकोका सर्वलोक है।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धक तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{१२}{१४}$ भाग कहा है।

औदारिक-वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोका सर्वलोक है।

विशेष—जिस प्रकार वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांगका भी वर्णन है, किन्तु औदारिक शरीरके समान औदारिक अंगोपांगका वर्णन नहीं है। कारण, एकेन्द्रियोमे औदारिक अगोपांगके अभावमें भी औदारिक शरीर पाया जाता है, किन्तु वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अगोपांगका सदा सम्बन्ध पाया जाता है। इस कारण इनका स्पर्शन तुल्य है तथा औदारिक शरीर एव औदारिक अंगोपागका स्पर्शन समान नहीं कहा गया है।

छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे क्षेत्रवत् भंग है

१ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो —खु० ब० सू० १२, १३। २ "तिरिक्खेसु सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्ज-दिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा देसूणा।" –षट्खं० फो० सू० २३, २५।

आणुपुव्वि-गदिभंगो। परघादुस्सा० आदाउज्जो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। पंचिंदिय तिरिक्ख०३–धुविगाणं बंधगा तेरह-चोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं अट्ठकसा० बंधगा तेरहचोद्दस०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छच्चोद्दसभागो वा। मिच्छ० बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा देसूणा। सादबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा सव्वलोगो वा। अबंधगा तेरह-

---

अर्थात् बन्धकों तथा अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। आनुपूर्वीमे गतिके समान भग है।

विशेष—नरक देवानुपूर्वीके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके सर्वलोक हैं।

परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है।

पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच-पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिमतीमे—ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका १३/१४ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—सातवी पृथ्वीके नारकीने उपपाद-द्वारा पंचेन्द्रियतिर्यंचोंकी भूमि मध्यलोकका स्पर्श किया, पश्चात् तिर्यंचरूपसे काल व्यतीत कर लोकाग्रमे जाकर बादर, पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिकोंमे जन्म धारण किया, इस प्रकार १३/१४ राजू हुए। सप्तम नरकके नारकी जीवने जब तिर्यंच पचेन्द्रिय पर्यायके निमित्त प्रस्थान किया, तब तिर्यंचायुका उदय आ जानेसे वह जीव तिर्यंचसंज्ञाका पात्र हो गया।

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषायके बन्धकोंके १३/१४ भाग, वा सर्व-लोक है। अबन्धकोंके ६/१४ भाग है।[1]

विशेष—यहाँ अबन्धक देशव्रती तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पादकी अपेक्षा ६/१४ कहा है।

मिथ्यात्वके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका देशोन ७/१४ है[2]।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंच ७/१४ भाग स्पर्श करते है।[3]धवलाकार सासादन सम्यक्त्वीका एकेन्द्रियमे उत्पाद न मानकर मारणान्तिक समुद्घात स्वीकार करते है। अतः लोकाग्रके एकेन्द्रियोंमे मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ७/१४ भाग कहा है।

शंका—ये सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंच सुमेरुगिरिके मूलभागसे नीचे मारणान्तिक समुद्घात क्यों नहीं करते?

समाधान—सभावदो–स्वभावसे वे ऐसा नहीं करते हैं। पर्यायार्थिक नयकी विवक्षासे वे नारकियोंमे अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रिय जीवोंमे मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते है। (धवलाटीका पृ० २०५)

सातके बन्धकोंका ७/१४ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है।

---

१ "तिरिक्खेसु असजदसम्मादिट्ठि-संजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, छचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० २७-२८। २ "सासणसम्माविट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागा वा देसूणा"–षट्खं० फो० सू० २४-२५। ३ मारणतिय-समुग्घा-दगदेहि सत्त-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा—२०४ ध० टीका जीव० फो०।

चोद्दसभा०, सव्वलोगो। असादबंधगा तेरहभागो वा, सव्वलोगो। अबंधगा सत्तभागा वा सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा तेरस० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक० थिराथिर-सुभासुभ०। इत्थिवे० बंधगा दिवड्ढचोद्दसभागा। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। पुरिस० बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा छचोद्दस०। तिण्णिवेद० बंधगा तेरस० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। चदुण्णं आयु० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदि-देवगदिबंधगा छच्चोदसभागा। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदिबंधगा सत्तचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा अबंधगा बारहचोद्दस०। मणुसगदि-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं आणुपुव्वि०। एइंदि० बंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा बारह०। तिण्णिजादीणं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा

असाताके बन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोके बन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमे इसी प्रकार भग जानना चाहिए। स्त्रीवेदके बन्धकोंके $\frac{1\frac{1}{2}}{14}$ भाग है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त देवियोका उत्पाद होता है अतः जिस तिर्यंचने मारणान्तिक समुद्घात द्वारा सौधर्म ईशानके प्रदेशका स्पर्शन किया, उसकी अपेक्षा $\frac{1\frac{1}{2}}{14}$ भाग कहा है।[1]

पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{6}{14}$, अबन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—तिर्यंचोका अच्युत स्वर्गपर्यन्त उत्पाद होता है। इस दृष्टिसे पुरुषवेदके बन्धकके $\frac{6}{14}$ कहा है।

नपुसकवेदके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है अबन्धकोके $\frac{6}{14}$ भाग है। तीनो वेदोके बन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। चार आयुके बन्धकोका क्षेत्रके समान सर्वलोक भग है। अबन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। नरकगति, देवगतिके बन्धकोका $\frac{6}{14}$ भाग है, अबन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—नरकगतिके बन्धक तिर्यंचका सप्तमपृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{6}{14}$ है, इसी प्रकार देवगतिके बन्धकके अच्युत स्वर्गकी अपेक्षा भी $\frac{6}{14}$ भाग है।

तिर्यंचगतिके बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके $\frac{12}{14}$ है।

विशेष—तिर्यंचगतिके अबन्धकके अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरक पर्यन्त, स्पर्शकी अपेक्षा $\frac{13}{14}$ भाग है। तिर्यंचगतिके बन्धक पचेन्द्रिय तिर्यंचके मध्यलोकसे लोकान्तके एकेन्द्रियों-के क्षेत्रके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{7}{14}$ है।

मनुष्यगतिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही हैं। आनुपूर्वीमें गतिके समान भग हैं। एकेन्द्रियके बन्धकोके $\frac{7}{14}$, सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{12}{14}$ भाग है।

१ सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाणसमुग्घादगद देवगदिभगो। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा। —खु० बं० सू० ३७-३८।

तेरह० सव्वलोगो। पंचिंदि० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। पंचजा० तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०, अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह०, सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। समचदु० बंधगा छचोद्द०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। चदुण्णं संठाणाणं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। हुंडसंठाणस्स तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो वा। छसंठाणाणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय-अंगो० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो। दोण्णं अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचो०, सव्व-

---

विशेष—लोकाग्र भागमे विद्यमान एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेकी अपेक्षा $\frac{7}{14}$ स्पर्शन है। एकेन्द्रियके अबन्धकोका स्पर्शन सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू तथा अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ६ राजू प्रमाण होनेसे $\frac{12}{14}$ कहा है।

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिके बन्धकोका क्षेत्रके समान भग है। अबन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सवलोक है।

विशेष—विकलेन्द्रियके अबन्धकोका लोकाग्रमे स्थित एकेन्द्रियका स्पर्शन तथा अधो-लोकमे सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{13}{14}$ कहा है।

पचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। पच जातियोके बन्धकोके $\frac{13}{14}$वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। औदारिक शरीरके बन्धकोके $\frac{7}{14}$ है, वा सर्वलोक है। अबन्धकोके $\frac{12}{14}$ है।

विशेष—लोकाग्रके एकेन्द्रियोके स्पर्शनकी अपेक्षा बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ है। अबन्धकोके वैक्रियिक शरीरकी अपेक्षा ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{12}{14}$ है।

वैक्रियिक शरीरके बन्धकोके $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनो शरीरोंके बन्धकोके $\frac{13}{14}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। समचतुरस्र सस्थानके बन्धकोके $\frac{6}{14}$ तथा अबन्धकोके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—इस सस्थानके बन्धकोके अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{6}{14}$ है। अबन्धकोंके अधोलोकके ६ तथा ऊर्ध्वके ७ राजू मिलाकर $\frac{13}{14}$ भाग कहा है।

चार सस्थान अर्थात् समचतुरस्र तथा हुण्डकको छोड़कर शेपके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भग है। अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। हुण्डक संस्थानके बन्धकोका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोके $\frac{6}{14}$ भाग है। छह संस्थानोंके बन्धकोके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अगोपागके बन्धकोका क्षेत्रके समान भग है। अबन्धकोके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपागके बन्धकोका $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक भग है।

विशेष—इसके बन्धकोंके ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार $\frac{12}{14}$ भग है। यह वैक्रियिक अगोपागके अबन्धकोके लोकाग्रके एकेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा $\frac{7}{14}$ कहा है।

दोनो अंगोपांगोंके बन्धकोका $\frac{13}{14}$ तथा अबन्धकोका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है।

लोगो। छसंघ० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। परघादुस्सा० बंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। आदावस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। पसत्थवि० बंधगा छच्चो-द्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलो० अप्पसत्थवि० बंधगा छच्चोद्दस०। अबं० सत्तचोद्द० सव्वलो०। दोण्णंपि बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलो०। एवं दूसर०। तसबंधगा बारह०। अबधगा सत्तचो० सव्वलो०। थावरबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दस०। दोण्णंपि बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। बादरं बंधगा तेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सुहुमबंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा। अबंधगा तेरह० चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। पज्जत्त-पत्तेग० बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा लोगस्स असंखे० सव्वलो०। अपज्जत्त साधारण-बंधगा लोग० असंखे०, सव्वलो०। अबंधगा तेरह० सव्वलो०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि।

छह सहननोका पृथक्-पृथक् अथवा समुदाय रूपसे क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्‌वासके बन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग है अथवा सर्वलोक है। आतपके बन्धकोंके क्षेत्रके समान है। अबन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ अथवा सर्वलोक भग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{७}{१४}$, अबन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक भंग है। प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{६}{१४}$, अबन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ कहा है, कारण देवोंके प्रशस्त विहायोगति पायी जाती है। प्रशस्तविहायोगतिके अबन्धक अर्थात् अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धक अथवा दोनोंके अबन्धककी अपेक्षा अधोलोकके ६ राजू तथा ऊर्ध्वके ७ इस प्रकार $\frac{१३}{१४}$ है।

अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, अबन्धकोंका $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—सप्तम पृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ है। विहायोगतिके अबन्धककी अपेक्षा लोकाग्रके तिर्यंचोंके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{७}{१४}$ भाग है, कारण एकेन्द्रियके साथ विहायोगतिके बन्धका सन्निकर्षपना नहीं पाया जाता है।

दोनों विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$, अबन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है। दो स्वरोंमे भी इसी प्रकार है। त्रसके बन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$, अबन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है। स्थावरके बन्धकोंके $\frac{७}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{१२}{१४}$ है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। बादरके बन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ है, अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। सूक्ष्मके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ भाग है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। पर्याप्तक तथा प्रत्येकके बन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। पर्याप्त अपर्याप्त तथा प्रत्येक साधारणके बन्धकोंका $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही

सुभग-आदेज्ज-समचदु० भंगो। दूभग-अणादेज्जहुंडसंठाणभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। जसगित्तिस्स बंधगा सत्तचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। अज्जस० बंध० तेरह० सव्वलो०। अबंधगा सत्तचोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। दो गोदाणं संठाण-भंगो।

१९३. पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। दोवेदणी० हस्सादि० दोयुगल-थिरादि०४ बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। दोण्हं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा पडिलोमं भाणिदव्वं। तिण्णि वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थिवेदभंगो दोआयु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि०

हैं। सुभग तथा आदेयका समचतुरस्र सस्थानके समान भग है। दुर्भग, अनादेयका हुण्डक-संस्थानके समान भग है। सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। यशःकीर्तिके बन्धकोके ७/१४ है, अबन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है। अयशः-कीर्तिके बन्धकोके १३/१४, सर्वलोक है। अबन्धकोके ७/१४ है। यशःकीर्ति-अयशःकीतिके बन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है।

विशेष—तिर्यंचोमे तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नही किया गया है।

दो गोत्रोंके विषयमे संस्थानके समान भग है।

१९३ पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है[1]। अबन्धक नहीं है। दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, स्थिरादि ४ के बन्धको-अबन्धकोंका लोकके असख्यातवे भाग वा सर्वलोक है। दोनो प्रकृतियोंके बन्धकोका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। स्त्री पुरुष वेदके बन्धकोका क्षेत्र भग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका लोकके असख्यातवे भाग वा सर्वलोक भग है। नपुंसकवेदका प्रतिलोम क्रम है अर्थात् नपुसकवेदके बन्धकोका लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भग है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवाँ भाग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु), मनुष्यगति, दोइन्द्रियादि

---

१ "पचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा।"-षट्खं० फो० सू० ३२, ३३। पचिंदियतिरिक्ख-पचिंदियतिरिक्खपज्जत्त पचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पचिदियतिरिक्ख अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा —खु० बं०, सू० १४-१७।

अंगो० छसंघ० मणुसाणु० आदाउज्जो० (?) दोविहा० [तस] सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चागोदं च। णवुंसगवेद-भंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपुव्वि-थावर-पज्जत्तापज्ज० पत्तेग-साधारण-दूभग-दूसर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। दोआयु० छसंघ० दोविहा० दोसर० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। गदि-जादि-संठाण-आणुपुव्वि-तसथावरादिसत्तयुगलदोगोदाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। परघादुस्साणं बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दसभागो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। एवं बादरजसगित्ति। तप्पडिपक्खं सुहुमं अज्जसगित्ति।

१६४. एवं मणुसापज्जत्त० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-बादरपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ता। णवरि बादरवाउपज्जत्ते जं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो कादव्वो। मणुस०३-पंचणा०

चार जाति, हुण्डक बिना ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, (?) २ विहायोगति, [त्रस] सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है।

विशेष—उद्योतका वर्णन आगे आया है अतः यहाँ आतापके साथ उद्योतका पाठ अधिक प्रतीत होता है।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है। दो आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है।

विशेषार्थ—दो आयु, छह संहनन तथा दोविहायोगतिका पहले वर्णन आ चुका है कि उनमें स्त्रीवेदके समान भंग है। उनका फिरसे उल्लेख होना चिन्तनीय है।

अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। गति, जाति, संस्थान, आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि सप्त युगल, २ गोत्रके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकों-अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। उद्योतके बन्धकोंका ७/१४, अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। बादर, यशःकीर्ति इसी प्रकार है। सूक्ष्म और अयशःकीर्तिमें इनका प्रतिपक्षी अर्थात् बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका ७/१४ है।

१६४ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस-अपर्याप्तक, बादर-पृथ्वी जल-तेज-वायु-बादरवनस्पति प्रत्येक-पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भंग है। विशेष, बादर-वायुकायिक पर्याप्तकोंमें जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

णवदंस० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। मिच्छत्तस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागो वा केवलिभंगो। सादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। असाद-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखे० भागो केवलिभंगो, दोण्णं पगदीणं

[1]मनुष्यत्रिक अर्थात् मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त मनुष्यनीमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका केवली भंग है[2]। मिथ्यात्वके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा ७/१४ अथवा केवली-भग है।

विशेष मिथ्यात्वके बन्धकोंके मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन कहा है। (ध० टी० फो० पृ० २१७)

साताके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा केवली भग है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्व-लोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवॉ भाग वा केवली भग है। दोनो प्रकृतियोंके

---

१ "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।"-षट्ख० फो० सू० ३४-४१। २ मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा—खु० ब० सू० १८-२३। मणुस-अपज्जत्ताण पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ताण-भगो पंचिदियतिरिक्ख पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिदियतिरिक्ख अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा—सू० १४-१७। बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा (५५-५८)। पंचिदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। (६५ ६९)। तसकाइय-तसकाइय पज्जत्ता-अपज्जत्ता पंचिदिय-पंचिदियपज्जत अपज्जत्तभगो (९८)। बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा (७७ ८१)। बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स सखेज्जदिभागो। समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स सखेज्जदिभागो (८७-९०)।

बंधगा केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा केवलिभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णं वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो चदुआयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेउव्वि०-आहार० पंचसंठा० तिण्णिअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाव० दोविहा० तस-सुभग० दोसर (?) [सुस्सर] आदे० उच्चागोदं च। णवुंसकवेदभंगो हस्सरदि-अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-ओरालि० हुडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-पज्जत्त-अपज्जत्त० पत्तेय साधारण० थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। परघादुस्सासं हस्सभंगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं बादरजसगित्ति। सुहुम बंधगो लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। अजसगित्तिस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो केवलिभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। तित्थयरस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो।

बन्धकोंका केवली भग है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग है।

विशेष – दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा असख्यातवॉ भाग कहा है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोका केवली-भंग है। नपुसकवेदका असाताके समान भग है। तीनो वेदोंके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक भग है। अबन्धकोका केवली-भग है। चार आयु, तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक, आहारक शरीर, ५ सस्थान, तीन अंगोपांग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर (?) [सुस्वर], आदेय तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भग है।

विशेषार्थ – यहॉ 'दोसर' (दो स्वर) के स्थान मे सुस्वर पाठ सम्यक् प्रतीत होता है कारण आगे दुस्वरका उल्लेख किया है। सुस्वर में स्त्रीवेदके समान भंग है। दुस्वर में नपुसंकवेद के समान भग है।

हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्डक सस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुसकवेदके समान भग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे भी वेदके समान भंग है।

परघात, उच्छ्वासका हास्यके समान भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा केवली भंग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{7}{14}$ है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। बादर तथा यशःकीर्तिमे इसी प्रकार है। सूक्ष्मके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका केवली-भग है। अयश - कीर्तिके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा केवली-भग है। बादर, सूक्ष्म तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग वा केवलीभग है।

१६५. देवेसु–धुविगाणं बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो

१६५ देवोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ भाग है। अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातसे परिणत मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतमे देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातगत मिथ्यात्वी तथा सासादन सम्यक्त्वी देवोंने $\frac{9}{14}$ भाग स्पर्श किया है ([1]ध० टी० फो० पृ० २२५)।

खुद्दाबन्ध टीकामें देवोंका सामान्य रूपसे स्पर्शन इस प्रकार कहा है। देवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। देवों-द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असख्यातवॉ भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवॉ भाग तथा अढाई द्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पष्ट है।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवॉ भाग कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि चन्द्र, सूर्य, बुध, बृहस्पति, शनि, शुक्र, मगल, नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकारके व्यन्तर विमानोंसे रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण पाये जाते हैं। विहारकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पष्ट है। मेरु मूलसे ऊपर छह राजुमात्र और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रमें देवोंका विहार है इससे $\frac{8}{14}$ भाग कहा है।

शंका—ये आठ बटे चौदह भाग किससे कम है "केग ते ऊणा" ?

समाधान—तृतीय पृथ्वीके नीचे एक सहस्र योजनसे कम हैं।

प्रश्न—देवों-द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ?

उत्तर—समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह वा नौ बटे चौदह भाग ($\frac{8}{14}$, $\frac{9}{14}$ भाग) स्पष्ट हैं। लोकका असंख्यातवॉ भाग यह कथन वर्तमान क्षेत्र प्ररूपणाकी अपेक्षासे है। अतीतकालकी अपेक्षा वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{8}{14}$ भाग स्पष्ट है। क्योंकि विहार करनेवाले देवोंके अपने विहार क्षेत्रके भीतर वेदना, कषाय, और वैक्रियिक समुद्घात रूप पद पाये जाते हैं। मारणान्तिककी अपेक्षा $\frac{9}{14}$ भाग स्पष्ट है, क्योंकि मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रके भीतर सर्वत्र अतीत कालमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त देव पाये जाते हैं।

प्रश्न—उपपादकी अपेक्षा देवों-द्वारा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ?

उत्तर—वर्तमान क्षेत्रकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग तथा अतीत काल सम्बन्धी उपपादकी अपेक्षा देशोन $\frac{6}{14}$ भाग स्पष्ट है। कारण **"आरणच्चुदकप्पोत्ति तिरिक्ख-मणुस-असंजदसम्माविट्ठीणं सजदासंजदाणं च उववादुवलंभादो"**—आरण अच्युत कल्प पर्यन्त तिर्यंच व मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टियों और संयतासंयतोंका उपपाद पाया जाता है (**खु०** बं० टीका पृ० ३८२–३८४)

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, वा $\frac{9}{14}$ भाग है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ भाग है।[2]

१. "देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० ४२, ४३। २. "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजद सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० ४४, ४५।

वा। एवं णवुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर० दूभग-अणादेज्ज-णीचागोदं च। मिच्छत्तस्स बंधगा अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। एवं उच्चागो० (?) सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा णत्थि। एवं हस्सादिदोयुगलं थिरादि-तिण्णि-युगलं च। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दसभागा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। तिण्णं वेदाणं अट्ठणव-चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। इत्थिभंगो दोआयुमणुसगदि-पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० मणुसाणु० आदाव० दोविहाय० तस-सुभग-आदेज्ज० दोसर० तित्थयर० उच्चागोदं च (?) एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि आयुभंगो छसंघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं।

विशेष—यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी, अविरतसम्यक्त्वी जीवोंके विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्शन है। यह विशेष है कि अविरत सम्यक्त्वी देवोंमे मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी ८/१४ भाग है।

नपुसकवेद, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है। इसी प्रकार उच्चगोत्रमे भी है। साता तथा असाताके बन्धको अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है। साता असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—देवोंमे आदिके चार गुणस्थान ही होते है अतः अयोगकेवलीमे अबन्ध होनेवाले इन साता-असाता युग्मका अबन्धक यहाँ नही कहा है। असाताका प्रमत्तसंयत तक तथा साताका सयोगी जिन पर्यन्त बन्ध होता है इसी कारण देवोंमे इनके अबन्धक नहीं है।

हास्यादि दो युगल तथा स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके ८/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है। तीनों वेदोके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है। अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—जब देवोंमे वेदोंके अबन्धक नहीं है, तब स्त्रीवेद, पुरुषवेदके अबन्धकोंका तात्पर्य नपुंसकवेदके बन्धकोंसे है। नपुंसकवेदका बन्ध मिथ्यात्वी जीवोंके ही होगा अतः उनके ८/१४ वा ९/१४ कहा है।

तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, औदारिक अगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, दो स्वर, तीर्थंकर और उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भग है। अर्थात् बन्धकोंके ८/१४ तथा अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है।

विशेष—उच्चगोत्रका पहले कथन आया है। यहाँ पुनः उसका वर्णन किया गया है। इनमे-से एक पाठ अशुद्ध होना चाहिए। यह विषय चिन्तनीय है।

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे भी वेदोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा साधारणसे दो आयु (तिर्यंच-मनुष्यायु) के समान भंग जानना चाहिए।

विशेष—छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका पहले स्त्रीवेदके समान 'भंग

बताया है। पश्चात् उनका आयुके समान भंग कहा है। यह विषय चिन्तनीय है।

इस प्रकार सर्व देवोंमे अपना अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए।

विशेष—भवनत्रिकमे मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, ३½/१४, ८/१४ वा ९/१४ भाग है।[1] ये विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, विक्रियापदके द्वारा उपरोक्त लोकका स्पर्शन करते है। मेरुतलसे दो राजू नीचे तथा सौधर्मस्वर्गके विमान-ध्वजदण्ड पर्यन्त ऊपर डेढ़ राजू इस प्रकार ३½/१४ स्वयमेव विहार करते है। ऊपरके देवोंके प्रयोगसे ८/१४ भाग स्पर्शन है कारण उपरिम देवोके द्वारा ले जाये गये वे ४½ राजू तथा स्वनिमित्तसे ३½ जाते है। इस प्रकार ८/१४ है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ९/१४ स्पर्शन करते है क्योंकि मेरुमूलसे नीचे दो राजु मात्र मार्ग जाकर स्थित भवनवासी आदि देवोका घनोदधि वातवलयमे स्थित जलकायिक जीवोंमे मारणान्तिक समुद्घात करते समय ९/१४ भाग स्पर्शन पाया जाता है (खु० ब० टीका पृ० ३८७)। [2]सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असयत सम्यग्दृष्टि देवोंमे अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा ३½/१४ वा ८/१४ भाग स्पर्शन है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग भवनत्रिकका स्पर्शन है। [3]सौधर्मद्विकके देवोका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिकपदकी दृष्टिसे आदिके दो गुणस्थानोमे ८/१४ है। मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त गुणस्थानोमे ९/१४ भाग है। अतीत उपपादकी अपेक्षा १½/१४ है। मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमे ८/१४ है। अविरत सम्यक्त्वीके मारणान्तिककी अपेक्षा देशोन ५/१४ तथा अतीत उपपादकी अपेक्षा १½/१४ है। वर्तमानकालकी अपेक्षा उपपाद पद लोकका असख्यातवॉ भाग कहा है (खु० ब०)।

[4]सनत्कुमारादि पॉच कल्पोंमे स्वस्थान स्वस्थानपदपरिणत देवोने अतीतकालमे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। वर्तमानकालकी अपेक्षा भी लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ है। उपपाद परिणत सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने देशोन ३/१४, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरवासी देवोंने देशोन ३½/१४, लान्तव-कापिष्ठवासी देवोंने ४/१४, शुक्र-महाशुक्रवासी देवोंने ४½/१४, शतारसहस्रारवासी देवोंने ५/१४ भाग स्पर्श किया है। विशेष, मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके मारणान्तिक तथा उपपाद पद नहीं होते है।[5] आनत, प्राणत, आरण, अच्युतवासी देवोंका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा देशोन ६/१४ भाग स्पर्शन है। मिश्रगुणस्थानमे मारणान्तिक तथा उपपादपद नहीं होते है। आनत-प्राणत-कल्पके

---

१ "भवणवासिय-वाणवेतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, अद्धुट्ठा वा अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० ४६-४७। २ "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, अद्धुट्ठा वा अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं० फो० सू० ४८-४९। ३. "सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठित्ति देवोघ।"–सू० ५०। ४ "सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।"–सू० ५१-५२। ५ "आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा। णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अणुद्दिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"–सू० ५३-५६।

१९६. एइंदिएसु-धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं वेदणीयभंगो। णवरि मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० ओरालि० अंगो० परघादुस्सासआदाउज्जोव-दोविहाय-दोसर०।

१९७. एवं सव्वसुहुम-एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-णिगोद एदेसि० सव्वसुहुमाणं च।

उपपाद परिणत असयत सम्यग्दृष्टि देवोने देशोन ५/१४ भाग स्पर्श किये है। आरण अच्युतवाले देवोने उपपादसे ६/१४ भाग स्पर्श किया है, कारण वैरी देवोके सम्बन्धसे सर्व द्वीपसागरोमें विद्यमान असंयतसम्यग्दृष्टि तथा सयतासयत तिर्यंचोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है। [1]नव ग्रैवेयकवासी देवोंका मिथ्यादृष्टिसे लेकर असयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असयत सम्यक्त्वी देवोंके स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक तथा उपपादरूप परिणमनकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। सर्वार्थसिद्धिमे मारणान्तिक तथा उपपादपदोंको छोड शेष पदोंकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रका सख्यातवाँ भाग स्पर्शन है (खु० बं० पृ० ३९२)।

१९६. एकेन्द्रियोंमे—[2] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—स्वस्थान स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक तथा उपपादकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत-अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है। खुद्दाबंध टीकामें लिखा है वैक्रियिक समुद्घात पदसे लोकका सख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि सूक्ष्म जीवोंके वैक्रियिक समुद्घात नहीं होता। "णवरि सुहुमाण वेउव्वियं णत्थि।" (३९३ पृ०)।

साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका स्पर्शन सर्वलोक है। दोनो प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है। विशेष, मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों आयुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, औदारिक अंगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति तथा दो स्वरमें इसी प्रकार भंग है।

१९७ सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें इसी प्रकार है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, इनके सर्वसूक्ष्म भेदोंमें भी इसी प्रकार है।[3]

---

१ "णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाणसमुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो"— खु० बं० सू० ४७-४८। २ "इदियाणुवादेण एइदिय बादर-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो।"—षटखं० फो० सू० ५७। ३ "बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"—सू० ६७-६८।

१६८. बादरेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोकसा० परघादुस्सा० थिराथिरसुभासुभाणं। इत्थि० पुरिस० बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वलोगो। णवुंस० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो। एवं इत्थिभंगो तिरिक्खायु-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदा०दोविहाय०तस-सुभग-दोसर-आदेज्ज०। णवुंसक-भंगो एइंदिय हुंडसंठा०थावर-दूभग-अणादेज्ज०। मणुसायु-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। दो-आयु-बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। एवं छसंघ० दोविहा० दोसर०। तिरिक्खगदिबंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। मणुसगदिबंधगा [लोगस्स] असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं दो-आणु० दो-गोदाणं। उज्जोवस्स बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो। एवं बादर-जस०। पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेगं

---

१६८ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंके[1] सर्व लोक स्पर्शन है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्यादि चार नोकषाय, परघात, उच्छ्वास, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमे इसी प्रकार जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग, अबन्धकोंके सर्वलोक है। नपुसकवेदके बन्धकोंके सर्वलोक है तथा अबन्धकोंके लोकका सख्यातवॉ भाग है।[2] तिर्यंचायु, चार जाति, पॉच संस्थान, औदारिक अगोपाग, छह सहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर तथा आदेयमे स्त्रीवेदका भंग जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, हुण्डकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमे नपुंसकवेदका भग जानना चाहिए। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। मनुष्य-तीर्यचायुके बन्धकोंका लोकका संख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका[3] लोकका संख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरमे इसी प्रकार है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवॉ भाग है। मनुष्यगतिके बन्धकोंके [लोकका] असख्यातवॉ भाग है, अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यगति तिर्यंचगतिरूप दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धक नही है। मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी तथा दो गोत्रोंमे इसी प्रकार है। उद्योतके बन्धकोंका लोकका संख्यातवॉ भाग वा $\frac{7}{14}$ भाग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है। बादर तथा

---

१ बादरेइदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो।—(५१-५४ सू० खु० बध)। २ "बादरवाउपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"—षट्खं० फो० सू० ६६, ७२। ३ "मारणतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। एव बादरतेउकाइयपज्जत्ताण पि वत्तव्व। णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स सखेज्जदिभागो वत्तव्वो।"—ध० टी० फो० पृ० २५२।

साधारणं वेदणीय-भंगो। सुहुम अजस० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स संखे-ज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं बादर-वाउ० अपज्जत्तात्ति। बादर पुढवि-आउ० तेउ०-तेसिं च अपज्जत्ता बादर-वण-प्फदि णिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता बादर-वणप्फदि० पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त बादरएइंदिय-भंगो। णवरि य हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कायव्वो।

१९९. पंचिंदिय-तस-तेसिं पज्जत्ता-पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ तेरह-चोद्दसभागो वा सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो केवलिभंगो। [साद०

यशःकीर्तिमे इसी प्रकार जानना चाहिए। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमे वेदनीयके समान भग है। सूक्ष्म तथा अयश कीर्तिके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग वा ७/१४ है। बादर-सूक्ष्म तथा यश कीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्तकोंमे इसी प्रकार है। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर-अप्कायिक अपर्याप्तक, बादर तेजकायिक-अपर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर-निगोद-अपर्याप्तक, बादर वनस्पति प्रत्येक, बादर वनस्पति प्रत्येक अपर्याप्तमे बादर एकेन्द्रियके समान भग है। विशेष, जहाँ लोकका सख्यातवाँ भाग है वहाँ लोकका असख्यातवाँ भाग करना चाहिए।

विशेषार्थ—स्वस्थान पदों द्वारा लोकके सख्यात भाग स्पर्शके विषयमें खुद्दा बन्ध टीकामे कहा है। वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण पाँच राजू बाहल्यरूप राजुप्रतर बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण सात पृथिवियों, उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस-बीस हजार योजन बाहल्यरूप तीन-तीन वातवलय क्षेत्रों तथा लोकान्तमे स्थित वायुकायिक क्षेत्रको एकत्रित करनेपर तीनों लोकोंका सख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असख्यातगुणा क्षेत्र विशेष उत्पन्न होता है। इसलिए अतीत व वर्तमान कालोंमे लोकका सख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है। (खु० ब० पृ० ३६३)।

१९९ [1]पचेन्द्रिय, त्रस, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस-पर्याप्तकोंमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, आठ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक लोकके असख्यातवें भाग, ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोकका स्पर्शन करते है। अबन्धकोंका केवली-भग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४ भाग वा केवलीके समान भंग जानना चाहिए।

१ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ।"–षट्खं० फो० सू० ६० ६२। "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ।" –सू० ७२।

बंधगा अट्ठ-तेरह-चोद्दस० केवलि-भंगो ।] अबंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । असाद-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० केवलिभंगो । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० चोद्दसभागो केवलिभंगो । दोण्णं अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्श करते है। देवोंके विहारका आश्रय कर कुछ कम $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्शन है। समुद्घ तोंकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग, देशोन $\frac{8}{14}$, संख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट होता है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्शन है, क्योंकि विहार करनेवाले देवोंके उक्त समुद्घातोंके विरोधका अभाव है। तैजस और आहारक समुद्घात पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवॉ भाग और मानुष लोकोंका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। दण्ड तथा कपाट समुद्घातोंको प्राप्त जीवों-द्वारा चार लोकोंका असख्यातवाँ भाग और मानुष क्षेत्रसे असख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि कपाट समुद्घातमे तिर्यग्लोकसे सख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग क्षेत्र स्पृष्ट है। क्योंकि इस अवस्थामें वातवलयोंको छोडकर सम्पूर्णलोकमे जीवोंके प्रदेश व्याप्त होते है। मारणान्तिक तथा लोक पूरण समुद्घात पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट[1] है। सर्वलोकमे स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें-से पचेन्द्रिय जीवोंमे आकर उत्पन्न होनेवाले प्रथम समयवर्ती जीवोंके सर्वलोकमें व्याप्त देखे जानेसे उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट कहा गया है। (खुद्दा बंध टीका पृ० ३६६—३६६)।

सप्तम पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्य लोकको स्पर्श करते है। मध्य लोकसे जीव लोकाग्रमे जाकर बादर पृथ्वी कायिको आदिमे उत्पन्न होते है। इस प्रकार छह और सात राजू मिलकर तेरह राजू स्पर्शन कहा है। जीवट्ठाणकी धवला टीकामे लिखा है[2]। मारणान्तिक समुद्घात पद परिणत वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने देशोन $\frac{13}{14}$ भाग स्पर्श किये हैं जो मेरुतलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए।

[साता वेदनीयके बन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली-भंग है ।] अबन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्व लोक है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली भग है। दोनोंके अबन्धकोका लोकके असख्यातवे भाग है।

विशेष—[3]दोनोके अबन्धक अयोगकेवलीका स्पशन लोकका असख्यातवॉ भाग कहा है।

मिथ्यात्वके बन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा केवली भंग

---

१ विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्ति उपपाद —गो० जी० १६६ पृ० ४४४। २ मारणतियपरिगदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा। हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू।—जीव० फो० पृ० २६६। ३ पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।—सू० ९।

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छचोद्दसभागो केवलि-भंगो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। णवुंस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारह० केवलि-भंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो पंचसंठा० छस्संघ० सुभग-दोसर-आदे०। णवुंसकभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे०। साधारणेण वेदभंगो। णवरि संघडणसरणामाणं बंधगा अट्ठ-बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। हस्सरदि-अरदि-सोग-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० भागो, केवलिभंगो। चदुण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलि-भंगो। एवं थिराथिरसुभासुभ०। दो-आयु तिण्णिजादि। आहारदुगं खेत्तभंगो। अबं-धगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दो-आयु० मणुसगदि-आदाव-तित्थय० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। चदु-आयुबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो।

है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ६/१४ वा केवली-भग है।

विशेष—[1]अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसयमीके अच्युत स्वर्गपर्यन्त मारणा-न्तिककी अपेक्षा ६/१४ कहा है। (ध० टी० फो० पृ० १७०)

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवलीभग है।

विशेष—मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार ८/१४ है। ७वीं पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्यलोकका स्पर्श करते है। अच्युत स्वर्गके देवोंने मध्यलोकका स्पर्शन किया, इस प्रकार १२/१४ राजू स्त्री-पुरुषवेदके बन्धकोके हुए।

नपुंसकवेदके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा केवली-भंग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भग है। ५ संस्थान, ६ संहनन, सुभग, दो स्वर, आदेयका स्त्रीवेदके समान भग है। हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेय-का नपुसक वेदके समान भग है। इनका सामान्यसे वेदके समान भंग है। विशेष, सहनन, स्वर नामक प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ भाग है, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक भंग है।

विशेष—तीसरी पृथ्वीमें विक्रिया द्वारा पहुँचा हुआ देव मारणान्तिक-द्वारा लोकाग्रका स्पर्श करता है इस प्रकार ९/१४ भाग होता है।

हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक स्पर्श है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। सामान्यसे हास्यादि ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अब-न्धकोंका केवली भग है। स्थिर अस्थिर, शुभ-अशुभ, मे इसी प्रकार जानना चाहिए।

दो आयु, ३ जाति तथा आहारकद्विकमें क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकका असं-ख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। दो आयु, मनुष्यगति, आतप तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवलीभग है। चार आयुके बन्धकोंका

---

१ "सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा"—सू० ७, ८।

अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोगदि बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। तिरिक्खगदि बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलि-भंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदिय० बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा अबंधगा। अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। पंचिंदि० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० केवलिभंगो। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० बंधगा अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा बारस० केवलिभंगो। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलि-भंगो। दोण्णं बंधगा धुविगाणं भंगो। ओरालि० अंगो० अट्ठबारह-चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। वेउव्वि० अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगाणं अट्ठबारह-भागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो केवलिभंगो। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उज्जोवस्स बंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा अट्ठतेरह-भागो केवलिभंगो। पसत्थ-अप्पसत्थविहायगदिबंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा० अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० केवलिभंगो। तसबंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० केवलिभंगो। थावर-

---

८/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगति देवगतिके बन्धकोंका ६/१४ है, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली भग है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा केवली भंग है। चारों गतिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंमे केवली-भग है। आनुपूर्वियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

एकेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ वा केवली-भग है। पचेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भग है। पंचजातियोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके केवली-भग है। औदारिक शरीरके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके १२/१४ वा केवली-भग है।

विशेष—औदारिक शरीरके अबन्धकों अर्थात् वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके मेरुतलसे ऊपर अच्युत पर्यन्त ६ राजू तथा सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू, इसी प्रकार १२/१४ है।

वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके १२/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४, लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके समान है। अबन्धकोंके केवली-भंग है। औदारिक अगोपांगके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भग है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भंग जानना चाहिए। उद्योतके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली भंग है।

विशेष—एकेन्द्रिय जातिके साथ विहायोगतिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है अत

बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। बादर-बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा केवलिभंगो। पज्जत्तपत्तेय० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। सुहुम-अपज्जत्त-साधारणबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। बादर-सुहुम-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। जसगित्ति उज्जोव (?) बंधगा, अज्जस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उच्चागोदं मणुसायुभंगो। णीचागोदं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दस० केवलिभंगो।

२००. एवं पंचमण० पंचवचि०। णवरि केवलिभंगो णत्थि। वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। कायजोगि-ओघो। णवरि वेदणी० अबंधगा णत्थि।

विहायोगतिद्विकके अबन्धकोंके मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजूकी अपेक्षा $\frac{८}{१४}$ तथा मेरुतलसे ऊपर सात राजू तथा नीचे दो राजू, इस प्रकार $\frac{९}{१४}$ भाग जानना चाहिए।

त्रसके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{६}{१४}$ वा केवली भग है। स्थावरके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ वा केवली-भंग है। दोनोके बन्धकों-का $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ अथवा सर्वलोक हैं। अबन्धकोंका केवली भग है। बादरके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ वा $\frac{१३}{१४}$ है। अबन्धकोके केवली-भग है। पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली भग है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोका लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है।[1] अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा केवली-भग है। बादर, सूक्ष्मके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भग है। यशःकीर्ति, उद्योत (?) के बन्धकों, अयशः-कीर्तिके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोके $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंके केवली-भंग है।

विशेष—यहॉ यशःकीर्तिके साथ उद्योतका पाठ अधिक है, कारण परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंके अनन्तर उद्योतका वर्णन किया जा चुका है।

उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भग है अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, $\frac{८}{१४}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका सर्वलोक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$ वा केवली-भंग है।

२०० पच मन, पच वचनयोगियोंमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहॉ केवली-भग नहीं है। वेदनीयके अबंधक नहीं है।

विशेषार्थ—पंच मनोयोगी, पंच वचनयोगियोंमे स्वस्थान पदोसे वर्तमानकालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्शन है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{८}{१४}$ भाग स्पष्ट हैं क्योंकि मनोयोगी और वचनयोगी और जीवोंका विहार आठ राजु बाहल्य युक्त लोक नालीमें पाया जाता है।

---

१ "पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।"—षट्खं० फो० सू० ६०, ६१।

२०१. ओरालियकाजोगीसु–पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। सेसाणं तिरिक्खोघो कादव्वो। णवरि अबंधा धुविगाणं भंगो आयु-संघडण-विहायगदिसरं मोत्तूण।

२०२. ओरालियमिस्स-वेगुव्वियमिस्सआहार० आहारमिस्स खेत्तभंगो। णवरि ओरालियमिस्स-मणुसायुबंधगा लोगस्स असं- खेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो।

२०३. वेगुव्विय-काजोगीसु–पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त० पत्तेय-णिमिण-पचंतराइगाणं बंधगा अट्ठ-

समुद्घातकी अपेक्षा वर्तमानकालकी प्रधानतामे लोकका असख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। आहारक और तैजस समुद्घात पदोकी अपेक्षा चार लोकोंका असख्यातवाँ भाग और मानुष क्षेत्रका सख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। वेदना, कपाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे कुछ कम $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि आठ राजु आयत लोक नालीमें सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा वेदना कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है। इन योगोमे उपपाद पद नही होता, क्योंकि उपपाद पदमे मन योग व वचन योगका अभाव है। (खुद्दा बध टीका पृ० ४११–४१२)।

काययोगीमें[1]—ओघके समान है। यहाँ वेदनीयके अबन्धक नही है।

२०१ औदारिक काययोगियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरण ४ तथा सज्वलन ४ रूप कपायाष्टक, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग है।[2] शेप प्रकृतियोका तिर्यंचोके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, आयु, सहनन, विहायोगति तथा स्वरको छोडकर अबन्धकोमे ध्रुव प्रकृतियोका भग जानना चाहिए।

२०२ [3]औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारकमिश्रमे क्षेत्रके समान लोकका असख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। विशेष, औदारिक मिश्र काययोगमे–मनुष्यायुके बन्धकोका लोकका असख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

२०३ [4]वैक्रियिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणादि १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त,

१ कायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद १ सव्व-लोगो –(खु०ब० पृ० १०६-१०७)। २ "ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ (सव्वलोगो)। पमत्तसज-दप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।-षट्खं० फो० सू० ८१–८७। ३ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी-सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मदिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"–सू० ९४। "आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"–सू० ६५। "ओरालिमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।"—सू० ८८। "सासणसम्माइट्ठि-असजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो।"-सू०८९। ४ "वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठतेरहचोद्दसभागा वा देसूणा।"सू०–९०।

तेरहभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। णवरि मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठबारहभागो। सादा-

---

प्रत्येक निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोका ६/१४, १३/१४ है। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—काययोगी और औदारिक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोसे सर्वलोकका स्पर्शन करते हैं वर्तमान तथा अतीत कालोंमे उन जीवोके सर्वत्र गमनागमन और अवस्थानमे कोई विरोध नहीं है। औदारिक मिश्रकाय योगमे विहारवत् स्वस्थान, वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात नही होते।

औदारिक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन करते है। यहाँ उपपाद पद नही होता।

वैक्रियिक काययोगी जीव स्वस्थान पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श करते है। समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे उक्त वैक्रियिक काययोगी जीवोने ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे कुछ कम १३/१४ भाग स्पर्श किये है, क्योकि मेरु मूलसे ऊपर सात और नीचे छह राजु आयामवाली लोक नालीको पूर्ण कर वैक्रियिक काययोगके साथ अतीत कालमे मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त जीव पाये जाते है। इस योगमे उपपाद नही है।

वैक्रियिक मिश्र काययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श करते है। इनके विहारवत् स्वस्थान नहीं होता। इस योगमे समुद्घात और उपपाद पद नही होते।

आहारक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोसे आहारक काययोगी जीवोंने चार लोकोंके असख्यातवे भाग और मानुष क्षेत्रके सख्यातवे भागका स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे चार लोकोंके असख्यातवे भाग और मानुष क्षेत्रसे असख्यात क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहाँ उपपाद पदका अभाव है।

आहारक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्श करते है। उनके विहावत् स्वस्थान पद नहीं होता है। समुद्घात और उपपाद पद भी नही होते है। (खुद्दाबध टीका पृष्ठ ४१३-४१९)।

विशेष—मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगियोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिकसमुद्घात पद परिणत जीवोंने ऊपर ६ राजू तथा मेरुतलसे नीचे २ राजू इस प्रकार ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर ७ तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार १३/१४ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी० फो० टी० २६६)।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४ है। विशेष, मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है।

विशेष—स्त्यानगृद्धित्रिकादिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा अविरत सम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक परिणत जीवोके ८/१४ स्पर्शन किया है। मिश्र गुणस्थानमे मारणान्तिक नहीं है। (ध० टी० फो० पृ० २६७)।

साद्स्स बंधगा अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा णत्थि। एवं हस्सादि-दोयुगलं, थिरादि-तिण्णियुगलं। इत्थि० पुरिसवेदाणं बंधगा अट्ठबारह-भागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। णवुंसग-वेदस्स बंधगा अट्ठ-तेरहभागो। अबंधगा अट्ठ-बारहभागो। तिण्णि वेदाणं अट्ठतेरहभागो। अबंधगा णत्थि। इत्थिभंगो पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० सुभग० आदेज्ज०। णवुंसगवेदभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे०। साधारणेण वेदभंगो। दोआयु० मणुसग० मणुसाणु० आदाव० तित्थियरं उच्चागोदं बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचा-गोदं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० भागो। अबंधगा णत्थि। एवं दोण्णं आउ० (णु०) (?) दोगोद०। एइंदि० बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पंचिंदियबंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो। अबंधगा णत्थि। एवं तस-थावर०। उज्जोव-बंधगा-अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दसभागो वा। पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह-

---

साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धक नहीं है। हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। नपुसकवेदके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। तीनो वेदोके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धक नही है। ५ सस्थान, औदारिक अगोपांग, ६ सहनन, सुभग, आदेयमे स्त्रीवेदका भग है। हुडक सस्थान, दुर्भग, अनादेयमे नपुसकवेदके समान भग है। सामान्यसे वेदके समान भग है। मनुष्य तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंका ८/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ भाग है।

विशेष—वैक्रियिक काययोगी अविरतसम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घात-द्वारा ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू, इस प्रकार ८/१४ स्पर्शन करता है। तीर्थंकर आदि प्रकृतियोके अबन्धक मिथ्यात्वी जीवने मेरुतलसे नीचे ६ राजू तथा ऊपर ७ राजू इस प्रकार १३/१४ भाग स्पर्श किया है।

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रके बन्धकोके ८/१४, १३/१४ भाग है। अबन्धकोंके ८/१४ भाग है। दोनों गतियोके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धक नहीं है। दोनों आनुपूर्वी तथा दोनो गोत्रोका इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए। एकेन्द्रियके बन्धकोके ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। पचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है। दोनोंके बन्धकोके ८/१४, १३/१४ भाग है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—वैक्रियिक काययोगियोंके विकलत्रयका बन्ध नहीं होनेसे दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिका वर्णन नहीं किया गया है।

त्रस, स्थावरोका इसी प्रकार जानना चाहिए। उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। प्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १३/१४ है। अप्रशस्तविहायो-

भागो। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं ओरालिय० अंगो० छसंघ० (?) दोसर०।

२०४. कम्मइगस्स–पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असं० असंखेज्जा वा भागा वा सव्वलोगो वा। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छचोद्दसभागो, केवलिभंगो। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्तस्स बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

गतिके बन्धकोंके ५/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ५/१४, १३/१४ है। दोनो बन्धकोके ५/१४, १२/१४ भाग है। अबन्धकोके ५/१४ भाग है। औदारिक अगोपाग (?), ६ सहनन (?), दोस्वरमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—औदारिक अगोपाग तथा ६ सहननका ५ सस्थान, सुभगादिके साथ वर्णन पूर्वमे हो चुका है। यहाँ पुनः उसका वर्णन किस दृष्टिसे किया गया, यह चिन्तनीय है।

२०४ कार्माण काययोगीमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजसकार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका असख्यातवाँ भाग, असख्यात बहुभाग वा सर्वलोक है।[1]

विशेष—कार्माण काययोगमे ज्ञानावरणादिके अबन्धक सयोगकेवलीके लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्श धवला टीकामे नही कहा है, किन्तु यहाँ ज्ञानावरणादिके अबन्धकोंके लोकका असख्यात भाग कहा है। प्रतर समुद्घातगत केवलीके कार्माण काययोगमे लोकके असख्यात बहुभाग स्पर्श कहा है। कारण लोक पर्यन्त स्थित वातवलयोंमे केवली भगवानके आत्मप्रदेश प्रतर समुद्घातमे प्रवेश नही करते थे। लोकपूरण समुद्घातमे सर्वलोक स्पर्श है। कारण चारो ओरसे व्याप्त वातवलयोमे भी केवलीके आत्म-प्रदेश प्रविष्ट हो जाते है। (ध० टी० फो० पृ० २७१)।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है।

विशेष—इस योगमे एक उपपाद पद होता है। यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अबन्धक असयतसम्यक्त्वी तिर्यंच मेरुतलसे ऊपर छह राजू[2] जा करके उत्पन्न होते है। मेरुतलसे नीचे ५ राजू प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, कारण नारकी असयतसम्यक्त्वी जीवोका तिर्यंचोमे उपपाद नहीं होता है। (पृ० २७१)।

साता-असाता वेदनीयके बन्धकों-अबन्धकोका सर्वलोक है। दोनोके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोका

१ "कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ (सव्वलोगो)। सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जा भागा सव्वलोगो वा।" पदर-गद-केवलीहि लोगस्स असखेज्जा भागा फोसिदा। लोग पेरतट्ठिदवाद वलएसु अपविट्ठजीवपदे सत्तादो। लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलयेसु विपविट्ठजीवपदे सत्तादो। —ध० टी० फो० पृ० २७१, सू० ९६, १०१। २ एत्थ वि उववादपदमेक्क चेव। —ध० टी० फो० पृ० २७१।

एक्कारहभागो, केवलिभंगो। इत्थि० पुरिस० णवुंस० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णं वेदाणं भंगो चदुणोक० पंच-जादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगल दोगोदं च। तिरिक्खगदि-मणुसगदिबंधगा अबं-धगा सव्वलोगो। देवगदिबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं गदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णि आणु०। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि० वा भागा वा सव्वलोगो वा। वेउव्वियबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० अंगोवंगस्स बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय० अंगो खेत्तभंगो। दो-अंगोवंगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दोविहा० दोसर०। तित्थय० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो।

२०५. इत्थिवेदे-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठतेरह०

११/१४ अथवा केवली-भग है।

विशेष—उपपाद पदमे वर्तमान मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीव मेरुके मूल भागसे नीचे पॉच राजू और ऊपर अच्युत कल्प तक छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते है इससे ११/१४ भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है। (ध० टी० फो० पृ० २७०)।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भग है। हास्यादि ४ नोकषाय, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि नवयुगल तथा २ गोत्रका वेदत्रयके समान भंग है। तिर्यंचगति मनुष्यगतिके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्श है। देवगतिके बन्धकोका क्षेत्रके समान अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग भग है। अबन्धकोका सर्वलोक है। तीन गतिके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भग है। तीन आनुपूर्वियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—कार्माण काययोगमे नरकगति तथा नरकगत्यानुपूर्वीका बन्ध न होनेसे यहॉ तीन ही गतियोंका उल्लेख किया है।[1]

औदारिक शरीरके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकके असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका क्षेत्र समान भंगहै अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों शरीरोके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भग है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांग-का क्षेत्रके समान भग है अर्थात् बन्धकोंका लोकका असंख्यातवॉ भाग, अबन्धकोका सर्वलोक है। दोनों अगोपांगोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरमें ऐसा ही है। तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवॉ भंग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

२०५. स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धकोंका

---

१ "कम्मे उरालमिस्सं वा।" —गो० क० गा० ११६। "ओराले वा मिस्से णहि सुरणिरयाउहा-रणिरयदुग।" — गो० क० गा० ११६।

सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह० सव्व-लोगो वा । अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । णिद्दापयला [पच्चक्खाणावरण४] भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा खेत्तभंगो । सादबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । असादबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० सव्वलोगो वा । दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा

८/१४, १३/१४ भाग वा सर्वलोक है । अबन्धक नही है ।[1]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात परिणत देवोमे आठ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतर प्रमाण क्षेत्रमे भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे ८/१४ स्पर्शन कहा है। मारणान्तिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सर्वलोकको स्पर्श करते है, कारण मारणान्तिक और उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदेशका अभाव है । ऊपर सात राजू तथा नीचे छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिसे १३/१४ भाग है । (२७२) स्त्रीवेदमें तैजस तथा आहारक समुद्घात नहीं होते ।[2]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोके ५/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है ।[3] अबन्धकों-के ५/१४ है ।

विशेष—स्त्यानगृद्धि ३ तथा अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी वा अविरत-सम्यक्त्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर छह और नीचे दो इस प्रकार ८/१४ स्पर्शन किया है । मिश्र गुणस्थानमे उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्घात नहीं होते है । स्त्रीवेदी जीवोंमे असयत सम्यक्त्वीका उपपाद नहीं होता है ।[4] (२७४)

निद्रा-प्रचला, प्रत्याख्यानावरण[4] भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है । अबन्धकोका क्षेत्रके समान है अर्थात् लोकके असख्यातवे भाग है[5] । साता वेदनीयके बन्धकोंका ५/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है । अब-न्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है । असाताके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है । अबन्धकों-का ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका ५/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है । अबन्धक नही है । मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है । अबन्धकोका ८/१४, ९/१४ है ।[6]

१ "वेदाणुवादेण इत्थिवेदपुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि-भागो । अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ।"–षट्खं० फो० सू० १०२, १०३ । २ इत्थिवेदे तदुभय (तेजाहारसमुग्घादा) णत्थि —खु० ब० टी० पृ० ४२१ । ३ "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ।" –सू० १०६ । ४. इत्थिवेदेसु असजदसम्मादिट्ठीण उववादो णत्थि—ध० टी० पृ० २७४ । ५ "सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठणचोद्दसभागा देसूणा ।" – षट्खं० फो० सू० १०४, १०५ । ६. "सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । छचोद्दसभागा देसूणा ।"–सू० १०८ ।

अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। हस्सरदि सादभंगो। अरदिसोगं असादभंगो। दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं थिराथिर-सुभासुभ०। णिरय-देवायु-तिण्णिजादि० (गदि) आहारदुगं तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठ-तेरह-भागो सव्वलोगो वा। दोआयु-मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-आदाउज्जोवं दोगोदं (?) बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोगदि-दोआणुपुव्वि-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु-

---

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्श किया है, कारण ८ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतरके भीतर देव स्त्री सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने नीचे दो और ऊपर ७ राजू अर्थात् ९/१४ भाग स्पर्श किये है। (२७२)

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक स्पर्श है, अबन्धकोंके ६/१४ है।

विशेष—अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक देशव्रती स्त्रीवेदीने मारणान्तिक-द्वारा ६/१४ भाग स्पर्श किये, कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंका उत्पाद नहीं होता है। (२७५)[1]

स्त्रीवेद-पुरुषवेदके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिमें साता वेदनीयके समान है अर्थात् ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अरति शोकमें असाता वेदनीयके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। हास्य-रति, अरति शोक इन दो युगलोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकके असंख्यातवें भाग है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमें इसी प्रकार है। नरकायु, देवायु, तीन जाति (?) (गति) आहारकद्विक और तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, यहाँ जातिके स्थानमें गतिका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। जातिका वर्णन आगे किया गया है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। मनुष्यायु, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत तथा दो गोत्र (?) के बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है।

विशेष—गोत्रका कथन आगे आया है। अतः यहाँ 'दोगोद' पाठ अधिक प्रतीत होता है।

नरकगति, देवगति, नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वीके बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४,

---

१ "पमत्तसजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्ज-दिभागो।" –सू० ११०।

पुव्विबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदियबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पंचिंदियं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। [अबंधगा] अट्ठबारहभागो। वेउव्वियं बंधगा बारह-भागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। पंचसंठाणं इत्थिभंगो। हुंडसंठाणं णवुंसगवेदं साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि अबंधगाणं खेत्तभंगो। ओरालिय-अंगोवंगबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो, अबं० अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। वेउव्वियसरीर-अंगोवंगबंधगा बारह-भागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। छसंघडणं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं साधारणेण वि। परघादुस्सासं बंधगा अट्ठ-बारहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उच्चागोदं (?) बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा।

$\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वीके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। चार गतियोके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका क्षेत्रके समान भंग है। चारो आनुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। एकेन्द्रियके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{६}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। पचेन्द्रियके बन्यकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। पाँचों जातियोके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग है। औदारिक शरीरके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। [अबन्धकोका] $\frac{६}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोका $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। ५ सस्थानोमे स्त्रीवेदके समान भग है। हुडक सस्थानका नपुसकवेदके समान भंग है। ६ सस्थानोका सामान्यसे वेदके समान भग है। विशेष, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपागके बन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। दोनों अगोपांगोके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। छह सहननके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकों-का $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोकहै। सामान्यसे भी छह सहननका इसी प्रकार जानना चाहिए। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ अथवा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकके असं-ख्यातवें भाग वा सर्वलोक है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{६}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ उच्चगोत्रका पाठ असंगत प्रतीत होता है, कारण इसका कथन आगे किया गया है।

पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अप्पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। एवं दोसराणं। तस-बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। थावर-बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। बादर-बंधगा अट्ठ-तेरहभागो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सुहुम-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं पज्जत्तापज्जत्तपत्तेय-साधारणं च। सुभग-आदेज्जाणं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो, [अबंधगा] अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। दूभग-अणादेज्जाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। जसगित्तिस्स बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहचोद्दस-भागो, सव्वलोगो वा। अजसगित्तिस्स बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। उच्चागोदं बंधगा अट्ठभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। णीचागोदं बंधगा

प्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। दो स्वरोंमे विहायोगतिके समान है। त्रस प्रकृतिके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। स्थावरके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। दोनोंके बन्धकोका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान है। बादरके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। सूक्ष्मके बन्धकोका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका क्षेत्रके समान स्पर्शन है। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

सुभग, आदेयके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$ है। [अबन्धकोका] $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। दुर्भग, अनादेयके बन्धकोका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है। यशःकीर्तिके बन्धकोका $\frac{५}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अयशःकीर्तिके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—दोनोंके अबन्धक उपशान्त कषायादिमे होते है अतएव स्त्रीवेदमे अबन्धकोंका अभाव बताया है।

उच्चगोत्रके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। नीच गोत्रके

अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठभागो। दोण्णं गोदाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२०६. एवं पुरिसवेदस्स। णवरि तित्थयर बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा।

२०७. णवुंसगवेद०–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधिचदुक्क बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। णिद्दा-पयला-पच्चक्खाणाव०४ भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एव जस-अजसगित्ति-दोगोदाणि (?) मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारहभागो। अपच्चक्खाणावरण-चउक्कं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$ है। दोनो गोत्रोके बन्धकोका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है।

२०६ पुरुषवेदमे इसी प्रकार है। विशेष, तीर्थकर प्रकृतिके बन्धकोका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।[1]

२०७ नपुसकवेदमे—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{६}{१४}$ है।

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत असयत सम्यक्त्वी नपुसकवेदीका अच्युत कल्पके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ भाग कहा है (पृ० २७८)।

निद्रा, प्रचला, प्रत्याख्यानावरण ४, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है। साता असाताके बन्धको अबन्धकोका सर्वलोक स्पर्शन है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नही है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दोनो गोत्रोंमे (?) इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—दो गोत्रोका वर्णन आगे आया है। इससे यहाँ उनके उल्लेखका पाठ अधिक प्रतीत होता है।

मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्ध टीकामे लिखा है,[2] नपुसकवेदी जीवोंने स्वस्थान समुद्घात और उपपाद पदोसे सर्वलोक स्पर्श किया है। इसका भाव यह है कि स्वस्थान, वेदना कषाय-मारणान्तिक समुद्घातो और उपपाद पदोसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा नपुसकवेदियों-ने सर्वलोक स्पर्श किया है। तैजस व आहारक समुद्घात नपुंसकवेदियोके नहीं होते। विहार-वत्स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात पदोसे वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। अतीतकालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है

१ "सम्मामिच्छादिट्ठि–असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।" — **षट्ख० फो० सू० १०६।** २ णवुसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो। — **खु० बं० सू० १३८, १३९।**

छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० णवुंसग-वेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। हस्सादि०४ बंधगा अबंधगा। [एवं] दोण्णं युगलाणं बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो। एवं पंचजादि-छसंठा० तसथावरादि-अट्ठयुगलं दो-आयु० आहारदुगं तित्थयरं खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायु-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० दोविहा० दोसर०। दोगदि० दोआणु० बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरस्स बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

कि वैक्रियिक पदसे तीन लोकोंके संख्यातवे भाग तथा मनुष्य लोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है क्योंकि विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीवोंके $\frac{५}{१४}$ भाग स्पर्शन पाया जाता है (खु० बं० टी० पृ० ४२२)।

अबन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ भाग है।[1]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने $\frac{१२}{१४}$ भाग स्पर्श किया, कारण नारकियोंके ५ राजू तथा तिर्यंचोंके ७ राजू इस प्रकार १२ राजू बाहुल्यवाला राजू प्रतर प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र है (२७७)।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है।[2]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत संयतासंयतोंने $\frac{६}{१४}$ स्पर्श किया है कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है (२७८)।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों और अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्यादि चारके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों, अबन्धकोंका इसी प्रकार है। दोनों युगलोंके बन्धकों अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। इसी प्रकार पाँच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ८ युगल तथा २ आयुमें जानना चाहिए। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका क्षेत्रवत् भंग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, इसी प्रकार है। दो गति, दो आनुपूर्वीके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दो गति, २ आनुपूर्वीके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। चार गति, चार आनुपूर्वीके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{१२}{१४}$ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अब-

१ "सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।" — षट्खं० फो० सू० ११२, ११३। २ "णउसयवेदेसु असजदसम्मादिट्ठि सजदासजदेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागा, छचोद्दसभागा देसूणा।" — सू० ११५।

खेत्तभंगो। ओरालिय-अंगोवंगं बंधगा, अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगोवंगं, बंधगा बारहभागो, अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। परघादुस्सासं आदावुज्जोवं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं णीचुच्चागोदाणं। अवगदवेदे खेत्तभंगो। एवं अकसाइ० केवलिणा० संज० सामाइ० छेदो० परिहा० सुहुमं प० (सुहुमसंप०) यथाक्खाद० केवलदंसण त्ति। कोधादि०४ ओघभंगो। णवरि धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। यं हि अबंधगा अत्थि तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

न्धकोंका क्षेत्रके समान है। औदारिक अंगोपांगके बन्धको और अबन्धकोका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपागके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोका सर्वलोक है। दोनोके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक है। इसी प्रकार नीच गोत्र, उच्च गोत्रका है।

अपगतवेदमे क्षेत्रके समान भग है।[1]

विशेषार्थ—अपगतवेदी जीवोने स्वस्थान पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। दण्ड, कपाट वा मारणान्तिक समुद्घातोको प्राप्त अपगत वेदियो-द्वारा चार लोकोका असख्यातवॉ भाग, अढाई द्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा स्पृष्ट है। विशेष, कपाट समुद्घातगत अपगतवेदियो-द्वारा तिर्यग्लोकका सख्यातवॉ भाग अथवा सख्यातगुणा (**तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो संखेज्जगुणो वा फोसिदो**) क्षेत्र स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घात अपगत वेदियोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट ह। इनमे उपपाद पदका अभाव है। (खु० ब० टीका पृ० ४२३-४२५)।

अकषाय, केवलज्ञान, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, केवलदर्शनमे इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर संयत जीव अकषायी जीवोके तुल्य नहीं है। क्योंकि अकषायी जीवोमे अविद्यमान वैक्रियिक-तैजस और आहारक समुद्घात पद सयतोंमे पाये जाते है।

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर सामायिक छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत जीव मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य होते है क्योकि मनःपर्ययज्ञानियोमे तैजस तथा आहारक समुद्घातपदोंका अभाव है, किन्तु सूक्ष्मसाम्परायी मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य नही होते। सूक्ष्म साम्पराय संयमियोंमे वैक्रियिक पदका अभाव है। (खु० ब० टीका पृ० ४३१-४३२)।

क्रोधादि ४ कषायमे-ओघके समान भंग है। विशेष, ध्रुव प्रकृतियो के बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। जहाँ अबन्धक है वहाँ लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्शन है।

---

१ "अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति ओघ। सजोगिकेवली ओघ।"—षट्खं० फो० सू० ११८, ११९। अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादगदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। असखेज्जा वा भागा। सव्वलोगो वा। उववाद णत्थि। अकसाई अवगदवेदभगो। केवलणाणी अवगदवेदभगो। सजमाणुवादेण सजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा अकसाइभगो। सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसजद-सुहुमसापराइयसजदाण मणपज्जवणाणिभगो। केवलदसणी केवलणाणिभगो –खु० ब० सू०।

२०८. मदि० सुद०—धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दोयुगलं पंचजादि-छसंठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च। मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। दो-आयुबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो तिरिक्खायुबंधगा अबं० सव्वलोगो। मणुसायु-बंधगा अट्ठबारह० सव्वलोगो। अबंधगा सव्वलोगो। चदुआयुबंध० अबं० सव्वलोगो। एवं छसंघ० दोविहा० दोसर०। णिरयगदि-णिरयाणु० बंधगा छच्चोद्स०। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंध० अबं० सव्वलोगो। देवगदि-देवगदिपाओ० बंधगा पंच-चोद्स०। अबं०सव्वलोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्वियाणु० (?) (वेउव्विय) बंधगा एक्कारहभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय०

२०८ मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानीमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। साता, असाताके[1] बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नही है। तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा २ गोत्रोमे इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है।

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पदोमे $\frac{५}{१४}$ भाग है। मारणान्तिककी अपेक्षा $\frac{१२}{१४}$ भाग है। (पृ० २८२)।

देव नरकायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोंका $\frac{५}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चार आयुके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरमे इसी प्रकार है। नरकगति, नरकानुपूर्वीके बन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यगति तिर्यंचगति, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वीके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धकी टीकामें लिखा है—स्वस्थान-स्वस्थान वेदना कषाय मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदोसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा मति श्रुत अज्ञानी जीवोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है क्योंकि ऐसा स्वभावसे है। विहारवत् स्वस्थानपदसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा यथाक्रमसे $\frac{८}{१४}$ भाग व तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिक पदकी अपेक्षा वर्तमानकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। अतीतकालकी अपेक्षा $\frac{८}{१४}$ भाग स्पृष्ट है (पृ० ४२६)।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वीके बन्धकोंका $\frac{५}{१४}$, अबन्धकोंके सर्वलोक है। ४ गति, ४ आनुपूर्वीके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं।

---

१ मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो —खु० बं० सू० १४६–१५०।

अंगोवंगं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेगुव्विय० अंगोवंगं बंधगा [अबंधगा] वेगुव्विय० भंगो। दोण्णं बंधगा अबं० सव्वलोगो।

२०६. एवं अब्भवसिद्धि० मिच्छादिट्ठिम्हि [वि] भंगे धुविगाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। सादासाद० बंधगा अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणो०४ (?) थिराथिर-सुभासुभाणं। मिच्छत्त-बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठबारह-चोद्दस०। अबं० अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा अट्ठबारह०। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थिवेदभंगो पंचिंदिय-जादि पंचसंठा० छसंघ० तससुभग० आदेज्ज०। णवुंसगभंगो एइंदिय-हुंडसंठा० थावरदूभग-अणादेज्जाणं। णवरि एइंदिय-थावर-बंधगा अट्ठणव० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पत्तेगेण साधारणेण वेदभंगो। दोआयु० तिण्णिजादि-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोआयु० मणुसगदि० मणुसाणु० आदाव० उच्चा-

---

औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{11}{14}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोका $\frac{11}{14}$ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—उपपादकी अपेक्षा नीचेके ५ राजू तथा ऊपरके छह राजू इस प्रकार $\frac{11}{14}$ भाग स्पर्शन है। (२८२)।

दोनों शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। औदारिक अगोपांगके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकों [अबन्धकों] का वैक्रियिक शरीरके समान है अर्थात् बन्धको का $\frac{11}{14}$, अबन्धको का सर्वलोक भग है। दोनो के बन्धकों अबन्धकोंका सर्वलोक है।

२०६ अभव्यसिद्धिकोंमें और मिथ्यादृष्टियोंमें इसी प्रकार है।

विभंगज्ञानमें-ध्रुव प्रकृतियो के बन्धको का $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—मेरतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार $\frac{5}{14}$ है तथा मेरुतलसे ऊपर ७ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{13}{14}$ भाग है।

साता-असाताके बन्धकों अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक ये ४ नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमे इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। स्त्रीवेद पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। नपुसकवेदके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, त्रस, सुभग, आदेयमे स्त्रीवेदका भंग है। एकेन्द्रिय हुडक सस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमे नपुसकवेदका भंग है। विशेष, एकेन्द्रिय, स्थावरके बन्धकोंके $\frac{5}{14}$, $\frac{6}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{5}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदके समान भग है। दो आयु, तीन जातिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है। अबन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

गोदं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदिबंधगा छचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि० णीच० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठेक्कारस०। णवरि णीचा० अट्ठभागो। देवगदि-बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चेव आणुपुव्वि-णीचुच्चागो०। ओरालिय-सरीरं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्विय-बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरहभागो [सव्वलोगो वा]। दोण्णं वे० (बं०) अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। वेउव्विय० अंगो० बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचो० सव्वलोगो वा। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोव-बंधगा अट्ठतेरहभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं जसगित्ति०। पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबं० अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। एवं दोसर० बादरबंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं सुहुमं। दोण्णं बंध०

दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगतिके बन्धकोके ६/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। तिर्यंच गति, नीच गोत्रके बन्धकोके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है। विशेष, नीच गोत्रका ८/१४ है। देवगतिके बन्धकोके ५/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। चारो गतियोके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। इसो प्रकार आनु-पूर्वियो तथा नीच, उच्च गोत्रोंमे जानना चाहिए।

औदारिक शरीरके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोका ११/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका ११/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकोका ११/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनो अगोपांगोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। उद्योतके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। यशःकीर्तिमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त-विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना चाहिए। बादरके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोंके लोकका असख्यातवाँ भाग वा

अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० णत्थि। पज्जत्त० पत्तेग० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं अपज्ज० साधारण०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। अजस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबं० अट्ठतेरह०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२१०. आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभगादि-तिण्णि णिमिण-उच्चागोदं पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचो०। अबं० खेत्तभंगो।

सर्वलोक है। सूक्ष्मके विषयमे विपरीत क्रम है अर्थात् बन्धकोके लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोका ८/१४, वा १३/१४ है। दोनोके बन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। पर्याप्त प्रत्येकके बन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंमे लोकका असख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त तथा साधारणमे इसके विपरीत क्रम है अर्थात् बन्धकोके लोकका असंख्यातवॉ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोके बन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलाक है। अबन्धक नही है। अयश कीर्तिके बन्धकोंका ९/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ९/१४, १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे विभगज्ञानीके सम्बन्धमे इस प्रकार लिखा है — विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। स्वस्थान पदोंसे विभंगज्ञानी जीवोंने तीन लोकोका असंख्यातवॉ भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवॉ भाग और अढाई द्वीपसे असख्यातवॉ गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। समुद्घातकी अपेक्षा विभगज्ञानी जीवोंने लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। विहार करनेवाले विभगज्ञानियोंने वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पदका आश्रय कर सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि विभगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अतीत कालमे सर्वलोक स्पर्श पाया जाता है। देव तथा नारकियोके मारणान्तिक समुद्घातका आश्रय कर १३/१४ भाग होते है। इनके उपपाद पदका अभाव है।[1]

२१० आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि ३, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंके ८/१४, अबन्धकोंमे क्षेत्रके समान भग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग है।

विशेष—अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातगत सम्यक्त्वी जीवोंने ८/१४ भाग स्पर्शन किया, जो कि मेरुके मूलसे ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू प्रमाण है। (१६७)[2]

१ विभगणाणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सव्वलोगो वा। उववाद णत्थि। — खुद्दाबंध सू० १५१–१५८। २ सजदासजदेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –षट्खं० फो० सू० ७।

सादासाद-बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० णत्थि । अप्पच्चक्खाणा०४ वज्जरिसह० बंधगा अट्ठचो० । अबं० छचोद्दस० । हस्सरदि-अरदि-सोगाणं बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठचो० । अबं० खेत्तभंगो । एवं थिराथिर-सुभासुभ-जसअजसगित्तीणं । मणुसायुतित्थयरं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । देवायु० आहारदुग० बंधगा खेत्तभंगो । अबं० अट्ठचो० । दोण्णं आयुगाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । मणुसगदि०४ बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० छचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस० । अबं० अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बं० अट्ठचोद्दसभागो । अबंधगा खेत्तभंगो । एवं दोसरी० दोअंगो० आणु० । एवं ओधिदं० ।

साता-असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धक नहीं है। अप्रत्याख्यानावरण ४ वज्रवृषभसंहननके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंका ६/१४ है।[1]

विशेष—मारणान्तिकसमुद्घातगतसंयतासंयतोंने अच्युतकल्प पर्यन्त ६/१४ भाग स्पर्श किया है।

हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमें भी जानना चाहिए। मनुष्यायु तथा तीर्थंकरके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४ है।[2] देवायु तथा आहारकद्विकके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकके असंख्यातवें भाग है। अबन्धकोंके ८/१४ है।

दो आयुके बन्धकों अबन्धकोंका ८/१४ है। मनुष्यगति ४ के बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ६/१४ है। देवगति ४ के बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४ है।

विशेष—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगके अबन्धक देशव्रतीकी अपेक्षा ६/१४ कहा है।

मनुष्यगति, देवगतिके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है। दो शरीर, दो अंगोपांग तथा दो आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

अवधिदर्शनमें – ऐसा ही जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी तथा अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। उक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंने स्वस्थान पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग तथा अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। तैजस और आहारक समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्रके समान निरूपण है। विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है।

---

१ पमत्तसजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –षट्खं० फो० सू० ९। २ असजदसम्माइट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा –सू० ५–६।

मणपज्ज० संजद० सामा० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० खेत्तभंगो।

२११. संजदासंजद–धुविगाणं बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधा अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णियुगल०। देवायु-तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबं० छच्चोद्दसभागो। असंजदेसु–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबं०४ बंधगा सव्वलो०। अबंधगा अट्ठचोद्दस०। मिच्छत्त-

उपपाद पदसे लोकका असख्यातवॉ भाग तथा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ६/१४ भाग स्पर्श किया है। आरण, अच्युत आदिक देवोमे उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच असयत सम्यग्दृष्टि और सयतासयत जीवोका उपपाद क्षेत्र देशोन ६/१४ भाग है।

शंका—नीचे दो राजु मात्र मार्ग जाकर स्थित अवस्थामे आयुके क्षीण होनेपर मनुष्यमे उत्पन्न होनेवाले देवोका उपपाद क्षेत्र क्यो नही ग्रहण किया ?

समाधान—नही, क्योंकि प्रथम दण्डसे कम उसका ६/१४ भागामे ही अन्तर्भाव हो जाता है तथा मूल शरीरमे जीव प्रदेशोके प्रवेश बिना उस अवस्थामे उनके मरणका अभाव भी है। (खु० ब० टी० पृ० ४२८-४३०)[1]

[2]मनःपर्ययज्ञानी, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्परायमे–[3]क्षेत्रके समान लोकका असख्यातवॉ भाग है।

विशेष—सयम, सामायिक छेदोपस्थापना तथा सूक्ष्मसाम्परायका वर्णन पहले अपगतवेदके साथ आ चुका है। यहॉ पुनः उनका कथन चिन्तनीय है।

२११ सयतासयतोंमे – ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोका ६/१४ है। अबन्धक नही है। साता-असाताके बन्धको अबन्धकोका ६/१४ है। दोनो प्रकृतियोके बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धक नही है। हास्य-रति, अरति शोक तथा स्थिरादि तीन युगलोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। देवायु तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोका क्षेत्रके समान है। अबन्धकोका ६/१४ है।

विशेषार्थ—सयतासंयत जीवोने स्वस्थान पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। धवला टीकामे लिखा है कि वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। अतीत कालमे तीन लोकोके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग, और अढाई द्वीपसे असख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है।

शका—विहारवत् स्वस्थान पदकी अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शनका प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि वैरी देवोके सम्बन्धसे अतीत कालमे सर्वद्वीप समुद्रोमें सयतासंयत जीवोंकी सम्भावना है, किन्तु स्वस्थान पदकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन नही बनता। कारण स्वस्थानमे स्थित सयतासयत जीवोका सर्वद्वीप समुद्रोमे अभाव है।

समाधान—यह कोई दोप नही है, क्योंकि यद्यपि सर्वत्र सयतासयत जीव नहीं है, तथापि तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमे स्वस्थान स्थित

---

१ आभिणिबोहिय – सुद ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा देसूणा। –खु० ब० सूत्र १५६–१६४। २ मणपज्जवणाणी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। उववाद णत्थि।—खु० ब० १६५–१६६। ३ पमत्तसजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –षट्खं० फो० सू० ९।

बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। वेउव्विय-छक्कं आयुचदुक्कं तित्थयरं च ओघं। सेसं मदि-अण्णाणिभंगो। चक्खुदं० तस-पज्जत्त-भंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अचक्खुदं० ओघं। णवरि केवलिभंगो णत्थि।

सयतासयत पाये जाते है।

समुद्घातोंकी अपेक्षा सयतासयतोंने लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन $\frac{6}{14}$ भाग स्पर्श किया है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोसे तीन लोकोके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग और अढाई द्वीपसे असख्यात गुणे क्षेत्रको स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन $\frac{6}{14}$ भागोका स्पर्श किया है, क्योकि तिर्यंचोंमे-से अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले सयतासयत जीवोंके उपर्युक्त स्पर्शन पाया जाता है। संयतासंयत गुणस्थानके साथ उपपादका विरोध होनेसे यहा उपपाद पद नही होता।[1]

असयतोमे—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धि त्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{6}{14}$ है। मिथ्यात्वके बन्धकोका सर्वलोक है। अबन्धकोका $\frac{6}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। वैक्रियिकषट्क, आयु ४ तथा तीर्थंकरका ओघवत् भग है। शेष प्रकृतियोका मत्यज्ञानके समान भग है। चक्षुदर्शनमे – त्रस पर्याप्तके समान भग है। विशेष, केवली भग नही है। अचक्षुदर्शनमे ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, केवली-भग नही है।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनी जीवोने स्वस्थान पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। इन जीवोंने स्वस्थानसे तीन लोकोके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवो-द्वारा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है। क्योकि आठ राजु बाहुल्यसे युक्त राजुप्रतरके भीतर चक्षुदर्शनी जीवोंके विहारका कोई विरोध नही है।

चक्षुर्दर्शनी जीवो-द्वारा समुद्घात पदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है क्योकि विहार करनेवाले देवोमे उत्पन्न वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे स्पर्श किया जानेवाला $\frac{8}{14}$ भाग प्रमाण क्षेत्र देखा जाता है। मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण है, देव व नारकियों-द्वारा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{13}{14}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर इनके उत्पादका अभाव होनेसे मारणान्तिक समुद्घातके द्वारा गमन नहीं होता। तिर्यंच व मनुष्यों-के द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर और भीतर मारणान्तिक समुद्घातसे उनका गमन पाया जाता है।

इन चक्षुदर्शनी जीवोंमे उपपाद कथचित् पाया जाता है, कथचित् नहीं भी पाया जाता है (**उववाद सिया अत्थि, सिया णत्थि**) चक्षु-इन्द्रियावरणके क्षयोपशम रूप लब्धिकी अपेक्षा उपपाद है, वह अपर्याप्त कालमे भी पाया जाता है। गोलकरूप चक्षुकी निर्वृत्तिका

---

१. सजदासजदा सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। उववाद णत्थि। –खु० ब० सू० १७१–१७६।

२१२ किण्ह-णील-काउ – धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि३ अणंताणु०४ बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो । मिच्छत्तबंधगा सव्वलोगो । अबंधगा पंच-चत्तारि-बे-चोद्दसभागो वा । दो आयु-देवगदि-देवाणु० तित्थयर-बंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा सव्वलोगो ।

नाम निवृत्ति है। वह अपर्याप्त कालमे नही है। इसलिए – "**लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि।**" (**सू० १८६ खु० बं०**)। लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पदसे लोकका असख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। यह वर्तमान कालकी अपेक्षासे है। अतीत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

चक्षुदर्शनी तिर्यंच और मनुष्योमे से चक्षुदर्शनियोमे उत्पन्न हुए देव व नारकियों-द्वारा १२/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योकि लोकनालीके बाहर चक्षुदर्शनी जीवोका अभाव है, तथा आनतादि उपरिम देवोका तिर्यंचोमे उत्पाद भी नही है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। एकेन्द्रिय जीवोंमे-से चक्षु-इन्द्रिय सहित जीवोंमे उत्पन्न हुए जीवो-द्वारा प्रथम समयमे सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि वे अनन्त है तथा सर्व प्रदेशोसे उनके आगमनकी सम्भावना भी है। (**खु० ब० पृ० ४३४-४३७**)।[1]

अचक्षुदर्शनीमे असयतके समान भंग है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर अचक्षुदर्शनी जीवोकी प्ररूपणा असयत जीवोके तुल्य नही है, क्योकि अचक्षुदर्शनियोमे तैजस तथा आहारक समुद्घात पद पाये जाते है।

विशेषार्थ—कृष्णादि लेश्यात्रयमे असयतोके समान भग है। असयतोमे नपुंसक वेदके समान भग है। नपुंसक वेदमे स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपादसे सर्वलोग स्पृष्ट है।[2]

२१२ कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे – ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोके सर्वलोक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों अबन्धकोका क्षेत्रके समान भंग है। मिथ्यात्वके वन्धकोका सर्वलोक हे। अबन्धकोंका ५/१४, ४/१४, २/१४ है।[3]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद-पद परिणत छठे नरकके नारकी सासादन गुणस्थानीने कृष्णलेश्यायुक्त हो ५/१४, नील लेश्यावाले ५वी पृथ्वीवालोने ४/१४ तथा कापोत लेश्यावाले तीसरी पृथ्वीके नारकी सासादनसम्यक्त्वी जीवोने २/१४ भाग स्पर्श किया है (पृ० २६१)।

देवायु, नरकायु, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थकरके बन्धकोका क्षेत्रके समान लोक-

१ दसणाणुवादेण चक्खुदसणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा । समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा । सव्वलोगो वा उववाद सिया अत्थि सिया णत्थि । लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि । जदि लद्धि पडुच्च अत्थि, केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । सव्वलोगो वा । –खु० बं० सू० १७८–१८६ । अचक्खुदसणी असजदभगो । सू० १६० । असजदाण णवुसयभगो १७७ । णवुसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो –सू० १३८, १३९ ।
२ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाण असजदभगो –सू० १६३ खु० ब० ।
३ सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठबारहचोद्दसभागा वा देसूणा । सू० ३–४ । सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । पचचत्तारिबेचोद्दस-भागा वा देसूणा । सू० – १४७, १४८ ।

तिरिक्ख-मणुसायु० णवुंसगभंगो। चदुआयु-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। णिरयगदिदुगं वेगुव्वियदुगं बंधगा छच्चोद्दस-चत्तारिबे०। अबंधगा सव्वलोगो। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छचत्तारि-बेचोद्दस०। दोण्णं सरीराणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं असंजदभंगो। तेउलेस्साए–पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। सादासाद-बंधगा अट्ठणवचो०। दोण्णं बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा

का असख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यचायु, मनुष्यायुका नपुसकवेदके समान भग है। चारो आयुके बन्धको अबन्धकोंका सर्वलोक जानना चाहिए।

नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकोके $\frac{६}{१४}$, $\frac{४}{१४}$, $\frac{२}{१४}$ है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

विशेष—इन प्रकृतियोके बन्धक मनुष्य तथा तिर्यंच ही होगे। देव तथा नारकी इन प्रकृतियोका बन्ध नही करते है। सातवे नरकमे मारणान्तिककी अपेक्षा कृष्ण लेश्यामे $\frac{६}{१४}$ है। नील लेश्यामे ५वीं पृथ्वीकी अपेक्षा उपपाद या मारणान्तिकके द्वारा $\frac{४}{१४}$ है। कापोत लेश्यामे तीसरी पृथ्वीकी अपेक्षा $\frac{२}{१४}$ है।

औदारिक शरीरके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{६}{१४}$, $\frac{४}{१४}$, $\frac{२}{१४}$ है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंके सर्वलोक है, अबन्धक नही है। शेष प्रकृतियोका असयतोके समान भग है।

विशेष—औदारिक शरीरके अबन्धक नारकियोंमे मारणान्तिककी अपेक्षा सातवीं, पॉचवी तथा तीसरी पृथ्वीकी दृष्टिसे $\frac{६}{१४}$, $\frac{४}{१४}$, $\frac{२}{१४}$ भाग कहा है।

तेजोलेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धक नहीं है।[1]

विशेषार्थ—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पद परिणत मिथ्यात्वी जीवोने $\frac{८}{१४}$ भाग, मारणान्तिक समुद्घात परिणत जीवोने $\frac{९}{१४}$ भाग स्पर्श किया है। (२६५)

खुद्दाबन्ध टीकामे लिखा है, तेजो लेश्यावाले जीवों-द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{८}{१४}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विहार करते हुए तेजोलेश्यावाले देवोके इतना स्पर्शन पाया जाता है।

समुद्घातकी अपेक्षा इस लेश्यावाले जीवोके द्वारा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंसे परिणत तेजोलेश्यावाले जीवों-द्वारा $\frac{८}{१४}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विहार करते हुए देवोके ये तीनों पद सर्वत्र पाये जाते है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{९}{१४}$ भाग स्पृष्ट हैं क्योंकि मेरु मूलसे दो राजुओंके साथ ऊपर सात राजु स्पर्शन पाया जाता है।

---

१ "तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि-भागो। अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं० फो० सू० १५१–१५२।

णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णि-युगलं। मिच्छत्त-उज्जोव-बंधगा अट्ठणवचोद्दस०। अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो। पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा खेत्तभंगो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दस०।

उपपादकी अपेक्षा वर्तमान कालकी दृष्टिसे लोकका असंख्यात भाग स्पर्शन है। अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम डेढ बटे चौदह १½/१४ भाग स्पृष्ट है क्योंकि मेरु मूलसे डेढ राजु मात्र ऊपर चढकर प्रभा पटलका अवस्थान है।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके प्रथम इन्द्रक विमानमे स्थित तेजोलेश्यावाले देवोमें उत्पन्न करानेपर १½ राजूसे अधिक क्षेत्र क्यो नहीं पाया जाता ?

समाधान—नही, क्योंकि सौधर्म कल्पसे थोडा ही ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्पका प्रथम पटल अवस्थित है। ऐसा न माननेपर उपर्युक्त १½ राजू क्षेत्रमे जो कुछ न्यूनता बतलायी है, वह बन नही सकती।[1] (**खु० ब० टीका पृ० ४३८–४४०**)

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४ है।[2]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने पीत लेश्यामे ८/१४ स्पर्शन किया है। विशेष, मिश्र गुणस्थानमे मारणान्तिक नहीं होता है। उपपादपरिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोके १½/१४ भाग होता है।[3] (२६६)

साता, असाताके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। अबन्धक नहीं है। हास्यरति, अरतिशोक, स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए। मिथ्यात्व तथा उद्योतके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंके १½/१४ है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोके ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंके १½/१४ है।

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पदसे परिणत मिथ्यात्वी तथा सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंने ८/१४, मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने ९/१४ तथा उपपाद परिणत उन जीवोंने १½/१४ स्पर्श किया है। मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमे भी ८/१४, ९/१४ भाग है। विशेष, मिश्रमे मारणान्तिक नहीं होता है। उपपाद परिणत अविरत सम्यक्त्वो जीवोंने १½/१४ स्पर्श किया है।

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका

---

१ तेजोलेस्सियाण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा। वा देसूणा। समुग्घादगदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। दिवड्ढ-चोद्दसभागा वा देसूणा —खु० बं० सू० १९४–२०२। २ सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। —षट्खं० फो० सू० १५२–१५३। ३ सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा। —सू० १५४–१५५।

अबंधगा अट्ठणवचो० । णवुंस० बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा अट्ठचोद्दस० । तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा णत्थि । इत्थिभंगो दोआयु-मणुसगदिदुगं पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छसंघ० आदा० दोविहा० तस-सुभग-आदे० तित्थयरं उच्चागोदं च । णवुंसगभंगो तिरिक्खगदिदुगं एइंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादे० णीचागोदं च । देवायु-आहारदुगं बंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा दिवड्ढ-चोद्दसभागो । अबंधगा अट्ठणवचो० । ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । एवं पत्ते० साधारणेण वि । सव्वपगदीणं बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो । अबंधगा णत्थि । आयु० अंगोवंग-संघडण-विहाय० [एवं] । पम्माए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंजल० भयदु० पंचिदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा अट्ठ० । अबंधगा णत्थि ।

असख्यातवॉ भाग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोका $\frac{८}{१४}$, अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ हे । नपुंसक-वेदके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ हैं । अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$ है । तीनो वेदोंके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है। अबन्धक नहीं है । मनुष्य–तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पचेन्द्रिय, पच सस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान जानना चाहिए । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, हुण्डकसस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका नपुसकवेदके समान भग है। देवायु, आहारकद्विकके बन्धकोके क्षेत्रके समान लोकका असख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोका $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है । देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागके बन्धकोके $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$, अबन्धकोके $\frac{८}{१४}$ $\frac{९}{१४}$ है । औदारिक शरीरके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है, अबन्धकोके $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ है। प्रत्येक तथा सामान्यसे भी इसी प्रकार है । शेष सर्व प्रकृतियोके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ है । अबन्धक नही है । आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगतिमे (इसी प्रकार जानना चाहिए) ।

पद्मलेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोके $\frac{८}{१४}$ है । अबन्धक नहीं है ।

विशेष—पद्मलेश्यावाले मिथ्यात्वसे अविरत सम्यक्त्वी पर्यन्त जीवोंने विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिककी अपेक्षा ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू, $\frac{८}{१४}$ भाग स्पर्श किया है । उपपाद परिणत उक्त जीवोंने $\frac{५}{१४}$ स्पर्श किया है । विशेष, मिश्र गुणस्थानमें उपपाद मारणान्तिकपनेका अभाव है । (पृ० १९८) ।[1]

खुद्दाबन्ध टीकामें लिखा है, पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है । अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{८}{१४}$ भाग स्पर्श किये है । स्वस्थान पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे परिणत इन जीवों-द्वारा कुछ कम $\frac{८}{१४}$

१ "पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागो वा देसूणा ।" –षट्खं० फो० सू० १५४–१५५ ।

थीणगिद्धितियं मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं दोआयु० उज्जोवं तित्थयरं च। सादासादाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं बंधगा (?) वेदणीयभंगो। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण। णवरि देवायु-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं आयु० बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० बंधगा (?) छसंघ० साधारणेण अबंधगा पंचचोद्दस०। पच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा खेत्तभंगो। आहारदुगं देवायुभंगो। सुक्काए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा०

भाग स्पृष्ट है, क्योकि पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमे मारणान्तिक समुद्घातका अभाव है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ५/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि मेरु मूलसे पाँच राजु मात्र मार्ग जाकर सहस्रार कल्पका अवस्थान है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों अबन्धकोका ६/१४ है। मनुष्य तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरका इसी प्रकार है। साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोंका ६/१४ है। दोनोके बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे इसी प्रकार वेदनीयका भग है। विशेष, देवायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंका ६/१४ है। तीन आयु (नरकायु बिना) के बन्धकों अबन्धकोंका ६/१४ है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांगके बन्धकोंका ५/१४ है। अबन्धकोंका ६/१४ है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, ६ सहननके बन्धकों अबन्धकोका सामान्यसे ५/१४ हैं।

विशेष—देशसयमी पद्मलेश्यावाले जीवोके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा शतार सहस्रार कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे ५/१४ कहा है।[2]

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवॉ भाग भग है।

विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक प्रमत्तसंयतोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग कहा है।[3]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोंके ६/१४ है।

शुक्ल लेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-

---

१. पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचोद्दसभागा वा देसूणा। खु० ब० सू० २०३-२०८। २ "सजदासजदेहि केवडियं खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचोद्दसभागा वा देसूणा।" -षट्खं० फो० सू० १५९-१६०। ३. 'प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासख्येयभाग।" -स० सि० १।८।

भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुसायु-तित्थयरं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो, केवलिभंगो। साद-बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। असाद-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो०। एवं णेदव्वं। भवसिद्धि ओघं।

जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ६/१४ है।[1] अबन्धकोंके केवली-भग है।[2]

विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असयत सम्यक्त्वी शुक्ललेश्यावालोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोने ६/१४ स्पर्श किया है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पद परिणत सयतासयतोंने लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत शुक्ल-लेश्यावालोने ६/१४ भाग स्पर्श किया है। कारण तिर्यंच संयतासंयतोंका शुक्ललेश्याके साथ अच्युत कल्पमे उपपाद पाया जाता है। मिश्रगुणस्थानमे उपपाद तथा मारणान्तिक पद नहीं होते है। (पृ० ३००)

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषाय, मनुष्यायु, तीर्थंकरके बन्धकोके ६/१४ भाग है। अबन्धकोके ६/१४ वा केवली-भंग है। साताके बन्धकोंके ६/१४ भाग तथा केवली-भग है। अबन्धकोंके ६/१४ है। असाताके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। अबन्धक नहीं है। देवगति ४ के बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ तथा केवली-भग है। शेष प्रकृतियोंका इसी प्रकार निकालना चाहिए।

भव्यसिद्धिकोंमे[3] ओघवत् भग है।

विशेषार्थ—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है। स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालमें भव्यसिद्धिक एव अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा वर्तमानकालमे क्षेत्रके समान प्ररूपणा है। अतीत कालमे ८/१४ भाग स्पृष्ट है। वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असख्यातवॉ भाग और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। भव्यसिद्धिक जीवोंमें शेष पदोकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है। (खु० बं० टी० पृ० ४४५)।

---

१ "सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा।" –सू० १६२–१६३। २ सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा असखेज्जा वा भागा। सव्वलोगो वा। –खु० बं० सू० २०९–२१६। ३ "भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति ओघं।" –षट्खं० फो० सू० १६५। भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिद ? सव्वलोगो –खु० बं० सू० २१७-२१८।

२१३ सम्मादिट्ठि ओधिभंगो। णवरि केवलिभंगो कादव्वो। खइग-सम्मादिट्ठि० पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा केवलिभंगो। एवं सेसाणं पगदीणं सम्मादिट्ठि-भंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं अबंधगा, देवगदि०४ बंधगा खेत्तभंगो।

२१३ सम्यक्त्वियोमे[1] अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ केवली-भग करना चाहिए।

विशेष—सम्यक्त्वमार्गणामे चतुर्थसे लेकर चौदहवे गुणस्थानका सद्भाव है। इस कारण यहाँ केवली-भग भी कहा है।

क्षायिक सम्यक्त्वीमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोंका केवली-भग है।

विशेषार्थ—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अविरत गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वीने $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी० फो० पृ० ३०२)।

विशेपार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोमे स्वस्थानपदोसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है (यह कथन विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा है)।

समुद्घात पदोसे क्षायिक सम्यग्दृष्टियो द्वारा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है। इनके द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातगत केवलीकी अपेक्षा वातवलयको छोडकर शेष समस्त लोकमे व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते है। दण्डसमुद्घातगत केवलियोके द्वारा चार लोकोंका असख्यातवॉ भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। कपाट समुद्घातगत केवलियोके द्वारा तीन लोकोंका असख्यातवॉ भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवॉ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सवलोक स्पर्शन है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है[2] (खु० ब० टीका पृ० ४४६-४५१)।

इस प्रकार शेष प्रकृतियोका सम्यग्दृष्टिके समान भग है। मनुष्यगति ५ के अबन्धकोंमें तथा देवगति ४ के बन्धकामे क्षेत्रके समान भंग है।

---

१ "सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलित्ति।" –सू० १६७।
२ खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। असखेज्जा वा भागा वा। सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –खु० बं० सू० २३०-२३९।

२१४. वेदगे ओधिभंगो पत्तेगेण साधारणेण । अबंधगा णत्थि । उवसमस० खइगसम्मादिट्ठिभंगो । णवरि केवलिभंगो णत्थि । तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो । सासणे धुविगाणं बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा णत्थि । सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठबारह० । दोण्णं बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा णत्थि । एवं चदुणोक० । थिरादि-तिण्णि-युगलं । इत्थि० पुरिस० बंधगा अबंधगा अट्ठएक्कारसभागो० । दोण्णं बंधगा अट्ठएक्कारस० । अबंधगा णत्थि । एवं पंचसंठा० पंचसंघ० (?) दो विहाय० दोसर० । दो आयु-

२१४ वेदकसम्यक्त्वमें—अवधिज्ञानके समान प्रत्येक तथा सामान्यसे भग है । यहाँ अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—वेदक सम्यक्त्वियोंने स्वस्थान तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है । अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंसे देशोन ५/१४ भाग स्पृष्ट है ।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा देशोन ६/१४ भाग स्पृष्ट है । तिर्यंच और मनुष्योमेसे देवोमे उत्पन्न होनेवाले वेदक सम्यग्दृष्टियो-द्वारा ६/१४ स्पृष्ट है[1] ।

उपशमसम्यक्त्वमे-क्षायिकसम्यक्त्वीके समान भंग है । विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है । तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भग है ।

विशेषार्थ—उपशम सम्यक्त्वियों-द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है । अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है । उपपाद तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्शन है । मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदोसे परिणत उपशम सम्यक्त्वियो द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि मानुष क्षेत्रमे ही मरणको प्राप्त होनेवाले उपशम सम्यग्दृष्टि पाये जाते है (**माणुसखेत्तम्मि चेव मरंताणं उवसमसम्माइट्ठीणमुवलभादो**) ।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंमे ५/१४ भाग यहाँ क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसा निरूपण करनेपर सासादन सम्यग्दृष्टिके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी ५/१४ भाग होते है, ऐसा सन्देह न हो अत उसके निराकरणके लिए यह निरूपण नहीं किया गया है । (पृ० ४५४ खु० ब०)[2]

सासादनमे-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका ५/१४, १२/१४ है । अबन्धक नही है । साता, असाताके बन्धकों अबन्धकोका ८/१४, १२/१४ है । दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है । अबन्धक नहीं है । इस प्रकार हास्यादि चार नोकषाय तथा स्थिरादि तीन युगलमे जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकों अबन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है । दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है । अबन्धक नहीं है । ५ सस्थान (हुण्डक बिना), ५ संहनन (असम्प्राप्तासृपाटिका बिना), दो विहायोगति तथा दो

---

१ वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दस-भागा वा देसूणा । उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । छच्चोद्दसभागा वा देसूणा –खु० ब० सू० २४०-२४५ । २ उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्ज-दिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदि-भागो । –खु० बं० सू० २४६-२५० ।

मणुसगदिदुगं उच्चागोदं बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबंधगा अट्ठबारह० । देवायुबंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा अट्ठबारह० । तिण्णि आयु-बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबंधगा अट्ठ-बारहभागो । तिरिक्खगदिदुगं णीचागोदं च बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा अट्ठचोद्दस-भागो । देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस० । अबंधगा अट्ठबारहभागो । तिण्णं गदीणं बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा णत्थि । ओरालि० ओरालि० अंगो पंचसंघ० (?) बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा पंचचोद्दसभागो । उज्जोवं बंधगा अबंधगा अट्ठबारह-भागो । सुभग-आदे० बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबंधगा अट्ठबारहभागो । दूभग-अणादे० बंधगा अट्ठबारह० । अबंधगा अट्ठचोद्दस० दोण्णं बंधगा वेदणीयभंगो ।

स्वरमें इसी प्रकार है ।

विशेष—पच संहननका कथन आगे भी आया है अतः यह पाठ अधिक प्रतीत होता है। तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४ तथा १२/१४ है। देवायुके बन्धकोमे क्षेत्रवत् भग है। अबन्धकोमे ८/१४, १२/१४ है। तीन आयु (नरक बिना) के बन्धकोंके ८/१४, अबन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी नीचगोत्रके बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ८/१४ है। देवगति ४ के बन्धकोंके ५/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। तीनो गतियोंके (नरक बिना) बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धक नहीं है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, ५ सहननके बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोके ५/१४ है। उद्योतके बन्धको अबन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। सुभग, आदेयके बन्धकोंके ८/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। दुर्भग, अनादेयके बन्धकोके ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंके ८/१४ है। सुभग, दुर्भग तथा आदेय-अनादेयके बन्धकोमे वेदनीयके समान भंग है।

विशेषार्थ—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीतकालमे विहारवत्स्वस्थान पदसे परिणत सासादन गुणस्थानी जीवोंने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। उसने समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पष्ट है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन १२/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मेरु मूलसे नीचे पाँच राजु और ऊपर सात राजु आयामसे मारणान्तिक समुद्घात पाया जाता है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ११/१४ भाग स्पृष्ट है क्योंकि सासादन गुणस्थानके साथ पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे उत्पन्न होनेवाले छठी पृथ्वीके नारकियोंके ५/१४ भाग उपपादसे प्राप्त होते है तथा देवोंसे तिर्यंचोंमे उत्पन्न होने-वाले जीवोंके ६/१४ भाग प्राप्त होते है इन दोनोंके जोड़ रूप ११/१४ भाग प्रमाण स्पर्शन होता है।

प्रश्न—ऊपर ७/१४ भाग क्यों नहीं प्राप्त होते है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादन सम्यक्त्वियोंकी एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति नहीं है।

प्रश्न—एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उनमें क्यों नहीं उत्पन्न होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आयुके नष्ट होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाते

२१५. सम्मामिच्छाइट्ठि धुविगाणं बंधगा अट्ठ-चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा खेत्तं-भंगो। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। मणुसगदिपंचगं बंधगा अट्ठ-चोद्दस०। अबंधगा खेत्तभंगो। सेसाणं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा अट्ठ-चोद्दस-भागो। साधारणेण धुविगाणं भंगो। सण्णी मणजोगिभंगो। असण्णी खेत्तभंगो। णवरि

है। अतः मिथ्यात्वमे आकर सासादन गुणस्थानके साथ उत्पत्तिका विरोध है (खु० बं० टीका पृ० ४५५-४५७)[1]

२१५ सम्यग्मिथ्यादृष्टिमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग वर्तमानकी अपेक्षा स्पर्श करते है। अतीतकी अपेक्षा मिश्रगुणस्थानवाले जीवोंने विहारवत्-स्वस्थानसे देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। इनके समुद्घात तथा उपपादपद नहीं होते। क्योंकि इस गुणस्थानमे मरणका अभाव है।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोकी यहाँ प्ररूपणा क्यों नहीं की गयी ?

समाधान—नही, क्योकि उनकी प्रधानता नहीं है।[2]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा मेरु-तलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो राजू, $\frac{8}{14}$ भाग है। (ध० टी० फो० पृ० १६७)

देवगति ४ के बन्धकोंके क्षेत्रके समान भग है। अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$ है। मनुष्यगति ५ के बन्धकोंके $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बन्धकों अबन्धकों-का $\frac{8}{14}$ है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग है।

सज्ञीमे—मनोयोगियोंका भग है।

विशेषार्थ—सज्ञी जीवोने स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, विहारवत्-स्वस्थानसे देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालमे वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है। सर्वलोक स्पृष्ट है। यह कथन मारणान्तिककी अपेक्षा है। त्रसकायिक संज्ञी जीवोंमे मारणान्तिक करनेवाले संज्ञी जीवोंकी अपेक्षा देशोन $\frac{13}{14}$ भाग स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा अतीतकालकी दृष्टिसे सर्वलोक स्पृष्ट है। संज्ञी जीवोंमे उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंके सर्वलोक स्पर्श पाया जाता है। किन्तु संज्ञियोंमे उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंका स्पर्शन $\frac{13}{14}$ भाग है। सम्यक्त्वी संज्ञियोंका उपपाद क्षेत्र $\frac{6}{14}$ भाग है।[3]

---

१ सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठ-बारह-चोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। एक्कारहचोद्दसभागा वा देसूणा -खु० बं० सू० २५१-२५६। २ सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेण केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घाद उववाद णत्थि। -खु० बं० सू० २६०-२६३। समुग्घाद उववाद णत्थि। कुदो ? सम्मामिच्छत्त- गुणेण मरणाभावादो वेयण कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाणमेत्थ परूवण किण्ण कदं ? ण, तेसि पहाणत्ताभावादो। -खु० बं० टी० पृ० ४५८। ३. सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा। समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। -खु० बं० सू० २६५-२७४।

एइंदियपगदीणं एइंदियभंगो। आहारादि (१) (आहार०) ओघं। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अणाहार० कम्मइगभंगो। णवरि वेदणीयं साधारणेण ओघं।

एवं फोसणं समत्तं



असञ्ज्ञीमे—क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, एकेन्द्रियादि प्रकृतियोका एकेन्द्रियके समान भंग है।[1]

आहारकोमे[2] ओघवत् भग है। किन्तु केवलिभंग नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ स्वस्थान उपपाद समुद्‍घात पदोंसे सर्वलोक स्पर्शन है। विहारवत्-स्वस्थानसे ८/१४ भाग है। वैक्रियिक समुद्‍घातसे तीनों लोकोंका संख्यातवाँ भाग है। (खु० ब० टी० पृ० ४६१)

विशेष—मिथ्यादृष्टी जीवके सर्वलोक है, सासादनके लोकका असख्यातवाँ भाग, ८/१४, १२/१४ भाग है। मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वीके लोकका असख्यातवाँ भाग, ८/१४ है। देशसयतके असंख्यातवाँ भाग वा ६/१४ है। प्रमत्तसयतसे सयोगि जिनपर्यन्त लोकका असख्यातवाँ भाग है। विशेष, सयोगकेवलीके प्रतर तथा लोकपूरण समुद्‍घात आहारक अवस्थामे नहीं होते।

अनाहारकोंमे—कार्माण काययोगवत् है। विशेष, वेदनीयका सामान्यसे ओघवत् भग है[3]।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।



१ असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगा। –खु० बं० सू० २७५। २ "आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठि ओघ। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजदासजदा ओघ। पमत्तसजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्खं० फो० सू० १८१-१८३। ३ "अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभि सर्वलोक स्पृष्ट। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासख्येयभाग, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोना.। सयोगकेवलिना लोकस्यासख्येयभाग सर्वलोको वा। अयोगकेवलिना लोकस्यासख्येयभाग।" –स० सि० १–८। "अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभगो। णवरि विसेसो। अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो।" –सू० १८४–१८५। अणाहारा केवडिय खेत्त फोसिदं? सव्वलोगो वा –खु० बं० सू० २७८–२७९।

[कालाणुगम-परूवणा]

२१६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।

२१७. तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० आहारदुगं वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण० तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । सादासादाणं बंधा अबंधगा० सव्वद्धा । दोण्णं बंधगा अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं सेसाणं पगदीणं

[कालानुगम]

२१६ कालानुगमका (नानाजीवोंकी अपेक्षा) ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ [1]**केवचिरं कालादो होंति** कितने काल तक रहते है इसका अर्थ धवला टीकाकार इस प्रकार करते है 'क्या नरकगतिमे नारकी जीव अनादि अपर्यवसित हैं ? क्या अनादि सपर्यवसित है ? क्या सादि अपर्यवसित हैं ? क्या सादि सपर्यवसित हैं ?' इस शंकाका यहाँ उद्दीपन किया गया है । इसके उत्तरमे कहा है नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमे नारकी जीव सर्वकाल रहते है अर्थात् नारकी जीव अनादि—अपर्यवसित हैं, शेष तीन विकल्पोंमे नही है । जिस प्रकार नारकियोका सामान्यसे अनादि—अपर्यवसित संतान काल कहा है, उसी प्रकार सातों पृथिवियोंमे ही नारकियोंका सन्तानकाल अनादि-अपर्यवसित है । "**पादेक्कं संताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्तं होदि**"—इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता ।

२१७. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं[2] ? नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । साता असाताके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । दोनोंके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते है ।

विशेषार्थ—यहाँ मूलमे 'आगत बन्धा' का अर्थ बन्धक है । 'बन्धसामित्तविचय'

---

१ केवचिर कालादो होति त्ति एदस्सत्थो—णिरयगदीए णेरइया किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, कि सादि-अपज्जवसिदा कि सादि-सपज्जवसिदा त्ति सिस्सस्स आसकुद्दीवणमेदेण कय । अणादि-अपज्जवसिदा होति सेस तिसु वियप्पेसु णत्थि जहा णेरइयाण सामण्णेण अणादिओ अपज्जवसिदो सताणकालो वुत्तो तधा सत्तसु पुढवीसु णेरइयाण पि । पादेक्क सताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्त होदि । –खुद्दाबन्ध टीका पृ० ४६२, ४६३ सूत्र १, २ । २ "ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । सव्वकाल णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीण वोच्छेदो णत्थि त्ति भणिद होदि ॥"–ध० टी० का० पृ० ३२३ । "सासणसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।" –षट्खं० का० सू० ५, ६ ।

वेदणीय-भंगो । णवरि तिण्णिआयु-बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा । तिरिक्खायु-बंधाबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं चदुआयुगाणं। एवं ओघभंगो काजोगीसु ओरालियकाजोगी० भवसिद्धि० आहारगत्ति । णवरि भवसिद्धिये दोवेदणीयस्स अबंधगा केव० कालादो होंति ? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सेसाणं मग्गणाणं वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि । णवरि काजोगि-ओरालियका० तिण्णं आयुगाणं जहण्णेण एगसमओ ।

२१८. आदेसेण णेरइयेसु धुविगाणं बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि-तियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघं । तिरिक्खायु-बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । मणुसायु-बंधगा केव० जहण्णुक्कसेण अंतोमुहुत्तं ।

तृतीय खण्डमे पंचम सूत्रमे आगत शब्द "को बन्धो को अबन्धो ?" की टीकामे वीरसेन आचार्य कहते है "बधो बंधगोत्ति भणिदं होदि ।" (पृ० ७)—बन्धका भाव बन्धक है ।

शेष प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है । विशेष, ३ आयुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवें भाग तक है । अबन्धकों-का सर्वकाल है । तिर्यंचायुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते है । इसी प्रकार चार आयुका जानना चाहिए ।

[1]काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारक मार्गणामे ओघवत् जानना चाहिए । इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोंमे दो वेदनीयके[2] अबन्धक कितने काल तक होते है ? सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेष—दोनो वेदनीयके अबन्धक अयोगी जिनकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल कहा है ।

शेष मार्गणाओंमें सामान्यसे वेदनीयके अबन्धक नहीं है । विशेष, काययोगियों, औदारिक काययोगियोंमें तीन आयुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते है ।

२१८ आदेशसे–नारकियोंमें ध्रुवप्रकृतियोंके बन्ध कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते है । अबन्धक नहीं है ।[3] स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, उद्योत और तीर्थंकरके बन्धकोमे ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए । तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं । अबन्धक सर्वकाल होते हैं । मनुष्यायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्य तथा उत्कृष्टसे

१ जोगाणुवादेण कायजोगी ओरालियकायजोगी केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा –खु० बं० सू० १६, १७। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा (४२, ४३) आहारा अणाहारा केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा (५४, ५५) । २ "चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।"–षट्खं० का० सू० २६ । ३. "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा ।–षट्खं० का० ३३ ।

अबंधगा सव्वद्धा। दो-आयु बंधगा केवचिरं? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं पत्तेगेण सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। साधारणेण अबंधगा णत्थि। एवं सव्वणेरइगाणं।

२१६. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघं। सेसाणं सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। एवं एइंदि० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-पत्तेय० तेसिं बादर-बादर-अपज्जत्त-सव्वसुहुम० वणप्फदि-णिगोद-मदि० सुद० असंजद० तिण्णि लेस्सा० अब्भवसि० मिच्छादिट्ठि-असण्णित्ति।

२२०. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु चदुआयु जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा।

अन्तर्मुहूर्त होते है। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते है? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवें भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते है। शेष प्रकृतियोंमे सर्व विकल्प पृथक् पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते है। साधारणसे अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार सर्व नारकियोंमे जानना चाहिए।

२१६ [1]तिर्यंचगतिमें चार आयुके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं? ओघके समान जानना चाहिए। शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण हैं।[2] एकेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके बादर तथा बादर अपर्याप्तकोंमे, सर्व सूक्ष्मोंमे, वनस्पतिनिगोदोंमे, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि-लेश्यात्रय, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि असज्ञी पर्यन्तमे पूर्ववत् जानना चाहिए।

२२० पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे–चार आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग पर्यन्त होते है। अबन्धक सर्वकाल होते है। शेष प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए।[3]

---

१ "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० ४७। २ "एइदिया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १०७। "पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १३९। 'बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (१४८) "सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सुहुमेइदिय पज्जत्तअपज्जत्ताण भगो।' –सू० १५१। "णाणाणुवादेण मदि अण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।" (२६०) "असजदेसु मिच्छादिट्ठप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि ओघ।" (२७५)। "किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (२८३)। "अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३१५)। "मिच्छादिट्ठी ओघ।" (३२९)। "असण्णी केवचिर कालादो होति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।" (३३४)। ३ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिदिय, तिरिक्खा पंचिदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिदिय तिरिक्खजोणणी पंचिदिय तिरिक्ख अपज्जत्ता…केवचिर कालादो होति? सव्वद्धा। (४,५)

२२१. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-दो आयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस० अपज्जत्त-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-पज्जत्ताणं ।

२२२. मणुसेसु सादासादबंधगा सव्वद्धा । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोआयु० बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । दोआयु० बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा सव्वद्धा । चदुआयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा ।

२२३. एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि चदुआयु पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्त । अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

---

२२१ पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पचेन्द्रिय तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तकोमे दो आयु (नर-तिर्यंचायु) के बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। सर्वविकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय त्रस इनके अपर्याप्तकोंमे बादर-पृथ्वी-जल-अग्नि-वायुकायिक, बादर बनस्पति प्रत्येक तथा इनके पर्याप्तकोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।[1]

२२२ मनुष्योंमे-साता असाता वेदनीयके बन्धकोका सर्वकाल है।[2] दोनों वेदनीयके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य-उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है।[3]

विशेष—दोनों वेदनीयके अबन्धक अयोगिजिनोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कहा गया है।

दो आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। दो आयुके बन्धक जघन्य-उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त होते हैं। अबन्धकोंका सर्वकाल है। चारों आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं। अबधक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंके सर्वभग सर्वकाल जानना चाहिए।

२२३. मनुष्य पर्याप्तको, मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयुके प्रत्येक तथा सामान्यसे बन्धक जघन्य और उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त पर्यन्त होते हैं। अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं।

---

१ इदियाणुवादेण एइदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइदिया तीइदिया चउरिंदिया पंचिदिया । तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा । १२, १३। कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादर वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति ? सव्वद्धा –१४,१५, खु० बं० । २ मणुसगदीए मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होति ? सव्वद्धा (४,५) । ३. "चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।"–षटखं० का० २६ ।

२२४. मणुस-अपज्जत्तगेसु-धुविगाणं बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। दो-आयु० पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ओरालि० अंगो० छसंघड० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसरं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि। सेसाणं वेदणीयभंगो।

२२५. देवाणं णिरयभंगो। णवरि एइंदियपयडि जाणिदूण भाणिदव्वं।

२२६. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता वेदणीयं साधारणेण अबंधगा जहण्णुक्क-

---

२२४ मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंमें[1]–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक कितने काल तक होते हैं? जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवें भाग पर्यन्त होते है। अबन्धक नहीं है। साता-असाता वेदनीयके बन्धक अबन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग होते है। दोनोके बन्धक जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण पर्यन्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग होते है। अबन्धक नहीं है। दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक–अबन्धक प्रत्येक साधारणसे जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग है। औदारिक अंगोपाग, छह सहनन, परघात उच्छ्वास-आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक अबन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवें भाग है। सामान्य तथा प्रत्येकसे इसी प्रकार जानना चाहिए। शेषका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

२२५ देवोंमे–नारकियोंके समान भंग[2] है। विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय प्रकृतिको भी जानकर कहना चाहिए।

विशेष—नारकी जीव मरणकर सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य या तिर्यंच होते है, किन्तु देवोकी उत्पत्ति एकेन्द्रियोंमे भी होती है। अतः देवगतिमे एकेन्द्रिय जातिके बन्धका भी उल्लेख है।

२२६ पंचेन्द्रिय त्रस तथा इनके पर्याप्तकोंमें–साधारणसे वेदनीयके अबन्धकोंका

---

१ "मणुस-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्खं० का० ८३–८४। खुद्दाबध सू० ६, ७, ८।
२ "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा। सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं।" –षट्खं० का० ३६। देवगदीए देवा केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा। –खु० बं० सू० ९, १०। "सासण-सम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" (५,६)। "सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" (९, १०) असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।"–षट्खं० का० १३।

स्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। सेस-भंगा सव्वद्धा।

२२७. एवं तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०। णवरि वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। सादासादाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं दोयुगलचदुगदि-पंचजादि-दोसरीर-छसंठाण-चदुआणुपुव्वि० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदं च। आहारदुगं दो-अंगो० छस्संघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दो विहाय० दोसर० तित्थय० पत्तेगेण साधारणेण बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क०, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा।

२२८. एवं चक्खुदं० अचक्खुदं० सण्णि त्ति। णवरि चक्खुदं० सण्णि० आयु०

जघन्य, उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवॉ भाग है। शेष भग सर्वकाल है।

२२७ तीन मनोयोग, तीन वचनयोगमे इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि वेदनीयके सामान्यसे अबन्धक नहीं है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट पल्योपमका असख्यातवॉ भाग काल है। दो मन तथा दो वचनयोगमे-पॉच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पॉच अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका काल सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके बन्धको अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीनों वेदोके बन्धकोका सर्वकाल है। अबन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। हास्यादि दो युगल, चार गति, पॉच जाति, दो शरीर, छह सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा दो गोत्रोंमे भी इसी प्रकार जानना, अर्थात् अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है तथा बन्धकोंका सर्वकाल है। आहारकद्विक, २ अगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, २ स्वर तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकों अबन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे सर्वकाल है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवॉ भाग है। अबन्धकोका सर्वकाल है।[1]

२२८ चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन तथा संज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष,

---

१ जोगाणुवादेण पचमणजोगी पचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा —खु० बं० १६, १७।

तस-भंगो। अचक्खुदं० आयु० ओघं।

२२९. ओरालिमि०-धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जसमया। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० संखेज्जसमया। एवं दोण्णं युगलाणं। दोआयु ओघं। देवगदि०४ तित्थय० बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा सव्वद्धा। दोगदिबंधगा अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं गदीणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्क० संखेज्जसमया। मिच्छत्तबंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं

चक्षुदर्शन,[1] एवं सञ्ज्ञी जीवोंमे आयुका त्रसके समान भंग है। आयुका अचक्षुदर्शनमे ओघवत् जानना चाहिए।

२२९ औदारिकमिश्र काययोगमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है, अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय प्रमाण है[2]। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदके बन्धकों अबन्धकोका सर्वकाल है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सख्यात समय है। इस प्रकार दो युगलोंमे जानना चाहिए। दो आयुमें ओघवत् जानना चाहिए। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल है।[3] अबन्धकोंका सर्वकाल है। दो गतिके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीन गतिके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वकाल है।[4] अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी

---

१ दसणाणुवादेण चक्खुदसणी अचक्खुदसणी ओहिदसणी केवलदसणी केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा –३८, ३९ सू० खु० ब०। सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा। –५२, ५३, खु० बं० सू०। २ "दड समुद्घातसे कपाटको प्राप्त होकर वहाँ एक समय रहकर प्रतर समुद्घातको प्राप्त हुए केवलियोके यह एक समय प्रमाण काल होता है। अथवा रुचकसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और एक समय रहकर दण्डसमुद्घातको प्राप्त होनेवाले केवलियोके एक समय काल होता है। कपाटसमुद्घातके आरोहण-अवरोहणरूप क्रियापे सलग्न क्रमश दण्ड प्रतररूप पर्याय परिणत सख्यात समयोकी पक्तिमे स्थित सख्यातकेवलियोके द्वारा अधिकृत अवस्थामे सख्यात समय पाये जाते हैं।" –ध० टी० का० ४२४। "सजोगिकेवली केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण सखेज्जसमय"–षट्खं० का० १९३–९४। ३ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।"–षट्खं० का० १८९–९०। ४ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।"–षट्खं० का० १८५–८६।

सव्वाणं णेदव्वं ।

२३०. एवं कम्मइयका० । णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छ० अणंताणु०४ बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा जह० एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । देवगदि०४ तित्थयरं बंधगा जह० एगस० । उक्क० संखेज्जसमया । अबंधगा सव्वद्धा । ओरालिय-बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जह० एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जसमया ।

२३१. वेउव्विकायजोगिस्स देवोघं । वेउव्वियमिस्स० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ । दोवेदणीय-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा णत्थि । एवं तिण्णं वेदाणं दोण्णं युगलाणं दोगदि-दोजादि-छस्संठाण-दोआणुपुव्वि-तसथावरादि-पंच-युगल-दोगोदाणं च । ओरालि-अंगोवंग-छस्संघडण-

प्रकार सर्व प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

२३०. कार्मोणकाययोगियोंमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सख्यात समय है। अबन्धकोका सर्वकाल है। औदारिक शरीरके बन्धकोका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सख्यात समय है।

२३१. वैक्रियिककाययोगियोंमे–देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमे–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे[2] पल्यके असंख्यातवे भाग है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकों अबन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग है। [3]विशेष यह है कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंका जघन्य काल एक समय है। दोनों वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका काल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। दोनोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। तीनों वेदों, हास्यादि दो युगलों, २ गति, २ जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि पंचयुगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक अंगोपांग, ६ सहनन, दो विहायोगति

१ "सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण आवलियाए असखेज्जदिभागो।" षट्खं० का० २२०-२१। २ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीअसजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।"–षट्खं० का० २०१–२०२। ३ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्खं० का० २०५-२०६।

दोविहायगदि-दोसराणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। तित्थयरं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। आहारका०–धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। सेसाणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारमि०–धुविगाणं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। वेदणीय-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। दोण्णं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। आयु० तित्थय० सादभंगो।

२३२. इत्थिवे०–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदुग-परघादुस्सास-आदा-उज्जोव-तित्थयराणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। णिद्दापचल(ला)-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। एवं

तथा दो स्वरोंके बन्धकों-अबन्धकोंका काल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

आहारककाययोगियोंमे[1] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

आहारकमिश्रमे[2]—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। दोनोंके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। आयु तथा तीर्थंकरमे साताके समान भंग है।

२३२ स्त्रीवेदमे[3]—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकरके बन्धको अबन्धकोंका सर्वकाल है।[4] निद्रा-प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है[5]। साता असाता वेदनीयके बन्धको

१ "आहारकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –षट्खं० का० २०६-२१०। २ "आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –षट्खं० का० २१३-१४। ३ "इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० २२७। "वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुसयवेदा अवगदवेदा केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा।" – २७, २८ खु० ब०। ४ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० २३२। ५ "चदुण्ण उवसमा केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –षट्खं० का० २२-२३।

तिण्णि-वेद-जस०-अजस० दोगोदं च । हस्सरदि-अरदि-सोगं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा । दोण्णं युगलाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण वि हस्सरदीणं भंगो । चदुआयुगाणं बंधगा पत्तेगेण जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चदुआयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । एवं पुरिसवेदस्स वि । एवं चेव णवुंसगवेद-कोधादितिण्णं कसायाणं। णवरि तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वद्धा । साधारणेण चदुआयुगाणं अबंधगा सव्वद्धा । एवं चेव लोभे वि । णवरि पंचणा० चदुदं० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा णत्थि । अवगदवेदेसु–सादस्स बंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा सव्वद्धा । अकसाइगेसु–सादस्स बंधगा अबंधगा सव्वद्धा । एवं केवलणा० केवलदंस० ।

२३३. विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एग-

अबन्धकोंका सर्वकाल है । दोनोके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नहीं है । तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोमे इसी प्रकार जानना चाहिए । हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । दोनों युगलोंके बन्धकोका सर्वकाल है । अबन्धकों-का जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमे प्रत्येक तथा सामान्यसे हास्य-रतिके समान भग जानना चाहिए । चार आयुके बन्धकोका प्रत्येकसे जघन्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोका सर्वकाल है । सामान्यसे चार आयुके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असख्यातवॉ भाग है । अबन्धकोंका सर्वकाल है ।

पुरुषवेदमे–इसी प्रकार जानना चाहिए । नपुसकवेदमे भी इसी प्रकार है । क्रोध-मान-मायाकषायमे भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि तिर्यंच आयुके बन्धको अबन्धकोंका सर्वकाल है । सामान्यसे चार आयुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । लोभकषायमे–इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धक नही है ।

अपगत वेदमे–सातावेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । अबन्धकोंका सर्वकाल है ।

अकषायियोंमे–साता वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है । [2]केवलज्ञान, केवल-दर्शनमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

२३३. विभंगज्ञानमें[3]–पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग जानना चाहिए । विशेष यह है

१ "कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा"–खु० बं० सू० २८, २९ । २ "णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभगणाणी आभिणिबोहिय-सुद ओहिणाणीमणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा" –खु० बं० सू० ३१, ३२ । ३ "विभगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।"–षट्खं० का०२६२ । "सासणसम्मादिट्ठी ओघ (२६५) णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्ज-दिभागो ।" ५६ ।

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

२३४. आभि० सुद० ओधि०–धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अट्ठकसा० आहारदु० वज्जरिसभ० तित्थय० बंधाबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं दोण्णं मणजोगीणं भंगो। णवरि मणुसायु० मणुसिभंगो। देवायु० ओघं।

२३५ एवं ओधिदंस०। एवं चेव मणपज्जव० सामा० छेदो०। णवरि देवायु० मणुसिभंगो। संजदा मणुसिभंगो।

२३६. परिहार–धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। दोवेदणीयाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। देवायु० मणुसिभंगो। सेसं वेदणीयभंगो।

२३७. एवं संजदासंजदाणं। देवायु० ओघं। सुहुम० सव्वाणं बंधगा जहण्णेण

कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

२३४ [1]आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमे–ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। आठ कषाय, आहारकद्विक, वज्रवृषभसहनन, तीर्थंकरके बन्धको अबन्धकोका सर्वकाल है। शेप प्रकृतियोंका दो मनोयोगियोके समान भग है। अर्थात् बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि मनुष्यायुका मनुष्यनियोंके समान भग है। देवायुके विषयमे ओघवत् जानना चाहिए।

२३५ इसी प्रकार अवधिदर्शनमे जानना चाहिए। मन पर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, संयममे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह [2]है कि देवायुके बन्धकोमे मनुष्यनीका भंग जानना चाहिए। सयतोंमे मनुष्यनीका भंग है।

२३६. परिहारविशुद्धिसयममें–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अवन्धक नहीं है। दोनों वेदनीयोके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। दोनो प्रकृतियोंके बन्धकोका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। देवायुका मनुष्यनीके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमे वेदनीयका भग है।

२३७ सयतासयतोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। देवायुका ओघवत् भग जानना

१ "आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्थात्ति ओघ।"–सू० २६६। "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा। सजदासजदा सव्वद्धा। पमत्त-अप्पमत्तसजदा सव्वद्धा। चउण्ह उवसमा णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त। चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली '' जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –सू० १३, १६, १९, २२, २३, २६, २७। २ "मणपज्जवणाणी ' केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा"–खु० ब० ३१, ३२। "सजमाणुवादेण। सजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसजदा जहाक्खादाविहारसुद्धिसजदा सजदासजदा असजदा केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा।"

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि।

२३८. तेऊ देवोघं। एवं पम्माए वि। सुक्काए धुविगाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा। सेसं मणुस-पज्जत्तभंगो।

२३९ सम्मादि० दोआयु ओधिभंगो। सेसं सव्वद्धा। एवं खइग-सम्मा०। दोआयु सुक्कभंगो। वेदगे०-धुविगाणं बंधा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। सेसं ओधिभंगो। णवरि साधारणेण अबंधगा णत्थि।

२४०. उवसमसम्मा०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

चाहिए। [1]सूक्ष्मसाम्परायसयममे सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—उपशान्तकपाय वा अनिवृत्ति बादर साम्पराय प्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमे मरणकर देवोंमे उत्पन्न होनेपर एक समय जघन्यकाल पाया जाता है। उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, उसमे सख्यात अन्तमुहूर्तोंका समावेश है। (खु० बं० टीका पृ० ४८३, ४७४)

२३८ [2]तेजोलेश्यामे-देवोंके ओघ समान है। पद्मलेश्यामे-इसी प्रकार है। [3]शुक्ललेश्यामे-ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तकके समान भग है।

२३९ सम्यग्दृष्टियोंमे-दो आयुके बन्धको अबन्धकोका ओघके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमे सर्वकाल भग [4]है। क्षायिकसम्यक्त्वियोंमे-इसी प्रकार है। दो आयुका शुक्ललेश्याके समान भग है। वेदकस यक्त्वियोंमें-ध्रुवप्रकृतियोके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोका अवधिज्ञानके समान भग है। विशेष यह है कि सामान्यसे अबन्धक नहीं है।

२४० [5]उपशमसम्यक्त्वियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवे भाग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

---

१ "सुहुमसापराइयसुद्धिसजदेसु सुहुमसापराइयसुद्धिसजदा उवसमा खवा ओघ।" -२७२। २ "तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी सव्वद्धा" -षट्खं० का० २९१। "सासणसम्मादिट्ठी ओघ।" -२९४। "सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ।" -२९५। "सजदासजदपमत्तअप्पमत्त-सजदा' 'सव्वद्धा।"-२९६। ३ "सुक्कलेस्सिएसु चदुण्हमुवसमा चदुण्ह खवगा सजोगिकेवली ओघ।"-३०८। ४ "सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा" -खु० बं० सू० ४४, ४५। ५ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठी सजदासजदा केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" -षट्खं० का० सू० ३१९-२०। "उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो" -खु० ब० कालाणुगम सू० ४६-४८। "पमत्तसजदप्पहुडि जाव उवसतकसाय-वीदरागछदुमत्थात्ति केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" -३२३-२४।

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सादासाद-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। मणुसगदि-पंचगं बंधगा अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं अबंधा। णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। आहारदुगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं तित्थयरस्स। चदुणोकसायाणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं थिरादितिण्णियुगलाणं। सासणे–धुविगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं वेदणीयं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा। साधारणेण बंधगा अबंधगा जहण्णेण एग-

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। साता-असाताके बन्धको अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। मनुष्यगतिपंचकके बन्धको अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। देवगति ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार अबन्धकोंका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। आहारकद्विकके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरका इसी प्रकार जानना चाहिए। चार नोकषायोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। स्थिरादि तीन युगलोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

सासादनमें—[1]ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंमें प्रत्येकसे इसी प्रकार है। सामान्यसे बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ

१ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।"–षट्खं० का० ५-६।

समओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं। दोआयु० बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। मणुसायुबं० देवभंगो। अबंधगा जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। एवं साधारणेण वि।

२४१. सम्मामि० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासादाणं बंधगा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं साधारणेण वि। अबंधगा णत्थि।

२४२. अणाहारे धुविगाणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। देवगदिपंचगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा।

एवं कालं समत्तं।

भाग है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। दो आयुके बन्धको अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। मनुष्यायुके बन्धकोंमें देवोंके समान भग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार सामान्यसे भी जानना चाहिए।

२४१ सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे—[1]ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। साता-असाताके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवाँ भाग है। दोनोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धक नहीं है। परिवर्तमान सर्वप्रकृतियोंमें इस प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिपचक, देवगति ४ के बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार सामान्यसे भी भंग जानना चाहिए। अबन्धक नहीं है।

२४२ अनाहारकोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। देवगतिपंचकके बन्धकोंका जघन्यसे एक [2]समय, उत्कृष्टसे सख्यात समय है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालप्ररूपणा समाप्त हुई।

---

१ "सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालदो होति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" –६-१०। २ "आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा" – खु० बं० सू० ४९, ५५।

[अंतराणुगम-परूवणा]

२४३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।

२४४. तत्थ ओघेण–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण-तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं, णिरंतरं। तिण्णि आयु० बंधगा जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। तिरिक्खायुबंधाबंधगा णत्थि अंतरं। चदुआयु बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसविगप्पाणं बंधगा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं काजोगि (?)।

२४५. ओघभंगो काजोगि-ओरालियकाजोगि-भवसिद्धि-आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धि०।

[अन्तरानुगम]

[अन्तर शब्द छिद्र, मध्य, विरह आदि अनेक अर्थोंका द्योतक है। यहाँ अन्तर शब्द विरहकालका द्योतक है। एक वस्तु अवस्थाविशेषमें कुछ समय रहकर कुछ कालके लिए अवस्थान्तर रूप हो गयी और बादमें वह उस अवस्थाविशेषको पुन प्राप्त हो गयी। इस मध्यवर्ती कालको अन्तर कहते हैं। यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।][1]

२४३ यहाँ ओघ तथा आदेशकी अपेक्षा अन्तरका दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

२४४ ओघसे ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर बन्ध है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे लिखा है "निर्गतमन्तरमस्माद्राशेरिति णिरंतरं", जिस राशिमे अन्तरका अभाव है वह निरन्तर है। 'णत्थि अन्तरं'–अन्तर नहीं है यह प्रसज्य प्रतिषेध हैं, क्योंकि यहाँ विधिकी प्रधानताका अभाव है। 'णिरंतरं' निरन्तर हैं यह पर्युदास प्रतिषेध है. कारण यहाँ प्रतिषेधकी प्रधानता नहीं है। इस प्रकार प्रसज्य और पर्युदास रूप अभाव युगलका कथन किया गया है। (खु० बं० अं० पृ० ४७९-४८०)

नरक-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। अबन्धक नहीं है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। चार आयुके बन्धकों अबन्धकोका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२४५ काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारकमें ओघकी तरह अन्तर जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमें विशेष जानना चाहिए।

---

१ "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्रमध्यविरहेष्वन्यतमग्रहणम्। –त० रा० पृ० ३०। "अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामान्तरगमण णत्थित्तगमणं अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो।" –ध० टी० अन्तरा० पृ० ३।

२४६. आदेसेण णेरइगेसु–दो-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं, अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं, मासं, वेमासं, चत्तारि मासं, छम्मासं, बारसमासं। एवं सव्वणेरइगाणं। सेसं पगदीणं णत्थि अंतरं।

२४७. तिरिक्खेसु–आयु० ओघं। सेसं णत्थि अंतरं। एवं एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० तेसि चेव बादरअपज्ज० सव्वसुहुम-सव्ववणप्फदि-णिगोद-बादर-वणप्फदि-पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त-मदि० सुद० असंज० तिण्णिले० अब्भवसिद्धि-मिच्छादिट्ठि याव असण्णित्ति। एदेसिं च किंचि विसेसं ओघादो साधेदूण णेदव्वं। पंचिंदिय तिरिक्ख०४ तिण्णि आयु० ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तजोणिणीसु चउव्वीसं मुहुत्तं। चदु-आयु-तिरिक्खायुभंगो। पंचिंदिय-

२४६ आदेशसे–नारकियोमे मनुष्य तिर्यंचायुके बन्धकोका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त, ४८ मुहूर्त, पक्ष, मास, दो मास, चार मास, छह मास तथा बारह मास अन्तर है। इसी प्रकार सब नारकियोंमे जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है, कारण उनका निरन्तर बन्ध होता है।

२४७ तिर्यंचो मे—आयुके बन्धकोंका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियो के बन्धको का अन्तर नहीं है।[1] इसी प्रकार एकेन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा इनके बादर अपर्याप्तक भेदो मे, सम्पूर्ण सूक्ष्म, सर्व वनस्पतिनिगोद, बादरवनस्पति—प्रत्येक तथा उनके अपर्याप्तको मे एव [2]मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान[3], असयम,[4] तीन लेश्या[5], अभव्यसिद्धिक[6], मिथ्यादृष्टिसे असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इनमे पायी जानेवाली विशेषताओंको ओघ-वर्णनसे जानकर निकालना चाहिए।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंचअपर्याप्त तथा पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमे—तीन आयुका ओघवत् है। तिर्यंचायुके बन्धको का अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्तक योनिमती तिर्यंचो मे अन्तर २४ मुहूर्त है। चार आयुके बन्धकों मे तिर्यंचायुके समान भग है।

---

१ "एइदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइदिय-तीइदिय चउरिंदिय-पंचिदिय-पज्जत्त- अपज्जत्ताण मतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर, णिरतर (१५-१७) कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउ-काइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय पज्जत्ता-अपज्जत्ताणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर।" १८,१९, २ "णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभगणाणि-आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणिमणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर" (३६-३८)। ३ "सजमाणुवादेण सजदा सजदासजदा असजदाणमतर णत्थि अतर णिरतर" (३९-४१)। ४ "लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर (४८-५०) भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभव सिद्धियाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर (५१-५३)। ५ "सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर" (५४-५६)। ६ "सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर–खु० ब० सूत्र ६३-६५ अन्तराणुगम।

तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। मणुसायु ओघं। दो-आयु० तिरिक्खायुभंगो। सेसं णत्थि अंतरं। एवं पंचिंदिय-तस-अपज्ज० विगलिंदिय-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादर-वणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ताणं। णवरि तेउ० आयु चउव्वीसं मुहुत्तं।

२४८. मणुसेसु—चदु-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। दो वेदणी० अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मास०। मणुसिणीसु वासपुधत्तं। सेसं णत्थि अंतरं। मणुस-अपज्ज० सव्वाणं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

२४९. देवाणं-णिरयभंगो। णवरि सव्वट्ठे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तको मे तिर्यंचायुका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुका ओघवत् अन्तर है। दो आयुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान भंग है। शेष प्रकृतियो मे अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, बादर पृथ्वी, बादर अप्, बादर तेज, बादर वायु, बादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तको मे जानना चाहिए। विशेष, तेजकायमे आयुका २४ मुहूर्त अन्तर है।

२४८ मनुष्यगतिमे—चार आयुके बन्धको का जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। दो वेदनीयके अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह है।

विशेष—साता-असातायुगलके अबन्धक अयोगकेवली होंगे। उनका नाना जीवो की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।[1]

मनुष्यनियोंमे[2]—दोनों वेदनीयोंके अबन्धकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका अन्तर नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमे—सर्व प्रकृतियोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किसलिए होता है?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है और स्वभावमे युक्तिवादका प्रवेश नहीं है, क्योंकि उसका भिन्न विषय है। (ध० जी० अंत० टीका० पृ० ५६)

२४९ देवोंमें—नरकके समान भग है।[3] विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमे पल्योपमके संख्यातवे भाग प्रमाण अन्तर है।

---

१ "चदुण्ह खवग-अजोगिकेवलीणमतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मासं।" –षट्खं० अंतरा० १६, १७। "उत्कृष्टेन षण्मासा।" –स० सि० १, ८।
२ 'मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्तं।"–७०, ७१। "मणुस-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।" ७८। मणुस अपज्जत्ताणमंतर केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो—खु० बं० अ०सू०८–१०। "किमट्ठ-मेदस्स एम्महंतस्स रासिस्स अतर होदि? एसो सहाओ एदस्स। ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसो अत्थिभिण्णविसयादो।" –ध० टी० अ० पृ० ५६। "उक्कसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–७९। ३ देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अन्तर, णिरंतरं (११-१३) भवणवासिय जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिय देवा देवगदिभंगो १४–खु० बं० अंतरा०।

पंचिंदियतस०२ तिण्णि आयु-बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं । तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । पज्जत्ते चउव्वीसं मुहुत्तं । सेसं मणुसोघं । तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०-चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं । सेसं णत्थि अंतरं ।

२५०. दोमण० दोवचि०-चदुआयु० तिण्णि मणभंगो । पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्मासं । सेसं पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्मासं । णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त-बारसक० दोअगो० छस्संघ० परघादुस्सासं आहारदुगं आदाउज्जोवं दो-विहाय० दोसरं बंधगा अबंधगा णत्थि अंतरं ।

२५१ एवं चक्खु० अचक्खु० सण्णि त्ति । णवरि अचक्खुदंस० आयु० ओघं । ओरालियमिस्स०-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण

पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमें—तीन आयुके बन्धकोका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर जानना चाहिए। पर्याप्तकोंमें २४ मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोमे मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए।

तीन मनोयोगी, तीन वचनयोगीमें—४ आयुका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।[1]

२५०. दो मनयोगी, दो वचनयोगीमे—४ आयुके अन्तरका तीन मनोयोगीके समान भग है। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। पॉच ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है। शेषके बन्धकोंका सामान्य तथा प्रत्येक रूपसे अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ६ माह अन्तर है। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, दो अगोपांग, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, आहारकद्विक, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५१ इसी प्रकार अचक्षुदर्शनसे संज्ञी पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष यह है कि अचक्षुदर्शनमे आयुका ओघवत् अन्तर है।

औदारिक मिश्रकाययोगमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।[2]

विशेष—इस योगमे ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक सयोगकेवली होंगे। वहॉ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। कारण, कपाट

१ जोगाणुवादेण पचमणजोगि-पचवचिजोगि अतर केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर (२१-२३) २ "सजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।"–षखूटं० अतरा० १६६-६७ ।

वासपुधत्तं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण मासपुधत्तं । दोआयु० छस्संघ० दोविहाय० दोसर० बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं । णवरि मणुसायु ओघं । तित्थयर० बंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण य णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

२५२. वेउव्वियका०–देवोघं । वेउव्वियमिस्स-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ अबंधगा, तित्थय० बंधगा ओरालियमिस्सभंगो । सेसाणं बंधाबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्क० बारसमुहुत्तं । णवरि एइंदिय०३ चउव्वीस मुहुत्तं ।

समुद्घात रहित केवली जघन्यसे एक समय तथा उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व पर्यन्त होते है ।–ध० टी० अन्तरा० पृ० ६१ ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धकोंका अन्तर नही है । अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है । दो आयु, ६ सहनन और २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धको अबन्धकोका अन्तर नहीं है । विशेष यह है कि मनुष्यायुके विषयमे ओघवत् जानना ।[1] तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है । अबन्धकोंका अन्तर नही है ।

विशेष—इस योगमे तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव होंगे । उनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर कहा है ।

शेष प्रकृतियोके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे अन्तर नहीं है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ।

२५२ वैक्रियिक काययोगमे—देवोंके ओघवत् जानना चाहिए । वैक्रियिक मिश्रकाययोगमे ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है ।[2]

विशेषार्थ—सर्व वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंके पर्याप्तियोंको पूर्ण कर लेनेपर एक समयका अन्तर होता है । देव तथा नारकियोंमे न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते है तो बारह मुहूर्त तक ही रहते है । यह कैसे जाना ?

समाधान—जिण-वयण-विणिग्गय-वयणादो—जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनोंसे जाना जाता है । (खु० ब० टीका पृ० ४८५)

अबन्धकोका अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धकोंका तथा तीर्थंकरके बन्धकोका औदारिक मिश्रकाय योगके समान भग जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोके बन्धको अबन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है । विशेष यह है कि एकेन्द्रियत्रिकका अन्तर २४ मुहूर्त जानना चाहिए ।

---

१ "असजदसम्मादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्त ।"–१६३-६४ । २ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण बारसमुहुत्त ।" –षट्खं० अंतरा० १७०–१७१ ।

२५३. आहार० आहारमिस्स०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं बंधाबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

२५४. कम्मइग-कायो ओरालियमिस्सभंगो ।

२५५. इत्थिवेदे-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि । णिद्दा-पचला-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ उप० णिमिणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं बारसकसा० दोअंगो० छस्संघ० आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बंधगा० णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं वेदणीय-तिण्णिवेद-जस० अजस० तित्थय० दोगोदाणं । सेसाणं पत्तेगेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । साधारणेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं ।

२५६. एवं पुरिसवेदं णवुंसगवेदं । णवरि पुरिसे यं हि वासपुधत्तं, तं हि वासं सादिरेयं । इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो । णवुंसगे ओघं ।

---

२५३ आहारक तथा मिश्रकाययोगमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है ।[1] अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है ।

२५४ कार्माणकाययोगमे–औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए ।

२५५ स्त्रीवेदमे–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है । इनके अबन्धक नहीं है । निद्राप्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण४, अगुरुलघु४, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका अन्तर नहीं है ।[3] अबन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, दो अगोपाग, ६ सहनन, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २स्वरके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोका भी अन्तर नही है । इसी प्रकार वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर तथा २ गोत्रका जानना । शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका प्रत्येकसे अन्तर नहीं है । सामान्यसे भी इनका अन्तर नही है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ।

२५६ पुरुषवेद नपुसकवेदमे इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि पुरुषवेदमे[4] वर्ष-पृथक्त्वके स्थानमे साधिकवर्ष जानना चाहिए ।

विशेष—पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गये, अतः अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर युक्त हो गये । पुनः ६ मास व्यतीत

---

१ "आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वासपुधत्त ।" –१७४–१७५ । २ "इत्थिवेदेसु दोण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघ ।" –षट्खं० अंतरा० १८७ । ३. "णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।" –षट्खं० अंतरा० १२, १३ । ४ "पुरिसवेदएसु दोण्ह खवाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वास सादिरेय ।" –षट्खं० अंतरा० १९३, २०४, २०५ ।

२५७. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो। णवरि तिरिक्खायु ओघं। एवं लोभे, णवरि छम्मासं।

२५८. अवगदवेदेसु सादबंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसं बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण छम्मासं। अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५९. अकसाइगेसु साद-बंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं केवलदंसणा०। विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो।

२६० आभि० सुद० ओधि० दो-आयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं। सेसाणं दो-मणभंगो। ओधिणा० वासपुधत्तं।

२६१. एवं मणपज्जव० ओधिदं०। णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं।

होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हो गये। पुनः ४, ५ मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढे। पुनः १, २ मासका अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढे। इस प्रकार संख्यात बार स्त्रीवेद और नपुसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढनेपर साधिक वर्ष प्रमाण अन्तर हो जाता है। क्योंकि निरन्तर ६ मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार 'पुरुषवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अन्तर जानना चाहिए। [1]कितनी ही सूत्र पोथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर ६ मास पाया जाता है। (जीवट्ठाण अन्तरा० पृ० १०६)

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बन्धकों अबन्धकोंमे पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग जानना चाहिए। नपुसकवेदमे–ओघवत् जानना चाहिए।

२५७ क्रोध-मान-मायाकषायमे–पुरुषवेदके समान भंग है। विशेष इतना है कि तिर्यंचायुके बन्धको अबन्धकोका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। लोभकषायमे–इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष, यहाँ अन्तर छह मास जानना चाहिए।

२५८. अपगतवेदमे–साताके बन्धकों अवन्धकोंमे अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतिके बन्धकोमे जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अन्तर है। अबन्धकोका अन्तर नहीं है।

२५९ अकषायियोंमें—साताके बन्धकों अबन्धकोंमें अन्तर नही है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना। विभंगावधिमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोका भंग जानना चाहिए।

२६०. आभिनिबोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमें–दो आयु अर्थात् मनुष्य—देवायुके बन्धकोंका [2]जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमे दो मनयोगियोके समान भग है। अवधिज्ञानियोंमें वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२६१ मनःपर्ययज्ञान अवधि दर्शनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि मनःपर्ययज्ञानमें देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है।[3]

१ केसुवि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदमतर छम्मासा – जी० अंत० पृ० १०६। २ "आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतरं केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण मासपुधत्त।" –षट्खं० अंतरा० २३२, २४१, २४२, २४५। ३ "मणपज्जवणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –२४६, २४९, २५०।

२६२. एवं परिहारे संजदु० (?) तं चेव, णवरि मास-पुधत्तं। एवं सामाइ० छेदोप०। संजदासंजदा० सुहुमस० सव्वाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं अंतरं। अबंधगा णत्थि। यथाक्खाद०-सादबंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण छम्मास० (सं)।

२६३. तेउपम्माणं-तिण्णि-आयु० बंधा जह० एगस०। उक्कस्सेण अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं।

२६४ सुक्काए-दो आयु० मासपुधत्तं।

२६५. सम्मादिट्ठि आभिणिभंगो[1]। खइगसम्मा० वासपुधत्तं। सेसाणं णत्थि अतरं। वेदगसम्मा० आयु० आभिणिभंगो। सेसं णत्थि अंतरं।

२६६. उवसमसम्मा०-पंचणा० छदंस०चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-

२६२ परिहारविशुद्धिमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वर्षपृथक्त्व-के स्थानमे मासपृथक्त्व अन्तर जानना चाहिए। इसी प्रकार सामायिक छेदोपस्थापना सयममे जानना चाहिए। सयतासयत और सूक्ष्मसाम्पराय सयममे सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है। अबन्धक नही है।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोके बिना जघन्यसे एक समय देखा जाता है। उत्कृष्टसे अन्तर छह मास होता है, कारण क्षपकश्रेणी आरोहणका छह मासोसे अधिक उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता है। (खु० ब० टी० पृ० ४८९)।

यथाख्यातसंयममे-साता वेदनीयके बन्धकोका अन्तर नही है। अबन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट छह मास अन्तर जानना चाहिए।[2]

विशेष—साता वेदनीयके अबन्धकोंका इस सयममे अयोगकेवली गुणस्थान है। उसका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।

२६३ तेजोलेश्या-पद्मलेश्यामे-तीन आयुके बन्धकोका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ४८ मुहूर्त तथा पक्षप्रमाण अन्तर है।

२६४ शुक्ललेश्यामे-दो आयुके बन्धकोका मासपृथक्त्व अन्तर है।

२६५ सम्यग्दृष्टियोंमे-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है। क्षायिक सम्यक्त्वीमे दो आयुके बन्धकोका वर्षपृथक्त्व अन्तर है[3]। शेष प्रकृतियोका अन्तर नहीं है। वेदक सम्यक्त्वियोंमे-आयुके बन्धकोंका आभिनिबोधिक ज्ञानके समान है। शेष प्रकृतियोमे अन्तर नहीं है।

२६६ उपशमसम्यक्त्वियोमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसहनन, वर्ण ४,

१ सुहुमसापरायसुद्धिसजदाण अतर केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मासाणि –खु० बं० सू० ४२–४४। २ 'चदुण्ह खवगअजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मास।" –१६, १७। ३ "चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –षट्खं० अं० सू० ३४३, ४४।

आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोदं पंचंतराइगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। [अबंधगा] जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। णवरि वज्जरिस० अबंधगा सत्तरादिंदियाणि। मणुसगदि०४ वज्जरिसभ-भंगो। दोवेदणी० बंधा-अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं बंधगा जहण्णे० एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा णत्थि। चदुणोक० बंधा-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० वासपुधत्तं। एवं परियत्ति [माणि] याणं। अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० चोद्दसरादिंदियाणि। पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जह० एगस०। उक्क० सत्तरादिंदि०। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० पण्णारसरादिंदि०। आहारदुगं तित्थयरं बंधगा जह० एगस०। उक्क० वास-

अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात रात-दिन है[1]।

विशेषार्थ—रात्रिंदिव शब्द द्वारा दिवसका ग्रहण किया गया है क्योंकि सम्मिलित दिन तथा रात्रिमें दिवसका व्यवहार देखा जाता है। (खु० ब० टीका पृ० ४६२)

[अबन्धकोंका] जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

विशेष—इन प्रकृतियोंके अबन्धक उपशान्तकषायी होंगे, उनका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है।

विशेष यह है कि वज्रवृषभनाराचके अबन्धकोंका अन्तर सात दिन-रात है। मनुष्य-गति ४ के बन्धकोंका अन्तर वज्रवृषभनाराचसंहननके समान है। दो वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है। साता असाताके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है। अबन्धक नहीं है। चार नोकषायों अर्थात् हास्यादिचतुष्कके बन्धको अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १४ दिन-रात है[2]। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १५ दिनरात है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके

१ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि।" –षट्खं० अं० सू० ३५६, ३५७। रादिंदियमिदि दिवसस्स सण्णा। अहोरत्तेहि मिलिएहि दिवसववहारदंसणादो। एत्थ उवसंहारगाहा – सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति। विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो॥ –खु० बं० टी० पृ० ४६२। २. "संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण चोद्दसरादिंदियाणि।" –षट्खं० अं० सू० ३६०, ३६१। ३ "पमत्तअप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण पण्णारसरादिंदियाणि।" –३६४, ६५।

पुधत्तं । अबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ।

२६७. सासणे-सव्वे विगप्पा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सम्मामि० ।

२६८. अणाहारे—धुविगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं सेसाणं । णवरि देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं । तित्थयरं बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । अबंधगा णत्थि ।

एवं अंतरं समत्तं ।

बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात है ।

२६७ [1]सासादनमें सर्व विकल्प जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग हैं। इसी प्रकार सम्यङ्मिथ्यात्वमें जानना ।

२६८ अनाहारकोंमें[2]-ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमे भी जानना चाहिए। विशेष, देवगति चारके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है। अबन्धक नहीं है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

---

१ "सासणसम्मादिट्ठी- सम्मामिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।" -३७५, ७६ । २ आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमतर केवचिर कालादो होति ? णत्थि अतर, णिरंतरं । -खु० बं० सू० ६६-६८ ।

[भावाणुगम-परूवणा]

२६६. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो । ओघेण आदेसेण य ।

[भावानुगम]

२६६ भावानुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते है ।

विशेषार्थ—यहाँ नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव रूप चतुर्विध निक्षेप रूप भावोंमें-से नोआगम भाव रूप भावनिक्षेपका अधिकार है। वीरसेन स्वामीने धवलाटीकामे भावानुगमपर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "**एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो ? णोआगमभावभावेण।**"

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—"**णामादि-सेस-भावेहि चोद्दस-जीवसमासाणमणप्पभूदेहि इह पओजणा-भावा**" – चौदह जीव समासोंके लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिक्षेपोंसे यहाँपर कोई प्रयोजन नही है। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ नोआगमभाव – भावनिक्षेपसे ही प्रयोजन है ।

भावप्राभृतका ज्ञाता तथा उपयोग विशिष्ट जीव आगमभावरूप भावनिक्षेप है। नोआगमभाव – भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक तथा पारि-णामिकके भेदसे पंच प्रकार है। कर्मोदयजनित औदयिक भाव है । कर्मोंके उपशमसे उद्भूत औपशमिक भाव है। कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव क्षायिक है।[1] कर्मोदय होते हुए भी जो जीवके गुणका खण्ड (अंश) प्राप्त होता है वह क्षायोपशमिक भाव है। पूर्वोक्त चार भावोंसे व्यतिरिक्त जीव तथा अजीवगत भाव पारणामिक नाम युक्त है ।

ये पाँचों भाव जीवमे पाये जाते है । पुद्गल द्रव्योमे औदयिक तथा पारिणामिक भाव पाये जाते है – "**पोग्गलदव्वेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोण्हं चेव भावाणमुवलंभा।**" धर्म अधर्म आकाश तथा काल द्रव्योंमे पारिणामिक भाव है ।

भावका क्या स्वरूप है इसपर धवला टीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं, "**भावो णाम जीवपरिणामो तिव्व-मंद-णिज्जराभावादिरूवेण अणेयपयारो**" (जीवट्ठाण भावाणु-गम ध० टी० पृ० १८५, १८६) – भाव नाम जीवके परिणामका है। वह तीव्र, मंद, निर्जरा-भाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है।

अभव्य जीवोंके असिद्धता, धर्मास्तिकायमें गमनहेतुता, अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुता, आकाशमें अवगाहनत्व, कालमें परिणमनहेतुता आदि अनादि-निधन भाव है। भव्यमें असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम आदि अनादि-सान्त भाव हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि सादि-अनन्त भाव है। सम्यक्त्व और संयमको धारण कर पीछे आये हुए जीवके मिथ्यात्व तथा असयम आदि सादि-सान्त भाव हैं।

१ "कम्मोदए सन्ते वि ज जीवगुणक्खंडमुवलंभदि सो खओवसमिओ भावो णाम" – जी० भाव० टीका पृ० १८५ ।

२७०. तत्थ ओघेण–पंचणा० छदंसणा० मिच्छ० (?) सोलसक० (चदुसंज०) भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणपंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा। थीणगिद्धितिगं बारसकसा० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। मिच्छत्त-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा। साद-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ?

२७० ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व(?), १६ कषाय, (४ संज्वलन) भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका वर्णन आगे आया है अतः यहाँ उसका पाठ असंगत प्रतीत होता है। बारह कषायोंका वर्णन आगे किया गया है अतः सोलह कषायके स्थानमे चार संज्वलनका पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक भाव वा क्षायिकभाव है।

विशेष—इन प्रकृतियोंका अबन्ध उपशान्त कषाय अथवा क्षीणमोहमे होगा, अतएव उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिकभाव है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, १२ कषायके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है।

विशेष—इनके अबन्धकोका प्रमत्तसंयत गुणस्थान होगा। वहाँकी अपेक्षा तीन भाव कहे गये है।

मिथ्यात्वके बन्धकोमे कौन-सा भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक या पारिणामिक।

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धकोंमे पारिणामिकभाव सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है।

शंका—सासादन गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके उदयकी अपेक्षा औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यहाँ दर्शन मोहनीयकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंके उदयकी विवक्षा नहीं की गयी है।[1]

---

१ "मिच्छे खलु ओदइओ विदिए पुण पारणामिओभावो।
मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥ ११ ॥
एदे भावा णियमा दसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित णत्थि जदो अविरदअतेसु ठाणेसु ॥ १२ ॥" गो० जी०।

ओदइगो वा खइगो वा [असाद-बंधगात्ति को भावो ?] ओदइ० । [अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा] खइगो वा खयोवसमिगो वा । दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? खइगो भावो । इत्थि० णवुंस० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो । ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० पारिणामिगो भावो । पुरिसवे० बंधगात्ति ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा ।

सातावेदनीयके बन्धकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक या क्षायिक है ।

विशेष—सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्तिवाले अयोगकेवली गुणस्थानमे क्षायिकभाव है, किन्तु असाताके बन्धक किन्तु साताके अबन्धकके औदयिक भाव है, कारण साता और असाताके परस्पर प्रतिपक्षी होनेसे असाताके बन्धकालमे साताका अबन्ध होगा । इस दृष्टिसे औदयिक भावका निरूपण किया है ।

[असाता वेदनीयके बन्धकोंके कौन-सा भाव है ?] औदयिक है । [अबन्धकोंके कौन-सा भाव है ? औदयिक] या क्षायिक या क्षायोपशमिक है ।[1]

विशेष—असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमे होती है, अतएव अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है ।

दोनोंके बन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? क्षायिकभाव है ।।

विशेष—यहाँ दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिकभाव कहा है ।

स्त्रीवेद, नपुसकवेदके बन्धकोंमे कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक है । इतना विशेष है कि नपुसकवेदके अबन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

विशेष—यहाँ स्त्रीवेद, नपुसकवेदके अबन्धकोंमे औदयिक भावका निरूपण पुरुषवेदके बन्धककी अपेक्षासे किया है । नपुसकवेदके अबन्धक सासादन गुणस्थानमे होते है । वहाँ दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमका अभाव होनेसे पारिणामिक भाव कहा है ।

पुरुषवेदके बन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक, औपशमिक वा क्षायिक है ।

विशेष—पुरुषवेदके अबन्धक अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमे होगे । वहाँ चारित्र मोहनीयके उपशम अथवा क्षयमे तत्पर जीवोंकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । पुरुषवेदके अबन्धक किन्तु स्त्री-नपुसकवेदके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव होगा ।

---

१ देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु ।
सो खलु चरित्तमोह पडुच्च भणिय तहा उवरिं ॥ १३ ॥
तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरमोत्ति सिद्धे य ॥ १४ ॥

तिण्णं वेदाणं बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? खइगो वा उवसमिगो वा। इत्थि णवुंसकभंगो [अरदिसोग] चदु-आयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ अप्पसत्थवि० (अथिरादिछक्कं) उच्चागोदं (णीचागोदं) च। पुरिसभंगो हस्सरदि-देवगदि-पंचिदि० वेउव्वि० आहार० समचदु० दोआंगो० देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थविहाय० तस०४ थिरादि-छक्कं तित्थयरं [उच्चागोदं च]। पत्तेगेण साधारणेण चदुआयु-दो-अंगो० छस्संघ०२ विहाय० दोसराणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा। णवरि चदुआयु० छस्संघ० अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। दो युगल-चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर० छसंठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा। एवं ओघभंगो मणुसगदि (?) तिगं

तीनो वेदोके बन्धकोमे कौन-सा भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोके कौन-सा भाव है ? क्षायिक या औपशमिक है।

विशेष—वेदत्रयके अबन्धकके अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमे क्षायिक तथा औपशमिक भाव कहे है।

[अरति शोक] ४ आयु, देवगतिको छोडकर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थानको छोडकर शेष पॉच संस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, देवानुपूर्वीके बिना तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके(?) बन्धकोंमे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके बन्धकोंके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव है तथा अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहॉ अप्रशस्त विहायोगतिका दो बार उल्लेख आया है। प्रतीत होता है, अस्थिरादिषट्कके स्थानमे अप्रशस्तविहायोगतिका पुनः उल्लेख हो गया है। यहॉ उच्चगोत्रके स्थानमे नीचगोत्रका पाठ उचित प्रतीत होता है।

हास्य, रति, देवगति, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक तथा आहारक-अगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थंकर प्रकृति, [उच्च गोत्र] के बन्धकोंमें पुरुषवेदके समान भग है, अर्थात् बन्धकोंमे औदयिक भाव है, अबन्धकोंमें औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपमिक है। प्रत्येक तथा सामान्यसे ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरोंके बन्धकोंमें कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक भाव है। विशेष, ४ आयु, ६ सहननके अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसस्थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायिक भाव है।

पंचिंदिय-तस०२ पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालिय का० चक्खु० अचक्खु० सुक्कले० भवसिद्धि० सण्णि-अणाहारग (?) त्ति। णवरि जोगादिसु (अजोगिसु) वेदणीय बंधगा णत्थि।

२७१. आदेसेण णेरइगेसु-धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं अणंताणुबंधि०४ बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। सादासादबंधगा अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति० ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोकसा० थिरादि-तिण्णियुगलं०। मिच्छत्तं बंधगा

विशेष—गोत्रादिके अबन्धक उपशान्तकषाय या क्षीणकषाय गुणस्थानमे होंगे, वहाँ औपशमिक क्षायिक भाव कहे है।

मनुष्यत्रिक (मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनी), पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पच मनोयोगी, पच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यक, भव्यसिद्धिक, संज्ञी तथा अनाहारकोमे(?) ओघके समान भंग है। इतना विशेष हे कि (अ)योगादिकोमे वेदनीयके बन्धक नही है (?)।

विशेष—अनाहारकोका कथन आगे पृष्ठ २७८ पर आया है, अत यहाँ आहारकोका पाठ सम्यक् प्रतीत होता है। वेदनीयके अबन्धक, अयोगकेवली होते है। इस दृष्टिसे 'जोगादिसु'के स्थानपर 'अजोगी' पाठ सगत प्रतीत होता है।

२७१ आदेशसे-नारकियोमे ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धक नही है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। साता असाताके बन्धकों अबन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है।

विशेष—नरक गतिमे साताका बन्धक असाताका अबन्धक होगा, असाताका बन्धक साताका अबन्धक होगा इसलिए अन्यतरके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

दोनोंके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार चार नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलमे जानना चाहिए। मिथ्यात्वके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है।

विशेषार्थ—इस प्रसगमे धवलाटीकामे महत्त्वपूर्ण शंका-समाधान किया गया है।

शका—मिथ्यात्वके बन्धक मिथ्यादृष्टिके सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदय-क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोके उदय क्षयसे, उनके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदय रूप उपशमसे और मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यादृष्टिरूप भाव उत्पन्न होता है। अतः उसके क्षायोपशमिक भाव क्यो नहीं माना जाये ?

समाधान—सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षय अथवा सदवस्थारूप उपशम अथवा अनुदयरूप उपशमसे मिथ्यादृष्टि भाव नहीं होता। कारण, ऐसा माननेमे दोष आता है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है। ऐसा न माननेपर अनवस्था दोष आयेगा। कदाचित् यह कहा जाये कि मिथ्यात्वके

त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । इत्थि० णवुंस-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० अबंधगात्ति पारिणामियो वि । पुरिस बंधा-अबंधगा त्ति ओदइगो भावो । तिण्णि वेदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा णत्थि । एवं इत्थि-णवुंसभंगो तिरिक्खायु तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु०उज्जोव-अप्पसत्थवि०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च । पुरिसभंगो मणुसायु-मणुसगदि-समचदु०-वज्जरिसभ० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदे० तित्थय० उच्चागोदं

उत्पन्न होनेके कालमे जो भाव विद्यमान है, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते है, तो फिर ज्ञानदर्शन असंयम आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जायेगे, किन्तु ऐसा नही है, कारण इस प्रकारका व्यवहार नही पाया जाता। अतएव यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि भाव होता ह कारण इसके बिना मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति नही होती (ध० टी० भाव० पृ० २०७) इससे मिथ्यात्वके बन्धकोके औदयिक भाव कहा है ।

मिथ्यात्वके अबन्धकोके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है ।[1]

स्त्रीवेद, नपुसकवेदके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

विशेष—यहॉ उक्त वेदद्वयके अबन्धक किन्तु पुरुषवेदके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।

यहॉ इतना विशेष ह कि नपुसकवेदके अबन्धकोमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

पुरुषवेदके बन्धको अबन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ।

विशेष—नरक गतिमे आदिके चार ही गुणस्थान होते है और पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति नवे गुणस्थानमे होती है, तब पुरुषवेदके अबन्धकका भाव अन्य वेदोंके बन्धका समझना चाहिए। अन्य वेदोंका बन्ध होते हुए पुरुषवेदका बन्ध न होना यहॉ पुरुषवेदका अबन्धकपना है । इस अपेक्षासे अबन्धकके औदयिक भाव कहा है ।

तीन वेदोंके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है । अबन्धक नही है ।

तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, पॉच सस्थान, पॉच सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रमे स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेदके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धकोके औदयिक भाव हे, अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रमे पुरुषवेदके समान भग है, अर्थात् बन्धको अबन्धकोके औदयिक भाव है। शेष प्रकृ-

१ अणताणुबधीणमुदएणेव सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइयो भावो किण्ण उच्चदे ? आइल्लेसु चदुसु वि गुणट्ठाणेसु चारित्तावरणतिव्वोदएण पत्तासजमेसु दसणमोहणिबधणेसु चारित्तमोहविवक्खाभावा । अप्पिदस्स दसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण, खएण, खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदित्ति पारणामिओ भावो । –ध० टी० भा० पृ० २०७ ।

च। पत्तेगेण साधारणेण सेसाणं सव्वाणं बंधगा ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। एवं पढमाए। विदियाए याव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि खइगं णत्थि। सत्तमाए मिच्छत्त-तिरिक्खायु बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो वा। णवरि मिच्छत्त-अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो णत्थि।

तियोंके बन्धकोंमे प्रत्येक तथा साधारणसे औदयिक भाव है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार पहली पृथ्वीमे जानना। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यन्त इसी प्रकार जानना। विशेष यह है कि द्वितीय आदि पृथ्वियोमे क्षायिक भाव नहीं है।[1] [कारण क्षायिकसम्यक्त्वी जीवका प्रथम पृथ्वीपर्यन्त उत्पाद होता है।] सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व तथा तिर्यंचायुके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है। विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक भाव नहीं है, अर्थात् यहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव है।

विशेष—[2]सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा पारिणामिक भाव है, मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक है तथा अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

धवलाटीकामे नारकीके औपशमिकभावके सम्बन्धमे लिखा है, दर्शन मोहनीयके उदयाभाव लक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशम सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इससे वह औपशमिक है।

शंका—यदि उदयाभावको भी उपशम कहते है, तो देवपना भी औपशमिक होगा, क्योंकि वह देवपना नरकादि शेष तीन गतियोके उदयाभावसे उत्पन्न होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ तीनो गतियोंका[3] स्तिबुक-सक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है अर्थात् स्तिबुक सक्रमणके द्वारा अनुदय प्राप्त तीनों गतियोका सक्रमण होकर विपाक होता है। (**तिण्हं गईणं त्थिउक्कसंकमेण उदयस्सुवलभा**) अथवा देवगति नामकर्मका उदय होनेसे देवगतिको औपशमिक नहीं कहा है। (पृ०२१०)

क्षायोपशमिक भावके विषयमे यह कथन ध्यान देने योग्य है, दर्शन मोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे जो चल, मलिन तथा अगाढ सम्यक्त्व होता है, वह वेदक सम्यक्त्व है। जीवकाण्ड गोम्मटसारमें लिखा है:

"दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चल-मलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥६४९॥"

---

१ "विदियादिसु पुढवीसु खइयसम्मादिट्ठीणमुप्पत्तीए अभावा।" – जीव० भा० टी० पृ० २११।

२ "आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो। सासणसम्मा-इट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो। सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो। असजदसम्मा-इट्ठि त्ति को भावो? उवसमिओ वा खइयो वा खओवसमिओ वा भावो।" – जी० भावाणु० सूत्र १०-१४।

३ "पिंडपगईण जा उदयसगया तीए अणुदयगयाओ।
सकामिऊण वेयइ ज एसो थिबुकसकामो॥" – पच०सं० संक्रम,८०॥

—पिंड प्रकृतियोमे से किसीके उदय आनेपर अनुदय प्राप्त शेष प्रकृतियोका उस प्रकृतिमे सक्रमण होकर उदय आनेको स्तिबुक सक्रमण कहते है।

धवलाटीकामे सम्यक्त्व प्रकृतिको 'वेदगसम्मत्तफद्दय'-वेदक-सम्यक्त्व स्पर्धक कहा है। वहाँ कहा है "दर्शन मोहनीयकी अवयव स्वरूप देशघाती लक्षणवाले वेदक सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

वेदकसम्यक्त्व प्रकृतिके स्पर्धकोंको क्षय संज्ञा है, क्योंकि उसमे सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धन शक्तिका अभाव है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त क्षय तथा उपशम इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

गोम्मटसार जीवकाण्डकी संस्कृत टीकामे लिखा है-"**एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते। इदमेव क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व नाम दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्वप्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकाना सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात्**" (पृ० ५०) -इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अनुभव करनेवाले जीवके उत्पन्न होनेवाला तत्त्वार्थका श्रद्धान वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है। इसे ही क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहा है, क्योकि दर्शन मोहके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव लक्षणक्षय होनेसे तथा देशघाति स्पर्धक रूप सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर तथा उसके आगेके अनुदय अवस्थाको प्राप्त स्पर्धकोंका सदवस्था लक्षण उपशम होनेपर यह उत्पन्न होता है।

आचार्य पूज्यपाद भी क्षायोपशमिक भावके लक्षणमे देशघाति स्पर्धकोंका उदय, सर्वघातिस्पर्धकोंका उदय क्षय तथा उनका सदवस्था रूप उपशम कहते है। उन्होंने सर्वार्थसिद्धिमे लिखा है, '**सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमात् देशघातिस्पर्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति (स० सि० अ०२, सू० ५ की टीका पृ० ६३)** तत्त्वार्थराजवार्तिकमे आचार्य अकलंकदेवने सर्वार्थसिद्धिकी उपरोक्त परिभाषाको स्वीकार कर उसपर भाष्य लिखकर स्पष्टीकरण किया है। (रा० वा० पृ० ७४ सू० ५, अ० २)।

इस समस्त विवेचनको दृष्टिमें रखनेपर यह ज्ञात होता है कि धवला टीकामे क्षयोपशमकी भिन्न प्रकार व्याख्या की गयी है। वहाँ आचार्य सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको क्षय न कहकर देशघातिके स्पर्धकोंको 'क्षय' संज्ञा प्रदान करते हे तथा सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको उपशम कहते है। इस प्रकार क्षय और उपशम युक्त भावको धवला टीकामे क्षयोपशम कहा है। पूज्यपाद, अकलंकदेव आदिने देशघातिके उदयका प्रतिपादन किया है, अतः उन्होंने देशघातिकी 'क्षय' संज्ञाका समर्थन नहीं किया है। जब देशघातिके उदयसे चल, मल तथा रुचिशैथिल्य रूप[1] अगाढ दोष उत्पन्न होते है, तब देशघातिको 'क्षय' स्वीकार करनेमे कठिनता उपस्थित होती है।

क्षयोपशमके विषयमें गोम्मटसार टीकामें पं० टोडरमलजीने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है "सर्वत्र क्षयोपशमका स्वरूप ऐसा ही जानना जहाँ प्रतिपक्षी कर्मके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइये तीहि सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदयनिषेक सम्बन्धी तिनिका उदय

---

१ आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थित कम्प्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते। तद्यथा सर्वेषामर्हत्परमेष्ठिना अनन्तशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शान्तकर्मणे शान्तिक्रियायै शान्तिनाथदेव प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनशनादिक्रियायै पार्श्वनाथदेव प्रभुरित्यादिप्रकारेण रुचिशैथिल्यसम्भवात्, यथा वृद्धकरतलगतयष्टि शिथिलसबन्धतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यम्। -गो० जी० संस्कृत टीका पृ० ५१।

२७२. तिरिक्खेसु-दु(धु)विगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा पारिणामिगो भावो। वेदणी० णिरयभंगो। एवं चदुणोकसा०। थिरादितिण्णियुग० तिण्णिवेदं णिरयभंगो। अपच्चक्खाणा०४ बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खयोवसमिगो भावो। इत्थि-णवुंसभंगो

न पाइए बिना ही उदय दीये निर्जरै सोई क्षय अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक तिनिका सत्तास्वरूप उपशम तिनि दोऊनि कौ होतै क्षायोपशम हो है" (गो० जी० पृ० ३७)

इस प्रकार क्षायोपशमके विषयमें दो प्रकारसे निरूपण किया गया है।

२७२ तिर्यंचोमे-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव हैं। अबन्धक नहीं है।

विशेष—इनके अबन्धक उपशान्त कषायादि गुणस्थानवाले होंगे। तिर्यंचोंमे केवल आदिके पॉच गुणस्थान होते है, इस कारण तिर्यंचोमे ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धकोका अभाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अबन्धकोके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है। वेदनीयका नरक गतिके समान भग है, अर्थात् साता-असाताके बन्धक अबन्धकोंमे औदयिक भाव है। दोनोंके बन्धकोमे औदयिक भाव है, अबन्धक नहीं है।

चार नोकषायमें इसी प्रकार है। स्थिरादि तीन युगल, तीन वेदके बन्धको अबन्धकोंमें नरकगतिके समान भंग है। अप्रत्याख्यानावरण चारके बन्धकोके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—यहाँ देशसंयमी तिर्यंचोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। इस सम्बन्धमे धवलाकार इस प्रकार स्पष्टीकरण करते हैं – क्षयोपशमरूप सयमासयम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होनेपर उत्पन्न होते हैं। यहाँ प्रत्याख्यानावरण, सञ्ज्वलन और नोकषायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रका विनाश नहीं होता। इस कारण प्रत्याख्यानादिके उदयकी क्षय संज्ञा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उपशम सज्ञा भी है, कारण वे चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करतीं। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न हुए भावको क्षायोपशमिक भाव कहा है[1]।

कोई आचार्य कहते है – अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा चारों संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षय, उनके सदवस्थारूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण चारके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम होता है।

इस सम्बन्धमे धवलाकारका यह कथन है कि – उदयके अभावकी उपशम संज्ञा करनेसे उदयसे विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकोंको उपशम

१ "देशविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।" – गो० जीव०।

तिण्णि-आयु० तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागोदं च। पुरिसवेदभंगो देवायु-देवगदि-पंचिंदि० वेउव्विय० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वेदणीय-भंगो। णवरि चदुआयु-दोअंगोवंग० छस्संघ० दोविहा० दोसर० बंधगा-अबंधात्ति को भावो? ओदइगो भावो। णवरि छस्संघडणाणं अबंधगात्ति ओदइगादिचत्तारिभावो।

संज्ञा प्राप्त हो जाती है। जिसका वर्तमानमे क्षय नही है, किन्तु उदय विद्यमान है उसका क्षय नामकरण अयुक्त है, इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होते है। किन्तु इस बातका प्रतिपादक कोई सूत्र नही है। फलको देकर तथा निर्जराको प्राप्त होकर दूर हुए कर्म-स्कन्धोंकी 'क्षय' सज्ञा करके देशविरत गुणस्थानको क्षायोपशमिक कहना भी ठीक नही है, क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी भावोके क्षायोपशमिकत्वका प्रसग प्राप्त होगा। (ध० टी० भावानु० पृ० २०२-२०३)

तीन आयु (देवायुको छोडकर) तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्र-सस्थान बिना शेष पॉच सस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह सहनन, देवानुपूर्वी बिना तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिक ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमे स्त्रीवेद, नपुसकवेदके समान भग है। अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

देवायु, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगनि, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्च गोत्रके बन्धकोंमे पुरुषवेदके समान भग है, अर्थात् बन्धकों अबन्धकोंमे औदयिक भाव है।

विशेष—तिर्यंच गतिमे देवायु, देवगति, आदिकी बन्ध-व्युच्छित्तिवाले गुणस्थानका अभाव है, कारण यहॉ देश सयम गुण स्थान तक ही पाये जाते हैं, अतः अबन्धकोंका यह भाव है कि इन प्रकृतियोंके स्थानमे नरकायु आदिका बन्ध होता है, अतः देवायु आदिकी अबन्ध स्थितिमे नरकायु आदिके बन्धकी अपेक्षा अबन्धकोंमें औदयिक भाव कहा है।

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे वेदनीयके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव हैं, अबन्धक नहीं है। विशेष यह है कि चार आयु, दो अगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक भाव हैं। विशेष छह सहननके अबन्धकोंमे औदयिक आदि चार भाव (पारिणामिकको छोड़कर) हैं।

विशेष—शका – दो अगोपाग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, चार आयुके बन्धकोंके औदयिक भाव ठीक है, इनके अबन्धकोंमें औदयिक कैसे कहा? दूसरी बात यह है कि जब छह संहननके अबन्धकोंमे औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे गये, तब यहॉ भी विहायोगति आदिके अबन्धकोंमें केवल औदयिक भाव क्यों कहा?

समाधान—तिर्यंच गतिमें छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर तथा दो अंगोपांगके अबन्धक एकेन्द्रियत्वके साथ हैं, कारण एकेन्द्रियमें संहनन, विहायोगति, स्वर तथा अंगोपांग-

२७३. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि जोणिणीसु खइगं णत्थि। सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वे० (?) खयोवसम-पारिणामियं णत्थि। विगप्पा ओदइ०।

२७४. एवं अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति।

२७५. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकाय० आहार० आहारमि० मदि०

का उदय नहीं है, इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। एकेन्द्रियके सिवाय देव और नारकी भी सहननरहित पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा सम्यक्त्वत्रयकी दृष्टिसे औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव भी अबन्धकोंमे कहे है।

२७३ पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमे इसी प्रकार जानना। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यंचोंमे क्षायिक भाव नही है।

विशेष—तिर्यंच-स्त्रीमे क्षायिक भावके अभावका कारण यह है कि दर्शन मोहनीयका क्षपण मनुष्य गतिमे ही होता है और बद्धायुष्क क्षायिकसम्यक्त्वी जीवकी स्त्रीवेदी रूपसे उत्पत्ति नहीं होती। अतः स्त्रीतिर्यंचमे क्षायिक भाव नही पाया जाता।[1] (ध० टी० भावा० पृ० २१३)

सर्व अपर्याप्त त्रसोंमे [औपशमिक, क्षायिक] क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक नहीं है। [सर्व] विकल्पोंमें औदयिक भाव है।

२७४ अनुदिश स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोमे सभी सम्यग्दृष्टि होते है। उनके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव भी है।[2]

इसपर धवलाकार इन शब्दोंमे प्रकाश डालते है, "जैसे वेदक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि कारणका अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशम श्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोमे उत्पन्न होनेवाले सयतोंके उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। (जी० भावा० टीका पृ० २१६)

२७५ सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पचकाय, आहारक,[3] आहारकमिश्र,

१ खइयसम्मादिट्ठीण बद्धाउआण त्थीवेदएसु उप्पत्तीए अभावा। मणुसगइवदिरित्तसेसगईसु दसण-मोहणीयक्खवणाए अभावादो च। –ध० टी० पृ० २१३। २ अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो। –जी० भावा० सूत्र २८। ३ आहारक, आहारक मिश्रमे चार सज्वलन और सात नोकषायोके उदय प्राप्त देशघाती स्पर्धकोकी उपशम सज्ञा है, कारण पूर्णतया चारित्रके घातनेकी शक्तिका वहाँ उपशम पाया जाता है। उन्हीं ग्यारह चारित्र मोहनीयकी प्रकृतियोके सर्वघाती स्पर्धकोकी क्षय सज्ञा है, क्योकि उनका उदय भाव नष्ट हो चुका है। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न सयम क्षायोपशमिक है। पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतियोके उदयको ही क्षयोपशम सज्ञा है, कारण चारित्रके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयोपशम सज्ञा है। इस प्रकार क्षयोपशमसे उत्पन्न प्रमादयुक्त सयम क्षायोपशमिक है। –ध० टी० भावाणु० पृ० २२१।

सुद० विभंग० अब्भवसि० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० असण्णि त्ति। णवरि मदि० सुद० विभंगे मिच्छ० अबंधगात्ति को भावो ? पारिणामिगो भावो।

२७६. देवाणं णिरयोघं याव णवगेवज्जा त्ति। णवरि देवोघादो याव सोधम्मीसाणा त्ति। एइंदिय-आदाव-थावर-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा। तप्पडिपक्खाणं बंधा-अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्वी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगावधिमें मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव है ? पारिणामिक भाव है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचकाय, अभव्यसिद्धिक, असज्ञी, मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व गुणस्थान कहा है। अत इनके औदयिक भाव जानना चाहिए। मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगज्ञानमे मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान पाये जाते है। उनमे मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानवाले जीवोंके दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा परिणामिक भाव कहा गया है। सासादन गुणस्थानमे पारिणामिक भाव है, मिश्रगुणस्थानमे क्षायोपशमिक भाव कहा है। गोम्मटसार जीवकाण्डमे लिखा है, "**मिश्रगुणस्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति। कुत ? मिथ्यात्वप्रकृते सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणामुपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात्**" (संस्कृत टीका पृ० ३४)—मिश्रगुणस्थानमे क्षायोपशमिक भाव किस प्रकार होता है ? मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाति-स्पर्धकोंका उदयाभाव लक्षण क्षय होनेपर तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय होनेपर और उदयको प्राप्त न हुए तियेकोंके उपशम होनेपर यह क्षायोपशमिक भाव होता है।

आचार्य वीरसेन धवलाटीकामे इस परिभाषासे असहमति प्रकट करते हुए कहते है "तण्ण घडदे" यह परिभाषा घटित नहीं होती है। उनका कथन है, "**सम्मामिच्छत्तुदए संते सद्दहणासद्दहणप्पओ करंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ। तत्थ जो सद्दहणंसो सो सम्मत्तावयवो। तं सम्मामिच्छत्तुदओ ण विणासेदि त्ति सम्मामिच्छत्त खओवसमियं**" (जी० भा० टीका पृ० १९८) सम्यक्त्व-मिथ्यात्व कर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शबलित (मिश्रित) जीव परिणाम उत्पन्न होता है, उसमे जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नही करता है, इससे सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहाँ सासादन गुणस्थानकी दृष्टिसे दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है।

२७६ देवोंमे–नव ग्रैवेयकपर्यन्त देवोमे नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्य देवोंसे सौधर्म ईशान स्वर्ग पर्यन्त विशेष है। एकेन्द्रिय आतप स्थावरके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणमिक भाव है। इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंके

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभगज्ञानेषु मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति ॥ –स० सि० पृ० ११। एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। पृथ्वीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। असञ्ज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्।

को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधा णत्थि। भवणवासि-वाणवेंतर जोदिसिगेसु खइगं णत्थि।

२७७. ओरालिमि० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? खइगो भावो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-पारिणामियो त्ति अत्थि। सादबंधाबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा, खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा

कौन भाव है ? औदयिक है। दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है, अबन्धक नहीं है। भवनवासी, बाण व्यन्तर तथा ज्योतिषियोंमे क्षायिक भाव नही है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे यह शका समाधान दिया गया है—

शंका—भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमे क्षायिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योकि भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिषी देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोके नारकी, सर्वविकलेन्द्रिय, सर्वलब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियोंमे सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नही होती है। तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमे दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका अभाव है। इससे उक्त भवनत्रिक आदि देव देवियोंमे क्षायिक भाव नहीं बतलाया गया। (जीव० ध० टीका भावा० पृ० २१५)

२७७ औदारिक मिश्र काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है।

विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोके अबन्धक कपाट समुद्घातयुक्त सयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। मिथ्यात्वके अबन्धकामे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेषार्थ—**शंका**—यहाँ औपशमिक भाव क्यो नहीं कहा गया ?

समाधान—चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वी जीवोका मरण न होनेसे इस योगमे उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता।

शंका—उपशम श्रेणीपर चढते-उतरते हुए संयतजीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है।

---

१ ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परुविदो ? ण, चउग्गइ उवसमसम्मादिट्ठीण मरणाभावादो ओरालियमिस्सम्हि उवसमसम्मत्तस्सुवलभाभावा। उवसमसेढि चढत-ओअरत सजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरण, अत्थि त्ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा। -ध० टी० भा० पृ० २१९।

णत्थि। इत्थिणवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमियो वा। णवरि णवुंसगेसु पारिणामियो वि अत्थि। पुरिसवेदगेसु बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो?

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमे मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वीके औदारिक मिश्रकाययोग नहीं होता, कारण इनकी देवोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है। (ध० टी० भावाणु० पृ० २१९)।

साताके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है। साता-असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है, अबन्धक नहीं है।

विशेष—शंका—जब साताके बन्धकों-अबन्धकोंमे औदयिक भाव कहा, तब असाताके बन्धकों अबन्धकोंमे औदयिक भाव ही कहना था। यहाँ असाताके अबन्धकोंमे औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है?

समाधान—यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रयोगमे मिथ्यात्व, सासादन, अविरत तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते है। साताके अबन्धक अयोगकेवली ही होंगे, जिनने साताकी बन्ध व्युच्छित्ति कर ली है। औदारिक मिश्रकाययोगमे अयोगकेवली गुणस्थान न होनेसे साता असाताके युगलके अबन्धकोंका यहाँ अभाव कहा है।

साता और असाताके बन्धकोंके औदयिक भाव है। साताका बन्ध होनेपर असाताका बन्ध नही होता और असाताका बन्ध होनेपर साताका बन्ध नही होता, कारण ये परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ है। एकके बन्ध होनेपर अन्यका अबन्ध होगा। यह अबन्ध बन्धव्युच्छित्तिका द्योतक नही है। अबन्धके अनन्तर तो पुन बन्ध हो भी जाता है किन्तु जिस गुणस्थानमे बन्धव्युच्छित्ति हुई है उसमे आनेके पूर्व उस प्रकृतिका बन्ध नहीं होगा। साताकी बन्धव्युच्छित्ति जब सयोगकेवली गुणस्थानमे होती है तब साताके अबन्धका अर्थ है असाताका बन्ध। असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमे होती है उसके पूर्व असाताके अबन्धका तात्पर्य साताके बन्धका होगा। प्रमत्त सयतके आगे असाताके अबन्धका भाव उसकी बन्धव्युच्छित्तिका होगा। इस कारण औदारिक मिश्रयोगकी अपेक्षा साताके अबन्धक तथा बन्धकके औदयिक भाव कहा है। कारण यहाँ साताके अबन्धकके असाताका बन्ध होगा। असाता वेदनीयकी बात दूसरी है, वहाँ असाताके बन्धकके औदयिक भाव होगा और असाताके अबन्धक अर्थात् साताके बन्धक सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव होगा। असाताके अबन्धकके अप्रमत्त आदि गुणस्थान इस योगमे नहीं होगे, इसलिए यहाँ औदयिक भावके साथ क्षायिक भाव भी असाताके अबन्धकके साथ जोडा गया है। साताका अबन्धक इस योगमे चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जायेगा, उसके असाताका बन्ध होगा। इससे बन्धक अबन्धकके औदयिक भाव कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके बन्धक कौन भाव है? औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि नपुंसक वेदके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इस योगमे उपशम सम्यक्त्वका अभाव होनेसे औपशमिक भाव नहीं कहा।

पुरुष वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं?

ओदइगो वा खइगो वा। तिण्णं वेदाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। इत्थि-णवुंस० भंगो दोआयु-दोगदि-चदु-जादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संघ० दोआणु० आदावुज्जो० अप्प-सत्थवि० थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च। पुरिसवेदभंगो चदुणोक० देवगदि-पंचिंदि० वेउव्वि० समचदु० वेउव्वि० अंगो देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियुगलं सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि। दो आयुबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो वा। एवं दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० किंचि विसेसो जाणिदूण णेदव्वं। सेसाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। तित्थयरं बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा।

औदयिक वा क्षायिक भाव है।

विशेष—पुरुष वेदके अबन्धक किन्तु स्त्री-नपुंसक वेदके बन्धकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। पुरुष वेदकी बन्धव्युच्छित्तियुक्त गुणस्थान इस योगमें सयोगकेवलीका होगा उस अपेक्षासे क्षायिक भाव कहा है।

तीनों वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं? क्षायिक भाव है।

विशेष—औदारिकमिश्रकाययोगमे तीनो वेदोंके अबन्धक सयोगी जिन होंगे, इस कारण उपशम भाव न कहकर, क्षायिक भाव ही कहा है।

दो आयु, दो गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि चार, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके बन्धकोंका स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके समान जानना चाहिए। हास्यादि चार नोकषाय, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रमे पुरुषवेदके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे जानना चाहिए। दो आयुके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं।

विशेष—इस योगमें उपशम सम्यक्त्व न होनेसे तथा उपशम चारित्रका भी सद्भाव न होनेके कारण औपशमिक भाव नहीं कहा है।

इस प्रकार दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके विषयमें किंचित् विशेषताको जानकर भंग निकाल लेना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक वा क्षायिक भाव है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध न करनेवाले मिथ्यात्वीके दर्शन मोहनीयके उदयकी

२७८. वेउव्वियका०—देवोघं। वेउव्वि० मि० तं चेव। णवरि आयु-णत्थि।

२७९. कम्मइगका० धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? खइगो भावो। थीणगिद्धितियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। मिच्छ०[अ]बंध० पारिणामियो भावो। साद-वंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असादबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। इत्थि-णवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा।

अपेक्षा औदयिक भाव कहा जा सकता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी बन्ध व्युच्छित्तियुक्त इस योगमे सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

२७८ वैक्रियिक काययोगियोंमे देवोंके ओघवत् जानना चाहिए।

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोमे देवोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका बन्ध नहीं पाया जाता है।

विशेष—इस योगमे मिथ्यात्वीके औदयिक, सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक तथा असयत सम्यक्त्वीके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव है।

२७९ कार्माण काययोगियोंमे ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अबन्धक अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे है। सयोगकेवलीकी भी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

मिथ्यात्वके बन्धकों(?)के कौन भाव हैं? पारिणामिक भी है।

विशेष—यहाँ बन्धकोंके स्थानपर अबन्धक पाठ ठीक बैठता है, कारण पारिणामिक भाव सासादन गुणस्थानमे पाया जाता है जहाँ मिथ्यात्वका अबन्ध है।

साताके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है। साता-असाता दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है, अबन्धक नहीं है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। नपुंसकवेदके

---

१ "कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघ। कुदो? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाण पारणामिएण, कम्मइयकायजोगि-असजदसम्मादिट्ठीण ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि सजोगिकेवलीण खइएण भावेण ओघम्मि गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलभा।" –जी० भा० सू० ४० पृ० २२१।

णवुंस० पारिणामियो भावो। पुरिस० बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा। तिण्णं बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो। एवं इत्थिभंगो तिरिक्खग० चदुसंठा० चदुसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च। णवुंसकभंगो चदुजादि-हुंडसंठा० असंपत्तसे० आदाव-थावरादि०४। पुरिसभंगो चदुणोक० दोगदि० पंचिंदि० दोसरीर-समचदु० दोअंगो० वज्जरिसभ० दो-आणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णि युगलं सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि ओरालियमिस्स-भंगो।

२८०. इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तिय-मिच्छत्त-बारसक० बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा

अबन्धकोंमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इसके अबन्धक सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा है।

पुरुष वेदके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक है।

विशेष—इस योगमे पुरुषवेदके बन्धका अभाव प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातगत सयोगकेवलीके होगा, यहाँ मोह-क्षयजनित क्षायिक भाव है। अन्य वेदद्वयके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा है।

तीनों वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक है।

विशेष—यहाँ सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

तिर्यंचगति, चार सस्थान, चार सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रका स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए। चार जाति, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप तथा स्थावरादि चारमे नपुंसक-वेदके समान भंग जानना चाहिए। चार नोकषाय, दो गति, पंचेन्द्रिय जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अगोपाग, वज्रवृषभसंहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्च गोत्रके बन्धकोंमे पुरुषवेदके समान भंग जानना चाहिए। प्रत्येक और सामान्यसे औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए।

२८०. स्त्रीवेदमे[1]—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषायके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक

---

१ वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि सन्ति। –स० सि० पृ० ११।

खयोवसमिगो वा। मिच्छत्त० पारिणामि०। णिद्दापचला० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा। साद-बंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। तिण्णं वेदाणं पत्तेगेण ओघं। णवरि पुरिस० अबंधगा त्ति ओदइगो भावो। साधारणेण बंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। हस्सादि०४ पत्तेगेण ओघभंगो। साधारणेण बंधगा

तथा क्षायोपशमिक भाव है। विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी है। निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक है।

साताके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है।

विशेष—यहाँ साताके अबन्धकोंके असाताके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

असाताके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक है। दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। तीनों वेदोंका पृथक्-पृथक् रूपसे ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि पुरुषवेदके अबन्धकोंमे औदयिक भाव है। सामान्यसे इनके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंका अभाव है। हास्यादि चारका प्रत्येकसे ओघवत् भंग जानना चाहिए। सामान्यसे हास्यादिके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है। इस प्रकार शेष प्रकृतियोंमे ओघके समान भंग जानना चाहिए।

विशेष—हास्यादिकके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे होंगे। उनके उपशम तथा क्षायिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे है।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें कर्मोंका उपशम न होनेसे औपशमिक भाव कैसे कहा जायेगा ?

समाधान—उपशम शक्तिसे समन्वित अनिवृत्तिकरणके औपशमिक भाव माननेमे आपत्ति नहीं है। इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला तथा उपशम होने योग्य कर्मोंके उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है। अथवा, भविष्यमे उत्पन्न होनेवाले उपशम भावमे भूतकालका उपचार करनेसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे औपशमिक भाव बन जाता है। जैसे, सब प्रकारके असंयममे प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थंकरके 'तीर्थंकर' यह संज्ञाकरण बन जाता है।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका क्षय न होनेसे क्षायिक भावका कथन उचित नहीं है।

समाधान—मोहनीयका एकदेश क्षय करनेवाले बादरसाम्पराय सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है। कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जानेसे अपूर्वकरण गुणस्थानमें भी क्षायिकभाव माना है। अथवा, उपचारसे अपूर्वकरण संयतके

ओदइ० । अबंध० उवसमि० खइगो० । एवं सव्वाणं ओघं । णवरि जस० अज्जस० दोगोदं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो ।

२८१. एवं पुरिस० णवुंस कोधादि०४ । णवरि कोधे पुरिस० हस्सभंगो । माणे तिण्णं संजलणा० । मायाए दोण्णं संजलणा० । लोभे लोभ-संजल० धुविगाणं भंगो । सेस-संजलणं णिद्दाभंगो ।

२८२. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जस० उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । सादबंध० को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो ।

२८३ अकसाइगेसु–साद-बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधगा० खइगो भावो ।

क्षायिक भाव मानना चाहिए, इसमे अतिप्रसगकी आशा नही करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसगवश अतिप्रसग दोपका परिहार होता है । (ध० टी० भावाणु० पृ० २०५–६)

इतना विशेप है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तथा दो गोत्रोका प्रत्येक सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है ।

२८१ पुरुषवेद, नपुसकवेद तथा क्रोध आदि चार कपायोमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।[1] विशेष यह है कि क्रोधमे, पुरुपवेदके बन्धकोका हास्यके समान भग है । मानमे, तीन सज्वलन, मायामे, दो सज्वलन तथा लोभमे लोभ सज्वलनके बन्धकोका ध्रुव प्रकृतिके समान भग है, अर्थात् बन्धकोंके औदयिक और अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । सज्वलन कपायमे बन्ध होनेवाली शेप प्रकृतियोके बन्धकोका निद्राके समान भंग है । अर्थात् बन्धकोके औदयिक, अबन्धकोके औपशमिक तथा क्षायिक है ।

२८२ अपगत वेदमे – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक है । इनके बन्धकोके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक है ।

साता वेदनीयके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अबन्धकोके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

विशेषार्थ—अपगत वेदियोमे द्रव्य वेदका नाश नहीं होता । यहॉ भाव वेदका विनाश होता है । धवला टीकामे लिखा है, मोहनीयके द्रव्य कर्म स्कन्धको अथवा मोहनीय कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते है । उनमे वेदजनित जीवके परिणामका अथवा परिणामके साथ मोहकर्म-स्कन्धका अभाव होनेसे जीव अपगत वेदी होता है । (ध० टी० भा० पृ० २२२)

अपगतवेदमें साताके अबन्धक अयोगकेवली होगे, उनके क्षायिक भाव है ।

२८३ अकषायियोमे – साताके बन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

१ 'क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि सन्ति । लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि ।" –स० सि० पृ० ११ ।

२८४. एवं केवलणा० यथाखाद० केवल-दंसणा० ।

२८५. आभि० सुद० ओधि० मणपज्जव० संजद० ओधि० सम्मादि० खइग० ओघं । णवरि मिच्छ-संयुत्ताओ वज्ज० ।

२८६. सामाइ० छेदो०–पंचणा० चदुदंस० लोभसंजल० उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधा णत्थि । सेसं मणपज्जव-भंगो । परिहारे–देवायु-बंध० ओदइगो भावो । अबंध० ओदइ० खयोवसमिगो वा । एवं असादादिछ० । सेसं ओदइ० भावो । सुहुमसं०–संजदासंजद सव्वाणं बंध० ओदइ० ।

विशेष—शंका – अकषाय मार्गणा नहीं बन सकती, कारण जीवका जैसे ज्ञानदर्शन गुण है, उसी प्रकार कषाय नामका भी गुण है । गुणके विनाश माननेपर गुणीका भी विनाश होगा । इस प्रकार अकषायमार्गणा माननेपर जीवका अभाव हो जायगा ।

समाधान—ज्ञानदर्शनके समान कषाय नहीं है, अतएव कषाय जीवका लक्षण नहीं हो सकता । कर्मजनित कषाय भावको, जीवका लक्षण या गुण मानना अयुक्त है । कषायोंका कर्मोंसे उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है, कारण कषायकी वृद्धि होनेपर जीवके ज्ञानकी हानि अन्य प्रकारसे नहीं बन सकती, इसलिए कषायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा नहीं देखा जाता । (ध० टी० भावा० ५, पृ० २२३)

२८४ केवलज्ञान, यथाख्यातसयम, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

२८५ आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, सयम, अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टिके ओघवत् भाव जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ मिथ्यात्वसयुक्त प्रकृतियोंको नहीं लेना चाहिए।

२८६. सामायिक छेदोपस्थापना सयममे–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ सज्वलन, उच्च गोत्र, तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धक नही है । शेष प्रकृतियोंके बन्धको-अबन्धकोंमे मनःपर्ययज्ञानके समान भग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यह सयम छठेसे नवे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है, इससे इसमे ज्ञानावरणादिके अबन्धकोंका अभाव कहा है । उनके अबन्धक उपशान्तकषायादि होते है।

परिहारविशुद्धि संयममे – देवायुके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

विशेष—परिहारविशुद्धि संयम प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानमे पाया जाता है । वहाँ देवायुका बन्ध न करनेवाले जीवोंके चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। अन्य प्रकृतियोंके बन्धकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव है ।

इसी प्रकार असाता, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, शोक तथा अरतिमें जानना चाहिए । शेषमे औदयिक भाव है । सूक्ष्मसाम्पराय तथा सयमासयममे – सब प्रकृतियोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है ।

---

१ "यथाख्यातविहारशुद्धिसयता उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ता ।" २ "आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असयतसम्यग्दृष्टयादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । मन पर्ययज्ञाने प्रमत्तसयतादय क्षीणकषायान्ता सन्ति । सयता प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ता । क्षायिकसम्यक्त्वे असयतसम्यग्दृष्टयादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति ।"–स० सि० पृ० १२ । ३ "तेज पद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्टयादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि ।" –स० सि० पृ० १२ ।

२८७. असंजद० तिण्णि ले०–तिरिक्खोघं। णवरि अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा णत्थि। तित्थय० बंधगा अत्थि।

२८८. तेऊए–पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० पंचंत० बंधगा०, ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ अणंताणुबंधि०४ बंधगा० ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति उवसमि० खइ० खयोवस०। मिच्छत्त० ओघं। साद० बंधा-अबंधगा त्ति ओदइगो भावो। असाद० बंध० ओदइगो भावो। अबंध० ओदइ० खयोवसमिगो वा। दोण्णं बंधा० ओदइगो भावो। अबंधा णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णियुगल-इत्थि-णवुंस० बंधगा ओदइगो भावो। अबंधगा ओदइ० उवसमि० खइगो० खयोवस०। णवुंस० पारिणामि०। पुरिसवे० बंधा अबं० ओदइगो भावो। तिण्णि बंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। तिरिक्खायुबंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा ओदइ० उवस० खइ०

---

२८७ असयतो तथा कृष्णादि तीन लेश्यावालोमे – तिर्यचोके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक नहीं है, किन्तु यहाँ तीर्थंकरके बन्धक है।

विशेष—[1]अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसयमी होते है उनका यहाँ अभाव है, कारण अशुभ-त्रिक लेश्या असंयतोमे ही होती है।

२८८ तेजोलेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—[2]तेजोलेश्या अप्रमत्त सयतपर्यन्त पायी जाती है, अतः यहाँ ज्ञानावरणादिके अबन्धक नही पाये जाते है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक हे। मिथ्यात्वमे ओघके समान है। साता वेदनीयके बन्धको अबन्धकोंमे औदयिक भाव है? असाताके बन्धकोंमे औदयिक भाव है। अबन्धकोंमे कौन भाव है? औदयिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—असाताकी बन्धव्युच्छित्तियुक्त अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है। असाताके अबन्धक किन्तु साताके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

साता-असाता दोनोके बन्धकोके औदयिक भाव है। अबन्धक नहीं है। इस प्रकार ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलमे जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुसकवेदके बन्धकोके औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। विशेष यह है कि नपुंसकवेदके अबन्धकोंमे पारिणामिक भाव भी है।

पुरुषवेदके बन्धकों अबन्धकोके कौन भाव है? औदयिक भाव है। तीनों वेदोके बन्धकोमे औदयिक भाव है। अबन्धक नहीं है। तिर्यचायुके बन्धकोंमे औदयिक भाव है।

---

१ "परिहारविशुद्धिसयताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च।" –स० सि० १२। २ "कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति।

खयोवस० । मणुस-देवायु बंधा० ओदइ० । अबंधगा ओदइ० खयोव० । तिण्णिआयु० बंधा० ओदइ० । अबंध० ओदइ० खयोव० । इत्थि-णवुंसग-भंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० थावरदूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च । मणुसगदि-ओरालि० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० बंध० ओदइगो भावो । अबं० ओदइ० खयोवसमिगो वा । देवगदि०४ पंचिंदि० आहारदुग-समचदु० पसत्थवि० तस० सुभग-सुस्सर-आदे० तित्थय० बंध० अबं० ओदइगो भावो । तिण्णं गदीणं बंध० ओदइ० । अबंधगा णत्थि । एदेण बीजपदेण णेदव्वं ।

२८९. एवं पम्माए, एइंदिय० आदाव थावरं वज्ज ।

२९०. वेदगे–धुविगाणं बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधा णत्थि । सेसाणं तेउ-भंगो ।

अबन्धकोंमे औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं ।

विशेष—अन्य आयुबन्धकी अपेक्षा औदयिक भाव है तथा तिर्यंचायुके अबन्धक अविरतसम्यक्त्वीके सम्यक्त्वत्रयवालोंकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है ।

मनुष्यायु-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक, क्षायोपशमिक भाव है । तिर्यंच-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।

विशेष—तेजोलेश्यामे नरकायुका बन्ध नहीं होनेसे उसका ग्रहण नहीं किया है ।

आयुत्रयके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक तथा क्षायोपशमिक है ।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमे स्त्रीवेद, नपुंसक-वेदके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बन्धकोंके औदयिक है । अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है ।

मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन तथा मनुष्यानु-पूर्वीके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक वा क्षायोपशमिक भाव है ।

देवगति ४, पचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा तीर्थंकरके बन्धको अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । तीन गतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धक नहीं है । इसी बीजपदके द्वारा अन्य प्रकृतियोंका वर्णन जानना चाहिए ।

२८९ पद्मलेश्यामे – इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष[1] यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थावर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

२९० वेदकसम्यक्त्वमे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धक नहीं है ।

---

१ "मिच्छस्सतिमणवय वार न हि तेउपम्मेसु ।" –गो० क० गा० १२० ।

२९१. उवसम०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ पंचिंदि० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयर० उच्चागोदं पंचंत० बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंध० उवसमियो भावो। साद-बंधा-अबंध० ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइ०। अबंधगा त्ति०-ओदइग० उवम० खयोवस०। दोण्णं बंधगा० ओदइ०। अबंधा णत्थि। अट्ठकसा० बंध० ओदइगो भावो। अबंध० उवस० खयोवसमिगो वा। हस्सरदि० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंध० ओदइगो वा उवसमिगो वा। अरदिसोगं बंधगा त्ति ओदइ०। अबंधगा० ओदइ० उवस० खयोव०। दोण्णं बंधगा त्ति

विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक [1]उपशान्तकषायी होते हैं। इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक नहीं कहे हैं।

शेष प्रकृतियोंमें तेजोलेश्याके समान भंग है।

२९१ उपशम सम्यक्त्वमें[2] – ५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक रहित ६ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, पचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र तथा पाँच अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औपशमिक भाव है। साता वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। असाता वेदनीयके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है।

साता असाताके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। आठ कषायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायोपशमिक है।

हास्य रतिके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा औपशमिक है। अरति-शोकके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है।

विशेष—अरति-शोकके अबन्धक किन्तु हास्य-रतिके बन्धककी दृष्टिसे औदयिक भाव है। अरति, शोककी बन्ध व्युच्छित्ति प्रमत्तसयतोके होती है। अतएव अरति, शोकके, अबन्धक अप्रमत्त सयतोकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

हास्य-रति, अरति-शोक इन दोनों युगलोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है।

विशेष—इन चारोंके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती होंगे, वहाँ चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

---

१ "क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि।" –स० सि० पृ० १२।
२ "औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि।" –पृ० १२।

ओदइ०। अबंध० उवसमिगो भावो। एवं दोगदि-दोआणु० दोसरीर-दोअंगोवंग-आहारदुग-थिरादि-तिण्णियुगलं।

२६२. अणाहारे—कम्मइगभंगो। णवरि साद० ओघं। साधारणेण वि ओघं। मिच्छत्त-संजुत्ताओ सोलस-पगदीओ ओघाओ। सव्वत्थ याव अणाहारग त्ति बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो।

एव भावं समत्तं।

इस प्रकार मनुष्य-देव गति, दो आनुपूर्वी, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, २ अंगोपाग, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलोके बन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है।

२९२ अनाहारकमे—कार्माण-काययोगके समान भग है[1]। विशेष यह है कि यहाँ साता वेदनीयका ओघवत् भग जानना चाहिए। इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत् जानना चाहिए। मिथ्यात्व सयुक्त[2] १६ प्रकृतियोका ओघवत् भग है। अनाहारकपर्यन्त सर्वत्र बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है।

विशेषार्थ—अनाहारकोमे मिथ्यात्व गुणस्थानकी अपेक्षा औदयिकभाव है। सासादनकी अपेक्षा पारिणामिक है। चतुर्थ गुणस्थानकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपमिक है। समुद्घातगत सयोगी तथा अयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

---

१ "मिच्छत्तहुडसंढा सपत्तेयक्खथावरादाव। सुहुमतिय वियलिंदी णिरयदुणिरयायुग मिच्छे॥" –गो० क० गा० ९५। २ "अणाहाराण कम्मइयभंगो। णवरि विसेसो अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो। –जी० भावा० सूत्र० ९२, ९३। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगत सयोगकेवल्ययोगकेवली च॥" –स० सि० सू० ८, अ० १, पृ० १२।

[अप्पाबहुगपरूवणा]

२९३. अप्पाबहुगं दुविधं, जीव-अप्पाबहुगं चेव, अद्धा-अप्पाबहुगं चेव। तत्थ जीव-अप्पाबहुगं दुविधं, सत्थाणं परत्थाणं च। सत्थाण-जीवअप्पाबहुगे दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा पंचणाणावरणं अबंधगा जीवा, [बंधगा] अणंतगुणा। सव्वत्थोवा चदुदंसणावरणाणं अबंधगा जीवा। णिद्दापचलाणं अबंधगा

[अल्पबहुत्व]

२९३. अल्पबहुत्वके दो भेद है। एक जीव अल्पबहुत्व, दूसरा काल अल्पबहुत्व। जीव अल्पबहुत्व भी स्वस्थान जीव अल्पबहुत्व, और परस्थान जीव अल्पबहुत्वके भेदसे दो प्रकार है।

विशेष—अल्पता, बहुलताका वर्णन करनेवाला अनुगम अल्पबहुत्वानुगम है। ओघ-वर्णनमे अभेद दृष्टिको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन लिया जाता है। आदेश वर्णनमें भेदयुक्त दृष्टिको ग्रहण करनेवाले पर्यायार्थिक नयका आश्रय लिया गया है।[1]

यह अल्पबहुत्व नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भावके भेदसे चार प्रकारका है। द्रव्य अल्पबहुत्व आगम नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। जो अल्पबहुत्वविषयक प्राभृतको जाननेवाला है, परन्तु वर्तमानमे उसके उपयोगसे रहित है, उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व कहते है। नोआगम द्रव्य अल्पबहुत्व ज्ञायक शरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। इसमे तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व सचित्त अचित्त और मिश्रके भेदत्रय युक्त है। इनमें जीव द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व सचित्त है—"**जीवदव्वप्पाबहुअं सचित्तं**"। शेष द्रव्य विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है। दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है।

प्रश्न—"**एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं**"—इन अल्पबहुत्वोमे-से प्रकृतमें किससे प्रयोजन है?

उत्तर—'**सचित्तदव्वप्पाबहुएण पयदं**'—यहाँ सचित्त द्रव्य अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है।

इस अल्पबहुत्व प्ररूपणाका सबके अन्तमें निरूपण किया गया है, क्योंकि वह पूर्वोक्त सभी अनुपयोग द्वारोंसे सम्बद्ध है।[2]

स्वस्थान जीव अल्पबहुत्वमें ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश किया जाता है।

ओघसे—५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सबसे कम है। [बन्धक] जीव उनसे अनन्तगुणे हैं।

चार दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे कम हैं। निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव

---

१ "अप्प च बहुअं च अप्पाबहुआणि। तेसिमणुगमो अप्पाबहुआणुगमो। तेण अप्पाबहुआणुगमेण णिद्देसो दुविहो होदि। ओघो आदेसो त्ति। संगहिदवयणकलावो दव्वट्ठियणिबंधणो ओघो णाम। असंगहिदवयणकलाओ पुव्विल्लत्थावयवणिबंधो पज्जवट्ठियणिबंधो आदेसो णाम।" –ध० टी० अप्पाबहु० पृ० २४३। अल्पबहुत्वमन्योन्यापेक्षया विशेषप्रतिपत्ति –स० सि० पृ० १०। २ एदेसिं पच्छा अप्पाबहुगाणुगमो परूविदो, सव्वाणिओगद्दारेसु पडिबद्धत्तादो –खु० बं० सामित्ताणुगम टीका पृ० २७।

जीवा विसेसाहिया। थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा अणंतगुणा। णिद्दापचलाबंधगा जीवा विसेसाहिया। चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा सादासादाणं दोण्णं पगदीणं अबंधगा जीवा। सादबंधगा जीवा अणंतगुणा। असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया।

२६४. सव्वत्थोवा लोभसंजलण-अबंधगा जीवा। माय-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। माण-संजलणअबंधगा जीवा विसेसाहिया। कोधसंजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणावर०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया, बंधगा जीवा अणंतगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। कोधसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। माणसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। मायसंजलण-बंधगा जीवा विसे०। लोभसंजलण-बंधगा जीवा विसे०।

२६५. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणं अबंधगा जीवा। पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा

इनसे विशेष अधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे हे। निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। चार दर्शनावरणके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक है।

साता असाता दोनों प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे कम अर्थात् स्तोक हैं। साताके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। असाताके बन्धक जीव सख्यातगुणित है। दोनोंके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक है।

विशेषार्थ—साता असाताके अबन्धक अयोगकेवली है। उनकी संख्या ५९८ है। गोम्मटसार जीव काण्डमे लिखा है—प्रमत्त गुणस्थानवाले ५९३९८२०६ है, अप्रमत्त गुणस्थानवाले २९६९९१०३ है, उपशम श्रेणीवाले चार गुणस्थानवर्ती ११९६, क्षपक श्रेणीवाले चारों गुणस्थानवर्ती २३९२ है, सयोगीजिन ८९८५०२ है। इनको जोड़नेपर ८९९९९३९९ संख्या होती है। तीन घाटि नव कोटि प्रमाण समस्त सकल सयमियोंकी सख्यामे-से उक्त प्रमाण घटानेपर ५९८ अयोगीजिन कहे गये है। (गो० जी० स० टीका पृ० १०८५)

२६४ सबसे स्तोक लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव है। माया संज्वलनके अबन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हे। मान सज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। माया संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२६५ नव नोकषायोके अबन्धक जीव सर्वसे स्तोक अर्थात् अल्प हैं। पुरुषवेदके

अणंतगुणा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे०।

२९६. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा सखेज्जगुणा।

२९७. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीण अबंधगा जीवा अणंतगुणा। मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीण बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा। पंचिंदिय०-बंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बीइंदिय बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पंचण्हं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा। ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं। सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा जीवा। वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंत-

---

बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव इनसे सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नपुसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

२९६ सर्वस्तोक मनुष्यायुके बन्धक जीव है। नरकायुके बन्धक इनसे असख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है।

२९७. देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम है। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। चारों गतियोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। चारो गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पॉच जातियोंके अबन्धक जीव सबसे अल्प है। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पॉचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। आहारक शरीरके बन्धक सबसे स्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणे हैं। पॉचो शरीरोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। तैजस-कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आहारक अगोपांगके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक

गुणा । तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा वज्जरिसभसंघडणं बंधगा जीवा । वज्जणारायाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अद्धणारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । खीलिय० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असंपत्तसेवट्ट० बंधगा. जीवा संखेज्जगुणा । छस्संघडण-बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा वण्ण०४ णिमिण-अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा, अणंतगुणा । यथागदि तथाआणुपुव्वि । सव्वत्थोवा अगुरु० उपघा० अबंधगा जीवा । परघादुस्सा० बंधगा जीवा अणंतगुणा । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अगुरु० उपघा० बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा आदाबुज्जो० बंधगा जीवा, अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा पसत्थविहाय० सुस्सर० बंधगा जीवा । अप्पसत्थविहाय० दुस्सर० बंधगा. जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा तसथावर-अबंधगा जीवा । तस० बंधगा जीवा अणंतगुणा । थावरबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । एवं सेसाणं जुगलाणं गोदंतियाणं । सव्वत्थोवा तित्थयर-बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । सव्वत्थोवा पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा ।

जीव असंख्यातगुणे है । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । तीनों अंगोपांगोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव सख्यातगुणे है । वज्रवृषभसंहननके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । वज्रनाराचसंहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । नाराचसंहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । अर्धनाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । कीलित संहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। असम्प्राप्तासृपाटिका संहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। छह संहननके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। वर्णचतुष्क तथा निर्माणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । गतिके समान आनुपूर्वीका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । आतप, उद्योतके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । प्रशस्त विहायोगति, सुस्वरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है । त्रस-स्थावरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। त्रसके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । स्थावरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार गोत्र कर्म है अन्तमे जिनके-ऐसे शेष युगलोका क्रम जानना चाहिए।

विशेष—बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय-सदृश नामकर्मको शेष युगल प्रकृतियोका अल्पबहुत्व त्रस स्थावरके समान जानना चाहिए। गोत्र कर्मका भी ऐसा ही है।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। ५ अन्तरायोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

२९८. आदेसेण—गदियाणुवादेण णिरयगदि-णेरइएसु-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। छदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया।

२९९. सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा, असादबंधगा जीव संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीव विसेसाहिया।

३००. सव्वत्थोवा अणंताणुबं०४ अबंधगा जीवा। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। बारसकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा विसेसाहिया। णवुंसक-वेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदु० बंधगा जीवा विसे०।

३०१. सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। दोण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा णत्थि। एवं दो आणु० दो विहाय० थिरादिछ-युगलं दोगोदं च। समचदु० बंधगा जीवा सव्वत्थोवा। सेससंठाणं बंधगा जीवा

२९८ आदेशसे—गतिके अनुवादसे नरक गतिके नारकियोंमे स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। बन्धक जीव असख्यातगुणे है। छह दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेष—५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायके सर्व नारकी बन्धक है। अबन्धक नही है। इस कारण इनका अल्पबहुत्व यहाँ नहीं कहा है। उनका एक साथ निरन्तर बन्ध होता है।

२९९. साताके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। असाताके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

३०० अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव असख्यातगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषा-धिक है। १२ कषायोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्रीवेदके बन्धक संख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

३०१ मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। दोनों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार २ आनुपूर्वी, २ विहायो-गति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंमे जानना चाहिए।

समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेष संस्थानोंके बन्धक जीव संख्यात-

संखेज्जगुणा । एवं संघड० । सव्वत्थोवा उज्जोवं बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा । सव्वत्थोवा तित्थयरं बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

३०२. एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि मज्झिमासु सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं आयुगस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा सत्तमाए पुढवीए मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-उच्चागोदाणं बंधगा जीवा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुव्वि-णीचागोदाणं बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा णत्थि । सव्वत्थोवा तिरिक्खायुबंधगा जीवा, अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।

३०३. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा । असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा णत्थि । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा । अणंताणुबं०४ अबंधगा असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण०४ (?) बंधगा जीवा विसेसा० । अट्ठकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा

गुणे है । इस प्रकार सहननमे भी जानना चाहिए ।

उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । अबन्धक जीव सख्यातगुणे है । तीर्थंकर प्रकृति-के बन्धक जीव सर्व स्तोक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है ।

३०२ इसी प्रकार सात पृथ्वियोमे जानना चाहिए । विशेष यह है कि मध्यम पृथ्वियो-मे मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । दोनों आयुओंके बन्धक जीव विशेपाधिक है । अबन्धक जीव असख्यातगुणे है ।

सातवीं पृथ्वीमे—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । दोनोंके (मनुष्यगति तिर्यंचगति आदि) बन्धक जीव विशेष अधिक है । अबन्धक नहीं है । तिर्यं-चायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । अन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

३०३ तिर्यंचोंमे—स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । बन्धक जीव अनन्त गुणे है । ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

सातावेदनीयके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक है। अबन्धक नही है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेष अधिक है । इसके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । ८ कषाय, ८ प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

विशेष—यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकके स्थानमें अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक पाठ सम्यक् प्रतीत होता है ।

संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा। णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुंच्छाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। आयु० अंगोवं० संघ० आदा० उज्जो० विहाय० संठाणं च मूलोघं। सव्वत्थोवा पंचिंदिय-बंधगा जीवा। सेस-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा देव-गदिबंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंत-गुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा वेउव्विय-बंधगा जीवा। ओरालियबंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-बंधगा जीवा विसेसा०। संठाणं णिरयभंगो। सव्वत्थोवा परघादुस्सा० बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं सादासादभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खाणं। णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असं-खेज्जगुणं कादव्वं।

३०४ पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु–दंसणावरण-मोहणीय-गोदे एसेव भंगो। सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु-बंधगा

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

आयु, अंगोपांग, संहनन, आतप, उद्योत, विहायोगति, संस्थानके बन्धकोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेष जातियोंके बन्धक जीव संख्यात-गुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। औदा-रिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

संस्थानोंके बन्धकोंमें नरकगतिके समान भंग हैं। अर्थात् समचतुरस्र संस्थानके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। परघात, उच्छ्वासके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष युगलोंके बन्धकोंमें साता-असाताका भंग जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' है वहाँ 'असंख्यातगुणा' लगाना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय-तिर्यंच पर्याप्तकोंका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है, अतः प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान उनका वर्णन होगा।

३०४ पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिमतियोंमें – दर्शनावरण, मोहनीय और गोत्रके बन्धकोंमें यही भंग जानना चाहिए।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों

जीवा असंखेज्जगुणा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा चदुरिंदिय-बंधगा (१) जीवा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा (१)। सव्वत्थोवा ओरालिय-सरीरबंधगा जीवा। वेउव्विय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तेजाकम्मइग० बंधगा जीवा विसेसा०। संठाणं संघडणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगोवंग-बंधगा जीवा। दोण्णं अंगो० अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा परघादुस्सा० अबंधगा जीवा। बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा पसत्थविहायगदि-बंधगा जीवा सुस्सर-बंधगा जीवा०। दोण्णं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अप्पसत्थ-विहायगदि-बंधगा, दुस्सरबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा थावरादि०४ बंधगा जीवा। तसादि०४ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है।

देवगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चतुरिन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हे। पचेन्द्रियके बन्धक(?)जीव सख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक होना चाहिए, । कारण "सव्वत्थोवा पंचिंदिया" – पचेन्द्रिय सर्व स्तोक है। अतः पचेन्द्रियके बन्धक सख्यातगुणे हैं, यह पाठ असम्यक् प्रतीत होता है। पचेन्द्रियकी अपेक्षा चौइन्द्रियपना विशेष सुलभ है, अतः पचेन्द्रियके बन्धक सर्व स्तोक होंगे।

औदारिक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। संस्थान और संहननके बन्धकोंमे पचेन्द्रिय तिर्यंचका भग जानना चाहिए। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। दोनों अंगोपांगके अबन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक अगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनों अगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रशस्तविहायोगति तथा सुस्वरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। दोनोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्धक और दुस्वरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्थावरादि ४ के बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। त्रसादि ४ के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

---

१. "पचण्हमिंदियाण खवोवसमलद्धीए सुट्ठु दुल्लभत्तादो। चउरिंदिया विसेसाहिया, कुदो? पचण्हमिंदियाण सामग्गीदो चदुण्हमिंदियाण सामग्गीए अइसुलभत्तादो। –खु० बं० टीका पृ० ५२४।

३०५. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु–सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगा जीवा। इत्थिवेदबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। भयदु० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा णत्थि। सव्व[त्थोवा] पंचिंदिय-बंधगा जीवा०। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदियबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगो० आदा-उज्जो० बंध० जीवा। अबंधगा जोवा संखेज्ज०। संठाण-संघडण० पर० उस्सा० दो विहा० तस-थावरादि-दसयुगलं दोगोदं च पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। एवं सव्व-अपज्जत्तगाणं तसाणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय सव्वपंचकायाणं च। णवरि वणप्फदि काय-णिगोदेसु सव्व-त्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०।

३०६ मणुसेसु–सव्वत्थोवा पंचणा० अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्ज-

---

३०५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें – पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्री-वेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक सख्यातगुणे है।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। तिर्यंचगतिके बन्धक संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक विशेषाधिक है, अबन्धक नहीं है। पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक संख्यातगुणे हैं। दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यात-गुणे है। औदारिक अगोपांग, आतप, उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है। संस्थान, सहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धकोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग जानना चाहिए।

इसी प्रकार सर्व लब्ध्यपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सर्व पंचकाय-वालोंमें है। विशेष यह है, कि वनस्पति काय-निगोदियोंमें मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक है। दोनों-के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

३०६ मनुष्योंमें – ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। बन्धक जीव असं-

गुणा। एवं अंतराइगाणं चेव। सव्वत्थोवा चदुदंस० अबंधगा जीवा। णिद्दापचला-अबंधगा जीवा विसेसा०। थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिद्दापचला-बंधगा जीवा विसेसा०। चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा सादासाद-अबंधगा जीवा। साद-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। असाद-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा लोभसंजल० अबंधगा जीवा। मायासंज० अबं० जीवा विसेसा०। माणसंज० अबं० जीवा विसेसा०। कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावरण०४ अबं० जीवा संखेज्ज०। अपच्चक्खाणाव०४ अबं० जीवा संखेज्ज०। अणंताणुबंधि०४ अबं० जीवा संखेज्जगु०। मिच्छ० अबं० जीवा विसेसा०। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा०। कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा०। लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा णवण्णं णोकसायाणं अबंधगा जीवा। पुरिस० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। सेसं तिरिक्खोघं। सव्वत्थोवा णिरयायु-बंधगा जीवा। देवायु बंधगा

ख्यातगुणे है। इसी प्रकार अन्तरायोंमे भी जानना। अर्थात् अबन्धक जीव सर्व स्तोक और बन्धक जीव असख्यातगुणे है।

चार दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। निद्रा प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। निद्रा-प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है। चार दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

साता, असाता वेदनीयके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। साताके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। माया संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है। माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है। लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

नव नोकषायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोके तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए।

जीवा संखेज्जगु० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंध० जीवा । पंचिंदि० बंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा । सेसं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा जीवा । पंचण्णां सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा छण्णं संठाणाणं अबंधगा जीवा । समचदु० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सेसं ओघं । सव्वत्थोवा आहार० अंगो० बंधगा जीवा । वेउव्वियअंगो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगु० । संघड० आदाउज्जो० दो विहा० दोसर० ओघं । सव्वत्थोव वण्ण०४ णिमिण-अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा अगु० उप०

विशेष—स्त्रीवेदके बन्धक सख्यातगुणे है । हास्यरतिके बन्धक सख्यातगुणे है । अरति शोकके बन्धक सख्यातगुणे है । नपुसकवेदके बन्धक विशेषाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक विशेषाधिक है ।

नरकायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगणे है । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव सख्यातगुणे है ।

चारों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पॉचो जातिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । शेष जातियोंके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । पॉचों शरीरोके अबन्धक जीव संख्यात-गुणे है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ६ सस्थानोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

शेष संस्थानोंमें ओघवत् जानना चाहिए । अर्थात् शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यात-गुणे है । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायो-गति, २ स्वरोंमे ओघवत् जानना चाहिए । वर्ण ४ और निर्माणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अगुरु-

अबंधगा जीवा । परघादुस्सा० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । अबंधगा जीवा संखेज्जगु०। अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं ओघ-भंगो। णवरि यं हि अणंतगुणंतं हि असंखेज्जगुणं कादव्वं । म०व्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा।

३०७. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एसेव भंगो । णवरि यं हि असंखेज्जगुणं दव्वं, तं हि संखेज्जगुणं कादव्वं । यासु सरिसताओ इमाओ पगदीओ गदिसु च जादिसु च णिरयगदि-पंचिंदिय पच्छा कादव्वा । आहारसरीरबंधगा थोवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तसादि-चदुयुगलाणं च । सव्वत्थोवा अबंधगा जीवा अप्पसत्थाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तसादि०४ बंधगा जीवा संखेज्ज० । विहाय० सरणाम तिरिक्खिणीभंगो ।

३०८ देवेसु–णिरयभंगो । एवं याव सदरसहस्सारत्ति । किंचि विसेसो देवोघादो याव ईसाण त्ति, तं पुण इमं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । इत्थिवे०

लघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष युगलोंमे ओघके समान भग जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जहॉ 'अनन्तगुणा' कहा है वहॉ 'असख्यातगुणा' कर लेना चाहिए।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अबन्धक जोव असख्यातगुणे है।

३०७ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोमे—इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। यह विशेष है कि जहॉ असख्यातगुणित द्रव्य कहा है, वहाँ संख्यातगुणित कर लेना चाहिए।

जो गति और जाति नामकी समान प्रकृतियॉ है उनमे नरक गति और पचेन्द्रिय जातिको पीछे कर लेना चाहिए।

विशेष—चारो गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है, मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है, तिर्यंच गतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है, नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है।

पच जातियोके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। पंचेन्द्रियको छोड़कर शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पंचेन्द्रियके बन्धक जीव सख्यातगुणे है।

आहारक शरीरके बन्धक स्तोक है। ५ शरीरके अबन्धक जीव सख्यातगुणे है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तैजस कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

यही क्रम त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकके युगलोंमे भी लगा लेना चाहिए।

स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन अप्रशस्त प्रकृतियोके अबन्धक जीव सबसे स्तोक है। बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। त्रसादिक चतुष्कके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। विहायोगति, स्वर नामक प्रकृतियोमे तिर्यंचिनीके समान भग जानना चाहिए।

३०८ देवोमे नारकियोके समान भग जानना चाहिए। यह बात शतार, सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जाननी चाहिए। किन्तु देवोघकी अपेक्षा ईशान स्वर्ग पर्यन्त किंचित् विशेषता है। वह यह है।

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। भयदु० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स बंधगा जीवा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। सव्वत्थोवा ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। संघड० आदा-उज्जो० दोविहाय० दोसर० ओघभंगो। एवं विसेसो णादव्वो आणद याव णवगेवज्जा त्ति। सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा मिच्छत्त-बंधगा जीवा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मिच्छत्तस्स अबंधगा जीवा विसेसा०। सेसबंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा इत्थि-बंधगा जीवा। णवुंसबंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। अरदिसो० बंध० जीवा संखेज्ज०। पुरिसवे०

विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्थावर, आतपका बन्ध होता है। सहस्रार पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध होता है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य-रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। अरति, शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नपुसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—देवोंका विकलत्रयमे उत्पाद नही होता। इससे दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चौइन्द्रिय जातिके बन्धकोका उल्लेख नहीं है। देवोंका एकेन्द्रियमे उत्पाद होनेसे एकेन्द्रिय जातिका वर्णन किया गया है।

औदारिक अगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे है। संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघवत् जानना चाहिए।

आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यन्त विशेषता निकाल लेनी चाहिए।

विशेष—आनतादि [1]स्वर्गोंमें तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है। सानत्कुमारादिमें एकेन्द्रिय, [2]स्थावर तथा आतपका बन्ध नहीं होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिकके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

मिथ्यात्वके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषा-धिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोंके बन्धक विशेषाधिक है। स्त्रीवेदके बन्धक सबसे स्तोक है। नपुंसक वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। अरति शोकके बन्धक

१ "कप्पित्थीसु ण तित्थ सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुग।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ॥" –गो० क० गा० ११२।

२ "णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबधा भवणतिए णत्थि तित्थयर॥" –गो० क० गा० ११३।

बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसायुबंध० जीवा थोवा। अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णग्गोद० बंध० जीवा थोवा । सादिय० बंध० जीवा संखेज्जगु० । खुज्ज० बंध० जीवा संखेज्ज० । वामण० बंध० जीवा संखेज्जगु० । हुंडसं० बंध० जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंध० जीवा संखेज्ज० । संघडणं संठाणभंगो । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्ज० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । तित्थयरं बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वत्थोवा हस्सरदि बंध० जीवा । अरदिसोग-बंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । आयु० तित्थय० आणदभंगो । णवरि सवट्ठे आयु० बंधगा जीवा थोवा । अबंध० जीवा संखेज्ज० ।

३०९. पंचिंदियेसु–पंचणा० सव्वत्थोवा अबंध० जीवा । बंधगा जीवा असं-

जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक विशेष अधिक है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक है। अबन्धक जीव असख्यातगुणे है।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमे एक मनुष्यायुका ही बन्ध होता है।

न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। स्वाति सस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। कुब्जकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वामनके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हुण्डक सस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। समचतुरस्र संस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे है।

संहननोंमे संस्थानके समान भंग है। अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके बन्धक जीव सबसे स्तोक है।

इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ अर्थात् सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। शेष युगलोंके विषयमे नरक गतिके समान भग हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धिमें – हास्य-रतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। अरति-शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेद तथा भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष युगलोमे नरक गतिके समान भग है।

आयु तथा तीर्थंकरके बन्धकोंमे आनतके समान भंग है। विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयुके बन्धक सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी संख्या[1] सख्यात होनेसे यहाँ 'असंख्यात'का उल्लेख नहीं किया गया है। जीवट्ठाणमे उनका प्रमाण मनुष्यनीके प्रमाणसे तिगुना कहा है, '**मणुसिणिरासीदो तिउणमेत्ता हवंति**' (ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६)।

३०९. पचेन्द्रियोंमे – ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। बन्धक जीव

१ "सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा।" – जीव० ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६।

खेज्ज० । चदुदंस० अबंध० जीवा थोवा। णिद्दापचला-अबंध० जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि०३ अबंध० जीवा असंखेज्ज० । बंध० जीवा असंखेज्ज० । णिद्दा-पचलाणं बंध० जीवा विसेसा० । चदुण्णं दंसणावरणाणं बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा लोभ-संजल० अबंधगा जीवा । माया-संज० अबंध० जीवा विसेसा० । माणसंज० अबंध० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरणी०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा (?) । [अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० ।] अणंताणुबंध०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा०[1] । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एत्तो पडिलोमं विसेसाहियं । सादा-साद-पंचजादि-संठाण-संघड० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगल० तित्थय० दोगोद० पंचंतराइगाणं मणुसोघं । मणुसायुबंधगा जीवा थोवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असं-

असंख्यातगुणे है । ४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे स्तोक है । निद्रा प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है । बन्धक जीव असख्यातगुणे है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

लोभ सज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । माया संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । मान संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक सकल सयमी हैं । उनकी संख्या तीन घाटि नव कोटि प्रमाण है, अतः 'असंखेज्जगुणा'के स्थानमे 'संखेज्जगुणा' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असख्यातगुणे है ।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमी तेरह करोड़ प्रमाण कहे गये है । उनसे अधिक तिर्यंच पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण है । (गो० जी० गा० ६२४)

अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । बन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

इससे विपरीत क्रम विशेष अधिकका शेष बन्धकोंमें लगाना चाहिए अर्थात् अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीवोमे विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए तथा क्रोध, मान, माया तथा लोभ संज्वलनमें विशेषाधिककी योजना प्रत्येकमे करनी चाहिए ।

साता, असाता, पंचजाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थंकर, दो गोत्र, ५ अन्तरायोंके बन्धकोंमे मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसयतसम्यग्दृष्टय सयतासयताश्च पल्योपमासख्येयभाग-प्रमिता । -स० सि० पृ० १३ ।

मिच्छा सावय-सासण-मिस्साऽविरदा दुवारणता य ।
पल्लासंखेज्जदिममसखगुण सखसखगुणं ॥-गो० जी० ६२४ ।

खेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुण्णं आयुगाण बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि बंध० जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा आहारस० बंध० जीवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइ-बंधगा जीवा विसेसाहिया । आहार०अंगो० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । गदिभंगो आणुपुव्वीए ।

३१०. पंचिंदिय पज्जत्तगेसु—एसेव भंगो । णवरि आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । चदुगदिअबंधगा जीवा थोवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदिबंधगा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचजादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तीइंदि० बंध० जीवा संखेज्ज० ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

४ गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीर अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग जानना चाहिए ।

३१०. पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें—ऐसे ही (पंचेन्द्रिय समान) भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि आयुके बन्धक जीवोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भंग करना चाहिए । चारों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगति-के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पाँचों जातिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

बीइंदि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) आहारस० बंध० जीवा थोवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंध० जीवा विसेसाहिया । आहारम० अंगो० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णि अंगो० अबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । [तस] थावरादि०४ अबंधगा जीवा थोवा । [थावरादि] बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तसादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । थिरादि६ युगल-दोगोदाणं अबंधगा थोवा । थिरादिछक्क-उच्चगोदाणं च बंधगा असंखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवरि दोविहा० दोसर० पचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । एवं विसेसो तसेसु पंचिंदियोघं । णवरि पज्जत्तगेसु तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णामस्स सव्व-त्थोवा चदुगदि-अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदि-बंध० जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा असंखेज्जगुणा । तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-

---

एकेन्द्रियके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है (?) ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं । पॉचो शरारोके अबन्धक जीव सख्यातगुणे ह । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

आहारक शरीरागोपागके बन्धक जीव स्तोक है । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तीनो अगोपांगके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । तीना अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । [त्रस] स्थाव-रादि चतुष्कके अबन्धक जीव स्तोक है । [स्थावरादिके] बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । त्रसादिचतुष्कके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । स्थिरादि छह युगल, २ गोत्रोंके अबन्धक जीव स्तोक है । स्थिरादिषट्क तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनकी प्रति-पक्षी प्रकृतियोके बन्धक जीव संख्यातगुणे है अर्थात् अस्थिरादि षट्क तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । विशेष यह है कि २ विहायोगति, २ स्वरोके विषयमे पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भग जानना चाहिए ।

त्रस जीवोमे—पंचेन्द्रियके ओघवत् विशेषता जाननी चाहिए । इतना विशेष है कि यहाॅ पर्याप्तकोमे तिर्यंचायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है ।

नामकर्मसम्बन्धी चार गतियोके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पॉचा जातियोके अबन्धक जीव स्तोक है । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । पचेन्द्रिय जातिके बन्धक

बंधगा जीवा संखेज्ज० । एइंदिय-बंध० जीवा संखेज्जगुणा । तस-थावरादि चदुयुगलं [अ]बंधगा जीवा थोवा । तसादि०४ बंधगा जीवा असखेज्ज० । थावरादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगु० । एदेण बीजेण णेदव्वं । पंचमण० तिण्णिवचि० छण्णं कम्माणं पंचिंदियभंगो । णवरि वेदणो० अबंधा णत्थि । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायु बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुआयु-बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्ण गदीणं अबंधगा जीवा थोवा । णिरयगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिबधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदिबधगा जीवा सखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्ण जादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदिय-बंध० जीवा असंखेज्ज० । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदि० बंधगा जीवा सखेज्ज० । पंचिंदिय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एइंदिय० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा थोवा । आहारस० बंधगा जीवा सखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तेजाक०

जाव सख्यातगुणे है । एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है ।

त्रस स्थावरादि चार युगलके [अ]बन्धक जीव स्तोक है। त्रसादि चारके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। स्थावरादि ४ के बन्धक जीव सख्यातगुणे है। इस बीजसे अर्थात् इस ढंगसे अन्य प्रकृतियोमें जानना चाहिए।

विशेष—त्रस-स्थावरादि चार युगलके समान शेष बचे स्थिर, शुभ, सुभगादि युगलों-का वर्णन जानना चाहिए।

५ मनोयोगी, ३ वचनयोगियोंमे ६ कर्मोंके बन्धक जीवोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग निकालना चाहिए। विशेष यह है कि वेदनीयके अबन्धक नहीं है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक है । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। चारों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं ।

चारों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं। नरक गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्य गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तिर्यंच-गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। चारों गतिके बन्धक जीव विशेष अधिक है।

पाँचो जातिके अबन्धक जीव स्तोक हैं। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

पाँचों शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं। आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव

बंधगा जीवा विसेसाहिया। संठाणं अंगोवं० संघड० वण्ण०४ आदा-उज्जो० दोवि-हाय० तसथावरादिछयुगल-णिमिण-तित्थयर० पंचिंदियभंगो। गदिभंगो आणुपुव्वि०। अगु० उप० अबं० जीवा थोवा। परघादुस्सा० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगलाणं अबंधगा जीवा। सुहुमादितिण्णिबंधगा जीवा असखेज्ज०। बादरादि-तिण्णि बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०।

३११. वचिजोगि-असच्चमोसवचि० तसपज्जत्तभंगो। काजोगीसु ओरालियका०-ओघभंगो, किंचि विसेसा० (सो०)। ओरालिय-मिस्से—सव्वत्थोवा छदंसणा० अबंधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा० संखेज्ज०। अबंधगा (बंधगा) जीवा अणंतगु०। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अण-ताणु०४ अबंधगा० संखेज्ज०। मिच्छ० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा अणतगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा० विसेसा०। बारसक० बंधगा० जीवा विसेसा०।

संख्यातगुणे है। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

संस्थान, अंगोपांग, सहनन, वर्ण ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस स्थावर तथा स्थिरादि ६ युगल, निर्माण और तीर्थंकरके बन्धकोंमे पचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए।

आनुपूर्वीमे गतिके समान जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव स्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हे। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। अगुरुलघु उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

बादरादि तीन युगलोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। सूक्ष्मादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। बादरादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

३११ वचनयोगी, असत्यमृषा वचनयोगी अर्थात् अनुभय वचनयोगीमें त्रस पर्याप्तक-के समान भंग हैं।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियोंमे – ओघके समान भंग है। किन्तु उसमें जो विशेषता है उसे जानना चाहिए।

औदारिक मिश्रमे – ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक (बन्धक) जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—द्वितीय बार आगत स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धकके स्थानमे बन्धकका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव असख्यातगुणे है। बन्धक जीव अनन्तगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। बारह कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

तिण्णं गदीणं [अ]बंधगा जीवा थोवा। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिण्णि गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा चदुण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरं बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा० अणंतगु०। तेजाक० बंधगा० विसेसा०। वेउव्विय अंगो० बंधगा जीवा थोवा। ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा अणंतगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। गदिभंगो आणुपुव्वि। सेसं ओघं।

३१२. वेउव्वियका० वेउव्वियमि० देवोघं।

३१३. आहार० आहारमि० सव्वट्ठभंगो।

३१४. कम्मइ० ओरालिय-मिस्स-भंगो। णवरि सव्वत्थोवा छदंसणा० अबंधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखे०। बंधगा जीवा अणंतगुणा। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। मिच्छ० अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा अणंतगु०। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। बारसक० बंध० जीवा

तीन गतिके [अ]बन्धक जीव स्तोक है। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेष—यहाँ नरकगतिका बन्ध नहीं होता है। इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया गया है।

चारों शरीरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। तैजस कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है

वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव स्तोक है। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

आनुपूर्वीमे गतिके समान भंग कहना चाहिए। शेष प्रकृतियोंमे ओघवत् जानना चाहिए।

३१२. वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिक मिश्रयोगीमे देवोके ओघवत् जानना चाहिए।

३१३ आहारक काययोगी और आहारक मिश्रयोगीमे सर्वार्थसिद्धिके समान भंग हैं।

३१४ कार्माण काययोगियोंमे – औदारिक मिश्र काययोगीके समान भंग कहना चाहिए। विशेष यह है कि ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। स्त्यानगृद्धि ३ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है। १२ कषायके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। १२ कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक

विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगु० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एदेण कमेण णेदव्वं ।

३१५. इत्थिवेद०—सव्वत्थोवा णिद्दापचलाणं अबंधगा जीवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिद्दापचलाणं बंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंसण० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं मणभंगो । सव्वत्थोवा पच्चक्खाण० चदु० अबंधगा जीवा । अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंध० जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंजलण-बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पुरिसवेद-बंधगा जीवा । इत्थिवेद-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भय-दुगुं० बंधगा जीवा विसेसा० । णवणोक० बंधगा जीवा विसेसा० । आयुचदुक्क-पंचिंदि०-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं

है । तीनों गतिके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । इस क्रमसे अन्यत्र जानना चाहिए ।

विशेष—इस योगमे नरकगतिका बन्ध नहीं होता है ।

३१५ स्त्रीवेदमे – निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है । बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । चारों दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

विशेष—यहाँ दर्शनावरण ४ के अबन्धक जीव नहीं पाये जाते । वे उपशान्तकषाय गुणस्थानमे पाये जाते है ।

वेदनीयके बन्धक जीवोंमे मनोयोगीके समान भंग है ।

प्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । अप्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है । अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नव नोकषायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ आयुके बन्धकोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए ।

अबंधगा जीवा। देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा संखेज्ज०। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा पंचजादि-अबंधगा जीवा। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तीइंदि० बंध० जीवा संखेज्ज०। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। पंचसरीर० छसंठाणं तिण्णि-अंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसरं मणजोगिभंगो। सव्वत्थोवा अगु० उप० अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० अबंध० जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा संखेज्ज०। अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। तसथावरादि पंचयुगल-तित्थयर-दोगोदाणं मणजोगिभंगो। णवरि जस-अजस० दोगोदाण साधारणेण अबंधगा णत्थि। सव्वत्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगल-अबंधगा जीवा। सुहुमादितिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा असंखेज्ज०। बादरादि-तिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एवं पुरिसवे०। णवुंसगवे० ओघभंगो। णवरि विसेसो वि इत्थिवेदेण माधिज्जदि। अवगद-

चारों गतिके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरक गतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुण है। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

पच जातियोंके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। त्रीइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ पचेन्द्रिय जातिके बन्धकोका प्रमाण वर्णन करनेसे छूट गया प्रतीत होता है।

५ शरीर, ६ संस्थान, ३ अगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक जीवोंमें मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

त्रस, स्थावर, स्थिरादि ५ युगल, तीर्थंकर, २ गोत्रके विषयमे मनोयोगियोंमे समान भग हैं। विशेष यह है कि यशःकीर्त्ति, अयश कीर्त्ति तथा दोनों गोत्रोंके सामान्यसे अबन्धक नहीं है। बादरादि तीन युगलके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। सूक्ष्मादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। बादरादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेष—यहाँ सूक्ष्मादि तीन तथा बादरादि तीनके बन्धकोंके साथमे युगल शब्द अधिक प्रतीत होता है। कारण सूक्ष्मादि तीन युगलके ही अन्तर्गत बादरादि तीन प्रकृतियाँ हैं, एवं बादरादि तीन युगलमे सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियाँ हैं।

पुरुषवेदमे—स्त्रीवेदके समान भंग है।

नपुसकवेदमे—ओघवत् भग है। विशेष, स्त्रीवेदसे जो विशेषता हो, उसे निकाल लेना चाहिए।

वेदेसु–सव्वत्थोवा पंचणा० बंधगा० । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं चदुदंसणा०, साद० जस० उच्चागो० पंचंत० । सव्वत्थोवा कोध संजल० बंधगा । माण-संजल० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । तस्सेव अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मायासंज० अबंधगा जीवा विसे० । माण-संज० अबं० जीवा विसे० । कोध-संज० अबंध० जीवा विसेसा० ।

३१६. कोधे–णवुंसकभंगो । णवरि णव णोकसायं ओघं । माणे–सव्वत्थोवा कोध-संज० अबं० जीवा । सेसं ओघं । णवरि कोध बंधगा जीवा विसे० । माण-माय-लोभ-संजलणबंधगा जीवा विसेसा० । मायाए–सव्वत्थोवा माणसंज० अबं० जीवा । सेसं माणकसाइ-भंगो । णवरि मायलोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । लोभे–मोह० ओघं । सेसं कोधभंगो । अकसाइ–सव्वत्थोवा साद-बंध० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । एव केवलणा० केवलदंसणा० ।

३१७. मदि० सुद०–सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा

अपगतवेदियोमे—५ ज्ञानावरणके बन्धक जाव सर्वस्तोक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । इसी प्रकार ४ दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्त्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके बन्धकों अबन्धकोमे भी जानना चाहिए ।

क्रोध सज्वलनके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मान सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ सज्वलनके अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । माया संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-सज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध सज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है ।

३१६ क्रोधमे—नपुंसकवेदके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि ९ नोकषायोंके बन्धकोमे ओघवत् जानना चाहिए ।

मानमे—क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । शेष प्रकृतियोमे ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, क्रोधके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मान, माया, लोभ सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

मायामे—मान-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है । शेष प्रकृतियोंमे मान-कषायियोंके समान भंग जानना । विशेष यह है कि माया, लोभ सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

लोभमे—मोहनीयके प्रकृतियोमे ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमे क्रोधके समान भंग है ।

अकषाय जीवोंमें—साता वेदनीयके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनवाले जीवोंमें जानना चाहिए ।

३१७. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—मिथ्यात्वके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान तथा श्रुताज्ञानमे मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान पाये जाते

अणंतगुणा। सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मत्त-संयुत्तं णत्थि। विभंगे–सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबं० जीवा। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा०। दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण छस्संघ० दोविहा० तसथावरादि छयुगलाणं दोगोद० देवोघ-भंगो। सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्ज०। चदुण्णं आयुबंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदि-बंध० जीवा थोवा। देवगदि-बंध० जीवा असंखेज्ज०। मणुसगदि बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। एवं आणुपु०। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा थोवा। तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचिंदि० बंध० जीवा असंखेज्ज०। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसा०। वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा थोवा। ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज०।

है। मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहे गये है। मिथ्यात्वके बन्धक अनन्तगुणे कहे गये है, क्योंकि मिथ्यात्वी जीवोंकी संख्या अनन्त है। परिमाणानुगममे कहा है "**मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता**"।

सोलह कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोंके बारेमे तिर्यंचोंके ओघसमान जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ सम्यक्त्वके साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंका अभाव है।

विशेष—तीर्थंकर तथा आहारकद्विकका सम्यक्त्वके साथ ही बन्ध होता है। अतः यहाँ इनका बन्ध न होगा।

विभगज्ञानियोंमे–मिथ्यात्वके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। बन्धक जीव असख्यातगुणे है। सोलह कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक है। २ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, २ विहायोगति, त्रस-स्थावर स्थिरादि ६ युगल तथा दो गोत्रोंमे देवोंके ओघवत् भग हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। चारों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

नरकगतिके बन्धक जीव स्तोक है। देवगतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

इसी प्रकार आनुपूर्वियोंमे जानना चाहिए।

चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव स्तोक है। त्रीइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। द्वीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। ५ जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यात-

तेजाक० बंध० जीवा विसे० । सव्वत्थोवा वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं अंगो० बंधगा जी० विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । परघादुस्सा० अबंध० जीवा थोवा । बधगा जीवा असंखेज्ज० । अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा० । आदावुज्जोव-देवोघं । सव्वत्थोवा सुहुमादितिण्णि बंधगा जीवा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । आभि० सुद० ओधि०–सव्वत्थोवा पंचणा० अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एवं अंतराइगं । सव्वत्थोवा चदुदंस० अबं० जीवा । णिद्दापचला-अबं० जी० विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । चदुदंस० बंध० जीवा विसेसा० । दोवेदणी० देवोघं । सव्वत्थोवा लोभसंज० अबं० जीवा । मायासंज० अबं० जीवा विसेसा० । माणसंज० अब० जीवा विसेसा० । कोधसज० अबं० जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणावर०४ अबंध० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणावर०४ अबंध० जीवा असंखेज्जगु० । बंध० जीवा असंखेज्ज० । पच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । कोधसंज० बंध० जीवा विसेसा० । माणसंज० बध० जीवा विसे० । मायासंज० बंध०

गुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । दोनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असंख्यात-गुणे है ।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्त गुणस्थानमे होनेसे यहाँ उनका वर्णन नहीं किया गया है ।

परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव स्तोक है । बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक है । आतप, उद्योतके विषयमें देवोघवत् जानना चाहिए ।

सूक्ष्मादि ३ के बन्धक जीव सर्वस्तोक है । इनके प्रतिपक्षी बादरादि ३ के बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधिज्ञानमे ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । ऐसा ही अन्तराय वर्णन जानना चाहिए अर्थात् अबन्धक जीव सर्व-स्तोक है और बन्धक जीव असख्यातगुणे है ।

४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे कम है । निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । इसके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

दो वेदनीयके बन्धक अबन्धक जीवोंमे देवोघवत् जानना ।

लोभ-संज्वलनके अबन्धक जीव सबसे स्तोक है । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव इनसे कुछ अधिक हैं । क्रोध-सज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है तथा बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जाव विशेषाधिक हैं । मान-सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-सज्वलनके बन्धक जीव

जीवा विसे० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक० अबंधगा जीवा । हस्सरदिबंधगा जीवा असंखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसेसा० । भयदुगुंच्छाबंधगा जीवा विसेसा० । ❀लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक०❀ पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवाउगं बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्ण बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । दोण्ण गदोण्णं अबंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्णं बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पंचिंदि० समचदुर० वज्जरिसभ-संघ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चागोदाणं अबंधगा । बंध० जीवा असंखेज्ज० । पंचसरी० अबंधगा जोवा थोवा । आहारसरीर-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा असखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णि-अंगो० अबंधगा जीवा । आहार० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय०

विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

सात नोकषायके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । अरति शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेषार्थ—नपुसकवेदके बन्धक मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती है । स्त्रीवेदके बन्धक सासादन पर्यन्त हैं । अतः इस सम्यक्ज्ञानके वर्णनमे उक्त वेदद्वयको छोड़कर सात नोकषायका कथन किया गया है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं ।

विशेषार्थ—नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है । तिर्यंचायुकी सासादनमें बन्ध व्युच्छित्ति कही है, इससे यहाँ इन दो आयुओका कथन नहीं किया गया है ।

दोनों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्च गोत्रके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

५ शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीनों अंगोपांगके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक अंगोपांगके

★ एतच्चिह्नान्तर्गत. पाठोऽधिक प्रतिभाति ।

अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । थिरादि तिण्णि-युगलं पंचिंदिय-भंगो। तित्थयरं बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । एवं ओधिदंस० । मणपज्जवणा० ओधिभंगो। णवरि असंखेज्जगुणगदीओ णत्थि । संखेज्जगुणं कादव्वं ।

३१८ एवं संजद० वेदणीयमणुसिभंगो ।

३१९. सामाइ० छेदो०-सव्वत्थोवा मायासंज० अबं० जीवा। माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० (?) माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । मायासंज० बंधगा जीवा विसे० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं किंचि विसेसेण मणपज्जवभंगो ।

३२०. परिहार०-आहारकाजोगिभंगो । णवरि आहारदुगं अत्थि । सुहुमसंपरा-

बन्धक असंख्यातगुणे हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

स्थिरादि ३ युगलोंका पंचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए।

तीर्थंकरके बन्धक जीव स्तोक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधि-दर्शनमे जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानमें अवधिज्ञानके समान भग है। विशेष यह है कि यहाँ मनःपर्ययज्ञानमें असख्यातगुणी सख्यावाली प्रकृति नहीं है। उनके स्थानमें सख्यातगुणेका पाठ करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनःपर्ययज्ञानमें संख्यातगुणेका क्रम लगाना चाहिए।

"मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा" (दव्वपमाणाणुगम सूत्र १२४, १२५)। इस कारण यहाँ संख्यातगुणे करनेका विशेष कथन किया गया है।

३१८. इसी प्रकार सयममार्गणामें जानना चाहिए। वेदनीयका मनुष्यनीके समान भंग है। अर्थात् साता-असाताके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। साताके बन्धक संख्यातगुणे हैं। असाताके बन्धक सख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक विशेषाधिक है।

३१९, सामायिक छेदोपस्थापना संयममे – माया-संज्वलनके अबन्धक जीव सबसे कम हैं। मान-संज्वलनके अबन्धक जाव विशेषाधिक है। क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं (?) मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। लाभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंमें कुछ विशेषताके साथ मनःपर्ययज्ञानके समान भंग हैं।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमे इन संयमियोंकी संख्या 'कोडि पुधत्तं' – कोटि पृथक्त्व कही है (सू० १२६ द० प्र०)। इससे क्रोध-संज्वलनके बन्धक 'असंख्यातगुणे'के स्थानमे 'संख्यातगुणे' होना चाहिए।

३२० परिहार विशुद्धि संयममें – आहारक काययोगीके समान भंग है। विशेष, इस संयममें आहारकद्विकका बन्ध पाया जाता है।

विशेष – परिहारविशुद्धि संयममे आहारकद्विकके उदयका विरोध है, बन्धका नहीं है।[1]

१ "मणपज्जवपरिहारे णवरि ण सढित्थिहारदुग।" –गो० क० ३२७।

इयस्स–णत्थि अप्पाबहुगं। यथाक्खादस्स–अबंधगा जीवा थोवा। बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। संजदासंजदा–परिहारभंगो। णवरि थोवा देवायु-तित्थयर-बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। असंजद-तिरिक्खोघं। णवरि अपच्चक्खाणावरणस्स अबंधगा णत्थि। तित्थयरं ओघं।

३२१. चक्खुदंस०–तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं। णवरि एदेसिं दोण्णं विसेसो णादव्वो।

३२२. तिण्णिलेस्सा–असंजदभंगो। तेऊए–सव्वत्थोवा थीणगिद्धि३ अबं०। बंधगा जीवा असखेज्ज०। छदंसण० बंधगा जीवा विसेसा०। दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण-छसंघ० आदाउज्जो० दोविहा० तसथाव० थिरादिछयुगं दोगोदं देवोघं। सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अपच्चक्खाणा०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। अणंता-

---

सूक्ष्मसाम्परायमे अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—यहाँ ज्ञानावरण ५, अन्तराय ५, दर्शनावरण ४, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा सातावेदनीयका बन्ध होता है। इनके बन्धकोंमें हीनाधिकपनेका अभाव है। यहाँ इन १७ प्रकृतियोंका बन्ध सबके पाया जायेगा।

यथाख्यातसंयममे—अबन्धक जीव स्तोक हैं। बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यथाख्यात संयम उपशान्त कषायसे अयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है। अयोगी जिनको छोडकर शेष जीवोंके साता वेदनीयका ही बन्ध होता है। अयोगी जिन ५९८ कहे गये हैं। ये अबन्धक है। इनकी अपेक्षा बन्धक सख्यातगुणे कहे है।

सयतासयतोंमे-परिहारविशुद्धिके समान भग है। विशेष, देवायु तथा तीर्थंकरके बन्धक स्तोक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। असयममे—तिर्यंचोंके ओघवत् हैं। विशेष, यहाँ अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक नहीं हैं। तीर्थंकर प्रकृतिका ओघवत् जानना चाहिए।

विशेषार्थ—असंयममे अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध होता है। इससे उसके अबन्धकका निषेध किया है।

३२१. चक्षुदर्शनमें—त्रस पर्याप्तकके समान भग हैं।

अचक्षुदर्शनमे—ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है, कि इन दोनोंमें जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिए।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन त्रसोंके ही होता है। चक्षुदर्शनी असंख्यात कहे हैं। अचक्षुदर्शन स्थावरोंके भी होता है। अचक्षुदर्शनी अनन्त हैं। (खु० ब० द्र० प्र० सू० १४१, १४४)

३२२. कृष्णादि तीन लेश्यामे—असयतके समान भग हैं।

तेजोलेश्यामें—स्त्यानगृद्धिके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका देवोघके समान समझना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सबसे कम हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अब-

णुबं०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णि बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । एवं चिंतिज्जदि । एवं पुण परिज्जदि । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । आहारस० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वियबंधगा जीवा

न्धक जीव असंख्यानगुणे है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इसके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। चारों संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेषार्थ—सज्वलनके अबन्धक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होते हैं। तेजोलेश्या देशविरतित्रिकमे पायी जाती है, इस कारण इस लेश्यामें संज्वलनके अबन्धक नहीं कहे है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तीनों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेष—अशुभत्रिक लेश्यामें नरकायुका बन्ध होता है। इस लेश्यामें नरकायुका बन्ध नहीं होता है।

यह चिन्तनीय है तथा ऐसा समझमे आता है कि मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेष—आयुके विषयमे दो प्रकारकी प्रतिपादना सम्भवतः दो परम्पराओंको बताती है।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। तीनों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमे भी जानना चाहिए।

पचेन्द्रियके बन्धक जीव स्तोक हैं। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—शंका—तेजोलेश्यामें जब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियके बन्धकोंका कथन नहीं है, तब यहाँ एकेन्द्रियके बन्धकका निषेध क्यों नहीं किया गया?

असंखे० । ओरालि० बंध० जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णं अंगो० एवं चेव । णवरि तिण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसे०। अबं० जीवा संखेज्ज० । एवं पम्माए। णवरि थोवा इत्थिवेदाणं बंध० जीवा । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादियसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

समाधान—सौधर्म ईशान स्वर्ग तकके देव तेजोलेश्याधारी होते हुए विकलत्रयमें जन्म न ले, एकेन्द्रिय पर्याय प्राप्त करते है, इस कारण यहाँ एकेन्द्रियके बन्धक कहे गये है। ऐसा आगमकी आज्ञा है।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

तीनों अंगोपांगमे ऐसा ही है, किन्तु तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

पद्मलेश्यामे इसी प्रकार जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष है, स्त्रीवेदके बन्धक जीव स्तोक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। अरति-शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव स्तोक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमे भी समझना चाहिए।

आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार अंगोपांगमे भी समझना चाहिए।

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके बन्धक जीव सबसे कम हैं। स्वातिकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। कुब्जकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वामनसंस्थानके बन्धक

हुंडसंठाण-बंधगा जीवा संखेज्ज० । समचदुर० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । वज्जरिसभ-संघ० बंधगा जीवा थोवा । वज्जणाराच० बंधगा जीवा संखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणं कादव्वं । छस्संघड० बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उज्जोव-तित्थय० बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खं बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । थिरादि तिण्णि-युगलं देवोघं । सुक्काए-पंचणा० पंचिदि० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुदं० अबंधगा जीवा थोवा । णिद्दापचला० अबंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि ३ [अ] बंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । चदुदं० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं देवोघं । लोभ-संज० अबंधगा ज वा थोवा । माया-संज० अबं० जीवा विसे० । माण संज० अबं० जीवा विसे० । कोध संज० अबं० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ [अ]बंधगा जीवा

जीव सख्यातगुणे है। हुण्डकसंस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। छहों सस्थानोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

वज्रवृषभसंहननके बन्धक जीव स्तोक है। वज्रनाराचसहननके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। आगेके सहननोंमे संख्यातगुणे अधिकका क्रम लगाना चाहिए। छह संहननोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं।

उद्योत, तीर्थंकरके बन्धक जीव स्तोक है। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके बन्धक जीव स्तोक हैं। इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायागति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

स्थिरादि ३ युगलोंका देवोघके समान जानना चाहिए।

शुक्ल लेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, पचेन्द्रिय जाति, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके अबन्धक जीव स्तोक है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है।

४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं। निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके [अ]बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। निद्रा-प्रचलाके बन्धक जाव विशेषाधिक हैं। ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

वेदनीयका देवोघके समान जानना चाहिए।

लोभ-सज्वलनके अबन्धक जीव स्तोक हैं। माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मान-सज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक है। क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विसेसा० । अबंधगा (बंधगा) जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबंधगा (?) बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणावरण० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसंज० बंधगा जीवा विसे० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा णव-णोक० अबंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंसक० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा दोण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा थोवा । आहारस० बंध० जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा छस्संठा० अबं० जीवा । णग्गोद-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सादिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

अनन्तानुबन्धी ४ के [अ]बन्धक जीव विशेषाधिक है । इनके अबन्धक (बन्धक) जीव संख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

नव नोकषायके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अरतिशोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम हैं । देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । दोनोके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

दोनों गति (देव-मनुष्यगति) के अबन्धक जीव सबसे स्तोक है । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

पाँचों शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अंगोपांगमे भी जानना ।

६ संस्थानोंके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । स्वातिक संस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । कुब्जकके बन्धक जीव

वामणबं० जीवा संखेज्ज० । हुंडसं० बंध जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंधगा जीवा संखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । एवं छस्संघ० । दोविहा० सुभगादि-तिण्णि-युगल-णीचुच्चागो० अब० जीवा थोवा । अप्पसत्थवि० दूभग-दु सर-अणादे० णीचागो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्ज० । थिरादितिण्णियुग० मणभंगो । सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जोवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । भवसिद्धि०—ओघं । अब्भवसिद्धिया—मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जीवा णत्थि ।

३२३. सम्मादिट्ठीसु—सव्वत्थोवा पंचणा० पंचिंदि० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थविहा० तस०४ सुभगादितिण्णियु० णिमिण-तित्थय० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा । अबंध० अणंतगुणा । सव्वत्थोवा णिद्दापचला-बंधगा जीवा । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० अणंतगुणा । णिद्दापचला अबंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा थोवा । असाद-बंधगा जी० संखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा थोवा ।

संख्यातगुणे है । वामनसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हुण्डकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । छहों संस्थानोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

इस प्रकार ६ संहननमे जानना चाहिए ।

२ विहायोगति, सुभगादि ३ युगल, नीच तथा उच्चगोत्रके अबन्धक जीव स्तोक है । अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, नीच गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । स्थिरादि ३ युगलोंमे मनोयोगियोंके समान भंग है ।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । भव्य-सिद्धिकोंमे ओघवत् जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोमे—मत्यज्ञानके समान जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धक जीव नहीं हैं ।

३२३ सम्यग्दृष्टियोमे—५ ज्ञानावरण, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभ-संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि तीन युगल, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव स्तोक है । अबन्धक अनन्तगुणे हैं ।

निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अबन्धक अनन्तगुणे है । निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

साताके बन्धक जीव स्तोक है । असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ—साता तथा असाताके अबन्धक अयोगकेवली अल्पसंख्या युक्त है । यहाँ अबन्धक जीव अनन्तगुणे कहे गये हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि होते हुए वेदनीयका अबन्धकपना अनन्त सिद्धोंमे भी पाया जाता है । खुद्दा बन्धमे सम्यक्त्व मार्गणामे अल्पबहुत्वका कथन करते हुए सिद्धोंकी अनन्तराशिका वर्णन किया गया है, **"यथा सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मा-मिच्छाइट्ठी । सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा"** (सू० १८९-१९२) ।

पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । कोध-सं० बं० जी० विसे० । माणसंज० बंध० जी० विसेमा० । मायासंज० बंध० जी० विसेमा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । अबंध० अणंतगुणा । मायासं० अबं० जीवा विसे० । माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसेसा० । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । भयदु० बंध० जीवा विसे० । पुरिस-वे० बंधगा जीवा विसे० । अबंध० अणंतगुणा । भयदु० अबं० जीवा विसे० । अरदिसोग-अबं० जीवा विसे० । हस्सरदि-अबं० जी० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंध० जीवा अणंतगुणा । देवगदि-बं० जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्णं बंध० जीवा विसे० । अबं० अणंतगुणा । एवं दो आणुपुव्वि० । आहारसरी० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । आरालि० बंधगा जीवा असखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं तिण्णि-अंगो० । थिरादि-तिण्णियुगलं

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव स्तोक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । इसके अबन्धक अनन्तगुणे है । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है ।

हास्य, रतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । अरतिशोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । भय, जुगुप्साके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । अरति, शोकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य, रतिके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे है ।

विशेषार्थ—यहाँ नरकायु तथा तिर्यंचायुका कथन नहीं किया गया है, कारण नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमे तथा तिर्यंचायुकी बन्धव्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानमे होती है ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अबन्धक अनन्तगुणे हैं ।

इसी प्रकार दो आनुपूर्वी (देवमनुष्यानुपूर्वी) मे भी जानना चाहिए ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है । वैक्रियिकशरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिकशरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार ३ अंगोपांगमे भी जानना चाहिए ।

वेदणीय-भंगो। एवं खइग-सम्मा०। णवरि थोवा देवायु-बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे०। एवं चदुसंजल० बंधगा जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। सेसं पडिलोमेण भाणिदव्वं। हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। भयदु० बंधगा जीवा विसे०। पुरिसवेद-बंधगा जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। सेसं पडिलोमेण भाणिदव्वं। वेदगे—सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे०। चदुसंज० बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा हस्सरदि-बंधगा जीवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। भयदु० पुरिसवे० बंधगा जी० विसे०। मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबं० जीवा असंखेज्ज०। देवगदि-बंधगा जीवा थोवा। मणुसगदि-बंधगा

स्थिरादि ३ युगलके बन्धकोंमे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

क्षायिकसम्यक्त्वमें – इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवायुके बन्धक स्तोक है। मनुष्यायुके बन्धक विशेषाधिक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक अनन्तगुणे है।

शेष भग प्रतिलोमसे जानना चाहिए, अर्थात् प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है, अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है।

हास्य, रतिके बन्धक जीव स्तोक है। अरति, शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव अनन्तगुणे है। शेष भंगमे प्रतिलोमसे जानना चाहिए अर्थात् भय, जुगुप्साके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अरति-शोकके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। हास्य-रतिके अबन्धक जीव भी संख्यातगुणे हैं।

वेदकसम्यक्त्वमे – प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—संज्वलनचतुष्कके अबन्धक जीवोंका यहाँ वर्णन नहीं किया गया। कारण वेदकसम्यक्त्व ४ से ७ वे गुणस्थान तक पाया जाता है, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभकी बन्धव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणमे होती है। अतः वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा संज्वलन ४ के अबन्धक जीवका अभाव होनेसे वर्णन नहीं किया गया।

हास्य-रतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अरति-शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुव्वि० । आहार० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं तिण्णि अंगोवंग० । वज्जरिसभ-संघ ओधिभंगो । सेसं युगलं देवोघं । उवसमसं०-ओधिभंगो । सासणे-वेदणीय पंचसंठा० उज्जोव-दोविहाय० थिरादि छयुग० दोगोदं णिरयोघं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । हस्सरदि-बंधगा जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । वेउव्वियस० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों-के बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

इसी प्रकार दोनो आनुपूर्वियोमे भी जानना चाहिए ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तैजस-कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार तीनों अंगोपागमे भी जानना चाहिए । वज्रवृषभ-नाराच-सहननमे अवधिज्ञानके समान भंग है । शेष युगलोंमे देवोंके ओघ समान जानना चाहिए ।

उपशमसम्यक्त्वमे अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । सासादनसम्यक्त्वमे-वेदनीय, ५ संस्थान, उद्योत, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रके बन्धकोमे नरकके ओघवत् जानना चाहिए ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । हास्य-रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अरति-शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचायु-के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । इनके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

विशेष—नरकायुका मिथ्यात्वगुणस्थान तक बन्ध होनेसे यहाँ उसका अभाव है ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंच-गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

इसी प्रकारका क्रम आनुपूर्वीमे भी जानना चाहिए ।

वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अंगोपांगमें भी जानना चाहिए ।

तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगोवंग० । पंचसंघ० अबंधगा जीवा थोवा । वज्जरिसभ० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणा । पंचण्णं बंधगा जीवा विसे० । सम्मामिच्छे–वेदणी० सत्तणोक० दोगदि-दो-सरीर-दोअंगो० वज्जरिसभ० थिरादितिण्णियुगलं वेद[ग]भंगो । मिच्छादिट्ठि-असण्णि–अब्भवसिद्धिय-भंगो ।

३२४. सण्णी–मणजोगि-भंगो । आहार-ओघभंगो । अणाहार०–पंचणा० पंचंत० वण्ण०४ णिमि० अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंस० अबंधगा जीवा थोवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगु० । छदस० बंधगा जीवा विसे० । सेसं ओघं । णवरि थोवा देवगदि-बंधगा । तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा [जीवा अणतगुण] तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा० संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । अगो० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं ।

---

५ संहननके अबन्धक जीव स्तोक है। वज्रवृषभनाराचसंहननके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। वज्रनाराच, नाराच आदि संहननोंके बन्धक जीवोंमे संख्यातगुणित क्रम जानना चाहिए। पॉचों संहननोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेष—हुण्डक संस्थानकी बन्धव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थानमे हे,नेसे उसका वर्णन नहीं हुआ।

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वमे, २ वेदनीय, ७ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, २ अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन, स्थिरादि ३ युगलमे वेदकसम्यक्त्वके समान भग जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञीमे अभव्यसिद्धिकोंका भग जानना चाहिए।

३२४ संज्ञीमे – मनोयोगियोंका भंग जानना चाहिए। आहारकमें – ओघवत् भंग है। अनाहारकोंमे – ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अबन्धक जीव स्तोक हैं। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव स्तोक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव अनन्तगुणे है। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोमे ओघवत् है। विशेष यह है कि देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं। तीनों गतिके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हे। मनुष्य गतिके बन्धक [अबन्धगुणे हैं] तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेष—अनाहारकोंमे नरकगतिके बन्धकोंका अभाव है इससे उसकी यहॉ परिगणना नहीं हुई है।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए। अंगोपांगमे कार्माण काययोगके समान भंग जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्वस्थान-जीव-अल्प बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ।

---

१ "आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबधा। बधा अणतगुणा।" –खु० बं० अप्पा० सू० २०३, २०४। २ "सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी। णेव सण्णी, णेव असण्णी अणतगुणा। असण्णी अणतगुणा। –सू० २००–३०२।"

[परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगपरूवणा]

३२५. परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो। ओघेण, ओदेसेण य।

३२६. तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा जीवा। तित्थयर-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरगायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदिबंधगा जीवा सखेज्ज०। वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागोद-बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुस-गइ-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थिवे० बधगा जीवा संखेज्ज०। जसगित्तिबंधगा जी० संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदिसो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। अजस० बंधगा जीवा विसे०। णवुम० बंधगा० जीवा विसे०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०।

[परस्थान-जीव-अल्प-बहुत्व]

३२५. अब परस्थान जीव अल्पबहुत्व अनुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते है।

विशेषार्थ—स्वस्थान-जीव-अल्पबहुत्व प्ररूपणामे बन्धक तथा अबन्धक जीवोंका कथन किया गया है। इस परस्थान जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणामे बन्धकोंका ही कथन किया गया है। परस्थान जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणामे स्वस्थान प्ररूपणाके समान कथन न करके सामान्य-रूपसे सभी कर्मोंके बन्धकोंका अल्पबहुत्वके आधारपर कथन किया गया है। इसमे सजातीय तथा भिन्नजातीय प्रकृतियोंका यथायोग्य मिला हुआ वर्णन पाया जाता है।

३२६. ओघकी अपेक्षा आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। मनुष्यायुके[1] बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक

---

१. आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्ण। आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? –संखेज्जा० सूत्र ९८-१०० खु० बं० द० पमा०। आइरियपरम्परागदउवदेसेण पुण सत्तावीसा होंति। –ध० टी० पृ० २८१।

ओरालि० बंधगा जी० विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि ३ अणंताणु०४ बंधगा जीवा विसे० । अपचक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० बंध० जीवा विसे० । णिद्दापचला-बंधगा जीवा विसे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे०। भयदु० बंधगा जीवा विसे० । कोध-संज०बंधगा जीवा विसे० । माणसं० बं० जीवा विसे० । माया-सं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा०, चदुदंस०, पंचंत० बंधा तुल्ला विसेसाहिया ।

३२७ ओदेसेण णेरइएसु-सव्वत्थोवा मणुसायु बंधगा जीवा । तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखे० । उच्चागो० बंधगा जी० संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-जस-हस्स-रदिबंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । असाद-अरदिसो० अजसगित्ति-बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि-तिय-अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । सेसाणं पगदीणं तुल्ला विसेसाहिया । एवं पढमाए । पंचसु मज्झिमासु एवं चेव । णवरि उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सत्तमाए पुढवीए-

---

है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध-सञ्ज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-सञ्ज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

३२७ आदेशसे—नारकियोंमे-मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हे । मनुष्यगतिक बन्धक जीव सख्यातगुणे है । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । साता-वेदनीय, यशःकीर्त्ति, हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नपुसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता-वेदनीय, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमे बन्धक जाव समान रूपसे विशेष अधिक क्रमवाले हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमें जानना चाहिए ।

मध्यवर्ती ५ पृथ्वियोंमें अर्थात् दूसरीसे छठी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

सव्वत्थोवा मणुसगदि-उच्चागो० बंधगा जीवा। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। उवरि सो चेव भगो। णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा०। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि४ तिरिक्खगदि-णीचागो० बंधगा जीवा सरिसा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा०।

३२८. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्विय० बंधगा विसेसा०। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागोदस्स बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। अजस० बंधगा जीवा विसेसा०। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा०। णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा०।

विशेष, उच्चगोत्रके बन्धक जाव असख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक तीसरी पृथ्वी पर्यन्त पाये जाते है, नीचे नहीं पाये जाते।

सातवीं पृथ्वीमे–मनुष्यगति, उच्चगोत्रके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है।

विशेषार्थ—सातवी पृथ्वीमे मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है, "**चरिमे मिच्छेव तिरियाम्**" (गो० क० १०६)। "**छट्टोत्ति य मणुवाऊ।**" सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्वगुणस्थानमे ही तिर्यंचायुका बन्ध होता है। मनुष्यायुका छठी पृथ्वी तक बन्ध कहा है इससे यहाँ मनुष्यायुका कथन नहीं किया गया है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे गुणे हैं। आगे इसी प्रकार सख्यातगुणे सख्यातगुणेका भग है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगति और नीच गोत्रके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

३२८ तिर्यंचोमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। साता-वेदनीय, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० । णवरि असंखेज्जगुणं कादव्वं ।

३२९. पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणीसु–सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । उच्चागोद बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसेसा० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जी० विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसा० । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा

औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असंख्यातगुणा क्रम करना चाहिए।

३२९ पचेन्द्रिय-तिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिमतियोंमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता वेदनीय, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तिर्यंचायुके

असंखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । सादहस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

३३०. मणुसेसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । [तित्थयर बंधगा जीवा] संखेज्जगुणा । णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उच्चागोद० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसे० ।

बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अयश कीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

३३० मनुष्य गतिमे आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । [तीर्थंकरके बन्धक] संख्यातगुणे हैं । नरकायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता वेदनीय, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके

उवरि मूलोघं।

३३१. मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु०। णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंध० जीवा संखेज्जगु०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे०। अजस० बंधगा जीवा विसे०। णवुंस० बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे०। उवरि मूलोघं। मणुस-अपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

३३२. देवेसु सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंधगा असंखेज्ज०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०।

बन्धक जीव विशेष अधिक है। आगेकी प्रकृतियोमे अर्थात् स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, निद्रा, प्रचला, तैजस, कार्माण, भय, जुगुप्सा, संज्वलन-क्रोध मान माया लोभ, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

३३१ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोमे आहारक शरीरके बन्धक सर्वस्तोक है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नरकायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। यश कीर्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रति-के बन्धक जीव सख्यातगुणे है। सातावेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। असाता, अरति, शोकके बन्धक विशेष अधिक है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

आगेकी प्रकृतियोमे अर्थात् ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ आदिमे मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोमे – पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकके समान भंग है।

३३२ देवोंमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव

मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थि० बं० जी० संखे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा सरिसा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सोग-अज्जसगि० बंधगा जीवा सरिसा संखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । एवं भवण० याव ईसाणत्ति । णवरि जोदिसियसोधम्मीसाणे उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सणक्कुमार याव सहस्सारत्ति विदियपुढविभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जात्ति सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि-तिय० अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरति-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । अणुदिस-अणुत्तर० सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

सख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यात गुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे हैं । नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणादिके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

भवनवासियोंसे ईशान स्वर्गपर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष यह है कि ज्योतिष्कदेव तथा सौधर्म, ईशान स्वर्गवासियोमे उच्चगोत्रके बन्धक जीव असख्यातगुणे है ।

सनत्कुमारसे सहस्रार स्वर्ग तक दूसरे नरकके समान भंग जानना चाहिए ।

आनतसे उपरिम ग्रैवेयक तक मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । नपुसकवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेष अधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक विशेषाधिक है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्च गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक है ।

अनुदिश-अनुत्तरवासी देवोंमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके

एवं सव्वट्ठे । णवरि संखेज्जगुणं कादव्वं ।

३३३. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं पंचिंदियतस-अपज्जत्ताणं च पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो । णवरि एइंदिय-वणफदि-णिगोदेसु तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा । तेउ-वाउ०—मणुसगदि-मणुसाणुपु० उच्चागो० बंधगा जीवा णत्थि । पंचिदिय-तसाणं मूलोघं । णवरि तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । पंचिंदिय-पज्जत्तगेसु—सव्वत्थोवा आहार-बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असं-खेज्जगुणा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा

बन्धक जीव सख्यातगुणे है । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक है ।

सर्वार्थसिद्धिमे ऐसा ही जानना चाहिए । विशेष, वहाँ 'संख्यातगुणे' क्रमकी योजना करनी चाहिए ।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोकी संख्या सख्यात कही गयी है अतः यहाँ बन्धकोंमे सख्यातगुणे क्रमकी योजनाका कथन किया गया है । खुद्दाबन्ध टीकामे लिखा है मनुष्यनियों-से सर्वार्थसिद्धिवासी देव सख्यातगुणे है । धवलाटीकाकार लिखते है : "गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है । कोई आचार्य सात रूप, कोई चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्य रूपसे सख्यात गुणकार कहते है । इससे यहाँ गुणकारके विषयमे तीन उपदेश है । तीनोके मध्यमे एक ही जात्य (श्रेष्ठ) है परन्तु वह जाना नही जाता, कारण इस विषयमे विशिष्ट उपदेशका अभाव है । इस कारण तीनोका ही सग्रह करना चाहिए । (अप्पाबहुगाणुग महादण्डक पृ० ५७७)।[1]

३३३ सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकायवालोमें पंचेन्द्रिय तथा त्रसके लब्ध्यपर्याप्तकोमे – पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, एकेन्द्रिय वनस्पति निगोद जीवोंमे तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे है ।

तेजकाय वायुकायमे – मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्च गोत्रके बन्धक जीव नही है ।[2]

पचेन्द्रिय तथा त्रसोंमे – मूलके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि तिर्यंचायु-के बन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

पचेन्द्रिय पर्याप्तकोमे - आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मनुष्यायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्च गोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव

१ "को गुणकारो ? सखेज्जसमया । के वि आयरिया सत्तरूवाणि के वि पुण चत्तारि रूवाणि, के वि सामण्णेण सखेज्जाणि रूवाणि गुणगारो त्ति भणति । तेणेत्थगुणगारे तिण्णि उवएसा । तिण्ण मज्झे एक्कोच्चिय जच्चोवएसो, सो विण णव्वइ, विसिट्ठोवएसाभावादो । तम्हा तिण्ह पि सगहो कायव्वो " –पृ० ५७७ ।
२. "मणुवदुग मणुवाऊ उच्च णहि तेउवाउम्हि ॥ –गो० क० २१४ ।

संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद०-बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

३३४. तस-पज्जत्तगेसु–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखे० गु० । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा सखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखे० गु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा सं० गु० । सादबंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालिय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० अबंधगा (बंधगा) जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

सख्यातगुणे है । पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यँचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोंमे मूलके ओघवत् जानना चाहिए ।

३३४ त्रसपर्याप्तकोमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यँचायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। उच्चगोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। सातावेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यँचगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक (?) जीव विशेषाधिक है। शेष

३३५. पंचमण० तिण्णिवचि०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु०। देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु०। वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०, अथवा विसेसाहियं। साद-बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। अज्ज० बंधगा जीवा विसे०। णवुंस० बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा विसे०। णीचागोद० बंधगा जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छ० बंधगा जीवा विसे०। उवरि ओघभंगो। वचिजोगि-असच्चमोस०-तसपज्जत्तभंगो। काजोगि-ओरालिय-काजोगि-ओघभंगो। ओरालिय-मिस्से—सव्वत्थोवा देवगदि-वेगुव्वि० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायु-बधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

प्रकृतियामे मूलोघवत् जानना चाहिए।

विशेष—यहाँ मिथ्यात्वके अबन्धकके स्थानमे बन्धक पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

३३५ पाँच मन, तीन वचनयोगमे-आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। उच्च गोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है अथवा विशेषाधिक है। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अवशेष आगेकी प्रकृतियोंमे ओघवत् जानना चाहिए।

वचनयोगी, असत्यमृषा अर्थात् अनुभयवचनयोगीमें—त्रसपर्याप्तकके समान भंग है।

काययोगी, औदारिक काययोगीमे ओघभंग है।

औदारिक मिश्र काययोगीमे – देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुष-

इत्थिवे० । धगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । वेउव्विय-काजो०, वेउव्वियमि०–देवोघं । णवरि मिस्से आयुगं णत्थि । आहार० आहारमिस्स०—सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जसगित्ति-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्जसगित्तिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया । कम्मइगका० सव्वत्थोवा देवगदि-वेउव्विय० बंधगा जीवा । उच्चागो० बंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसग० बंधगा जीवा संखे० गुणा । पुरिस० बंध० जीवा

वेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । यश कीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । साताके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतिके बन्धक जीवोमे समान रूपसे विशेष अधिकका क्रम है ।

वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोमे देवोके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगमे आयुका बन्ध नहीं है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिक मिश्रकाययोगमे नरकायु तथा देवायुका बन्ध निषिद्ध है, कारण देव तथा नारकी मरण कर देव तथा नारकी अवस्थाको नहीं बाँधते है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगमे "**देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियाउगं णत्थि**" (गो० क० ११८) के नियमानुसार मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका भी बन्ध नहीं होता है। इससे यहाँ आयुबन्धका निषेध किया है ।

आहारक, आहारक मिश्रकाययोगियोंमें – तीर्थंकरके बन्धक सर्वस्तोक है । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । साता, हास्य, रति, यश कीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

विशेषार्थ—आहारक तथा आहारक मिश्रकाययोगियोमें इतना अन्तर है कि आहारक काययोगीके देवायुका बन्ध होता है, किन्तु आहारक मिश्रकाययोगियोंमें देवायुका बन्ध नहीं होता । गोम्मटसार कर्मकाण्डमे लिखा है, "**छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ**।" (**गाथा ११८**) ।

कार्माण काययोगियोंमें – देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुष-

संखेज्जगुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

३३६ इत्थिवे० पुरिस०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा सखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखे० गुणा । वेउव्विय-बंधगा जी० विसेसा० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अथवा हस्सरदि० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखे० गुणा । अज्ज० बंधगा जीवा

वेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। सातावेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशः-कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है।

विशेषार्थ—कार्माणकाययोगमे आयुचतुष्कका बन्ध नहीं होता, इससे यहाँ आयु-बन्धका वर्णन नही किया गया है। कहा भी है "**कम्मे उरालमिस्स वा णाउदुगेपि।**" (गो० क० ११६)।

३३६ स्त्रीवेद, पुरुषवेदमें – आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक है। मनुष्यायु-के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। उच्च गोत्रके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अथवा हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। साताके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषा-

विसेसा० । णवुंसबंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागोद-बंधगा जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचलाणं बंधगा जी० विसे० । तेजाक० बंधगा जी० विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । णवुंसगवे०—मूलोघं । णवरि भयदुगुंछादो उवरि तुल्ला विसेसा० ।

३३७. अवगदवे०—सव्वत्थोवा कोध-संज० बंधगा जीवा । माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसे० । लोभ-संज० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा संखेज्ज० । कसायाणुवादेण—कोधादि०४ याव भयदुगुं० ताव मूलोघं । उवरि साधेदूण भाणिदव्वं ।

३३८. मदि० सुद०—तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० ।

धिक है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

विशेष—यहाँ हास्य, रतिके बन्धक जीवोंको संख्यातगुणा कहा है अथवा कहकर उनके बन्धकोंको विशेषाधिक कहा है । यह कथन भिन्न परम्पराओंको सूचित करता है । पाँच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगी जीवोंमे भी इसी प्रकार हास्य रतिके विषयमे कथन किया गया है ।

नपुंसक वेदमे मूलके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, भय, जुगुप्साके आगेकी प्रकृतियोमे अर्थात् सज्वलन क्रोधादि ४ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तरायमे समान रूपसे विशेषाधिकता है ।

३३७ अपगतवेदमे–क्रोध-सज्वलनके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्त्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । सातावेदनीयके बन्धक जीव संख्यातगुणे है ।

कषायानुवादसे—क्रोधादि ४ से लेकर भय, जुगुप्सापर्यन्त मूलके ओघवत् कथन है । आगेकी प्रकृतियोका अल्पबहुत्व योग्य रीतिसे निकाल लेना चाहिए ।

३३८. मत्यज्ञान श्रुताज्ञानमे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके

सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । विभंगे—सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखे० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जी० विसेसा० । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखेज्ज० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जी० संखे० गुणा । जस० बंधगा [जीवा] संखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचागोद० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० ।

३३६ आभि० सुद० ओधि०—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिवेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । हस्स-रदि-बंधगा जी० असं० गुणा । जस० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचला-बंधगा

बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेषके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

विभंगावधिमे—मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक [जीव] संख्यातगुणे हैं । साता, हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

३३६ आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानमे—आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यागुणे हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा विसेसा० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसाहिया । माणसं० बंधगा जीवा विसेसा० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० । मणपज्जव०— सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्स रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा विसे० । सादबंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्विय० तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसं० बंधगा जीवा विसे० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसेसा० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० ।

३४०. एवं संजद-सामाइ० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भंगो । उवरि सेसाणं बधगा सरिसा विसेसाहिया ।

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेपाधिक है । तैजस, कार्माणके बन्धक जीव विशेपाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोधसज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मानसज्वलनके बन्धक जीव विशेपाधिक है । मायासज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभसज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव विशेप अधिक है ।

मनःपर्ययज्ञानमे—आहारकशरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक है ।

विशेषार्थ—यहाँ मनःपर्ययज्ञानमे आहारक शरीरके बन्धकका कथन किया गया है, कारण मनःपर्ययज्ञान तथा आहारकद्विकके बन्धका विरोध नही है, इनके उदयका विरोध है । गो० क० की टीकामे लिखा है—अत्र (मनःपर्ययज्ञाने) आहारकद्वयोदय एव विरुध्यते (पृ० ११२ सं० टीका)

देवायुके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । यश कीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । साताके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । देवगति, वैक्रियिक तैजस कार्माण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेपाधिक है । क्रोध सज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मानसज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मायासंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

३४० सयम, सामायिक छेदोपस्थाना संयममे इसी प्रकार है । विशेष, मायासंज्वलन-पर्यन्त मन पर्ययके समान भंग है । आगेकी शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीवोंमे सदृश रूपसे विशेषाधिकता है ।

३४१ परिहारे—सव्वत्थोवा देवायुबंधगा जीवा। आहार० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्स-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सेसाणं सरिसा विसेसा०।

३४२. संजदासंजदा—सव्वत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया।

३४३. असंजदेसु—तिरिक्खोघं। णवरि थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा० विसेसा०।

३४४. चक्खुदंसणी–तस-पज्जत्तभंगो। अचक्खुदंसणी–ओघं। ओधिदंसणी–ओधिणाणिभंगो।

३४५. तिण्णि लेस्सा–असंजदभंगो। तेउलेस्सि०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायुबंधगा असंखेज्ज०। देवगदि-वेउव्विय० बंधगा संखेज्जगुणा। उच्चागो०

---

३४१ परिहारविशुद्धि सयममे—देवायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। आहारकशरीरके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव सदृश रूपसे सख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। शेष प्रकृतिके बन्धक सदृश रूप विशेषाधिक है।

विशेषार्थ—परिहार विशुद्धि सयममे आहारकद्विकका बन्ध होता है। यहाँ आहारक शरीरके बन्धका विरोध न होनेसे आहारक शरीरके बन्धकोका कथन किया गया है। इतना विशेष है कि इस सयममे आहारकके उदयका विरोध है। गो० कर्मकाण्ड टीकामे लिखा है—"परिहारविशुद्धिसंयमे तीर्थंकर आहारकद्विकबन्धोऽस्ति, नाहारकर्धिः" पृ० ११३।

३४२ सयतासयतोमे—देवायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। शेष प्रकृतियोके बन्धक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं।

३४३ असयतोमे—तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोके बन्धक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक है।

३४४ चक्षुदर्शनवालोंमे—त्रसपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए। अचक्षुदर्शन-वालोंमें—ओघवत् जानना चाहिए। अवधिदर्शनवालोंमे—अवधिज्ञानके समान भंग हैं।

३४५ कृष्णादि तीन लेश्यावालोमे—असंयतोंके समान भंग है।

विशेष—कृष्णादि लेश्यात्रय असंयत गुणस्थानपर्यन्त कही गयी है। अतः असंयतोके समान इनका भंग कहा गया है।

तेजोलेश्यावालोंमें—आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक असंख्यातगुणे है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्चगोत्रके

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बंधगा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जी० विसे०। पच्चक्खाणावर०४ बं० जीवा विसे०। सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा०। पम्माए—आहार० थोवा। मणुसाणु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्जगु०। देवायु-बंधगा जीवा विसेसा०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बं० जीवा सखेज्जगु०। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे०। णीचागो० बं० जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा सरिसा असखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सो०-अज्जस० बंध० सरिसा संखेज्जगुणा। देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। उच्चागो० बंध० जी० विसे०। पुरिस० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। उवरि तेउभंगो। सुक्काए—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा

बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक सख्यातगुणे है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नपुसकवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समानरूपसे विशेषाधिक है।

पद्मलेश्यामे—आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है। मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। नपुंसक वेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव समान रूपसे असंख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव समान रूपसे सख्यातगुणे है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। उच्चगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है। आगेकी प्रकृतियोमे अर्थात् स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ आदिमे तेजोलेश्याके समान भंग है।

शुक्ललेश्यामें—आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। मनुष्यायुके बन्धक जीव

संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे० । थीणगिद्धि३ बं०, अणंताणुबं०४ बंधगा विसे० । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-[सोग] अज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । उच्चागो० बंधगा जीवा विसेसा० । पुरिस० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि ओघभंगो । भवसिद्धि-मूलोघं । अब्भवसिद्धि-मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-सोलस-कसा० एकत्थ भाणिदव्वा ।

३४६. सम्मादिट्ठि-ओधिभंगो । खइग-सम्मा०-सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवायु-बंध० जी० संखेज्ज० । मणुसायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे० । उवरि ओधिभंगो । वेदगे—सव्वत्थोवा आहार० बं० जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउव्वि०

सख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नपुसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके बन्धक जीव और अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। साताके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, [शोक,] अयश कीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्चगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । आगेकी प्रकृतियोंमे – ओघवत् भग जानना चाहिए ।

भव्यसिद्धिकोमे – मूल ओघवत् जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोमें – मत्यज्ञानवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्व और सोलह कषायके बन्धकोंका भंग एक साथ लगाना चाहिए ।

विशेष—यहॉ मिथ्यात्वके साथ १६ कषायका सदा बन्ध होता है । इस कारण उनका पृथक् भग नहीं कहा है ।

३४६ सम्यग्दृष्टियोमें – अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । क्षायिकसम्यक्त्वमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव विशेष अधिक है । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक है । आगे अवधिज्ञानके समान भंग है ।

वेदकसम्यक्त्वमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके

बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि०-जस० बंधगा जी० असंखे० गु० । असाद-अरदि-सो० अजस० बंधगा जीवा सखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । उवसम-सं०-सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवगदि-वेउव्विय-बंधगा जी० असंखेज्जगु० । उवरि ओधिभंगो ।

३४७. सासणे–सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जी० असंखे० गुणा । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखे० गुणा । मणुसगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । साद-हस्स-रदि-जस० बंध० जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जी० संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सो० अज० बं० जीवा विसेसा० । अथवा असाद-अरदि-सो० अज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि० बंधगा जी० विसे० । णीचागो० बंधगा जी० विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० ।

बन्धक जीव असख्यातगुणे है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है। मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतिके बन्धक जीव समानरूपसे विशेषाधिक है।

उपशमसम्यक्त्वमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। आगेकी प्रकृतियोंमे अवधिज्ञानका भंग है।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वमें, आहारक शरीरके बन्धकोंकी अपेक्षा देवायुके बन्धकोंको संख्यातगुणा कहा है। वेदक सम्यक्त्वमे आहारक शरीरके बन्धकोंकी अपेक्षा मनुष्यायुके बन्धकोंको संख्यातगुणा कहा है। उपशम सम्यक्त्वमे आयुका बन्ध नहीं होनेसे किसी भी आयुके बन्धकका कथन नहीं किया गया है। इन तीनो सम्यक्त्वोंकी[1] विशेषता ध्यान देने योग्य है।

३४७ सासादनसम्यक्त्वमे – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। साता, हास्य, रति, यश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अथवा असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

---

१ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण। गो० क० १२० गाथा। उपशमसम्यग्दृष्टीना तिर्यग्मनुष्यगत्योर्देवायुषोर्नरकदेवगत्योर्मनुष्यायुषश्चाबन्धादुभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात्।" –गो० क० सं० टीका पृ० ११८।

सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । सम्मामिच्छ०—सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा, वेउव्वि० बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि जस० बंधगा जीवा असंखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० बंधगा जी० संखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । मिच्छादिट्ठि अब्भवसिद्धिभंगो ।

३४८ सण्णीसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जी० असंखे० गुणा । णिरयायु-बं० जीवा असंखे० गुणा । देवायु-बंधगा असंखे० गुणा । णिरयगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जी० असंखे० गुणा । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । वेउव्वि० बंधगा जी० विसे० । उच्चागो० बंधगा जी० संखेज्जगु० । मणुसग० बंधगा जी० संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जी० संखेज्जगु० । जस० बंधगा जी० संखे० गु० । हस्स-रदि-बंधगा जी०

शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

विशेषार्थ—नरकायुकी बन्ध व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमे होनेसे सासादन गुण-स्थानके वर्णनमे नरकायुका कथन नहीं आया है ।

सम्यग्मिथ्यात्वमे – देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव भी इसी प्रकार है । साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव असख्यात-गुणे है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

विशेषार्थ—मिश्रगुणस्थानमें आयुके बन्धका निषेध है "मिस्सूणे आउस्स य" (गो० क० गा० ९२) । इससे यहाँ आयुके बन्धका वर्णन नहीं किया गया है । इस गुणस्थानमे मरणका निषेध है । मिश्रगुणस्थानके पूर्व जिस सम्यक्त्व या मिथ्यात्व भावमे आयु बन्ध हुआ था उसी परिणाममें मरण होता है । कुछ आचार्य कथन करते है कि ऐसा नियम नहीं है ।[1]

मिथ्यादृष्टिमे – अभव्य सिद्धिकोंके समान भंग है ।

३४८ सञ्ज्ञीमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक असंख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पुरुष-वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । यश.कीर्त्तिके

१ "सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं ।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥" –गो० जी० गा० २४ ।

विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि मणजोगिभंगो । असण्णी-मिच्छादिट्ठि-भंगो । आहारा–ओघभंगो । अणाहारा–कम्मइगभंगो ।

एवं परत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं ।



बन्धक जीव सख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हे। आगेकी शेष प्रकृतियोंमे मनोयोगीके समान भंग है। असंज्ञीमे[1] मिथ्यादृष्टिके समान भग है।

आहारकमे – ओघके समान भग है। अनाहारकोंमे – कार्माण काययोगीके समान भंग है।

इस प्रकार परस्थान जीव अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।



१. "सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी। णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा। असण्णी अणंतगुणा। –खु० बं० अप्पाबहु सू० २००–२०२।

[अद्धा-अप्पा-बहुगपरूवणा]

३४६. अद्धा-अप्पाबहुगं दुविहं। सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं चेव, परत्थाण-अप्पाबहुगं चेव। सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं पगदं। दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण–एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहण्णुक्कस्सपदेण एक्कदो कादूण चोद्दसण्णं जीवसमासाणं ओघियअप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। चोद्दस्सण्णं जीवसमासाणं–सादासादं दोण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंध-गद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। सुहुम-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा

[अद्धा अल्प बहुत्व]

३४६ अद्धा-अल्पबहुत्वका अर्थ है कालसम्बन्धी हीनाधिकपना। यहाँ स्वस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व तथा परस्थान-अद्धा अल्प-बहुत्वके भेदसे अद्धा-अल्प बहुत्व दो प्रकारका है। स्वस्थान-अद्धा-अल्प बहुत्व प्रकृत है। उसका ओघ तथा आदेश-द्वारा दो प्रकारसे निर्देश करते है।

ओघसे–यहाँसे आगे चौदह [1]जीवसमासोमे ओघसम्बन्धी अल्प-बहुत्वका परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य और उत्कृष्ट पदके द्वारा एक-एक करके, वर्णन करेंगे।

चौदह जीव समासोमे साता-असाता इन दोनो प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय, सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय, इन सातोमे-से प्रत्येकके पर्याप्त-अपर्याप्त भेद करनेपर चौदह जीव-समास होते है।[2] यहाँ वेदनीय २, वेद ३, हास्यादि ४, गति ४, जाति ५, शरीर २, संस्थान ६, संहनन ६, आनुपूर्वी ४, विहायोगति, त्रसस्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगल, अंगोपांग २, गोत्र २ ये परिवर्तमान प्रकृतियाँ जघन्य उत्कृष्ट कालके भेदसे चौदह जीवसमासोमे वर्णित की गयी है।

सूक्ष्म अपर्याप्तकमें साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धक-

---

१ "अत्थि चोद्दस जीवसमासा। के ते ? एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा, पज्जत्ता, अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। तीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पंचिंदिया दुविहा सण्णिणो असण्णिणो। सण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता इदि। ऐद चोद्दस जीवसमासा, अदीदजीवसमासा वि अत्थि।" –ध० टी० भा० २ पृ० ४१५, ४१६।

बादर-सुहमेइंदिय-बि-ति-चउरिंदिय–असण्णि-सण्णी य।
पज्जत्तापज्जत्ता एव ते चोद्दसा होंति। –गो० जी० ७२।

२ "पूर्णा पर्याप्ता, अपूर्णद्विका द्विधा – अपर्याप्ता – निर्वृत्यपर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्ताश्चेति।" –गो० जी० सं० टी० पृ० १६०।

संखेज्जगुणा। बादर-एइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। सुहुम पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बादर-एइंदिय-पज्जत्तस्स सो चेव भंगो। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदिय अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। एवं पज्जत्तगेसु वि सादासादाणं णेदव्वं। पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-सण्णि-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-असण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-सण्णिस्स पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

३५०. चोद्दसण्णं जीवसमासाणं तिण्णि वेदाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। सुहुम-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स

का उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकमे साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। सूक्ष्म पर्याप्तकमे साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमे सूक्ष्म पर्याप्तकके समान भग है।

दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे–साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियोके पर्याप्तकोंमे, साता, असाताके बन्धकका काल पूर्ववत् जानना चाहिए।

पचेन्द्रिय-असंज्ञी-अपर्याप्तकमे–साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पचेन्द्रिय सज्ञी-अपर्याप्तकमे–साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय असंज्ञी-पर्याप्तकमे साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकमे—साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

३५०. चौदह जीव समासोमे—तीन वेदोंके बन्धकोंका जघन्य बन्धकाल समान रूपसे स्तोक है। सूक्ष्म अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके

उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। णवुंसकवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बादर-अपज्जत्तस्स तं चेव भाणिदव्वं। सुहुम-बादर-पज्जत्ताणं च तं चेव भंगो। बेइंदिय अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। तेइंदिय-अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। बेइंदिय अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। तेइंदिय-अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्क० बंधगद्धा विसेसा०। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स णवुंसकवेदस्स उक्क० बंधगद्धा विसेसा०। एवं पज्जत्तगेसु वि तिण्णं वेदाणं णेदव्वं। पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स पुरिस-वेदस्स उक्क० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंसक-वेदस्स उक्क० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-सण्णि-अपज्जत्तस्स तं चेव भाणिदव्वं। पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स एसेव भंगो। पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स तं चेव भंगो।

३५१. हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं सादासाद भंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगद्धाओ जहण्णियाओ सरिसाओ थोवाओ। सुहुम-अपज्जत्त-मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा

बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। नपुसकवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। बादर-अपर्याप्तक एकेन्द्रियमे—उपरोक्त ही भग है। सूक्ष्म पर्याप्तक तथा बादर पर्याप्तकमे—यही भग जानना चाहिए। दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे–पुरुषवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यात-गुणा है। त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तकमे–पुरुषवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—स्त्रीवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे स्त्रीवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—स्त्रीवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषा-धिक है। दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—नपुसकवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे—नपुसकवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। इसी प्रकार दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय पर्याप्तकोमे तीन वेदोका काल जानना चाहिए।

पचेन्द्रिय असज्ञी-अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुसकवेदके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यात-गुणा है। पचेन्द्रिय-संज्ञी-अपर्याप्तकमे—पूर्वोक्त भग जानना चाहिए। पचेन्द्रिय-असंज्ञी-पर्याप्तकमे भी ऐसा ही जानना चाहिए। पचेन्द्रिय-सज्ञी-पर्याप्तकमे भी पूर्वोक्त भंग जानना चाहिए।

३५१ चौदह जीव-समासोंमें—हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकोंका उत्कृष्ट तथा जघन्यकाल साता तथा असाता वेदनीयके समान जानना चाहिए।

चौदह जीव-समासोंमे—चारों गतिके बन्धकोका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक

संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । बादर० वेदणीयभंगो । एवं याव सण्णि-असण्णि अपज्जत्तग त्ति वेदणीयभंगो । पंचिंदिय असण्णि-अपज्जत्तस्स (पज्जत्तस्स) देवगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । णिरयगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स० । पंचण्णं जादीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । चदुरिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं बादर-अपज्जत्ताणं । सुहुम-बादर-एइंदिय--पज्जत्ताणं च एवं चेव भंगो । बेइंदिय-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एवं सेसाणं जादीणं । एवं पज्जत्ताणं च णेदव्वं । पंचिंदियं-सण्णि-असण्णि-अपज्जत्ता सुहुम-अपज्जत्तभंगो । पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स-चदुरिं० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा ।

है । सूक्ष्म अपर्याप्तकमे—मनुष्यगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । तिर्यचगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । बादर-अपर्याप्तकमे—वेदनीयके समान भग है । इसी प्रकार सज्ञी, असज्ञी अपर्याप्तक पर्यन्त वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय-असज्ञी पर्याप्तकमे - देवगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । मनुष्यगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । तिर्यंचगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । नरकगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय-सज्ञी-पर्याप्तकमे - पचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तकके समान जानना चाहिए ।

पचजातियोके बधकोका जघन्य काल समानरूपसे स्तोक है। सूक्ष्म-अपर्याप्तकमे—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । चौइन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । दोइन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । एकेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। बादर अपर्याप्तकमे इसी प्रकार भंग है । सूक्ष्म-बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमे—पचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमे—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, दोइन्द्रिय जाति, एकेन्द्रिय जातिके बन्धकोका काल इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकारका वर्णन दोइन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक, चौइन्द्रिय-पर्याप्तकमे जानना चाहिए। पचेन्द्रिय सज्ञी-असंज्ञी-अपर्याप्तकमे सूक्ष्म-अपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय-असज्ञी पर्याप्तकमे—चौइन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं सण्णि-पज्जत्ता। दोण्णं सरीराणं जहण्णिगाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। सुहुम-अपज्जत्तस्स ओरालिय-सरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-[अ]पज्जत्तगात्ति। तेसिं चेव पज्जत्तेसु ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स०। छस्संठाणं छस्संघडणं चदु-आणुपुव्वि-दो-विहायगदि-तसथावरादि०४-थिरादिछयुगलं सादासादाणं भंगो याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-पज्जत्तात्ति। णवरि पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स थावर० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तसस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय सण्णि-पज्जत्तस्स। एवं बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारणं कादव्वं। दो-अंगोवंगाणं सरीर-भंगो। दो-गोदं वेदणीय-भंगो।

३५२. आदेसेण–णेरइएसु दोण्णं जीवसमासाणं दोण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवा। अपज्जत्तयस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

त्रीन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। दोइन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पचेन्द्रिय-सञ्ज्ञी-पर्याप्तकमे—इसी प्रकार भग है।

दोनों शरीरो—वैक्रियिक औदारिक शरीरके बधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है। सूक्ष्म-अपर्याप्तकमे—औदारिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पचेन्द्रिय-असञ्ज्ञी-संज्ञी [अ]पर्याप्तक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इसके ही पर्याप्तकोंमें अर्थात् पचेन्द्रिय असञ्ज्ञी-पर्याप्तकोंमे औदारिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय संज्ञी-पर्याप्तकोमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

६ संस्थान, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस तथा स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगलोंके विषयमे पचेन्द्रिय असंज्ञी-सञ्ज्ञी-पर्याप्तक पर्यन्त साता, असाताके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, पचेन्द्रिय-असञ्ज्ञी-पर्याप्तकमे स्थावर प्रकृतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रसके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। इसी प्रकार पचेन्द्रिय-सञ्ज्ञी-पर्याप्तकमे भी जानना चाहिए। बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार स्थावर तथा त्रसके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात-गुणा कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी बादर, सूक्ष्मादिके बन्धकोंमे जानना चाहिए। दो अंगो-पांग अर्थात् औदारिक वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोमे शरीरके समान भंग जानना चाहिए अर्थात् औदारिक, वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके समान इनके भग हैं। नीच, उच्च गोत्रके बन्धकों-मे वेदनीयके सदृश भग है।

३५२ आदेशसे—नारकियोंमे – पर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप दो जीव समासोंमे साता-असाता इन दो प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल समान रूपसे स्तोक है। अपर्याप्तक नारकीमें-

असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कसिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं तिण्णि-वेदाणं हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं दोगदि-छस्संठाणं छस्संघडणं दो-आणुपुव्वि-दोविहायगदि-थिरादिछ-युगलं दोगोदाणं च सादासादभंगो। एवं याव छट्ठित्ति। सत्तमाए एवं चेव। णवरि दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदाणं च णत्थि अप्पाबहुगं। तिरिक्[क्ख] गदि-णवुंसगवेद-मदिअण्णाणि - सुदअण्णाणि-असंजद-अचक्खुदंसणि - भवसिद्धिय-अब्भवसिद्धिय - मिच्छा-दिट्ठि-असण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो। णवरि असण्णीसु बारस जीवसमासा त्ति भाणिदव्वं। पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-चदुण्णं जीवसमासाणं कादव्वं। पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु दोजीवसमासाणं भाणिदव्वं सण्णि-असण्णित्ति। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु दोजीवसमासा सण्णि-असण्णित्ति। मणुसेसु–दो जीवसमासा। पज्जत्त-

सातावेके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पर्याप्तक नारकोमे–साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, २ गति, (मनुष्य-तिर्यंचगति), ६ संस्थान, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धकोंमे साता, असाता वेदनीयके समान भग जानना चाहिए। यह क्रम प्रथम पृथ्वीसे छठी पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमे—इसी प्रकार भंग है। विशेष, दो गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रोंके बन्धकोंमे अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानमे ही तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रका बन्ध होता है। तृतीय तथा चतुर्थ गुणस्थानमे ही मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रका बन्ध होता है। अतः इनके निमित्तसे सप्तम पृथ्वीमे अल्पबहुत्व-पना नहीं पाया जाता है।

तिर्यंचगति, नपुंसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयमी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टी, असंज्ञी, आहारकमें ओघके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, असंज्ञी जीवोंमें बारह जीवसमास कहना चाहिए।

विशेष—इनमे संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी अपर्याप्तक ये दो जीवसमास नहीं होते है।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंमे—सज्ञी, असज्ञी तथा इन दोनोंके पर्याप्तक, अपर्याप्तक भेदरूप चार जीवसमास हैं।

पचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्तक तथा पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिमतियोंमे—संज्ञी तथा असंज्ञी ये दो जीवसमास कहना चाहिए। पचेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—संज्ञी तथा असंज्ञी ये दो जीवसमास हैं।

मनुष्योंमें—संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी-अपर्याप्तक ये दो जीवसमास है।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें असज्ञी भेद नहीं होता।[1] लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य भी संज्ञी ही

१ मनुष्यगतौ कर्मभूमौ आर्यखण्डे पर्याप्त-निवृत्त्यपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्तास्त्रयो जीवसमासा। म्लेच्छखण्डे लब्ध्यपर्याप्तकाभावात् द्वौ जीवसमासौ। भोगभूमौ कुभोगभूमौ च द्वौ द्वौ जीवसमासौ तत्रापि लब्ध्यपर्याप्तकाभावात्। कर्मभूमौ मनुष्याणा आर्यखण्डे गर्भजेषु पर्याप्त निवृत्त्यपर्याप्तौ, सम्मूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रय। —गो० जी० स० टीका पृ० १६६।

जोणिणीसु एकं चेव। सादासादाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एदेण कमेण भाणिदव्वं। एवं मणुस-अपज्जत्ता। देवाणं–णिरयभंगो याव सहस्सार त्ति। णवरि भवणवासिय याव ईसाण त्ति। दोण्णं जादीणं तसथावरादीणं दोण्णं जीवसमासाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। अपज्जत्त-पंचिंदिय-तसस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदिय-थावरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तं चेव पज्जत्ते०। आणद याव उवरिम-गेवज्जात्ति णेरइयभंगो। णवरि मणुसगदि०२ धुवं कादव्वं। अणुदिसादि याव सवट्ठत्ति–दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिरादि-तिण्णियुगलं णिरयभंगो। सेसाणं णत्थि अप्पाबहुगं। एइंदिएसु–चदुण्णं जीवसमासाणं ओघभंगो। एवं बादर० दोण्ण०[ण्णं] जीवसमासाणं। सुहुम० दोण्णं जीवसमासाणं, बादर-पज्जत्त-अपज्जत्त-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्तगेसु पत्तेगं पत्तेगं एगं जीवट्ठाणं।

होते है। भोगभूमि तथा कुभोगभूमिके मनुष्योंमे लब्ध्यपर्याप्तक भेद नहीं है। म्लेच्छ खण्डके मनुष्योंमे भी लब्ध्यपर्याप्तक भेद नहीं है। आर्य खण्डके कर्मभूमिज मनुष्योंमें पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त भेद कहे है। गर्भज कर्मभूमि या आर्य खण्डके मनुष्योंमे लब्ध्यपर्याप्तक भेद नही है। सम्मूर्छन मनुष्य ही होते है।

मनुष्य-पर्याप्तक तथा मनुष्यनीमे—एक पर्याप्तक रूप ही जीवसमास है। साता-असाताके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है। साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। इस क्रमसे अन्य प्रकृतियों-के बन्धका काल जानना चाहिए।

मनुष्य-अपर्याप्तकोंमे—इसी प्रकार जानना चाहिए।

देवगतिमे—सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त नारकियोंके समान भंग है। विशेष, भवनत्रिक तथा सौधर्म ईशानमे त्रस-स्थावरादिके बन्धकोंका जघन्यकाल दोनो जीवसमासोंमे समान रूपसे स्तोक है। अपर्याप्तकोंमे पंचेन्द्रिय-त्रसका उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यातगुणा है। एकेन्द्रिय-स्थावरका उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यातगुणा है। पर्याप्तकोंमे पंचेन्द्रिय-त्रस तथा एकेन्द्रिय-स्थावरके बन्धकके विषयमे अपर्याप्तकोंके समान भंग है। आनतसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त-नारकियोंके समान भग है। विशेष यह है, कि यहाँ मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका ध्रुव भग करना चाहिए। कारण वहाँ तिर्यंचगतिद्विकका बन्ध नहीं होता है। अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त-पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोनों जीव समासोंमे—दो वेदनीय, हास्य रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलके बन्धकोंका नरकके समान भंग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंमे अल्पबहुत्व नही है।

एकेन्द्रियोंमे—सूक्ष्म, बादर तथा इनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक रूप चार जीव-समास होते है, उनमे ओघवत् भग है। इसी प्रकार बादरमे पर्याप्त, अपर्याप्त रूप दो जीव-समास है। सूक्ष्ममें भी पूर्वोक्त पर्याप्त, अपर्याप्तमें दो जीवसमास हैं। बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्तमें प्रत्येक प्रत्येकका एक जीवसमास है।

विशेष—एकेन्द्रियोंमें बादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त अपर्याप्त इस प्रकार चार पृथक्-पृथक् जीवसमास होते है।

एवं पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-णिगोदाणं। णवरि तेउ-वाऊणं मणुसगदितियं णत्थि । वणप्फदि-काइय-छण्णं जीवसमासाणं । बादर-वणप्फदि-पत्तेय० दोण्णं जीवसमासाणं। विकलिंदि० दोण्णं जीवसमासाणं। पज्जत्तापज्जत्ताणं एक्कं चेव जीवसमासा। पंचिदिएसु चदुण्णं जीवसमासाणं। पज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं। अपज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं । तसेसु-दस-जीवसमासाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं पंच जीवसमासाणं।

३५३. पंचमण० पंचवचि० वेउव्वियमिस्सका० [आहार] आहारमिस्सका० कम्मइग० अवगद० कोधादि०४ सुहुमसांपराय-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-अणाहारगत्ति णत्थि अप्पाबहुगं। कायजोगीसु-वेउव्वियछक्कं वज्ज सेसाणं ओघभंगो कादव्वो। एवं ओरालिय-काजोगि-ओरालियमिस्स-काजोगीसु। णवरि सत्तण्णं जीवसमासाणं त्ति भाणिदव्वं। इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु-चदुण्णं जीवसमासात्ति

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक तथा निगोदियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, तेजकायिक, वायुकायिकमे मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका बन्ध नही होता है। वनस्पतिकायिकमे साधारण तथा प्रत्येक ये दो भेद है। इनमेसे प्रत्येकके पर्याप्त तथा अपर्याप्त ये दो भेद है। साधारणके बादर तथा सूक्ष्म ये दो भेद है। बादरके पर्याप्त तथा अपर्याप्त और सूक्ष्मके भी पर्याप्त तथा अपर्याप्त इस प्रकार वनस्पतिकायिकमे ६ जीव-समास है। बादर-वनस्पति प्रत्येकके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास है। विकलेन्द्रियके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास है। इनके पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकोंमे एक-एक जीव समास है। पचेन्द्रियोंमे चार जीव-समास है। पर्याप्तकोंमें संज्ञी और असंज्ञी ये दो जीव-समास है। अपर्याप्तकोंमे भी संज्ञी और असंज्ञी ये दो जीव-समास है।

त्रसोमे—दस जीव समास है, पर्याप्तकोंमे पॉच अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पॉच है तथा अपर्याप्तकोंमे भी पॉच जीव समास है। इस प्रकार दोनों मिलकर दस जीव-समास होते है।

३५३ ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, [आहारक,] आहारकमिश्रकाययोगी, कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि ४ कषाय, सूक्ष्मसाम्पराय, सासादनसम्यक्त्वी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अनाहारकमे अल्पबहुत्व नही है।

काययोगियोंमे—वैक्रियिकषट्कको छोडकर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग करना चाहिए। औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगीमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ सात जीव समास करना चाहिए। अर्थात् औदारिककाययोगमे पर्याप्तकोंके सूक्ष्म-बादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये सात भेद हैं तथा औदारिकमिश्रमे अपर्याप्तकोंके भी ये सात जीव-समास हैं।

स्त्रीवेदियो, पुरुषवेदियोंमें—पर्याप्त, अपर्याप्त भेद युक्त संज्ञी तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये चार जीव-समास कहना चाहिए।

भाणिदव्वं। विभंगे वेउव्विय छक्कं तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणाणं णत्थि अप्पाबहुगं। सेसाणं देवभंगो। आभि० सुद० ओधिणाणीसु—दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-चदु-णोकसाय-थिरादि-तिण्णि-युगलाणं ओघं। सेसाणं णत्थि अप्पाबहुगं। एवं ओधिदं० सम्मादिट्ठी-खइग-सम्मादिट्ठी-वेदग-सम्मादिट्ठी-उवसम-सम्मादिट्ठी त्ति। मणपज्जवणाणिओधिभंगो। णवरि एक्कं जीवट्ठाणं। एवं संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणं परिहार-संजदासंजद०। चक्खु-दंसणी तिण्णि जीवसमासाणि। तिण्णिलेस्सि० वेउव्विय-छक्क पंचजादि-तसथावरादि०४ णत्थि अप्पाबहुगं। सेसाणं णिरय-भंगो। तेउलेस्सि०—देवगदि०४ वज्ज सेसाणं देवोघभंगो। एवं पम्माए। णवरि सहस्सार-भंगो। सुक्काए-आणद-भंगो। सण्णिस्स दोण्णं जीवसमासाणं ओघं।

एवं सत्थाणं अद्धा अप्पाबहुगं समत्तं। एवं पत्तेगेण णीदं।

विभंगावधिमे—वैक्रियिकषट्क, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्तक साधारणके बन्धकोंमे अल्पबहुत्व नही है। शेष प्रकृतियोके विषयमें देवगतिके समान भग है।

आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तकरूप दो जीव-समास है। इनमे दो वेदनीय, चार नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलके बन्धकोंमे ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोमे अल्पबहुत्व नही है।

अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टिमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। मन पर्ययज्ञानीमे—अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ संज्ञी पर्याप्तकरूप एक ही जीव स्थान है।

सयमी, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सयतासयतोमे—मनःपर्ययज्ञानके समान एक जीव-स्थान है। चक्षुदर्शनीमे—चौइन्द्रिय पर्याप्तक तथा सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक एवं असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक ये तीन जीव-समास है।

कृष्ण-नील-कापोत-लेश्याओमे—वैक्रियिकषट्क, ५ जाति, त्रस स्थावरादि ४के बन्धकोंमे अल्पबहुत्व नहीं है। शेष प्रकृतियोमे नरकगतिके समान भंग है।

तेजोलेश्यामे—देवगति ४ को छोडकर शेष प्रकृतियोंके विषयमे देवोके ओघवत् भंग है।

पद्मलेश्यामे—इसी प्रकार भंग है। विशेष यह है कि यहाँ सहस्रार स्वर्गके समान भंग है।

शुक्ललेश्यामे—आनत स्वर्गके समान भंग है।

संज्ञीमें—पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास है। उनमे ओघवत् जानना चाहिए।

इस प्रकार स्वस्थान अद्धा-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।
इस प्रकार प्रत्येक रूपसे वर्णन किया।

[परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगपरूवणा]

३५४. एत्तो परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगेण पगदं। एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहण्णुकस्सेण पदेण एक्कदो कादूण ओघियं परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। आयुगवज्जाणं सत्तारस पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिमाओ थोवाओ। चदुण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। देवगदिउक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सिया बधगद्धा संखेज्जगुणा। मणुसग० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्क० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। सादावे० हस्सरदि-जसगित्तिस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। णिरयग० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग-अजसगित्ति० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०।

३५५. एवं ओघभंगो तिरिक्खा—पंचिंदिय-तिरिक्ख, पंचिदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त,

---

[परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व]

३५४ अब परस्थान-अद्धा अल्पबहुत्व प्रकृत है। यहाँ से परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य तथा उत्कृष्ट पद-द्वारा पृथक्-पृथक् करके ओघसम्बन्धी परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व कहेंगे।

विशेष—यहाँ परिवर्तमान प्रकृतियोंका परस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थानों-द्वारा अल्पबहुत्वका प्रतिपादन करते हैं। यहाँ ४ गति, ३ वेद, २ गोत्र, २ वेदनीय, ४ आयु, हास्य-रतियुगल तथा यशःकीर्तियुगल इन २१ प्रकृतियोंका ओघ तथा आदेशसे जघन्य, उत्कृष्ट कालका अल्पबहुत्व वर्णन किया गया है।

चार आयुको छोडकर (पूर्वोक्त) सत्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे अल्प है। ४ आयुके बन्धकोंका जघन्य काल सदृश रूपसे संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। देवगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। सातावेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नरकगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

३५५. तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि-

पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु-मणुस०३ पंचिंदिय-तस०२ इत्थि० पुरिस० णवुंस० मदिअण्णाणि० सुदअण्णाणि० असंजद० चक्खुदं० अचक्खुदं० भवसिद्धि० अब्भवसिद्धि० मिच्छादि० सण्णि-असण्णि-आहारगत्ति।

३५६ आदेसेण—णेरइएसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्ज-गुणा। उक्क० बंधगद्धा सखेज्जगुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्ज-गुणा। मणुसगदि-उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सि० बंध-गद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसग-वेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग-अजस० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। तिरिक्ख-गदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। एवं छसु पुढवीसु०। सत्तमाए आयुग-वज्जाणं एक्कारसण्णं पगदीणं जहण्णि-याओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। तिरिक्खायु-जहण्णिया बंधगद्धा संखेज्ज-

मतियोमे, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, स्त्री-वेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसि-द्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असज्ञी, आहारकमे ओघवत् भग जानना चाहिए।

३५६ आदेशसे, नारकियोमे—आयुको छोडकर १५ प्रकृतियोके बन्धकोका समान रूप-से स्तोककाल है।

विशेष—यहाँ पूर्वोक्त २१ प्रकृतियोमे-से चार आयु तथा नरकगति, देवगतिको घटाने-से शेष १५ प्रकृति रहती है। नरकगति, देवगतिका बन्ध नारकियोके नहीं पाया जाता है। (गो० क० गा० १०५)।

मनुष्यायु, तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे सख्यातगुणा है। उत्कृष्ट बन्धकोका काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। मनुष्य-गतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकों-का उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

इस प्रकार छह पृथिवियोमें जानना चाहिए।

सातवीं पृथ्वीमें—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके बन्धकोका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—नारकियोंकी सामान्यसे १५ प्रकृतियाँ है। उनमे-से मनुष्यगति, तिर्यंचगति तथा दो गोत्रको घटानेसे ११ शेष रहती है। इसका कारण यह है कि सातवे नरकमे मनुष्य-गति तथा उच्चगोत्रका बन्ध सम्यक्त्व मिथ्यात्व तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे ही होता

गुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सि० बंधगद्धा सरिसा संखे० गुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। मणुस० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। पुरिसवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंसगवे० उक्कस्सि० बंधग० विसेसा०। तिरिक्खग० उक्कस्सिया

है, मिथ्यात्व, सासादनमे नही होता। प्रथम द्वितीय गुणस्थानमे ही तिर्यंचगति तथा नीच गोत्रका बन्ध हाता है। इस प्रकार ये चार प्रकृतियॉ परिवर्तमान नही रहती है। कारण, प्रतिपक्षी प्रकृतियोका अभाव हो जाता है।

तिर्यंचायुके बन्धकोका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धकोका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

पचेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोमे—आयुको छोड़कर पन्द्रह प्रकृतियोके बन्धकोका जघन्य-काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—पचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे नरकगति तथा देवगतिका बन्ध नही होता है[2]। इस कारण आयुको छोडकर शेष बची १७ प्रकृतियोमें-से दो घटानेपर पन्द्रह प्रकृतियॉ रह जाती है।

मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोका जघन्य काल समान रूपसे संख्यातगुणा है। दोनों आयुओंके बन्धकोका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकों-का उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल

१ "मिस्साविरदे उच्च मणुवदुग सत्तमे हवे बधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्च ण बधति॥"–गो० क० १०७।

२ "सामण्ण-तिरियपचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥"–गो० क० १०९।

बंधग० विसेसा० । णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदि० सव्वपुढवि० आउ० वणप्फदिणिगोदाणं च ।

३५७. देवेसु–भवणवासिय याव ईसाण त्ति पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-भंगो । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति-आयुग-वज्जाणं तेरसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहण्णिया बंधगद्धा संखे० गुणा । उक्क० बंधग० संखे० गुणा । उच्चागो० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । पुरिसवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । साद० हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । णवुंसवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० उक्क० बंधग० विसेसा० । णीचागो० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति–आयुगवज्जाणं अट्ठण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयुग० जह० बंधगद्धा संखेज्जगुणा । उक्क० बंधग० संखे० गुणा । साद-हस्सरदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अजस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा ।

विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

सर्व अपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पृथ्वीकाय-अप्काय तथा वनस्पतिनिगोदोंका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

३५७. देवोंमें—भवनवासियोंसे ईशान पर्यन्त पंचेन्द्रिय-तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । सनत्कुमारसे सहस्रारपर्यन्त नरकगतिके समान भंग है । आनतसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त आयुको छोड़कर १३ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमें केवल मनुष्यगतिका बन्ध होता है । अतः परिवर्तमान १७ प्रकृतियोंमें-से गतिचतुष्क घटा दी गयीं । इस प्रकार १३ प्रकृतियाँ शेष रहीं ।

मनुष्यायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीचगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आयुको छोड़कर आठ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

विशेष—अनुदिशादि स्वर्गोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं । उनके नीच गोत्र, स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है । अतः गोत्रद्वय तथा तीन वेदनिमित्तक परिवर्तन न होनेसे आनतादिकी १३ प्रकृतियोंमें-से ५ प्रकृतियाँ घटानेपर ८ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं ।

मनुष्यायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

३५८. तेउ० वाउ०-आयुगवज्जाणं एक्कारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जहण्णिया बंधगद्धा संखे० गुणा। [उक्क० बंधग० संखे० गुणा।] पुरिसवे० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा। असाद-अरदि-सो० अजस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंस० उक्क० बंधगद्धा विसेसा०। पंचमण० पंचवचि० वेउव्वि० वेउव्वियमि० आहार० आहारमि० कम्मइग० अवगदवे० कोधादि०४ सासण० सम्मामि० त्ति साधेदूण णेदव्वं। णवरि कोधा०४ कसायाणं साधेदूण णेदव्वं। कसायकालो थोवो। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। ओरालि० ओरालिमि० पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। विभंगे-णिरयभंगो। आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाणं अट्ठण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जह० बंधगद्धा संखे० गुणा। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग०

३५८ तेजकाय, वायुकायमे—आयुको छोडकर ११ प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—अनुदिशसम्बन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमे अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असातामे वेदत्रयको जोड़नेसे ११ प्रकृतियाँ होती है। यहाँ वेदत्रयका बन्ध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमे उनको परिगणित किया है।

तिर्यंचायुके बन्धकोका जघन्य काल संख्यातगुणा है। [उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यातगुणा है।] पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यश कीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक-आहारकमिश्रयोगी, कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कषाय, सासादनसम्यक्त्वी, सम्यक्मिथ्यात्वीमे परिवर्तमान प्रकृतियोंके बन्धकोंका बन्धकाल निकालकर जान लेना चाहिए। विशेष-क्रोधादि चार कषायोमे विचार करके भंग जानना चाहिए। कषायका काल स्तोक है। बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रकाययोगके—पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा अपर्याप्तकके समान भंग है।

विभगावधिमे—नरकगतिके समान भंग है अर्थात् वहाँ १५ प्रकृतियाँ हैं। आभिनिबोधिक-ज्ञान, अवधिज्ञानमें—आयुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—यहाँ साता, हास्य, रति, अरति, शोक, असाता, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति ये ८ परिवर्तमान प्रकृतियाँ है।

आयुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। एवं मणपज्जव०। णवरि दो-आयुगाणं भाणिदव्वं(व्वे) एक्कं चेव भाणिदव्वं।

३५६. संजदा-सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजद० मणपज्जव० भंगो। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

३६०. किण्णणीलकाउलेस्सि० णिरयभंगो। तेउ०-देवोघं। पम्म०-सहस्सार-भंगो। सुक्कले०-आणदभंगो।

३६१. सम्मादिट्ठी-खइग० वेदग० उवसम० ओधिणाणि-भंगो। णवरि उवसम० आयुगाणं णत्थि अप्पाबहुगं।

३६२. आहाराणुवादेण-आहारा मूलोघं। अणाहारा-कम्म (?) कम्मइ० का-जोगि-भंगो।

एवं परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं पगदिबंधो समत्तो।

साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मन.पर्ययज्ञानमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ बन्धकोंमे दो आयुके स्थानमे एक देवायुका ही बन्ध कहना चाहिए।

३५६. संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयतासंयतोंमे-मनः-पर्ययवत् भग है।

अवधिदर्शनमे—अवधिज्ञानका भंग है।

३६० कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे—नरकगतिके समान भग है। तेजोलेश्यामे—देवोंके ओघवत् है। पद्मलेश्यामे—सहस्रार स्वर्गके समान भग है। शुक्ललेश्यामे—आनत-स्वर्गका भंग है।

३६१ सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टिमे—अवधिज्ञानके समान भग है। विशेष, उपशमसम्यक्त्वमे आयुकृत अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—सम्यग्दृष्टिके मनुष्य अथवा देवायुका ही बन्ध होता है, उपशम सम्यक्त्वमे—इन दोनोंका ही बन्ध नहीं होता है।[1]

३६२ आहारानुवादसे—आहारकोंमे मूलके ओघवत् जानना चाहिए। अनाहारकमें-कार्माण काययोगवत् जानना चाहिए।

इस प्रकार परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध समाप्त हुआ।

---

१ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।"–गो० क० १२०।

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors

Dr H L JAIN, Jabalpur Dr A N UPADHYE, Kolhapur

The Bhāratīya Jñānapītha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc and published by the Jñānapīṭha

Mahābandha or the **Mahādhavalā :**

This is the 6th Khanda of the great Siddhānta work *Ṣaṭkhandāgama* of Bhūtabali The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta The entire work is published in 7 volumes The Prākrit Text which is based on a single Ms is edited along with the Hindī Translation Vol I is edited by Pt S C DIWAKAR and Vols 2 to 7 by Pt PHOOLACHANDRA Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha Nos 1, 4 to 9 Super Royal Vol I pp 20+80+350, Vol II pp 4+40+440, Vol III pp 10+496, Vol IV: pp 16+428, Vol V pp 4+460, Vol VI pp 22+370, Vol VII pp 8+320 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs 11/- for each vol

Karalakkhana :

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof P K MODI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 2 Third edition, Crown pp 48 Bhāratīya Jnānapīṭha Kashi, 1964 Price 75 nP.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc, Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 1 Second edition. Super Royal pp 14 + 58 + 144 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price Rs 8/-.

Kannada Prāntīya Tāḍapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc Edited with a Hindī Introduction etc by Pt K BHUJABALI SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 2 Super Royal pp 32 + 324. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1948 Price Rs 13/-

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c. 16th century Vikrama Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough Edited by Pts MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindi Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp 108 + 548 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949, Price Rs 16/-

Ratna-Mañjūsā with Bhāsya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody Edited with a critical Introduction and Notes by Prof H D VELANKAR Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 5 Super Royal pp 8 + 4 + 72 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949 Price Rs 2/-

Nyāyaviniścaya-vivaraṇa :

The Nyāyaviniścaya of Akalaṅka (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c 11th century A D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular Edited with Appendices etc by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 3 and 12 Super Royal Vol I : pp 68 + 546, Vol II : pp 66 + 468 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954. Price Rs 15/- each

Kevalajñāna-praśna-cūdāmani :

A treatise on astrology etc Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc by Pt NEMICHANDRA JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 7. Super Royal pp 16+128 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs 4/-

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanamjaya (c 8th century A D) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c 15th century A.D) The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr P L VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt MAHENDRAKUMAR The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 6 Super Royal pp 16+140 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs 3.50 nP

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism Prākrit Text, Sanskrit Chāyā Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof A CHAKRAVARTI The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No 1 Super Royal pp 10+162+244 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs 8/-

Jātakatthakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA Jñānapīṭha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No 1, Vol 1 Super Royal pp 16+384. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 Price Rs 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar It preaches the principles of Truth and Non-violence The Tamil Text and the commentary of Kavirājapandita Edited by Prof A CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English Bhāratīya Jñānapīṭha Tamil Series No. 1. Demy pp. 8+36+440 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs 5/-.

Mahāpurāna :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Gunabhadra, full of encyclopædic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A D) is an outstanding scholar, poet and teacher, and he occupies a unique place in Sanskrit Literature This work was completed by his pupil Gunabhadra Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc by Pt PANNALAL JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 8, 9 and 14 Super Royal Vol I Second edition, pp 8+68+746 Varanasi 1963, Vol II pp 8+556, Vol III pp 8+16+640; Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 to 1954 Price Rs 10/- each

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c Samvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by Pt HIRALAL JAIN The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratiṣṭhāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 3 Super Royal pp 230 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1952 Price Rs 5/-

Tattvārthavārttikam or **Rājavārttikam :**

This is an important commentary composed by the great logician Akalanka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20 Super Royal Vol I pp 16+430; Vol II pp 18+436 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1953 and 1957 Price Rs 12/- for each Vol

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Pandita Āśādhara (V S 13th century) In this edition brought out by Pt HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation Śrutasāgara's commentary of the same is also given here There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara etc There are some useful Indices Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 11 Super Royal pp 288 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954 Price Rs 4/-.

Purānasāra-Samgraha :

This is a Purāna in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthamkaras and other great persons The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by G C JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16 Crown Part I : pp 20+198, Part II pp 16+206 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1954, 1955 Price Rs 2/- each

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Grdhrapiccha It is edited here by Pt PHOOLACHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 13 Double Crown pp 116+506 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1955 Price Rs 12/-

Jainendra Mahāvrtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākarana*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A D Edited by Pts S N TRIPATHI and M CHATURVEDI There are a Bhūmikā by Dr V S AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākarana* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 17 Super Royal pp. 56+506. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956 Price Rs 15/-

Vratatithi Nirnaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19. Crown pp 80+200 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956 Price Rs 3/-.

Pauma-cariu :

An Apabhramśa work of the great poet Svayambhū (677 A D) It deals with the story of Rāma The Apabhramśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha Nos 1, 2 & 3 Crown size, Vol I pp 28+333, Vol II pp 12+377, Vol III pp 6+253 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1957, 1958. Price Rs 3/- for each Vol

Jīvamdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvamdhara and his romantic adventures It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvamdhara tale by Drs. A. N UPADHYE and H L. JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 18 Super Royal pp 4+24 +20+344 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1958 Price Rs 8/-

Padma-purāna :

This is an elaborate Purāna composed by Raviṣena (V S 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale It is edited by Pt PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāna Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26 Super Royal Vol I . pp 44+548, Vol II pp 16+460, Vol III pp 16+472 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashī, 1958-59 Price Rs 10/- each

Siddhi-viniścaya :

This work of Akalankadeva with Svopajñavṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature It is a feat of editorial ingenuity and scholarship The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23 Super Royal Vol I · pp 16+174+370, Vol II: pp 8+808 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1959 Price Rs 18/- and Rs 12/-

Bhadrabāhu-Samhitā :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 25 Super Royal pp 72+416 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1959. Price Rs. 8/-.

Pañcasamgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gōmmatasāra etc The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākrit Vrtti by Pt HIRALAL who has added a Hindī Translation as well A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 10 Super Royal pp 64+804 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1960 Price Rs 15/-

Mayana-parājaya-cariu :

This Apabhramśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by Prof Dr HIRALAL JAIN It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 5 Super Royal pp 88+90 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1962 Price Rs 8/-

Harivamśa Purāna :

This is an elaborate Purāna by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivamśa in which are included the cycle of legends about Krsna and Pāndavas The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt PANNALAL JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 27 Super Royal pp 12+16+812+160 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1962 Price Rs 16/-

Karmaprakrti :

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommaṭasāra Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Ṭīkā of Paṇdita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśeṣārtha Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No. 11 Super Royal pp. 32+160. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs. 6/-.

Upāsakādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri It deals with the duties of a householder Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc by Pt KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 28 Super Royal pp 116+539, Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs. 12/-

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A D) Critically edited by Dr B Ch CHHABRA, Jt Director General of Archæology in India and S SANKARANARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 29 Super Royal pp 24+192 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 8/-

Satyaśāsana-parīkṣā

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi, critically edited for the first time by GOKULCHANDRA JAIN It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr NATHMAL TATIA Jñānapītha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No 30 Super Royal pp 56+34+62 Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs 5/-

Karakanda-cariu

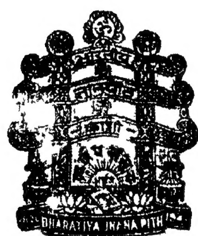
An Apabhramśa text dealing with the life story of king Karakanda, famous as 'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc by Dr HIRALAL JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 4 Super Royal pp 64+278 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 10/

For Copies Please write to —

BHARATIYA JNANPITH,
3620/21 Netaji Subhas Marg, Dariyaganj,
Delhi (India)

or

BHARATIYA JNANPITH,
Durgakund road, Varanasi (India).


BHARATIYA JNANA PITH